परमात्म प्रकाश प्रवचन

भाग-१

ॐ

श्री सिद्ध परमात्मने नमः
श्री सीमंधरदेवाय नमः
श्री सद्गुरुदेवाय नमः
श्री निजशुद्धात्मने नमः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग-1

परमपूज्य योगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के शब्दशः प्रवचन (प्रथम अधिकार)
गाथा 1 से 48, प्रवचन क्रमांक 1 से 31

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत्
2077

वीर संवत्
2548

ई. सन
2021

—: प्रकाशन :—
श्री नेमिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
सिंगोली (मध्यप्रदेश) के अवसर पर
दिनांक 03 दिसम्बर से 08 दिसम्बर 2021

—: प्राप्ति स्थान :—
1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। वीर प्रभु की दिव्यध्वनि में प्रकाशित मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित हो रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर किया जाये तो श्री योगीन्द्रदेव ई.स. छठवीं शताब्दी में हुए है। आपश्री ने स्वयं की सातिशय अनुभवलेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की है। आपने स्वानुभवदर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आप की स्वरूप-भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान, वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1110 के दौरान हुए हैं, ऐसा माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढूंढारी में सुबोध टीका रची है। ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित है। आत्मा-परमात्मा किस प्रकार हो, इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है।

प्रथम अधिकार में भेद विवक्षा से आत्मा—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतलायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्व प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान जिनशासन में हम सबके परम तारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्राय: अखण्ड मोक्षमार्ग को पुन: जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और

सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट कर प्रकाशित किया है। उनका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के प्रति प्रयत्नशील बने हैं और पंचम काल के अन्त तक गुरुदेवश्री द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से प्रवर्तमान रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन प्रदान किये हैं। उनमें से यह एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रवचन डी.वी.डी. में आज मौजूद है, उन्हें सुनते हुए गुरुदेवश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता हुआ तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपश्री की उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलता, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष प्राप्त किया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार के संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों के हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वह अलौकिक है! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलान करके उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना अथवा बोलना, वह सूर्य को दीपक बतलाने के समान है। तथापि गुरुदेवश्री का अमाप उपकार हृदयगत होने पर शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से निकल पड़ते हैं। आपश्री के उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से चुकाया जा सके, ऐसा नहीं है। मात्र उनके द्वारा प्रकाशित पन्थ पर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा स्थापित अनेक जिनमन्दिरों में आज उनके प्रवचन नियमितरूप से सुने जा रहे हैं। अनेक मुमुक्षु उनका लाभ लेकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने के लिये प्रयत्नशील हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी सबकी भावना होने से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचनों को शब्दशः ग्रन्थारूढ़ करने के निर्णय के फलस्वरूप परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचनों का प्रस्तुत प्रथम भाग प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने का श्रेय भी पूज्य गुरुदेवश्री को ही जाता है।

गुरुदेवश्री की सातिशय वाणी नित्य श्रवण करना अपूर्व सौभाग्य है। आज अनेक जिनमन्दिरों में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन सुनते समय मुमुक्षु उनके अक्षरशः प्रवचनों को सुनने का लाभ ले रहे हैं। अनेक मुमुक्षु जीवों की भावना होने से परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचन प्रकाशित करने

का निर्णय हमारे ट्रस्ट ने लिया। पूज्य गुरुदेवश्री के इस ग्रन्थ पर दो बार के प्रवचन सी.डी. में उपलब्ध हैं। उनमें से ई.स. 1976-1977 में हुए कुल 245 प्रवचनों को आठ भागों में प्रकाशित करने की योजना है। प्रकाशन हेतु प्रवचनों को सुनकर कम्प्यूटर में टाईप कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें सुनकर वाक्य पूर्ण करने की आवश्यकता हो, वहाँ कोष्ठक में वाक्य रचना पूर्ण की जाती है। जिस गाथा के प्रवचन उपलब्ध न हों अथवा कम हो उन्हें इससे पूर्व हुए प्रवचनों में से लिया जाता है। तत्पश्चात् प्रवचनों को सुनकर व्यवस्थित करके प्रकाशन हेतु प्रेस में दिया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के भाव यथावत् बने रहें इसकी विशेष सावधानी रखने का प्रयत्न किया गया है तथापि प्रमादवश कहीं चूक रह गयी हो तो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुद्ध अन्तःकरण से क्षमायाचना करते हैं। यदि पाठकवर्ग को भी कहीं कोई क्षति दृष्टिगोचर हो तो कृपया हमें सूचित करें, जिससे आवश्यक संशोधन किया जा सके।

प्रस्तुत अक्षरशः प्रवचन डी.वी.डी. से सुनकर गुजराती में कम्प्यूटराईज्ड करने का काम श्री निलेशभाई जैन, भावनगर तथा समग्र प्रवचनों को चैक करने का कार्य श्री मणीभाई गाला, देवलाली और स्व. श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत भावना प्रधान अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का लाभ हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी प्राप्त करे, इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। साथ ही सी.डी. से मिलानकर प्रत्येक प्रवचन की यथासम्भव शुद्धता का ध्यान रखा गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में जिनेन्द्र परमात्मा, सर्व आचार्य भगवन्तों, ज्ञानी सद्गुरु परमपुरुष के उपकार को हृदयगत करके, उनके चरणों में बारम्बार वन्दना करके नतमस्तक होते हैं। सभी जीव पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को पढ़कर, सुनकर आत्मकल्याण के मार्ग में अनुगमन कर शाश्वत् सादि-अनन्त समाधिसुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ vitragvani.com वेबसाइट एवं vitragvani app पर भी उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह–समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश–टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश–विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर–घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल–वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन–ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश–विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश–विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार–पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी–कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय–व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र–गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग–मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर–कमलों से हुई।

जन्म–मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म–जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	गाथा	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
०१	१	०६-०६-१९७६	००१
०२	१	०७-०६-१९७६	०२६
०३	१-२	०८-०६-१९७६	०४१
०४	२ से ४	०९-०६-१९७६	०५९
०५	५-६	१०-०६-१९७६	०७७
०६	७	११-०६-१९७६	०९५
०६(७)	७	२४-०९-१९६५	११४
०८	७ से ९	१४-०६-१९७६	१३४
०९	९ से ११	१५-०६-१९७६	१५६
०९(१०)	११-१२	२८-०९-१९६५	१७६
१०	१२	२८-०९-१९६५	१९५
११	१३ से १६	१७-०६-१९७६	२१५
१२	१६ से २१	१८-०६-१९७६	२३६
१३	२२-२३	२०-०६-१९७६	२५६
१४	२३ से २५	२१-०६-१९७६	२७५
१५	२५ से २७	२२-०६-१९७६	२९२
१६	२७-२८	२३-०६-१९७६	३१०
१७	२९-३०	२४-०६-१९७६	३२६
१८	३१-३२	२५-०६-१९७६	३४२
१९	३३	२७-०६-१९७६	३५८
२०	३४	२८-०६-१९७६	३७३

प्रवचन नं.	गाथा	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
२१	३५-३६	२९-०६-१९७६	३८८
२२	३६-३७	३०-०६-१९७६	४०४
२३	३८-३९	०१-०७-१९७६	४१९
२४	४०	०२-०७-१९७६	४३४
२५	४१-४२	०३-०७-१९७६	४५१
२६	४२-४३	०४-०७-१९७६	४६८
२७	४४-४५	०६-०७-१९७६	४८३
२८	४६	०७-०७-१९७६	५००
२९	४७-४८	०८-०७-१९७६	५१६
३०	४८	०९-०७-१९७६	५३३

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

परमात्मप्रकाश प्रवचन

(भाग - 1)

श्रीमद्ब्रह्मदेवकृतसंस्कृतटीका

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने।

परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः।।१।।

श्रीयोगीन्द्रदेवकृतपरमात्मप्रकाशाभिधाने दोहकछन्दोग्रन्थे प्रक्षेपकान् विहाय व्याख्यानार्थमधिकारशुद्धिः कथ्यते। तद्यथा-प्रथमतस्तावत्पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारमुख्यत्वेन 'जे जाया झाणग्गियए' इत्यादि सप्त दोहकसूत्राणि भवन्ति, तदनन्तरं विज्ञापनमुख्यतया 'भाविं पणविवि' इत्यादिसूत्रत्रयम्, अत ऊर्ध्वं बहिरन्तःपरमभेदेन त्रिधात्मप्रतिपादनमुख्यत्वेन 'पुणु पुणु पणविवि' इत्यादिसूत्रपञ्चकम्, अथानन्तरं मुक्तिगतव्यक्तिरूपपरमात्मकथनमुख्यत्वेन 'तिहुयणवंदिउ' इत्यादि सूत्रदशकम्, अत ऊर्ध्वं देहस्थितशक्तिरूपपरमात्मकथनमुखत्वेन 'जेहउ णिम्मुलु' इत्यादि अन्तर्भूतप्रक्षेपपञ्चकसहितचतुर्विंशतिसूत्राणि भवन्ति, अथ जीवस्य स्वदेहप्रमितिविषये स्वपरमतविचारमुख्यतया 'किं वि भणंति जिउ सव्वगउ' इत्यादिसूत्रषट्कं, तदनन्तरं द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपकथनमुख्यतया 'अप्पा जणियउ' इत्यादि सूत्रत्रयम्, अथानन्तरं कर्मविचारमुख्यत्वेन 'जीवहं कम्मु अणाइ जिय' इत्यादि सूत्राष्टकं, तदनन्तरं सामान्यभेद-भावनाकथनेन 'अप्पा अप्पु जि' इत्यादि सूत्रनवकम्, अत ऊर्ध्वं निश्चयसम्यग्दृष्टिकथनरूपेण 'अप्पिं अप्पु' इत्यादि सूत्रमेकं, तदनन्तरं मिथ्याभावकथनमुख्यत्वेन 'पज्जयरत्तउ' इत्यादि सूत्राष्टकम्, अत ऊर्ध्वं सम्यग्दृष्टिभावनामुख्यत्वे 'कालु लहेविणु' इत्यादिसूत्राष्टकं, तदनन्तरं सामान्यभेदभावनामुख्यत्वेन 'अप्पा संजमु' इत्याद्येकाधिकत्रिंशत्प्रमितानि दोहकसूत्राणि भवन्ति।। इति श्रीयोगीन्द्रदेवविरचितपरमात्मप्रकाशशास्त्रे त्रयोविंशत्यधिकशतदोहकसूत्रै-र्बहिरन्तःपरमात्मस्वरूपकथनमुख्यत्वेन प्रथमप्रकरणपातनिका समाप्ता। अथानन्तरं द्वितीय-महाधिकारप्रारम्भे मोक्षमोक्षफलमोक्षमार्गस्वरूपं कथ्यते। तत्र प्रथमतस्तावत् 'सिरिगुरु' इत्यादि-मोक्षस्वरूपकथनमुख्यत्वेन दोहकसूत्राणि दशकम्, अत ऊर्ध्वं 'दंसणु णाणु' इत्याद्येकसूत्रेण

मोक्षफलं, तदनन्तरं 'जीवहं मोक्खहं हेउ वरु' इत्याद्येकोनविंशतिसूत्रपर्यन्तं निश्चयव्यवहार-मोक्षमार्गमुख्यतया व्याख्यानम्, अथानन्तरमभेदरत्नत्रयमुख्यत्वेन 'जो भत्तउ' इत्यादि सूत्राष्टकम्, अत ऊर्ध्वं समभावमुख्यत्वेन 'कम्मु पुरक्किउ' इत्यादिसूत्राणि चतुर्दश, अथानन्तरं पुण्यपाप-समानमुख्यत्वेन 'बंधहं मोक्खहं हेउ णिउ' इत्यादिसूत्राणि चतुर्दश, अत ऊर्ध्वम् एकचत्वारिंशत्सूत्रपर्यन्तं प्रक्षेपकान् विहाय शुद्धोपयोगस्वरूपमुख्यत्वमिति समुदायपातनिका। तत्र प्रथमतः एकचत्वारिंशन्मध्ये 'सुद्धहं संजमु' इत्यादिसूत्रपञ्चकपर्यन्तं शुद्धोपयोगमुख्यतया व्याख्यानम्, अथानन्तरं 'दाणिं लब्भइ' इत्यादिपञ्चदशसूत्रपर्यन्तं वीतरागस्वसंवेदनज्ञानमुख्यत्वेन व्याख्यानं, तदनन्तरं 'लेणहं इच्छइ मूढु' इत्यादिसूत्राष्टकपर्यन्तं परिग्रहत्यागमुख्यतया व्याख्यानम्, अत ऊर्ध्वं 'जो भत्तउ रयणत्तयहं' इत्यादि त्रयोदशसूत्रपर्यन्तं शुद्धनयेन षोडशवर्णिकासुवर्णवत् सर्वे जीवाः केवलज्ञानादिस्वभावलक्षणेन समाना इति मुख्यत्वेन व्याख्यानम्, इत्येक-चत्वारिंशत्सूत्राणि गतानि। अत ऊर्ध्वं 'परु जाणंतु वि' इत्यादि समाप्तिपर्यन्तं प्रक्षेपकान् विहाय सप्तोत्तरशतसूत्रैश्चूलिकाव्याख्यानम्। तत्र सप्तोत्तरशतमध्ये अवसाने 'परमसमाहि' इत्यादि चतुर्विंशतिसूत्रेषु सप्त स्थलानि भवन्ति। तस्मिन् प्रथमस्थळे निर्विकल्पसमाधिमुख्यत्वेन 'परमसमाहिमहासरहिं' इत्यादि सूत्रषट्कं, तदनन्तर-मर्हत्पदमुख्यत्वेन 'सयलवियप्पहं' इत्यादि सूत्रत्रयम्, अथानन्तरं परमात्मप्रकाशनाममुख्यत्वेन 'सयलहं कम्महं दोसहं' इत्यादि सूत्रत्रयम्, अथ सिद्धपदमुख्यत्वेन 'झाणें कम्मक्खउ करिवि' इत्यादि सूत्रत्रयं, तदनन्तरं परमात्मप्रकाशा-राधकपुरुषाणां फलकथनमुख्यत्वेन 'जे परमप्पपयासु मुणि' इत्यादिसूत्रत्रयम्, अत ऊर्ध्वं परमात्मप्रकाशाराधनायोग्यपुरुषकथनमुख्यत्वेन 'जे भवदुक्खहं' इत्यादिसूत्रत्रयम् अथानन्तरं परमात्मप्रकाशशास्त्रफलकथनमुख्यत्वेन तथैवौद्धत्यपरिहारमुख्यत्वेन च 'लक्खणछंद' इत्यादि सूत्रत्रयम्। इति चतुर्विंशतिदोहकसूत्रैकचूलिकावसाने सप्त स्थलानि गतानि। एवं प्रथमपातनिका समाप्ता। अथवा प्रकारान्तरेण द्वितीया पातनिका कथ्यते। तद्यथा-प्रथमस्तावद्बहिरात्मान्त-रात्मपरमात्मकथनरूपेण प्रक्षेपकान् विहाय त्रोयविंशत्यधिकशतसूत्रपर्यन्तं व्याख्यानं क्रियत इति समुदायपातनिका। तत्रादौ 'जे जाया' इत्यादि पञ्चविंशतिसूत्रपर्यन्तं त्रिधात्मपीठिका-व्याख्यानम्, अथानन्तरं 'जेहउ णिम्मलु' इत्यादि चतुर्विंशतिसूत्रपर्यन्तं सामान्यविवरणम्, अत ऊर्ध्वं 'अप्पा जोइय सव्वगउ' इत्यादि त्रिचत्वारिंशत्सूत्रपर्यन्तं विशेषविवरणम्, अत ऊर्ध्वं 'अप्पा संजमु' इत्याद्येकत्रिंशत्सूत्रपर्यन्तं चूलिकाव्याख्यानमिति प्रथममहाधिकारः समाप्तः। अथानन्तरं मोक्षमोक्षफलमोक्षमार्गस्वरूपकथनमुख्यत्वेन प्रक्षेपकान् विहाय चतुर्दशाधिकशतद्वयसूत्रपर्यन्तं द्वितीयमहाधिकारः प्रारभ्यत इति समुदायपातनिका। तत्रादौ 'सिरिगुरु' इत्यादित्रिंशत्सूत्रपर्यन्तं पीठिकाव्याख्यानं, तदनन्तरं 'जो भत्तउ' इत्यादिषट्त्रिंशत्सूत्रपर्यन्तं सामान्यविवरणम्, अथानन्तरं 'सुद्धहं संजमु' इत्याद्येकचत्वारिंशत्सूत्रपर्यन्तं विशेषविवरणं, तदनन्तरं प्रक्षेपकान् विहाय सप्तो-त्तरशत पर्यन्तमभेदरत्नत्रयमुख्यतयाचूलिकाव्याख्यानं, इति द्वितीयपातनिका ज्ञातव्या।।

श्री पंडित दौलतरामजीकृत मंगलाचरण

(दोहा)

चिदानंद चिद्रूप जो, जिन परमातम देव।
सिद्धरूप सुविसुद्ध जो, नमों ताहि करि सेव।।१।।

परमातम निजवस्तु जो, गुण अनंतमय शुद्ध।
ताहि प्रकाशनके निमित्त, वंदू देव प्रबुद्ध।।२।।

'चिदानंद इत्यादि श्लोक का अर्थ – श्री जिनेश्वरदेव शुद्ध परमात्मा आनंदरूप चिदानंदचिद्रूप है, उनके लिये मेरा सदाकाल नमस्कार होवे, किसलिये? परमात्मा के स्वरूप के प्रकाशने के लिये। कैसे हैं वे भगवान्? शुद्ध परमात्मस्वरूप के प्रकाशक हैं, अर्थात् निज और पर सबके स्वरूप को प्रकाशते हैं। फिर कैसे हैं? 'सिद्धात्मने' जिनका आत्मा कृतकृत्य है। सारांश यह है कि नमस्कार करने योग्य परमात्मा ही है, इसलिये परमात्मा को नमस्कार कर परमात्मप्रकाशनामा ग्रंथ का व्याख्यान करता हूँ।

श्री योगीन्द्रदेवकृत परमात्मप्रकाश नामा दोहक छंद ग्रंथ में प्रक्षेपक दोहों को छोड़कर व्याख्यान के लिये अधिकारों की परिपाटी कहते हैं – प्रथम ही पंच परमेष्ठी के नमस्कार की मुख्यता कर 'जे जाया झाणग्गियए' इत्यादि सात दोहे जानना, विज्ञापना की मुख्यता कर 'भाविं पणविवि' इत्यादि तीन दोहे, बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा, इन भेदों से तीन प्रकार आत्मा के कथन की मुख्यता कर 'पुणु पुणु पणविवि' इत्यादि पाँच दोहे, मुक्ति को प्राप्त हुए जो प्रगटस्वरूप परमात्मा उनके कथन की मुख्यताकर 'तिहुयण वंदिउ' इत्यादि दस दोहे, देह में तिष्ठे हुए शक्तिरूप परमात्मा के कथन की मुख्यता से 'जेहउ णिम्मलु' इत्यादि पाँच क्षेपकों सहित चौवीस दोहे, जीव के निजदेह प्रमाण कथन में स्वमत–परमत के विचार की मुख्यता कर 'किवि भणंति जिउ सव्वगउ' इत्यादि छह दोहे, द्रव्य गुण पर्याय के स्वरूप कहने की मुख्यता कर 'अप्पा जणियउ' इत्यादि तीन दोहे, कर्म–विचार की मुख्यता कर 'जीवहं कम्मु अणाइ जिय' इत्यादि आठ दोहे, सामान्य भेद भावना के कथन कर 'अप्पा अप्पु जि' इत्यादि नौ दोहे, निश्चयसम्यग्दृष्टि के कथनरूप 'अप्पे अप्पु जि' इत्यादि एक दोहा, मिथ्याभाव के कथन की मुख्यता कर 'पज्जयरत्तउ' इत्यादि आठ दोहे, सम्यग्दृष्टि की मुख्यता कर 'कालु लहेविणु' इत्यादि आठ दोहे और सामान्य भेदभाव की मुख्यता कर 'अप्पा संजमु' इत्यादि इकतीस दोहे

कहे हैं। इस तरह श्री योगीन्द्रदेवविरचित परमात्मप्रकाश ग्रंथ में १२३ दोहों का पहला प्रकरण कहा है, इस प्रकरण में बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा के स्वरूप के कथन की मुख्यता है, तथा इसमें तेरह अंतर अधिकार हैं। अब दूसरे अधिकार में मोक्ष, मोक्षफल और मोक्षमार्ग इनका स्वरूप कहा है, उसमें प्रथम ही 'सिरिगुरु' इत्यादि मोक्ष रूप के कथन की मुख्यता कर दस दोहे, 'दंसण णाणु' इत्यादि एक दोहा कर मोक्ष का फल, निश्चयव्यवहार मोक्षमार्ग की मुख्यता कर 'जीवहं मोक्खहं हेउ वरु' इत्यादि उन्नीस दोहे, अभेदरत्नत्रय की मुख्यता कर 'जो भत्तउ' इत्यादि आठ दोहे, समभाव की मुख्यता कर 'कम्मु पुरक्किउ' इत्यादि चौदह दोहे पुण्य-पाप की समानता की मुख्यता कर 'बंधहं मोक्खहं हेउ णिउ' इत्यादि चौदह दोहे हैं, और शुद्धोपयोग के स्वरूप की मुख्यता कर प्रक्षेपकों के बिना इकतालीस दोहे पर्यंत व्याख्यान है। उन इकतालीस दोहों में से प्रथम ही 'सुद्धहं संजमु' इत्यादि पाँच दोहा तक शुद्धोपयोग के व्याख्यान की मुख्यता है, 'दाणि लब्भइ' इत्यादि पंद्रह दोहापर्यंत वीतराग स्वसंवेदनज्ञान की मुख्यता कर व्याख्यान है, परिग्रह त्याग की मुख्यता कर 'लेणह इच्छइ' इत्यादि आठ दोहापर्यन्त व्याख्यान है, 'जो भत्तउ रयणत्तयहं' इत्यादि तेरह दोहापर्यंत शुद्धनयकर सोलहवान के सुवर्ण की तरह सब जीव केवलज्ञानादि स्वभावलक्षण कर समान हैं, यह व्याख्यान है। इस तरह इकतालीस दोहों के व्याख्यान की विधि कही। उनके चार अधिकार हैं। यहाँ पर एक सौ ग्यारह दोहों का दूसरा महा अधिकार कहा है, उसमें दस अन्तर अधिकार हैं। इसके बाद 'परु जाणंतु वि' इत्यादि एक सौ सात दोहों में ग्रंथ की समाप्तिपर्यंत चूलिका व्याख्यान है। इनके सिवाय प्रक्षेपक हैं। उन एक सौ सात दोहों में से अन्त के 'परमसमाहि' इत्यादि चौबीस दोहा पर्यंत परमसमाधि का कथन है, उनमें सात स्थल हैं। उनमें से प्रथम स्थल में निर्विकल्प समाधि की मुख्यता कर 'परमसमाहिमहासरहिं' इत्यादि छह दोहे, अरहंतपद की मुख्यता कर 'सयल वियप्पहं' इत्यादि तीन दोहे, परमात्मप्रकाश नाम की मुख्यता कर 'सयलहं दोसहं' इत्यादि तीन दोहे, सिद्धपद की मुख्यता कर 'झाणे कम्मक्खउ करिवि' इत्यादि तीन दोहे, परमात्मप्रकाश के आराधक पुरुषों को फल के कथन की मुख्यता कर 'जे परमप्पपयास मुणि' इत्यादि तीन दोहे, परमात्मप्रकाश की आराधना के योग्य पुरुषों के कथन की मुख्यता कर 'जो भवदुक्खहं' इत्यादि तीन दोहे, और परमात्मप्रकाश शास्त्र के फल के कथन की मुख्यता कर तथा गर्व के त्याग की मुख्यता कर 'लक्खण छंद' इत्यादि तीन दोहे हैं। इस प्रकार चूलिका के अंत में चौबीस दोहों

में सात स्थल कहे गये हैं। इस तरह तीन महाअधिकारों में अंतर स्थल अनेक हैं। एक तो इस प्रकार पातनिका कही, अथवा अन्य तरह कथन कर दूसरी पातनिका कहते है – पहले अधिकार में बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा के कथन की मुख्यता कर क्षेपकों को छोड़कर एक सौ तेईस दोहे कहे हैं। उनमें से 'जे जाया' इत्यादि पच्चीस दोहा पर्यंन्त तीन प्रकार आत्मा के कथन का पीठिका व्याख्यान, 'जेहउ णिम्मलु' इत्यादि चौबीस दोहापर्यन्त सामान्य वर्णन, 'अप्पा जोइय सव्वगउ' इत्यादि तेतालीस दोहापर्यन्त विशेष वर्णन और 'अप्पा संजमु' इत्यादि इकतीस दोहापर्यन्त चूलिका व्याख्यान है। इस तरह अंतर अधिकारों सहित पहला महाधिकार कहा। इसके बाद मोक्ष, मोक्षफल और मोक्षमार्ग के स्वरूप के कथन की मुख्यता कर क्षेपकों के सिवाय दो सौ चौदह दोहापर्यन्त दूसरा महाधिकार है। उसमें 'सिरि गुरु' इत्यादि तीस दोहापर्यन्त पीठिका व्याख्यान, 'जो भत्तउ' इत्यादि छत्तीस दोहापर्यन्त सामान्यवर्णन और 'सुद्धह संजमु' इत्यादि इकतालीस दोहापर्यन्त विशेष वर्णन है, उसके बाद 'उक्तं च' को छोड़कर एक सौ सात दोहापर्यन्त अभेदरत्नत्रय की मुख्यता कर चूलिका व्याख्यान है। इस तरह दूसरी पातानिका जाननी चाहिए।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल ९, रविवार,
दिनांक-०६-०६-१९७६, गाथा-१, प्रवचन-१

यह परमात्मप्रकाश। अभी बहुत वर्ष से वाँचन नहीं किया था। पुस्तकें किसी के पास होंगी, किसी के पास नहीं। यह बाहर कहीं मिलती नहीं। यह योगीन्दुदेव कृत है योगीन्द्र, योगीन्दु, ऐसा लिखते हैं। योगीन्द्र की ना करते हैं। योगीन्दु... ऐसा कहते हैं। छठवीं शताब्दी में हुए हैं, ऐसा कहते हैं। ईसवी सन् ६। अध्यात्म का ग्रन्थ है। जिसमें समयसार आदि की बहुत बात इन्होंने ली है। परन्तु मात्र अध्यात्म की भावना का ग्रन्थ, भाव को घोंटा है। छोटाभाई आये नहीं ? कल आये थे। सवेरे आ गये ? सवेरे आ गये। दोनों आँखों से दिखता नहीं, ऐसा है।

'ॐ श्री परमात्मने नमः श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचितः' परमात्मप्रकाश की टीका का.... ब्रह्मदेव ने टीका की है, उस टीका का पहला श्लोक है।

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः।।१।।

अब पण्डित दौलतरामजी स्वयं थोड़ी टीका करते हैं। हिन्दी टीकाकार हैं।

चिदानंद चिद्रूप जो, जिन परमातम देव।
सिद्धरूप सुविसुद्ध जो, नमों ताहि करि सेव।।१।।

चिदानन्द, ज्ञानानन्द चिद्रूप आत्मा। चिदानन्द ज्ञानानन्द और चिद्रूप। ऐसा। ज्ञानानन्दरूप चिद्रूप। जिन परमात्मदेव। वीतराग परमात्मदेव। चिद्रूप '**सुविसुद्ध**' जो निर्मल पूर्ण दशा जिन्हें प्रगट हुई। '**नमों ताहि करि सेव**' उनकी सेवा करके मैं नमस्कार करता हूँ। '**परमातम निजवस्तु जो**' अपनी वस्तु ही परमात्मा है। '**गुण अनंतमय शुद्ध**' जिसके अनन्त गुण हैं। '**ताहि प्रकाशनके निमित्त**' उस परमात्मा को प्रकाशित करने के कारण '**वंदूं देव प्रबुद्ध**' ऐसे देव को भगवान प्रबुद्ध जो सर्वज्ञपरमात्मा हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

अब टीका का अर्थ है। **श्री जिनेश्वरदेव शुद्ध परमात्मा आनन्दरूप चिदानन्दचिद्रूप है,...** इन्होंने ऐसा कहा था, दौलतराम ने। परन्तु यह ब्रह्मदेव ने, ब्रह्मदेव....

शुद्ध परमात्मा आनन्दरूप चिदानन्दचिद्रूप... यह तो उसमें ही है। '**चिदानन्दैक-रूपाय' उनके लिये मेरा (सदाकाल) नमस्कार होवे, किसलिए ? परमात्मा के स्वरूप के प्रकाशने के लिये। कैसे हैं वे भगवान ? शुद्ध परमात्मस्वरूप के प्रकाशक हैं, अर्थात् निज और पर सबके स्वरूप को प्रकाशते हैं। फिर कैसे हैं ? 'सिद्धात्मने' जिनका आत्मा कृतकृत्य है।** सिद्धात्म को कृतकृत्य है। **सारांश यह है कि नमस्कार करनेयोग्य परमात्मा ही है, इसलिए परमात्मा को नमस्कार कर परमात्मप्रकाश नामा ग्रन्थ का व्याख्यान करता हूँ।** ऐसा भाई दौलतराम स्वयं कहते हैं। अब यह सब बाद में। मूल श्लोक लो अब। योगीन्दुदेव का मूल श्लोक।

प्रथम महाधिकार

गाथा - १

इदानीं प्रथमपातनिकाभिप्रायेण व्याख्याने क्रियमाणे ग्रन्थकारो ग्रन्थस्यादौ मङ्गलार्थमिष्ट-देवतानमस्कारं कुर्वाणः सन् दोहकसूत्रमेकं *प्रतिपादयति-

(१) जे जाया झाणग्गियएँ कम्म-कलंक डहेवि।
णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि।।१।।

ये जाता ध्यानाग्निना कर्मकलङ्कान् दग्ध्वा।
नित्यनिरञ्जनज्ञानमयास्तान् परमात्मनः नत्वा।।१।।

जे जाया ये केचन कर्तारो महात्मानो जाता उत्पन्नाः। केन कारणभूतेन। झाणग्गियए ध्यानाग्निना। किं कृत्वा पूर्वम्। कम्मकलंक डहेवि - कर्मकलङ्कमलान् दग्ध्वा भस्मीकृत्वा। कथंभूताः जाताः। णिच्चणिरंजणणाणमय नित्यनिरञ्जनज्ञानमयाः ते परमप्प णवेवि तान्परमात्मनः कर्मतापन्नान्नत्वा प्रणम्येतितात्पर्यार्थव्याख्यानं समुदायकथनं संपिण्डितार्थ-निरूपणमुपोद्घातः संग्रहवाक्यं वार्तिकमिति यावत्। इतो विशेषः। तद्यथा-ये जाता उत्पन्ना मेघपटलविनिर्गत-दिनकरकिरणप्रभावात्कर्मपटलविघटनसमये सकलविमलकेवलज्ञानाद्यनन्त-चतुष्टयव्यक्तिरूपेण लोकालोकप्रकाशनसमर्थेन सर्वप्रकारोपादेयभूतेन कार्यसमयसाररूप परिणताः। कया नयविवक्षया जाताः सिद्धपर्यायपरिणतिव्यक्तरूपतया धातुपाषाणे सुवर्णपर्यायपरिणति-व्यक्तिवत्। तथा चोक्तं पञ्चास्तिकायेपर्यायार्थिकनयेन ''अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो'', द्रव्यार्थिकनयेन पुनः शक्त्यप्रेक्षया पूर्वमेव शुद्धबुद्धैकस्वभावस्तिष्ठति धातुपाषाणे सुवर्णशक्तिवत्। तथा चोक्तं द्रव्यसंग्रहेशुद्धद्रव्यार्थिकनयेन 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' सर्वे जीवाः शुद्धबुद्धैकस्वभावाः केन जाताः। ध्यानाग्निना करणभूतेन ध्यानशब्देन आगमापेक्षया वीतरागनिर्विकल्पशुक्लध्यानम्, अध्यात्मापेक्षया वीतरागनिर्विकल्परूपातीतध्यानम्। तथा चोक्तम्-'पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम्। रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरञ्जनम्।।' तच्च ध्यानं वस्तुवृत्त्या शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नवीतरागपरमानन्दसमरसीभावसुखरसास्वादरूपमिति ज्ञातव्यम्। किं कृत्वा जाताः। कर्ममलकलङ्कान् दग्ध्वा कर्ममलशब्देन द्रव्यकर्मभावकर्माणि गृह्यन्ते। पुद्गलपिण्डरूपाणि ज्ञानावरणादीन्यष्टौ

* पाठान्तर :- प्रतिपादयति = प्रतिपादयति। तद्यथा --

द्रव्यकर्माणि, रागादिसंकल्पविकल्परूपाणि पुनर्भावकर्माणि। द्रव्यकर्मदहनमनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन, भावकर्मदहनं पुनरशुद्धनिश्चयेन शुद्धनिश्चयेन बन्धमोक्षौ न स्तः। इत्थंभूतकर्ममलकलङ्कान् दग्ध्वा कथंभूता जाताः। नित्यनिरञ्जनज्ञानमयाः। क्षणिकैकान्तवादिसौगतमतानुसारिशिष्यं प्रति द्रव्यार्थिकनयेन नित्यटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावपरमात्मद्रव्यव्यवस्थापनार्थं नित्यविशेषणं कृतम्। अथ कल्पशते गते जगत् शून्यं भवति पश्चात्सदाशिवे जगत्करणविषये चिन्ता भवति तदन्तरं मुक्तिगतानां जीवानां कर्माञ्जनसंयोगं कृत्वा संसारे पतनं करोतीति नैयायिका वदन्ति, तन्मतानुसारिशिष्यं प्रति भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्माञ्जननिषेधार्थं मुक्तजीवानां निरञ्जनविशेषणं कृतम्। मुक्तात्मनां सुप्तावस्थाबद्धहिर्ज्ञेयविषये परिज्ञानं नास्तीति सांख्या वदन्ति, तन्मतानुसारिशिष्यं प्रति जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसर्वपदार्थयुगपत्परिच्छित्तिरूपकेवलज्ञानस्थापनार्थं ज्ञानमयविशेषणं कृतमिति। तानित्थंभूतान् परमात्मनो नत्वा प्रणम्य नमस्कृत्येति क्रियाकारकसंबन्धः। अत्र नत्वेति शब्दरूपो वाचनिको द्रव्यनमस्कारो ग्राह्योऽसद्भूतव्यवहारनयेन ज्ञातव्यः, केवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारः पुनरशुद्धनिश्चयनयेनेति, शुद्धनिश्चयनयेन वन्द्यवन्दकभावो नास्तीति। एवं पदखण्डनारूपेण शब्दार्थः कथितः, नयविभागकथनरूपेण नयार्थोऽपि भणितः, बौद्धादिमतस्वरूपकथनप्रस्तावे मतार्थोऽपि निरूपितः, एवंगुणविशिष्टाः सिद्धा मुक्ताः सन्तीत्यागमार्थः प्रसिद्धः। अत्र नित्यनिरञ्जनज्ञानमयरूपं परमात्मद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः। अने न प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थो व्याख्यानकाले यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्य इति।।१।।

अब, प्रथम पातनिका के अभिप्राय से व्याख्यान किया जाता है, उसमें ग्रंथकर्ता श्री योगीन्द्राचार्यदेव ग्रंथ के आरंभ में मंगल के लिए इष्टदेवता श्री भगवान को नमस्कार करते हुए एक दोहा छंद कहते हैं।

ध्यानाग्नि से कर दहन कर्मकलंक बन परमात्मा।
जो नित्य ज्ञानमयी निरंजन है नमन उनको सदा।।१।।

अन्वयार्थ :- [ये] जो भगवान् [ध्यानाग्निना] ध्यानरूपी अग्नि से [कर्मकलङ्कान्] पहले कर्मरूपी मैलों को [दग्ध्वा] भस्म करके [नित्यनिरंजनज्ञानमयाः जाताः] नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं, [तान्] उन [परमात्मनः] सिद्धों को [नत्वा] नमस्कार करके मैं परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ। यह संक्षेप व्याख्यान किया।

भावार्थ :- जैसे मेघ-पटल से बाहर निकली हुई सूर्य की किरणों की प्रभा प्रबल होती है, उसी तरह कर्मरूप मेघसमूह के विलय होने पर अत्यंत निर्मल केवलज्ञानादि

अनंतचतुष्टय की प्रगटतास्वरूप परमात्मा परिणत हुए हैं। अनंतचतुष्टय अर्थात् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य, ये अनंतचतुष्टय सब प्रकार अंगीकार करने योग्य हैं, तथा लोकालोक के प्रकाशन को समर्थ हैं। जब सिद्धपरमेष्ठी अनंतचतुष्टयरूप परिणमे, तब कार्य-समयसार हुए। अंतरात्म अवस्था में कारण-समयसार थे। जब कार्यसमयसार हुए तब सिद्धपर्याय परिणति की प्रगटता रूपकर शुद्ध परमात्मा हुए। जैसे सोना अन्य धातु के मिलाप से रहित हुआ, अपने सोलहवानरूप प्रगट होता है, उसी प्रकार कर्म-कलंक रहित सिद्धपर्यायरूप परिणमे। तथा पंचास्तिकाय ग्रंथ में भी कहा है – जो पर्यायार्थिकनयकर 'अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो' अर्थात् जो पहले सिद्धपर्याय कभी नहीं पाई थी, वह कर्म-कलंक के विनाश से पाई। यह पर्यायार्थिकनय की मुख्यता से कथन है और द्रव्यार्थिकनयकर शक्ति की अपेक्षा यह जीव सदा ही शुद्ध बुद्ध (ज्ञान) स्वभाव तिष्ठता है। जैसे धातु पाषाण के मेल में भी शक्तिरूप सुवर्ण मौजूद ही है, क्योंकि सुवर्ण-शक्ति सुवर्ण में सदा ही रहती है, जब परवस्तु का संयोग दूर हो जाता है, तब वह व्यक्तिरूप होता है। सारांश यह है कि शक्तिरूप तो पहले ही था, लेकिन व्यक्तिरूप सिद्धपर्याय पाने से हुआ। शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव सदा शुद्ध ही हैं। ऐसा ही द्रव्यसंग्रह में कहा है, 'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया' अर्थात् शुद्ध नयकर सभी जीव शक्तिरूप शुद्ध हैं और पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर शुद्ध हुए। किस कारण से? ध्यानाग्निना अर्थात् ध्यानरूपी अग्निकर कर्मरूपीकलंकों को भस्म किया, तब सिद्ध परमात्मा हुए। वह ध्यान कौनसा है? आगम की अपेक्षा तो वीतराग निर्विकल्प शुक्लध्यान है और अध्यात्म की अपेक्षा वीतराग निर्विकल्प रूपातीत ध्यान है। तथा दूसरी जगह भी कहा है – 'पदस्थं' इत्यादि, उसका अर्थ यह है, कि णमोकारमंत्र आदि का जो ध्यान है, वह पदस्थ कहलाता है, पिंड (शरीर) में ठहरा हुआ जो निज आत्मा है, उसका चिंतवन वह पिंडस्थ है, सर्व चिद्रूप (सकल परमात्मा) जो अरहंतदेव उनका ध्यान वह रूपस्थ है, और निरंजन (सिद्धभगवान्) का ध्यान रूपातीत कहा जाता है। वस्तु के स्वभाव से विचारा जावे, तो शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अभेद रत्नत्रयमई जो निर्विकल्प समाधि है, उससे उत्पन्न हुआ वीतराग परमानंद समरसी भाव सुखरस का आस्वाद वही जिसका स्वरूप है, ऐसा ध्यान का लक्षण जानना चाहिये। इसी ध्यान के प्रभाव से कर्मरूपी मैल वही हुआ कलंक, उनको भस्मकर सिद्ध हुए। कर्म-कलंक अर्थात् द्रव्यकर्म भावकर्म इनमें से जो पुद्गलपिंडरूप ज्ञानावरणादि आठ कर्म वे द्रव्यकर्म हैं, और रागादिक संकल्प-विकल्प परिणाम भावकर्म कहे जाते हैं। यहाँ भावकर्म

का दहन अशुद्ध निश्चयनयकर हुआ, तथा द्रव्यकर्म का दहन असद्भुत अनुपचरित-व्यवहारनयकर हुआ और शुद्ध निश्चयकर तो जीव के बंध मोक्ष दोनों ही नहीं है। इस प्रकार कर्मरूपमलों को भस्मकर जो भगवान हुए, वे कैसे हैं? वे भगवान सिद्ध परमेष्ठी नित्य निरंजन ज्ञानमई हैं। यहाँ पर नित्य जो विशेषण किया है, वह एकान्तवादी बौद्ध जो कि आत्मा को नित्य नहीं मानता, क्षणिक मानता है, उसको समझाने के लिये है। द्रव्यार्थिकनयकर आत्मा को नित्य कहा है, टंकोत्कीर्ण अर्थात् टाँकीकासा घड्या सुघट ज्ञायक एकस्वभाव परम द्रव्य है। ऐसा निश्चय कराने के लिये नित्यपने का निरूपण किया है। इसके बाद निरंजनपने का कथन करते हैं। जो नैयायिकमती हैं वे ऐसा कहते हैं 'सौ कल्पकाल चले जाने पर जगत् शून्य हो जाता है और सब जीव उस समय मुक्त हो जाते हैं तब सदाशिव को जगत् के करने की चिन्ता होती है। उसके बाद जो मुक्त हुए थे, उन सबके कर्मरूप अंजन का संयोग करके संसार में पुनः डाल देता है', ऐसी नैयायिकों के श्रद्धा है। उनके सम्बोधने के लिये निरंजनपने का वर्णन किया कि भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप अंजन का संसर्ग सिद्धों के कभी नहीं होता। इसीलिये सिद्धों को निरंजन ऐसा विशेषण कहा है। अब सांख्यमती कहते हैं - 'जैसे सोने की अवस्था में सोते हुए पुरुष को बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं होता, वैसे ही मुक्तजीवों को बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं होता है।' ऐसे जो सिद्धदशा में ज्ञान का अभाव मानते है, उनको प्रतिबोध कराने के लिये तीन जगत् तीनकालवर्ती सब पदार्थों का एक समय में ही जानना है, अर्थात् जिसमें समस्त लोकालोक के जानने की शक्ति है, ऐसे ज्ञायकतारूप केवलज्ञान के स्थापन करने के लिये सिद्धों का ज्ञानमय विशेषण किया। वे भगवान नित्य हैं, निरंजन हैं, और ज्ञानमय हैं, ऐसे सिद्धपरमात्माओं को नमस्कार करके ग्रंथ का व्याख्यान करता हूँ। यह नमस्कार शब्दरूप वचन द्रव्यनमस्कार है और केवलज्ञानादि अनंत गुणस्मरणरूप भावनमस्कार कहा जाता है। यह द्रव्य-भावरूप नमस्कार व्यवहारनयकर साधक-दशा में कहा है, शुद्धनिश्चयनयकर वंद्य-वंदक भाव नहीं है। ऐसे पदखंडनारूप शब्दार्थ कहा और नयविभागरूप कथनकर नयार्थ भी कहा, तथा बौद्ध, नैयायिक, सांख्यादि मत के कथन करने से मतार्थ कहा, इस प्रकार अनंतगुणात्मक सिद्धपरमेष्ठी संसार से मुक्त हुए हैं, यह सिद्धांत का अर्थ प्रसिद्ध ही है, और निरंजन ज्ञानमई परमात्माद्रव्य आदरने योग्य है, उपादेय है, यह भावार्थ है, इसी तरह शब्द नय, मत, आगम, भावार्थ व्याख्यान के अवसर पर सब जान लेना।।१।।

गाथा- १ पर प्रवचन

अब यह सब बाद में... मूल श्लोक लो अब। ... देव का मूल श्लोक।

१) **जे जाया झाणग्गियएँ कम्म-कलंक डहेवि।**
णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि।।१।।

ये जाता ध्यानाग्निना कर्मकलङ्कान् दग्ध्वा।
नित्यनिरञ्जनज्ञानमयास्तान् परमात्मनः नत्वा।।१।।

इसका अर्थ नीचे है। **श्री योगीन्द्राचार्यदेव ग्रन्थ के आरम्भ में मंगल के लिये इष्टदेवता श्री भगवान को नमस्कार करते हुए एक दोहा छन्द कहते हैं।** साथ में हो, उसे ध्यान रखना। सबको ऐसी पुस्तक मिले, ऐसा नहीं है। **जो भगवान ध्यानरूपी अग्नि से...** न्याय से शुरु किया है। यह परमात्मा हुए कैसे? कहते हैं। आहाहा! यह शुद्ध चैतन्यघन का ध्यान करके हुए हैं। आहाहा! जैसे पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट है, उसे घूँटने से उसमें से बाहर आती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा जिसकी शक्ति में अनन्त ज्ञान, आनन्द है। आत्मा की शक्ति अर्थात् वस्तु का स्वभाव सामर्थ्य, वह अनन्त ज्ञान-दर्शन है, उसका ध्यान किया है। है न? ध्यानरूपी अग्नि पर्याय है। वस्तु त्रिकाल अनन्त ज्ञान, आनन्द है। उसका ध्यान किया अर्थात् ध्यान में ध्येय वस्तु को पूर्णानन्द को बनाकर जिसका ध्यानाग्नि द्वारा **पहले कर्मरूपी मैलों को भस्म करके...** इसका अर्थ यह हुआ कि कर्म थे। मैल की अशुद्धता भी थी। अशुद्धता नहीं थी और दशा में शुद्ध ही है, ऐसा नहीं है।

इसलिए कहा, **कर्मरूपी मैलों को भस्म करके नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं,...** आहाहा! नित्य-निरंजन। है तो पर्याय केवलज्ञान। सिद्धपद है तो अवस्था, परन्तु वह कायम रहनेवाली है, इस अपेक्षा से उसे नित्य कहा। **नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं,...** आहाहा! पंचास्तिकाय में कहा है न, केवलज्ञान कूटस्थ है। कूटस्थ, पंचास्तिकाय में। है तो परिणमन, परन्तु कूटस्थ अर्थात् जैसा ज्ञानस्वभाव त्रिकाल कूटस्थ है, वह ध्रुव। उसके ध्यान से प्रगट हुई दशा ऐसी की

ऐसी कायम रहती है। इसलिए उसे कूटस्थ और नित्य कहने में आता है। समझ में आया? है यह पर्याय की व्याख्या—अवस्था।

आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान और अनन्त ज्ञान के सामर्थ्यवाला पदार्थ प्रभु, उसकी शक्ति—सामर्थ्य ही अनन्त है। ज्ञान-दर्शन-आनन्द, उसका ध्यान करके अर्थात् कि उसकी सन्मुखता में लीन होकर जिसने कर्मकलंक को जलाया। ऐसा कहकर यह भी कहा कि कोई व्रत और तप के विकल्प से कर्म जलें, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जीव की शुद्ध पर्याय से पुद्गल कैसे जले? पुद्गल तो परपदार्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल (अर्थात्) यहाँ अशुद्धता का नाश किया। कर्म का नाश कहना, वह तो निमित्त से कथन है। यह कहेंगे, यह कहेंगे। नय घटित करेंगे। यह असद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है और मलिनता का नाश किया, यह अशुद्ध निश्चयनय से कहा जाता है। नय घटित करेंगे। समझ में आया?

वास्तव में शुद्ध चैतन्यघन प्रभु पूर्णानन्द का पाटला प्रभु है। जैसे यह बर्फ की शिला होती है या नहीं? अभी वहाँ कुण्डला में देखी थी। पाँच मण, दस मण की पाट। पचास मण की पाट। मुम्बई में पचास-पचास मण की पाट। उसमें क्या कहलाता है तुम्हारे? मोटरें, ट्रक। ट्रक में जाती हो पचास-पचास मण की पाट। मात्र शीतल स्वभाव से भरपूर। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा मात्र शान्तरस और आनन्दरस से भरपूर पाट है। आहाहा! भले इसका कद शरीरप्रमाण हो। परन्तु इसका स्वभाव तो आनन्द और ज्ञान का दल पूरा पड़ा है। आहाहा! उसका जिसने ध्यान किया। इसका अर्थ यह हुआ कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह सब ध्यान की पर्याय है।

मुमुक्षु : ध्यान तो चारित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चारित्र ध्यान की ही पर्याय है सब।

ध्यानाग्नि अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों मोक्षमार्ग। उसके ध्यानाग्नि द्वारा... आहाहा! अशुद्ध विकार का नाश किया। यह अशुद्ध निश्चयनय से। और कर्म का नाश किया, वह असद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है। अरे! ऐसी नय की व्याख्या है। **नित्य, निरंजन...** जिसने आत्मा का ध्यान करके जो निरंजन, नित्य, शुद्ध चैतन्य था, जो

ध्रुव नित्य निरंजन ध्रुव था, उसका ध्यान करके दशा में जिसने **नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं,...** आहाहा! ज्ञान की प्रधानता वर्णन की है न।

परमात्मा केवलज्ञानमम, अकेले ज्ञानमय, पूर्णानन्दमय, शान्तमय, स्वच्छतामय, प्रभुतामय **परमात्मा हुए हैं,...** यह परमात्मा जितने हुए, (वे) इस विधि से हुए हैं। समझ में आया? आहाहा! **उन सिद्धों को नमस्कार करके...** ऐसे सिद्ध भगवान। वे सिद्ध भगवान कैसे हुए, इसकी व्याख्या साथ में दी। समझ में आया? यह वस्तु भगवान आत्मा नित्य ध्रुव अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द और अनन्त स्वच्छता के स्वभाव का दल-पिण्ड प्रभु, उसका ध्यान करके... आहाहा! उसे दृष्टि में लेकर, उसे ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर... आहाहा! जिसने स्वरूप में ध्यान से अर्थात् स्थिरता द्वारा, सिद्धपद ज्ञानमय नित्य निरंजन हुए। अर्थात् उपाय भी साथ में बताया। मोक्ष का उपाय क्या? कि मोक्ष हुआ, वह इस उपाय से हुआ; इसलिए मोक्ष का उपाय यह है। आहाहा!

आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी दल प्रभु है। उसका जिसने ध्यान किया, उसके सन्मुख देखकर स्थिर हुए। उन्हें अशुद्ध मलिनता के भाव का नाश होता है। कर्म जड़ का, उस रूप से कर्म है, इसकी अकर्मदशा हो जाती है। यह निमित्त से कथन है। अर्थात् क्या? कर्म की अवस्था का टलना, वह कहीं आत्मा के आधीन नहीं है। उस कर्म की अवस्था का अकर्मरूप होने का उसका काल था। आहाहा! और यहाँ अशुद्धता नाश होने का काल था। तब शुद्धता के ध्यान में स्थिर होकर अशुद्धता नाश की और कर्म का नाश किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें अब। इस प्रकार सिद्ध हुए, उन्हें हमारा नमस्कार!

यह णमो अरिहन्ताणं आता है या नहीं? उसका ऐसा अर्थ है। यह अरिहन्त का बाद में लेंगे। शास्त्र में तो ऐसा चलता है कि णमो लोए त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। अभी तो णमो अरिहंताणं, इतना चलता है। अन्तिम णमो लोए सव्व साहूणं आता है न? वह सबको लागू पड़ता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। परन्तु इसके उपरान्त सिद्धान्त में तो ऐसा अधिक चलता है कि णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व अरिहंताणं।

आहाहा! जो अरिहंत भविष्य में होंगे, भूतकाल में हुए, अभी हैं और होंगे। आहाहा! जो अभी अरिहंत, उनका जीव अभी तो कहीं नरक और निगोद में पड़ा होगा। आहाहा! परन्तु भविष्य में उनकी दशा होनेवाली है, उसे भी परमात्मा ऐसा कहते हैं कि णमो लोए—नमस्कार हो लोक में। (स्थित) त्रिकालवर्ती सव्व अरिहंताणं। तीनों काल में वर्तनेवाले अरिहंतों को मेरा नमस्कार हो। समझ में आया? आहाहा! स्वयं भी अरिहन्त होनेवाला है, उसका नमस्कार अभी आ जाता है। ऐई! आहाहा! समझ में आया?

णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व अरिहंताणं। धवल में ऐसा सिद्धान्तपद है। जो परम्परा में आये हुए आगम, सिद्धान्त सर्वज्ञ अनुसारिणी, उस वाणी में यह आया था। आहाहा! कितनी विशालता! मैं तो तीनों काल के सर्व वर्तनेवाले, वर्ता और वर्तेगें... आहाहा! उन्हें मेरा नमस्कार। जयन्तीभाई! यह सुना है या नहीं? अपने कहा गया है यहाँ तो। पहला यहाँ नहीं। परन्तु रविवार को आना तुम्हारे। तब हो, न हो। आहाहा! णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व सिद्धाणं। आ गये, कहते हैं। नमस्कार हो लोक में, जिन्हें ध्यानाग्नि द्वारा; व्रत और क्रिया और बाहर के तप द्वारा नहीं, अनशन, ऊनोदर आदि बाहर के तप तो विकल्प हैं।

मुमुक्षु : क्रियानय से भी सिद्धदशा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल से नहीं होता। इस क्रिया से होता है। यह क्रिया—आनन्द की क्रिया। शुभ से नहीं होता। यह शुभ, इसे शुभ कहते हैं। इसे शुभ कहते हैं। (समयसार के) पुण्य-पाप (अधिकार) में आता है न? आहाहा!

भगवान आनन्द और ज्ञान का सागर प्रभु, एक-एक आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, यह उसकी शक्ति है। अर्थात् कि यह उसका सामर्थ्य है। अर्थात् कि यह उसका गुण है, अर्थात् कि उसका स्वभाव है, अर्थात् कि इस सत् का ऐसा इतना सत्त्व है। आहाहा! ऐसे सत्त्व का जिसने ध्यान किया। आहाहा! सम्यग्दर्शन वह भी एक ध्यान की पर्याय है। स्व की एकाग्रता। पूर्ण अनन्त आनन्दस्वरूप, उसका वर्तमान ज्ञान की पर्याय में पूर्ण वस्तु का ज्ञान होकर... एक समय की पर्याय में पूर्ण स्वरूप द्रव्य का गुण, उसका ज्ञान होकर, जो पर्याय में—अवस्था में ज्ञेय ज्ञात हुआ,

वह ज्ञात हुआ, उसकी श्रद्धा, इसका नाम सम्यग्दर्शन। वह भी जानने की एकाग्रता के साथ दर्शन हुआ। आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत ऐसा सूक्ष्म भाई! लोगों ने तो बाहर में रगड़कर मार डाला, नोंच डाला है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा तीनों काल जिसे सिद्धपद प्राप्त हुआ और होगा, उसे मेरा नमस्कार! ओहोहो! भूतकाल के अनन्त सिद्ध हुए। सिद्धपद बिना का कोई काल नहीं कि भाई, यह सिद्ध नये हुए और पहले सिद्ध नहीं थे। ऐसा है? आहाहा! अनन्त सिद्ध अनादि के हैं और अनन्त सिद्ध वर्तमान में हैं और अनन्त सिद्ध भविष्य में होंगे। आहाहा! अनन्त सिद्ध की प्रतीति तीन काल में वर्तने की निर्मल दशा इस प्रकार से हुई, उसका ज्ञान करके उसे नमस्कार। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई!

पश्चात् णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। नमस्कार हो लोक में... लोक में है न यह? पंच परमेष्ठी। लोक्यन्ते इति लोक। जिसमें जीव-अजीव ज्ञात हों, उसे लोक कहते हैं। उस लोक में है, वे कहीं अलोक में नहीं है। समझ में आया? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं। आहाहा! स्वरूप के साधक, अनन्त आनन्द के स्वसंवेदन प्रचुर वेदन के अनुभवी ऐसे त्रिकालवर्ती—तीनों काल में वर्तनेवाले—ऐसे आचार्यों को सर्व को मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं। यह पाँच पद की व्याख्या चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : उपाध्याय की पदवी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे? यह उपाध्याय की पदवी दी जाती है न? ऐसा कहते हैं। ऐसे पदवी दी जाती होगी?

अन्तर में आनन्द का नाथ जागकर जिसे अन्तर में आनन्द का उग्र वेदन हुआ है, उसके समीप में जगत के प्राणी अभ्यास करें। परन्तु वह अपने तो समीप में जो अनन्त आनन्द प्रगट हुआ है, वह उपाध्याय है। आहाहा! जिसके स्वभाव में अनन्त आनन्द रेलमछेल भरा है, प्रभु! आहाहा! अपरिमित, अमाप आनन्द जिसका—भगवान आत्मा का स्वरूप है, उसका जिसने ध्यान करके आचार्यपद प्राप्त किया है। आहाहा! किसी ने आचार्यपद दिया है, वह नहीं।

मुमुक्षु : गुरु दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे? यह तो व्यवहार की बातें हैं। इसमें ही उपाध्याय पदवी प्रगट होने की क्षयोपशमदशा थी, वह प्रगट हुई है। यह नहीं आता? क्षयोपशम। उसमें नहीं आता? द्रव्यसंग्रह में। द्रव्यसंग्रह में आता है। आहाहा!

जिसका अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ जागकर,... उपाध्याय जिसे कहते हैं, जिसका अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ जागकर उठा और अन्दर में दशा में प्रचुर आनन्द का वेदन वर्तता है और जिसकी दशा त्रिकाल स्वरूप के समीप में वर्तती है। अनादि से जो दूर थी, राग और द्वेष में वर्तता था, वह भगवान आत्मा अपने आनन्द के नाथ के शुद्ध के समीप में वर्तकर आनन्द वर्तता है। उसे यहाँ उपाध्याय कहा गया है। यह बाहर की सब उपाध्याय की पदवी देते हैं (वह नहीं)। भान (नहीं), अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और हो गये आचार्य और उपाध्याय। क्या हो? भाई! यह तो जैन परमेश्वर का, वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग है। यह कहीं ऐरे-गैरे बीच में पड़े और मार्ग बनावे, ऐसा है नहीं।

यहाँ कहते हैं, ऐसे णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उपाध्याय, ऐसे णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सर्व साधु। आहाहा! वापस इसमें सर्व साधु में ऐसा अर्थ करते हैं। वह सुशीलकुमार है न? स्थानकवासी का। गया था न अभी अमरेली? अमरेली क्या कहलाता है अमेरिका। अमेरिका। उसे अंग्रेजी नहीं आती, इसलिए वहाँ हिन्दी भाषा की। थोड़े-बहुत लोग इकट्ठे होते थे। कुछ नहीं होता। वहाँ से चला आया मुँहपत्ती सहित। यह वह कहीं मार्ग है।

मुमुक्षु : अमेरिका में उसे देखने बहुत आते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ नहीं आते, कहते हैं। अंग्रेजी नहीं आती थी न। हिन्दी बोलता था। यहाँ के हो न सौराष्ट्र के, वे आते थे। ऐसा लिखा है समाचारपत्र में। थोड़े-बहुत इकट्ठे होते सौ-डेढ़ सौ। अब चला आया, ऐसा कहते हैं। उसमें—स्थानकवासी में बड़ा विवाद है। उसके आचार्य ने उसे साधु में से रद्द किया है। यों भी साधु था कब? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक है। आहाहा!

साधु तो उसे कहते हैं कि आनन्द के नाथ को—अन्तर के स्वरूप को साधे, उसे साधु कहते हैं। यह पंच महाव्रत पालन करे और नग्नपना (रखे), वह कहीं साधुपना नहीं है। आहाहा! यह पंच महाव्रत की क्रिया, वह तो अभी है भी कहाँ? परन्तु वह क्रिया हो, वह भी कहीं साधुपना नहीं। आहाहा! साधुपना तो भगवान आत्मा का आनन्द का सागर अन्दर झूलता—डोलता है। आहाहा! ऐसे आनन्द के सागर में डुबकी लगाकर, एकाग्र होकर उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का साधन प्रगट किया है.... आहाहा!

उसने अभी लिया है न? भाई! चीमनचकु ने यहाँ का विरोध कहा है। भोले लोगों को ऐसा करते हैं। यहाँ श्रीमद् में ऐसा कहा है। साधन करना सोय। क्या साधन? सुन न! उसे बेचारे को... बौद्ध और महावीर दोनों मोक्ष पधारे, ऐसा कहता है। अब कहाँ बौद्ध मिथ्यादृष्टि, कहाँ भगवान केवली!

मुमुक्षु : वे तो .... गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ... गये। उसे दुनिया में बाहर की इज्जत... मर जानेवाले हैं बेचारे। परन्तु अभी पुण्य हो बाहर। आहाहा! बौद्ध भगवान मोक्ष पधारे, महावीर मोक्ष पधारे, ऐसा कहता है। और उसे श्रद्धा तो वेदान्त की है। जीवन का रहस्य।

मुमुक्षु : तब तो महावीर भी मोक्ष न पधारे और बौद्ध भी मोक्ष न पधारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : घड़ीक में यह कहे। कहाँ ठिकाना है इसका? उसने ऐसा कहा कि यह साधन चाहिए। क्या साधन? व्यवहार के विकल्प, वे साधन ही नहीं हैं। साधन तो अन्तर राग से भिन्न करके प्रज्ञारूपी छैनी से अनुभव से साधन करे, उसे साधन कहा है। समझ में आया? प्रज्ञा करण है। भगवान! सूक्ष्म बात है, भाई!

शुद्ध आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द है। उसे चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग हो, परन्तु उस राग से भिन्न करे। आहाहा! ज्ञान की पर्याय की छैनी द्वारा। अर्थात् कि राग और स्वभाव के बीच सांध है। आहाहा! त्रिकाल आनन्द का दल प्रभु और राग विकार विकल्प, दो के बीच सांध है, दरार है। जैसे पत्थर के बड़े

दल होते हैं, उसमें बीच में सूक्ष्म रग होती है। सफेद-हरी रग होती है। उस रग में छेद पाड़कर सुरंग मारे। तब पत्थर भिन्न ही अन्दर हैं। ऊपर का और नीचे का, दोनों एक हुए ही नहीं। पत्थर के दल में, दो पत्थर के बीच सूक्ष्म रग होती है। ऊपर के पत्थर और नीचे के पत्थर के बीच अन्तर होता है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा अकेले स्वभाव के ध्रुव दल और विकल्प की—विभाव की वृत्तियों के विकार, दो के बीच दरार है—दो के बीच सांध है। राग और स्वभाव दोनों एक हुए नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें! पत्थर में बारीक रग होती है। यहाँ बीच में सांध होती है।

अर्थात् कि भगवान ज्ञानस्वभावी आनन्द प्रभु, जब ज्ञान की वर्तमान पर्याय को इस ओर झुकाता है, तब राग और दोनों भिन्न पड़ जाते हैं अर्थात् कि भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान की वर्तमान दशा और राग दो के बीच दरार—सन्धि है—सांध है। आहाहा! इसलिए वर्तमान ज्ञान की दशा को इस ओर से विमुख करने पर... होती है विमुख, इसका अर्थ कि इसमें एकमेक नहीं। समझ में आया? ऐसा कठिन मार्ग, भाई! आहाहा! समझ में आया? समझ में आया, इसका अर्थ भी करते हैं न? समझ में आया, यह तो कहा। परन्तु कुछ अर्थात् किस पद्धति से कहा जाता है, (वह ख्याल में आता है)? आहाहा! भाई! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मप्रकाश का मांगलिक होता है यह तो। परमात्मप्रकाश ही है न? उसका पहला मांगलिक करते हैं यह। समझ में आया?

भाई! साधु किसे कहना? आहाहा! जिन्हें आत्मा के आनन्द का स्वाद आया होता है। सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का स्वाद आवे। आहाहा! क्यों? वस्तु है वह आनन्दमय है और वस्तु को जब श्रद्धा में साधी, तब वस्तु के जितने गुण हैं, उन सबका व्यक्त अंश पर्याय में प्रगट होता है और वेदन में आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु, यह आत्मा, हों! इसका स्वाद इसे आवे, तो मुनि की क्या बात करना! ओहोहो! (समयसार की) पाँचवीं गाथा में कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, प्रचुर स्वंसवेदन हमारा वैभव है। यह दुनिया की धूल और शरीर, वाणी और स्त्री-पुत्र और यह क्या कहलाता है? फर्नीचर। वह वैभव कहलाता है न? वह धूल का वैभव अज्ञानी का है। आहाहा!

मुमुक्षु : वैभव तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी वैभव नहीं। वहाँ गये थे न? नहीं वे... ? शान्ताबेन के बहनोई की बहिन है, वहाँ मुम्बई। मणिभाई है। वहाँ शाम को आहार करने गये थे। पाँच-छह करोड़ रुपये। पाँच-छह करोड़। वह पूरा एक लिया। क्या कहलाता है वह? ब्लॉक? बड़ा ब्लॉक और सर्वत्र मखमल बिछाया हुआ। सर्वत्र चरण कराये। मखमल-मखमल। लगभग साढ़े पाँच लाख रुपये का तो फर्नीचर होगा। ऐसा कहते थे। समझ में आया? यह श्मशान में जब हड्डियाँ अकेली होती हैं न? हड्डियों में फासफूस... (चमक) क्या कहते हैं? फोसफरस होती है ऐसी। चमक... चमक होती है।

(जो) बाहर के वैभव का माहात्म्य दे, वह अपने वैभव का अनादर करता है। आहाहा! समझ में आया? निज वैभव त्रिकाल है, वह तो है। वह नहीं। परन्तु त्रिकाल में से अनन्त आनन्द की शान्ति आदि प्रगट की तो बेहद... कल नहीं कहा था जरा? चारित्र में से। अक्षय अमेय। आहाहा! जिसकी साधकदशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह भी अक्षय और अमेय है। क्षय न हो और मर्यादा बिना जिसकी दशा। वस्तु जिसका स्वभाव प्रगट हुआ। आहाहा! उसके स्वभाव के सागर जहाँ से ज्वार में उछला। जैसे समुद्र ज्वार में किनारे उछलता है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा त्रिकाली आनन्द के नाथ पर श्रद्धा और ज्ञान का जोर देने से, अन्दर में से आनन्द की निर्मल पर्याय उछलती है। आहाहा! ज्वार आवे, ज्वार। अरे... अरे! ऐसी बातें।

मुमुक्षु : अभी तो ज्वार में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देखो न बाहर का कहते हैं। आहाहा!

यह वर्षा है मूसलधार आत्मा का। आहाहा! वस्तु स्वभाव, 'वस्तु सहावो धम्मो'। ऐसा कहा है न? वस्तु का स्वभाव वह धर्म, ऐसा कहा है न? आता है न? वस्तु जो भगवान, उसका स्वभाव वह धर्म। अर्थात्? उसका अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि जो स्वभाव, वह त्रिकाल धर्म। अब उस धर्म का आश्रय लेकर प्रगट दशा हुई, वह धर्म। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। वस्तु भगवान आत्मा में ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त शक्तियाँ बसी हुई हैं, वह इसका धर्म। धर्मी आत्मा और वह उसका त्रिकाल धर्म। वह त्रिकाल धर्म और धर्मी को दृष्टि में लेकर जो पर्याय में आनन्द की शान्ति का वैभव प्रगट

हुआ, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया? यह यहाँ पहले सिद्ध को नमस्कार किया। परन्तु त्रिकाली सिद्ध, हों! तीन काल, आहाहा! कितना विश्वास!

अपने आता है न समयसार में। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' सर्व सिद्ध में सब आ गये। आहाहा! उसकी श्रद्धा में अनन्त आत्मायें और अनन्त आत्मा सिद्ध हो गये और तीन काल में जो हुए, होते हैं और होंगे, उन सब सिद्धों को मैं नमस्कार... नमस्कार... (करता हूँ)। आहाहा!

नमस्कार करके मैं परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ। आहाहा! इस प्रकार सिद्ध भगवान कैसे हुए, ऐसा कहकर, सिद्ध जो हुए उन्हें मेरा नमस्कार है। आहाहा! क्योंकि मुझे भी सिद्धपद प्राप्त करना है। आहाहा! और मैं भी सिद्ध होनेवाला हूँ। तो मैं भी त्रिकाली सिद्ध में आ जाता हूँ। आहाहा! इसलिए मुझे भी नमस्कार हो। समझ में आया? आहाहा! **यह संक्षेप व्याख्यान किया। इसके बाद विशेष व्याख्यान करते हैं।** यह संक्षिप्त में कहा। अब इसका एक-एक का विशेष स्पष्टीकरण अधिक करते हैं।

जैसे मेघ-पटल से बाहर निकली हुई सूर्य की किरणों की प्रभा प्रबल होती है... क्या कहते हैं? बादल की आड़ में सूर्य होता है। परन्तु बादल हट जाये, तब उस सूर्यकिरणों की प्रभा प्रबल होती है। तेज-तेज। सूर्य का प्रकाश। **मेघ-पटल से बाहर निकली हुई सूर्य की किरणों की प्रभा प्रबल होती है, उसी तरह कर्मरूप मेघसमूह के विलय होने पर...** आहाहा! अशुद्ध भावकर्म और द्रव्यकर्म निमित्तरूप से। उसका विलय होने से। आहाहा! चैतन्यसूर्य तो प्रकाशमय अन्दर विराजता है। चैतन्य के प्रकाश के नूर का तेज का पूर प्रभु है। आहाहा! वह आत्मा अर्थात् चैतन्यस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, चैतन्यप्रकाश स्वभाव, उसके तेज का वह पूर है। आहाहा! उसके प्रकाश की किरणें निकली, कहते हैं। अशुद्धता के नाश से, कर्म का निमित्त जड़ चीज़ उसके अभाव से अन्दर सूर्य—जो शक्ति थी, उसमें से व्यक्तदशा प्रगट हुई। आहाहा! कितनी स्वीकृति हैं इसमें! द्रव्य की स्वीकृति, द्रव्य की शक्ति की स्वीकृति और द्रव्य में प्रगट होती पर्याय की स्वीकृति। तीन की (स्वीकृति)। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण और पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों आ गये। आहाहा!

क्योंकि द्रव्य है, वह शक्तिवान है और उसकी शक्ति है, वह गुण है। भले निगोद में जीव हो, परन्तु शक्ति तो उसकी ज्ञान-दर्शन शक्ति सामर्थ्य है, वह कहाँ जाये? आहाहा! क्षेत्र भले संक्षिप्त हो गया। भाव संक्षिप्त नहीं हुआ, शक्ति। आहाहा! ऐसा कहाँ (मिले)? इसे विश्वास में आना चाहिए कि ऐसा प्रभु आत्मा। जिसका शक्तिपना, शक्तिवान का शक्तिपना, स्वभाववान का स्वभावपना, सामर्थ्यवान का सामर्थ्यपना। आहाहा! भगवान आत्मा का तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शान्ति, आनन्द जिसका सामर्थ्यपना है, उस अशुद्धता के अभाव से उन्हें शुद्धता की किरणें प्रगट हुई, कहते हैं। आहाहा! ऐसी सब भाषा। ऐसा उपदेश। भाई! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, प्रभु! दुनिया ने तो बाहर में मानकर बैठे। वह वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **मेघ-पटल से बाहर निकली हुई सूर्य की किरणों...** यह तो दृष्टान्त है, दृष्टान्त। **उसी तरह कर्मरूप मेघसमूह के विलय होने पर अत्यन्त निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय की...** आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द। केवल अर्थात् पूरा। ऐसा। पूरा आनन्द, पूरा ज्ञान, पूरी शान्ति, पूरी स्वच्छता। आहाहा! ऐसे जो केवलज्ञानादि। **अत्यन्त निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय की प्रगटता स्वरूप...** भगवान को अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए हैं। अर्थात्? कि भगवान आत्मा का स्वभाव त्रिकाल अनन्त चतुष्टयमय है। आत्मा का स्वभाव त्रिकाल अनन्त चतुष्टयमय—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। ऐसा अनन्त चतुष्टय शक्ति सम्पन्न प्रभु है। वह अन्दर की पर्याय में अशुद्धता का नाश करके किरण प्रगट हुई, यह अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए। आहाहा! समझ में आया? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं (बोले), लो, हो गया। किसे कहना सिद्ध? कैसे हुए सिद्ध? इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य... है? **परमात्मा परिणत हुए हैं।** आहाहा! एक तो अस्तिरूप से परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा अस्तिरूप से, मौजूदगीरूप से त्रिकाल अनन्त ज्ञान-दर्शन-वीर्य और आनन्द तो था। वस्तु है, उसकी शक्तियाँ अनन्त अर्थात् जिसका अन्त नहीं, ऐसी बेहद शक्तियाँ अनन्त चतुष्टय थी। आहाहा! उसका ध्यान करके। ऐसा आया न? इसका अर्थ है यह तो। आहाहा! अनन्त

केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, अनन्त चतुष्टय (स्वरूप) **परमात्मा परिणत हुए हैं।** आहाहा! जिसकी वर्तमान पर्याय में अर्थात् अवस्था में—हालत में—दशा में, जो शक्तिरूप से अनन्त चतुष्टय थे—अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य, वह पर्यायरूप चतुष्टय प्रगट हुए। आहाहा!

परमात्मा परिणत हुए हैं। अनन्त चतुष्टय अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, ये अनन्त चतुष्टय सब प्रकार अंगीकार करनेयोग्य हैं। आहाहा! कहते हैं कि यह अनन्त चतुष्टय जो प्रगट हुए, वे उपादेय और आत्मा को आदर करने योग्य हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : वह तो पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साध्य है न? ध्येय द्रव्य है, परन्तु साध्य तो वह है न! समयसार में अन्तिम आता है। साध्य अर्थात् पूर्ण केवलज्ञानादि सिद्ध परमात्मा, वे साध्य हैं। समझ में आया? और ऐसा भी आता है कि अनन्त सुख का जिसे भान हुआ है, वह अनन्त सुखरूपी परमात्मा को उपादेय मानता है। अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु जिसे अनन्त आनन्द का स्वाद अन्दर आया है, वही अनन्त आनन्दमय परमात्मा को उपादेय मानता है। समझ में आया? अरे! कहाँ जगत भटकता है। कहाँ भटकने का मार्ग अलग! भटकना रोकने का मार्ग अलग है। आहाहा!

ये अनन्त चतुष्टय सब प्रकार अंगीकार करनेयोग्य हैं,... आहाहा! **तथा लोकालोक के प्रकाशन को समर्थ हैं।** केवलज्ञान। **जब सिद्धपरमेष्ठी अनन्त चतुष्टयरूप परिणमे, तब कार्य-समयसार हुए।** लो! क्या कहा यह? पर्याय में, परिणति में अनन्त ज्ञान, दर्शन प्रगट हुए, तब अनन्त चतुष्टय पर्याय में प्रगट हुए, वे कार्यसमयसार हुए। और वस्तु है, वह कारणसमयसार। त्रिकाल वस्तु है, वह कारणसमयसार है।

मुमुक्षु : पर्याय को कारणसमयसार कहा जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी कहा जाता है। परन्तु अभी यहाँ यह नहीं लेना। अभी प्रगट दशा को कार्यसमयसार कहा। उसके उपाय को भी कारणसमयसार कहा जाता है। परन्तु यह तो त्रिकाल कारणसमयसार (की बात है)। आहा!

अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे। देखा! क्या कहा यह? वे कहते थे

न? भाई! त्रिभुवनभाई। यह कारणसमयसार कहते हो तो कार्य होना चाहिए। यहाँ यह भाषा ली, देखा! क्या कहा? **अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे।** ऐसे तो कारणसमय(सार) त्रिकाल है परन्तु त्रिकाल का अनुभव हुआ, तब वह कारणसमयसार उसे ख्याल में आया। इसलिए कहा **अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे।** अर्थात् कि पर्याय में कारणसमयसार जो साध्य का प्रगट हुआ, उसे भी कारणसमयसार कहते हैं और त्रिकाली को भी अन्तरात्मा में त्रिकाली कारणसमयसार का भान हुआ, उसे त्रिकाल कारणसमयसार कहते हैं। जिसे भान नहीं उसे कारणसमयसार कहाँ आया? अरे! ऐसी बातें यह। समझ में आया?

अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे। जब कार्यसमयसार हुए, तब सिद्धपर्याय परिणति की प्रगटतारूपकर शुद्ध परमात्मा हुए। अन्तरात्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान समय, वह कारणसमयसार पर्याय थी। उसका त्रिकाली कारण तो तब बैठा, तब उसे कारण पर्याय हुई न? त्रिकाली वस्तु जो कारण प्रभु ध्रुव है, वह है तो सही परन्तु है वह अनुभव में आया, तब उसे कारणसमयसार बैठा (भान हुआ)। तब पर्याय को कारणसमयसार, कार्यसमयसार का उपाय कारणसमयसार कहा गया है। उस पर्याय को, हों! आहाहा! कहा न? **अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे।** अर्थात् पर्याय में प्रगट हुआ है, उसे कारणसमयसार कहा जाता है। ऐसी भाषा कभी सुनी न हो। कारणसमयसार और कार्यसमयसार। वह तो इच्छामी पडिकमणा करना और तस्सउतरी करणेणं और करेभि भंते सामायिक। यह हो गयी सामायिक। अरे..! धूल भी नहीं, सुन न! अभी सम्यग्दर्शन का भान नहीं, वहाँ सामायिक आयी कहाँ से? समझ में आया? आहाहा!

अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे। इसके अर्थ दो। कि अन्तर आत्मा में वर्तमान पर्याय प्रगट हुई, वह कारणसमयसार। परन्तु उसे कारणसमयसार त्रिकाल है, वह अनुभव में आया, इसलिए पर्याय में कारणसमयसार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सब भाषा में अन्तर, भाव में अन्तर, यह कोई नया धर्म होगा ऐसा? ऐई! कान्तिभाई! सोनगढ़वालों ने नया धर्म निकाला, ऐसा लोग कहते हैं। भाई! तूने सुना

नहीं, प्रभु! धर्म तो अनादि का यह ही है। तूने सुना नहीं, इसलिए तेरे लिये नया लगता है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा को नमस्कार करते हुए परमात्मपर्याय प्रगट हुई, उसे कार्यसमयसार कहा। और अन्तरात्मदशा में पर्याय प्रगट हुई, उसे कारणसमयसार (कहा)। उस कारणसमयसार का फल कार्यसमयसार, ऐसा। परन्तु वह कारण पर्याय में, कारणसमयसार में अन्तरात्मा पूर्ण है, उसका ज्ञान हुआ है, उसकी प्रतीति हुई है, वह ज्ञान में ज्ञात हो गया है, इसलिए उसकी पर्याय में कारणसमयसार कहने में आता है। आहाहा! क्या कहा यह? यह तो अब शीतल पहर का यहाँ तो है न! शान्ति से... आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप तो कारणसमयसाररूप त्रिकाल है। कारणपरमात्मारूप से तेरा स्वरूप त्रिकाल है। परन्तु उस कारणपरमात्मा को जिसने अन्तर ध्यान से स्वीकार किया, तब उसकी पर्याय में कार्यसमयसार ऐसा परमात्मा, उसका कारण प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया? अब एक घण्टे में किस प्रकार की बातें आवे! गिरीश! वहाँ तेरे बाप के पैसे-देना और लेना, इसमें कुछ बहुत नया कुछ नहीं होता। यह पैसा दिया और लिया। किसी को सवा टके और किसी को डेढ़ टके। अब उसमें कुछ तर्क भी नये आते नहीं। हमारे हीराभाई कहते थे। हीराचन्दभाई मास्टर। हम मास्टर सब... क्या कहलाता है वह? पंतु कहलाते हैं। क्योंकि हमारे वह का वह सिखाना। उसमें कुछ नया होता नहीं। कुछ नये तर्क करने के नहीं होते। वह का वह और वह का वह, यह इसका इतिहास और अमुक और ढींकणा। हम तो सब पन्तु हैं। व्यापारियों को तो कुछ तर्क भी करना नहीं पड़े, वकीलों को तो अधिक तर्क करना पड़े। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह सब तर्क से पार ऐसा भगवान अन्दर विराजता है। उसे जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान में उसका—पूर्णानन्द का आदर करके, जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ है, उस जीव को कारणसमयसार अर्थात् मोक्ष के मार्ग की पर्याय प्रगट हुई, मार्ग प्रगट हुआ। मार्ग अर्थात् कारण। मार्ग अर्थात् कारण। मार्ग अर्थात् कारण और फल, वह कार्य। आहाहा! समझ में आया? मार्ग समझने की, भाई! सूक्ष्मता है, बापू! अनन्त काल में इसने आत्मा ऐसा पूर्ण शुद्ध चैतन्य है, उसके सन्मुख इसने देखा नहीं।

उसके सम्मुख देखे तब उसका स्वीकार किया जाये। परन्तु उसके सन्मुख देखा नहीं और पर्याय में—अवस्था में अवस्था के सन्मुख देखा। या अवस्था लम्बाये तो उस राग के सन्मुख देखे। वह तो पर्यायबुद्धि-मिथ्याबुद्धि है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन की बुद्धि का ज्ञान तब होता है... आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी अन्तरात्मा। अर्थात् कि अन्तरात्मा जैसी पूर्ण चीज़ है, उसे जिसने स्वीकार किया, वह पर्याय में अन्तरात्मा हुआ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी भाषा और यह सब... सम्प्रदाय में तुमने ऐसी बात कभी सुनी है? जयन्तीभाई! परन्तु वहाँ तत्त्व ही कहाँ है सम्प्रदाय में। क्रियाकाण्ड का ढोंग है अकेला। आहाहा! यह वस्तु सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कही हुई चीज़ है, वह यह है। आहाहा!

जब कार्यसमयसार हुए तब सिद्धपर्याय परिणति की प्रगटतारूपकर शुद्ध परमात्मा हुए। लो! जब अन्तरात्मा हुआ, पूर्णानन्द के नाथ का अन्तर स्वरूप जो है, उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान में जहाँ भान किया, तब वह अन्तरात्मा कारणरूप से हुआ। उसके कार्यरूप से सिद्ध अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए। वह अन्तरात्मा अवस्था कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः है न? वह अन्तरात्मा कहो या यह मार्ग कहो। वस्तु जो त्रिकाली भगवान, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता, वह अन्तरात्मदशा अर्थात् मोक्षमार्ग की अवस्था। उसके फलरूप से सिद्ध भगवान कार्यसमयसार हुए। कार्यसमयसार, कारणसमयसार किसे कहना, वह भी स्वरूप साथ में आ गया। और ध्यानाग्नि करना, वह ध्यान स्वयं कारणसमयसार है। समझ में आया? क्योंकि त्रिकाली भगवान कारणसमयसार का ध्यान किया तो पर्याय में कारणसमयसार हुआ। था, वह हुआ। वह पूर्ण कार्य हो, उसे सिद्ध भगवान (कहते हैं)। ऐसे सिद्ध भगवान को नमस्कार करके, मैं 'परमात्मप्रकाश' कहना चाहता हूँ, ऐसा कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल १०, सोमवार,
दिनांक-०७-०६-१९७६, गाथा-१, प्रवचन-२

यह परमात्मप्रकाश की पहली गाथा। यहाँ आया है। देखो! सिद्ध भगवान को नमस्कार किया है। **जब सिद्ध परमेष्ठी अनन्त चतुष्टयरूप परिणमे,...** है यहाँ से? सिद्ध परमेष्ठी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—बल, इसरूप परिणमे। शक्तिरूप से तो थे परन्तु पर्यायरूप से परिणमे, **तब कार्यसमयसार हुए...** तब कार्य पूर्ण हुआ। तब कार्यसमयसार हुआ। लो, यह कार्य। जीव का समयसार कार्य (हो), वह उसका कार्य है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द और वीर्य, उसरूप होना, यह उनका कार्य है। **अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार थे।** अन्तरात्म अवस्था थी। सम्यग्दर्शन में शुद्ध चैतन्यशक्ति—स्वभाव, उसका भान और अनुभव हुआ, तब कारणसमयसार तो त्रिकाल था। पर्यायरूप से सम्यग्दर्शन में आया, तब अन्तरात्मा समयसार पर्यायरूप हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया, यह आ ही गया।

अन्तरात्मा। **अन्तरात्म अवस्था में...** अवस्था में कारणसमयसार था। आहाहा! त्रिकाल वस्तु जो शुद्ध चैतन्य शक्तिरूप है, वह मुक्तस्वरूप ही है। शक्ति अपेक्षा से, द्रव्य अपेक्षा से त्रिकाल के स्वभावभाव की अपेक्षा से आत्मा मुक्तस्वरूप ही है। परन्तु वह शक्ति से और सामर्थ्य से (है)। उसकी पर्याय में वह परिणमन हो, तब वह कार्यसमयसार सिद्ध को कहा जाता है। अन्तरात्म अवस्था में कारणसमयसार।

जैसे सोना अन्य धातु के मिलाप से रहित हुआ,... जैसे सोना अन्य धातु के मिलाप से रहित हुआ। मिलाप था सही। खान में सोना और पत्थर दोनों इकट्ठे होते हैं न? **अपने सोलहवानरूप प्रगट होता है,...** सोना वानरूप प्रगट हुआ। **उसी तरह कर्म-कलंकरहित सिद्धपर्यायरूप परिणमे।** इसी प्रकार आत्मा कर्मकलंक की... जैसे वह सोना धातु के मिलाप से रहित हुआ, उसी प्रकार आत्मा कर्मकलंकरहित सिद्धपर्याय होकर परिणमे। आहाहा!

तथा पंचास्तिकाय ग्रन्थ में भी कहा है—पंचास्तिकाय में भी कहा है कि **जो पर्यायार्थिकनयकर 'अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो'** पर्यायनय से तो सिद्धपर्याय नहीं थी, वह अभूतपूर्व नयी हुई। भगवान आत्मा को सिद्धपर्याय तो अभूतपूर्व—पूर्व में नहीं थी, वह हुई। पर्याय अपेक्षा से। आहाहा! **अर्थात् जो पहले सिद्धपर्याय कभी नहीं पायी थी,...** अनन्त काल में सिद्ध की पर्याय कभी नहीं मिली थी। **वह कर्मकलंक के विनाश से पायी।** कर्मकलंक के नाश से मिली।

यह पर्यायार्थिकनय की मुख्यता से कथन है... क्या कहा यह? सिद्ध भगवान अभूत अर्थात् पूर्व में नहीं थी, ऐसी अभूत पर्याय को प्राप्त हुए, यह पर्यायनय का कथन है। अवस्थादृष्टि का यह कथन है। अवस्था में नहीं थी, वह अवस्था अभूतपूर्व—नयी हुई, यह अवस्थादृष्टि का कथन है। आहाहा! **और द्रव्यार्थिकनयकर शक्ति की अपेक्षा...** परन्तु वस्तु की दृष्टि से देखें, आत्मा वस्तु, उसकी शक्ति, उसका स्वभाव, उसके सामर्थ्य का बल, उस दृष्टि से देखें तो सदा शुद्ध है। आहाहा! जिसका शक्ति स्वभाव शुद्ध ही है और बुद्ध है—ज्ञानस्वभाव है। आहाहा! भाषा तो अनन्त बार सीखा था। शास्त्र के पठन में आता है न? इसलिए इसे धारणा में आवे तो सही। परन्तु अनुभव में आये बिना शक्तिरूप से सिद्ध परिणमे, ऐसा नहीं होता। आत्मा का अनुभव शक्ति ध्रुव चैतन्य। चैतन्यस्वभाव, चैतन्य शक्ति पूर्ण, उसका आश्रय लेकर अथवा उसका परिणमन होना, शुद्ध पर्याय होना, वह पर्यायनय से नहीं थी और हुई, ऐसा कहने में आता है। वस्तुदृष्टि से तो त्रिकाल शुद्ध और बुद्ध ज्ञानपिण्ड ही है। आहाहा!

शुद्ध बुद्ध (ज्ञान) स्वभाव तिष्ठता है। पवित्र और ज्ञानस्वभाव से अनादि शक्ति–अपेक्षा से तो है। उसे परिणमे तो हो, ऐसा नहीं है। वह तो परिणमे तो हो, यह पर्याय की अपेक्षा से बात है। आहाहा! वस्तु तो वस्तु है। वस्तु है, वह तो शक्ति अपेक्षा से मोक्षपर्याय होती है। वह पर्याय होती है, वह वस्तु में है, उसमें से आती है न? यह तो सिद्धपर्याय, सिद्धस्वरूप त्रिकाल है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! जो दशा... उसमें—नियमसार में कहा नहीं? नियमरूप तो त्रिकाल है। कारण नियमसार कहो या नियमसार वस्तु कहो, वह नियमरूप तो त्रिकाल है। आहाहा! ज्ञान–दर्शन–चारित्र आदि

स्वभाव त्रिकाल नियम में है। वस्तु में त्रिकाल है। आहाहा! उसे पर्याय में प्रगट हो, तब कार्यनियम कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

प्रायश्चित्त में भी ऐसा लिया है न? प्रायश्चित्त। प्रायश्चित्त। बहोलुं जिसका चित्त ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है वह तो। प्रायश्चित्त स्वरूप ही है। प्राय अर्थात्? बहुलता से अनन्त चित्तस्वरूप ही है वह। आहाहा! तो वह उसकी पर्याय में प्रायश्चित्तरूप निर्मल दशा प्रगट होती है। आहाहा! जो कुछ पर्याय में होता है, वह स्वरूप से तो त्रिकाल है ही, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! यह शुद्ध बुद्ध।

जैसे धातु पाषाण के मेल में भी... क्या कहते हैं? सोना और धातु का मेल—संयोग होने पर भी, **शक्तिरूप सुवर्ण मौजूद ही है,...** सोना सोनेरूप से, शक्तिरूप से तो वह धातु के मिलाप के समय भी शक्तिरूप से तो सोना, सोना ही है। आहाहा! समझ में आया? **धातु पाषाण के मेल में भी शक्तिरूप सुवर्ण मौजूद ही है, क्योंकि सुवर्ण-शक्ति सुवर्ण में सदा ही रहती है,...** सुवर्ण शक्ति का सामर्थ्य सुवर्ण में सदा रहता है। आहाहा!

जब परवस्तु का संयोग दूर हो जाता है,... संयोगी पत्थर का मिलाप जैसे दूर हो जाता है, **तब वह व्यक्तिरूप होता है।** सोना। सोलहवान शक्तिरूप से तो है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पत्थर के मिलाप के समय भी सोलहवान शक्तिरूप से ही है। सोलहवान कहो, पूर्ण कहो। चौंसठपहर कहा था न? पीपर चौंसठपहरी। वह तो सोलह आना। आहाहा! पूर्णिमा के दिन चन्द्र खिलता है, वह सोलह कला से खिलता है। वह पूर्ण खिलता है। इसी प्रकार सोना मिलापरहित पूर्ण प्रगट होता है, तब सोलहवान होता है। सोलह आना—रुपया पूर्ण। इसी प्रकार छोटी पीपर में शक्तिरूप से सोलह आना अर्थात् रुपयारूप शक्ति है, वह पर्याय में प्रगट होती है। है, वह प्रगट होती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा कर्म के सम्बन्ध में भी उसकी शक्ति तो सोलहवान पूरा-पूरा सोलह आना ही है। आहाहा! जिसका ज्ञान, आनन्द, वीर्य, दर्शन वह पूर्ण ही है। वस्तुरूप से पूर्ण है।

परवस्तु का संयोग दूर हो जाता है, तब वह व्यक्तिरूप होता है। सारांश यह है कि शक्तिरूप तो पहले ही था, लेकिन व्यक्तिरूप सिद्धपर्याय पाने से हुआ। ऐसे सिद्ध

की शक्तिरूप से पहले से थी। आहाहा! कैसे जँचे? एक समय की पर्याय में वस्तु शक्तिरूप पूर्ण थी ही। वह पर्याय में उसका भान होता है। समझ में आया? मार्ग भारी सूक्ष्म, भाई! **शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव सदा शुद्ध ही हैं।** वह तो शक्तिरूप थे, सिद्धपद तो शक्तिरूप से आत्मा में है। जैसे छोटी पीपर में चौंसठपहरी चरपराई है। सोने में पत्थर के मिलाप के समय भी सोलहवान सोना है। उसी प्रकार कर्म के कलंक के समय भी भगवान आत्मा में सिद्धपना पूर्ण शुद्ध है। अरे! यह बात।

द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव... शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर ऐसा लिया है। शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से देखने पर भगवान आत्मा **सभी जीव...** अभव्य भी। भव्य, अभव्य सब। आहाहा! **सदा शुद्ध ही हैं।** सदा त्रिकाल पवित्र ही है। पवित्र ही है। आहाहा! यह पर्याय में उसे बैठे, तब पवित्र है, ऐसा उसे हुआ। वर्तमान पर्याय में सदा शुद्ध है, ऐसा जब उसे जँचे, तब सदा शुद्ध है—ऐसी प्रतीति उसे होती है। पर्याय में आये बिना उसे 'सदा शुद्ध है'—ऐसी प्रतीति नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए १७वीं गाथा में (समयसार में) कहा न? कि पर्याय में शुद्ध वस्तु ध्रुव शुद्ध सोलहवान पूर्ण, वह पर्याय में पूर्ण द्रव्य ही ज्ञात होता है। समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय भी ज्ञान है न वह? तो ज्ञान है, उस पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। तो स्व प्रकाशता ही है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह स्वप्रकाशक है, पर्याय में जाननेवाला ही जानने में आता है, परन्तु दृष्टि इसकी द्रव्य पर नहीं है, इसलिए इसे पर्याय पर दृष्टि होने से जाननेवाला जानने में आता है, वहाँ इसकी दृष्टि नहीं है। आहाहा! मात्र वर्तमान अवस्था पर दृष्टि है, इससे राग के साथ एकत्वबुद्धि में राग को जानता है, ऐसा यह मानता है। समझ में आया? अकेला परप्रकाशक है, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! कहो, दिलीप! कहाँ गये तेरे दादा? कहो, समझ में आया? यह तो धर्म की कॉलेज है। कितना ही यह सीखकर आया हो तो अधिक समझ में आये। आहाहा!

परमात्मप्रकाश है न यह? कहते हैं, परमात्मप्रकाश पर्याय में है, वह स्वभाव में परमात्मप्रकाश है ही। आहाहा! जो-जो पर्याय में होता है, वह-वह उतना वह अन्दर स्वभाव में पूर्ण है। आहाहा! पूर्ण न हो तो अल्प काल की पर्याय आवे कहाँ से?

आहाहा! समझ में आया? जरा सूक्ष्म विषय है। जैनदर्शन अर्थात् कि वस्तुदर्शन बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

कहते हैं, **शुद्ध द्रव्यार्थि....** शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन, ऐसा जो ज्ञान। क्या? शुद्ध द्रव्य अर्थात् वस्तु, अर्थि अर्थात् प्रयोजन। जिस ज्ञान के अंश का शुद्ध द्रव्य प्रयोजन है, उस (दृष्टि से) देखें तो **सभी जीव सदा ...सभी जीव सदा... सभी जीव सदा शुद्ध ही हैं।** आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु त्रिकाल शुद्ध है। निगोद की अवस्था में हो... आहाहा! देखो तो सही! निगोद का एक शरीर, उसमें अनन्त जीव। शरीर की अवगाहना कद कितना? अँगुल के असंख्यवें भाग में। निगोद के एक शरीर का कद चौड़ा कितना? कि अँगुल के असंख्य भाग में। एक शरीर में अनन्त जीव। आहाहा! उस जीव का कद कितना? इस शरीरप्रमाण। उसका स्वभाव कितना? आहाहा! भले पर्याय में अक्षर का अनन्तवाँ भाग विकासरूप रहा। परन्तु जो ज्ञानशक्ति है, सामर्थ्य है, वह तो वहाँ पूर्ण है। समझ में आया?

शुद्धद्रव्यार्थिकनय से देखें तो सभी जीव, ऐसा लिया न? **शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव सदा...** तो निगोद का जीव भी (आ गया)। आहाहा! आता है न? नियमसार में। सर्व संसारी सिद्धस्वरूप है। यह गाथा बाद में आती है। आहाहा! वह शक्ति की अपेक्षा से। सर्व जीव सिद्धस्वरूप ही है। संसारी भी। आहाहा! यह तो पर्याय की अपेक्षा से संसारी कहा जाता है और पर्याय की अपेक्षा से सिद्ध कहा जाता है। वस्तु की अपेक्षा से भगवान आत्मा सदा सभी जीव शुद्ध द्रव्य के प्रयोजन की दृष्टि से देखें तो.. आहाहा! त्रिकाल शुद्ध-शुद्ध-शुद्ध पवित्र का पिण्ड है। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। आहाहा!

ऐसा ही द्रव्यसंग्रह में कहा है, 'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया'... द्रव्यसंग्रह में है न? गाथा १३वीं। १३वीं गाथा है। द्रव्यसंग्रह की १३वीं। वह पंचास्तिकाय की २०वीं थी। पहले कही न? सिद्धपर्याय नहीं थी और हुई, वह पंचास्तिकाय की २० गाथा। और यह 'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया' द्रव्यसंग्रह की गाथा १३। पहले उतारी है इसमें। तब लिख ली थी। पहले से यहाँ लिखी है। समझ में आया? **'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया'...** आहाहा! श्रीमद् ने कहा न? 'सर्व जीव है सुद्धसम'। लो! उसमें अभवय निकल गये? आहाहा!

जिसका शक्ति स्वभाव तो शुद्ध ही है। पूर्ण शुद्ध है। द्रव्यस्वभाव, उसका शक्तिरूप सामर्थ्य स्वभाव तो पूर्ण ही है। पर्याय में भले निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग हो और सिद्ध को केवलपर्याय हो। सिद्ध को केवल (ज्ञान) पूर्ण पर्याय हो। यहाँ अक्षर के अनन्तवें भाग हो। वह तो पर्याय की दृष्टि अपेक्षा से बात है। आहाहा! वस्तुरूप से तो त्रिकाल पवित्र पिण्ड पूरा शुद्ध ही है। तत्त्व है न? जीवतत्त्व है न? जीव वस्तु है न? तो वस्तु में पूर्ण अनन्त गुण बसे हुए त्रिकाल हैं। आहाहा! उसे यहाँ गुण और शक्तिरूप से कहा है।

शुद्ध नयकर सभी जीव शक्तिरूप शुद्ध हैं और पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर शुद्ध हुए। सिद्ध भगवान। पर्याय में जिसका प्रयोजन है, ऐसे ज्ञान की अपेक्षा से **व्यक्तिकर शुद्ध हुए।** सिद्ध भगवान व्यक्ति अर्थात् प्रगट सिद्ध हुए। शक्तिरूप थे, वे प्रगटरूप हुए। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म ज्ञान है। यह वह एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया करके सामायिक हो गयी। तस्सउत्तरी करणेण तावकाय ठाणेण माणेण झाणेणं। हो गया कायोत्सर्ग। धूल भी नहीं कायोत्सर्ग। आहाहा! जहाँ भगवान एक समय में पूर्ण अनन्त गुण से (विराजमान है)। अनन्त गुण हैं, वे अनन्त गुण पूर्ण हैं। वह अनन्त गुण का पूर्णरूप, शक्तिरूप वह आत्मा। आहाहा!

पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर शुद्ध हुए। समझ में आया या नहीं इसमें? सिद्ध भगवान... नमस्कार भी सिद्ध को करना है न? ऐसी तो पाँच गाथायें लेंगे। हो गये, होंगे, वर्तमान भगवान विराजते हैं, उन्हें सिद्ध करके नमस्कार करते हैं। 'सीमन्धर' भगवान। आहाहा! बड़ा मांगलिक किया है। आहाहा! **पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर...** वस्तुरूप से तो शुद्ध बुद्ध ज्ञानघन हैं। ज्ञान की अपेक्षा से ज्ञानघन, आनन्द की अपेक्षा से आनन्दघन, श्रद्धा की अपेक्षा से श्रद्धाघन, शान्ति-चारित्र की अपेक्षा से शान्तिघन, वीर्य की अपेक्षा से वीर्यघन, कर्ताशक्ति की अपेक्षा से कर्ताघन, कर्मशक्ति की अपेक्षा से कर्मघन त्रिकाल, हों! आहाहा! करण—साधन की अपेक्षा से करणघन—ऐसे अनन्त गुण का पूर्णरूप से घन शक्तिरूप से भगवान विराजता है। आहाहा!

किस कारण से? वे व्यक्तिरूप हुए? ऐसा कहते हैं। शक्तिरूप शुद्ध बुद्ध थे।

अब व्यक्तिरूप सिद्धदशा प्राप्त की। प्रगटरूप। वह शक्तिरूप थी, यह व्यक्तिरूप प्रगट की। किस कारण से प्रगट हुआ? सिद्धपना किस कारण से प्रगट हुआ? **ध्यानाग्निना अर्थात् ध्यानरूपी अग्निकर...** ध्यानरूपी अग्नि के कारण से। आहाहा! चैतन्य का, आनन्द का नाथ प्रभु, वहाँ ध्यान लगाया। पूर्ण स्वरूप को ध्येय बनाकर ध्यान का विषय पूर्ण बनाया। आहाहा! सम्यक् ध्यान, उसका ध्येय में, विषय में पूर्णानन्द को ध्यान में विषय बनाया। ध्यान की पर्याय विषयी और उसका विषय है, वह पूर्ण विषय। आहाहा! समझ में आया? उसमें बहुत आता है यह। अध्यात्म तरंगिणी है न? इसकी टीका में बहुत आता है। ध्यान विषय कुरु, ऐसा बहुत आता है उसमें। बहुत बार कहा है। ध्यान विषय कुरु। तीन-चार जगह आता है। ध्यान का विषय बना। त्रिकाल को ध्यान का विषय बना। आहाहा! धीरुभाई! वहाँ इतने वर्ष में ऐसा सुना नहीं था। वाड़ा में है कहाँ? वाडा बाँधकर बैठे हैं। 'वाडा बाँधी बैठा रे...' तुम्हारा यह वाडा नहीं? (कोई ऐसा कहेगा)। यह वाड़ा कहाँ है? यह तो वस्तु की स्थिति है। वस्तु का स्वरूप है। ज्ञान से पूर्ण, दर्शन से पूर्ण, आनन्द से पूर्ण, ऐसे अनन्त गुण पूर्ण इदं शक्ति से विराजमान भगवान आत्मा, उसे ध्यान का विषय बनाकर, यह तो पर्याय हुई। ध्यान है, वह तो पर्याय हुई। उसका विषय हुआ त्रिकाली। आहाहा!

ध्यानाग्निना अर्थात् ध्यानरूपी अग्निकर कर्मरूपी कलंकों को भस्म किया,... अशुद्ध परिणमनरूपी विकार का नाश किया। कर्म का नाश किया, यह कहेंगे अभी। यह असद्भूतनय से। क्या कहा यह? **ध्यानाग्निना अर्थात् ध्यानरूपी अग्निकर कर्मरूपी कलंकों को भस्म किया,...** साधारण बात ली है न! फिर कर्म के दो भाग कर देंगे। अशुद्ध और कर्म जड़। **तब सिद्ध परमात्मा हुए।** ध्यान अग्नि लगायी अन्दर में। आहाहा! वर्तमान ध्यान में वस्तु को ध्येय बनाकर ध्यान किया, उस ध्यानाग्नि से सिद्ध हुआ। व्रत, तप, भक्ति और पूजा से सिद्ध नहीं हुए। समझ में आया? आहाहा!

कर्मरूपी कलंकों को भस्म किया,... वहाँ इसका अर्थ करेंगे, हों! **तब सिद्ध परमात्मा हुए। वह ध्यान कौन सा है?** ध्यान को क्या कहना? **आगम की अपेक्षा तो वीतराग निर्विकल्प शुक्लध्यान है...** अन्तिम बात है न, केवलज्ञान लेने की। सिद्धपर्याय के समय। सिद्धपर्याय होती है, तब उसका ध्यान **आगम की अपेक्षा तो वीतराग निर्विकल्प**

शुक्लध्यान है... विकल्प अर्थात् भेद बिना का निर्विकल्प त्रिकाली भगवान को ध्यान में लेकर। वीतरागी निर्विकल्प ध्यान, वह शुक्लध्यान। उससे सिद्ध हुए। आहाहा!

और अध्यात्म की अपेक्षा वीतराग निर्विकल्प रूपातीत ध्यान है। रूपातीत। अन्दर कहेंगे। सिद्ध भगवान का ध्यान, वह रूपातीत। सिद्ध अर्थात् स्वयं त्रिकाली, उसका ध्यान रूपातीत। आहाहा! अच्छा विस्तार किया है। अध्यात्म की अपेक्षा से वीतराग अभेद रूपातीत ध्यान। अकेले पूर्णानन्द को दृष्टि में लेकर विषय बनाकर स्थिर होना, वह अध्यात्म की अपेक्षा से रूपातीत। **दूसरी जगह भी कहा है—'पदस्थं'** षट्प्राभृत (में) लिखा है। षट्प्राभृत में पृष्ठ २३६ में लिखा है। षट्पाहुड़ में आता है।

णमोकार मन्त्र आदि का जो ध्यान है, वह पदस्थ... पद-पद। पाँच पद में स्थित भगवान पंच परमेष्ठी का ध्यान, पदस्थ ध्यान कहा जाता है। **णमोकार मन्त्र....** अर्थात् कि पंच परमेष्ठी अरिहन्त-सिद्ध आदि। **जो ध्यान है, वह पदस्थ कहलाता है,...** अर्थात् कि पाँच पद में स्थ—रहे हुए, उनका ध्यान, वह पदस्थ ध्यान। समाधिशतक में कहा है न? कि दीपक को दीपक स्पर्शकर दीपक होता है। तथा एक वृक्ष स्वयं घिसकर (अग्नि) होता है। इसी प्रकार पंच परमेष्ठी का ध्यान करके भी सिद्ध... यह ध्यान जैसा आत्मा है, ऐसा कहा। तथा एक वृक्ष घिसकर अर्थात् अपना आत्मा ही उसमें एकाग्र होकर—घिसकर ज्ञान-आनन्द होता है, सिद्धपद होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। वस्तु तो एक ही है परन्तु उसका निमित्तपना पंच परमेष्ठी का लक्ष्य में लेकर फिर अन्दर उतरा है; इसलिए वहाँ उसे पदस्थ कहा है। यह समाधिशतक में लिया है। दो बोल लिये हैं।

पिण्ड (शरीर) में ठहरा हुआ जो निज आत्मा है,... देखा? **उसका चिन्तवन...** लो! यह स्वयं ही पंच परमेष्ठीस्वरूप है अन्दर। आहाहा! पिण्ड के पीछे अर्थ यह लिया। देखा! पिण्ड जो यह शरीर, उसमें निज आत्मा जो है, **उसका चिन्तवन, वह पिण्डस्थ है,...** आहाहा! चिन्तवन अर्थात् एकाग्रता, हों! चिन्तवन अर्थात् विकल्प नहीं। आहाहा! शरीर के पिण्ड में रहा हुआ प्रभु; वह रहा है अपने में, परन्तु यहाँ शरीर का अवगाहन

गिनना है न? है तो उसमें। ऐसा जो भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसका ध्यान, यह पदस्थध्यान कहा जाता है। ऐसी सब बातें वहाँ हो नहीं। आहाहा!

सर्व चिद्रूप (सकल परमात्मा) जो अरहन्तदेव उनका ध्यान वह रूपस्थ है,... है? पिण्ड में रहा हुआ स्वयं, उसका ध्यान पिण्डस्थ। और सकल परमात्मा अरिहन्त का ध्यान वह रूपस्थ। वे रूप में रहे हुए हैं। सर्वज्ञ की पर्याय में रहे हुए, उसका ध्यान, वह रूपस्थध्यान। आहाहा! उनका ध्यान करके भी फिर उनका लक्ष्य छोड़ देना। ऐसा। आहाहा! **और निरंजन (सिद्ध भगवान) का ध्यान रूपातीत कहा जाता है।** शरीररहित हो गया न वे? उनका ध्यान **रूपातीत कहा जाता है।** आहाहा!

वस्तु के स्वभाव से विचारा जावे, तो शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अभेद रत्नत्रयमयी जो निर्विकल्प समाधि है,... आहाहा! ध्यान का लक्षण कहते हैं कि **शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अभेद रत्नत्रयमयी जो निर्विकल्प समाधि है,...** आहाहा!

मुमुक्षु : जयसेनाचार्य का लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न! जयसेनाचार्य का बहुत आधार लिया। लिखा है। प्रस्तावना में बहुत लिखा है। बहुत आधार कुन्दकुन्दाचार्य का लिया है, नियमसार का लिया है।

वस्तु के स्वभाव से विचारा जावे,... भगवान आत्मा वस्तु है। जगत का तत्त्व है जगत से भिन्न, ऐसे वस्तु का-स्वभाव का विचार करें तो... आहाहा! **शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन,...** शुद्ध त्रिकाली भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन, त्रिकाली शुद्ध आत्मा का **सम्यग्ज्ञान,...** त्रिकाली शुद्ध आत्मा में **सम्यक्चारित्ररूप...** रमणता वह **अभेद रत्नत्रयमयी जो निर्विकल्प समाधि है,...** शान्ति... शान्ति... शान्ति... समाधि वे बाबा लगाते हैं, वह नहीं, हों! यहाँ तो निर्विकल्प शुद्ध आत्मा त्रिकाली, उसका सम्यग्दर्शन, उसका सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र उसरूप। ऐसा है न? **रत्नत्रयमयी निर्विकल्प समाधि...** उन तीन को निर्विकल्प समाधि कहा है। राग बिना की निर्विकल्प शान्ति जिसमें प्रगट हो। आहाहा! आधि, व्याधि, उपाधि रहित समाधि। आधि अर्थात् संकल्प-विकल्प; व्याधि—शरीर

की रोग अवस्था; उपाधि—यह संयोग। तीन से रहित वह अन्दर शुद्ध आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रयमय निर्विकल्प समाधि उसे कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह निर्विकल्प समाधि। आहाहा! सम्यग्ज्ञान, वह निर्विकल्प समाधि, स्वरूप की स्थिरता, वह निर्विकल्प समाधि। आहाहा!

उससे उत्पन्न हुआ... ऐसी निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुआ। **वीतराग परमानन्द समरसीभाव...** आहाहा! वीतराग परमानन्द आनन्द उत्पन्न हुआ अन्दर। **वीतराग परमानन्द समरसीभाव सुखरस का आस्वाद, वही जिसका स्वरूप है,...** आहाहा! शुद्ध भगवान त्रिकाली आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह रत्नत्रयमय जो ध्यान, समाधि। उसमें क्या उत्पन्न हो समाधि में? परम आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का रस उत्पन्न होता है। आहाहा! वह तीनमय आनन्द—परमानन्द उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। आहाहा!

कहते हैं, **उससे उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द...** वीतरागी आनन्द, वह भी परमानन्द। यह विषय के सुख को आनन्द मानता है न? राग में सुख मानकर वेदता है। वह तो कल्पना है। यह तो शुद्ध आत्मा, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण-पूर्ण लबालब शक्तिरूप से भरा है। उसका ध्यान करने से पर्याय में... आहाहा! परमानन्द वीतरागी समरसी वीतरागी परमानन्द। वापस समरसी शान्त... शान्त... शान्त... आहाहा! ऐसे सुखरस का आस्वाद, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, **वही जिसका स्वरूप है, ऐसा ध्यान का लक्षण जानना चाहिए।** आहाहा! वह थोथा ध्यान लगावे और अस्ति क्या है, इसकी खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। वह कहता है न रजनीश? विकल्प तोड़ डालना, विकल्प तोड़ डालना। परन्तु विकल्प तोड़े कहाँ? किसे लक्ष्य में लेकर? अस्तिरूप से शुद्ध बुद्ध त्रिकाल है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रमय परिणमन करने से विकल्प टूटकर निर्विकल्प शान्ति उसे होती है। समझ में आया? और उसका अस्तित्व कितना कहाँ? उसकी खबर बिना ध्यान करता है, वह उसका ध्यान राग में जाता है अकेला। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा का अस्तित्व कितना है? कि **वस्तु के स्वभाव से विचारा**

जावे, तो शुद्ध आत्मा का... त्रिकाल। उसकी **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप...** निर्विकल्प जो समाधि आनन्द शान्ति, उसका फल वीतरागी परमानन्द। समरसी वीतराग समरस। आहाहा! 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये' आता है न?

मुमुक्षु : 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये'

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। आहाहा!

चाहे तो शुभ विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति का हो, भगवान के स्मरण का हो। परन्तु वह राग आग है। वह '(राग) आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये'। आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-शान्तिरूप दशा से समरस आनन्द प्रगट हो, वह जिसका लक्ष्य। ध्यान में ध्येय पूर्ण वस्तु आती है और पूर्ण वस्तु की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, उससे उत्पन्न होती निर्विकल्प समाधि, उससे उत्पन्न होता आनन्द। आहाहा! ऐसा जो समरसी भाव पर्याय का, हों! वीतरागी। क्यों? स्वयं वीतराग परमानन्द समरसीभाव सुखरस का समुद्र है। क्या कहा यह? वह शुद्ध कहा था न, शुद्ध आत्मा? शुद्ध आत्मा। पहला शब्द है न? वह वीतरागी परमानन्द समरसीभाव शुद्धरस का सागर है। आहाहा! उसका ध्यान करके पर्याय में परमानन्द समरसी दशा प्रगट हुई। उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, वह ध्यान का लक्षण है। समझ में आया?

ऐसा कहकर शुद्ध आत्मा ध्यान का विषय भी कहा और उसके आश्रय से हुआ दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनरूप निर्विकल्प शान्ति कही, वह समाधि। और ऐसी जो निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न एकरूप का, अब उससे वीतरागी परमानन्द अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उत्पन्न हो, उसे ध्यान कहा जाता है। आहाहा! सब ॐ... ॐ... करते हैं न? ॐ णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... यह ध्यान नहीं। आहाहा! इसमें तो राग / आकुलता आती है। जिस ध्यान में परमसमरसी वीतरागी आनन्द, परम आनन्द, वीतरागी परन्तु परम आनन्द समरसीभाव, उसमें वह भी सुखरस का आस्वाद। आहाहा! आनन्द के रस का स्वाद। आहाहा! वह ध्यान का लक्षण है। यह ध्यान का फल आया, वह उसका लक्षण है। ध्यान में आनन्द न आवे और ध्यान करते हैं, कहते हैं। आहाहा! आत्मा का ध्यान (करते हैं) परन्तु आनन्द आता नहीं। वह आत्मा का ध्यान ही नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

ऐसा ध्यान का लक्षण जानना चाहिए। आहाहा! यह ध्यानाग्नि कही है न? इससे भस्म (होते हैं), उसकी व्याख्या चलती है। ध्यानाग्नि से भस्म किया। वह ध्यानाग्नि कैसी? इसकी व्याख्या है। **इसी ध्यान के प्रभाव से कर्मरूपी मैल, वही हुआ कलंक,...** आहाहा! पुण्य-पाप का भाव, वह कर्मरूपी मैल है, कलंक है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, स्तवन, स्तुति, पठन, पाठन, चिन्तवन—ऐसा जो भाव, वह कलंक है। समझ में आया? **ध्यान के प्रभाव से कर्मरूपी मैल, वही हुआ कलंक,...** आहाहा! यह विकल्प है, वह कलंक है, कहते हैं। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधता है, वह भाव कलंक है। ध्यानाग्नि से उस कलंक को धो दिया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उनको भस्म कर सिद्ध हुए। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधा था, उस भाव को भी भस्म करके केवली हुए। आहाहा! उस भाव का भी नाश किया, तब केवली हुए, सिद्ध हुए। आहाहा! वह है न, भाई! नहीं वह? जामनगर नहीं आया था, वह राजकोट वाला? क्या नाम? वह आया था न अभी? मुम्बई।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह बनिया। पहले वैष्णव था, फिर स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी (हो गया)। रतिलाल। कैसा? ... हाँ। राजकोटवाला आया था न वहाँ? मुम्बई आया था। हाँ, आया था न। अभी कहे कि ध्यान करता हूँ। अभी बौद्ध में गया है। बौद्ध के साधु मिले होंगे न, तो उनके शिक्षण शिविर में सम्मिलित होकर पैसा उगाहता है। बौद्ध में मिला है। कुछ ठिकाने बिना का...

मुमुक्षु : वैष्णव था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले था वैष्णव, फिर हुआ स्थानकवासी, फिर हुआ श्वेताम्बर। तब आया था न वहाँ जामनगर लेकर। वापस इस बार आया था। मुझे पूछना है। देखो! यह ध्यान-ध्यान। किसका ध्यान? मैं ध्यान करता हूँ। बौद्ध में ध्यान करते हैं न? बौद्ध में मिला है। शिक्षण शिविर करता है, उसमें पैसा उगाहता है। पैसावाला है। कुछ पाँच-पच्चीस लाख है। आहाहा! ऐसे के ऐसे। ध्यान करते (हैं), कहते हैं। किसका ध्यान? कहा। वस्तु क्या है, उसके भान बिना ध्यान किसका? किसका ध्यान? मैं ध्यान करता

हूँ। वे बौद्ध करते हैं न? बौद्ध में आता है, भाई! पूर्व भव का याद करने का बहुत आता है। पूर्व भव, उसका ध्यान बहुत करते हैं लोग। बौद्ध के साधु पूर्वभव के स्मरण के लिये। आहाहा! अब पूर्वभव के स्मरण के लिये ध्यान, वह क्या ध्यान? वह कहीं ध्यान कहलाता है? परभव कहाँ था, उसका ध्यान वह ध्यान कहलाता है?

ध्यान तो आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेकर लीन हो और जिसमें परम आनन्दरस आवे, उसे ध्यान कहते हैं। आहाहा! हम ध्यान करते हैं। किसका ध्यान? दो बार आया था। वह रमणीकभाई के यहाँ। तब हम उतरे थे न वहाँ आया था। यह जैन में जन्मे, जैन में आये, उसे भी कुछ भान नहीं होता।

अब कर्मकलंक की व्याख्या करते हैं। **कर्मकलंक अर्थात् द्रव्यकर्म भावकर्म...** दो। कर्मकलंक का नाश किया न? अब कर्मकलंक अर्थात् क्या? कि द्रव्यकर्म जड़ और भावकर्म राग-द्वेष। **इनमें से जो पुद्गलपिण्डरूप ज्ञानावरणादि आठ कर्म वे द्रव्यकर्म हैं,...** जड़ कर्म। **और रागादिक...** विकल्प जो पुण्य-पाप का भाव, वह **संकल्प-विकल्प परिणाम भावकर्म कहे जाते हैं। यहाँ भावकर्म का दहन...** लो! है? यह अशुद्ध विकारी भाव। इनका दहन **अशुद्ध निश्चयकर हुआ,...** यह क्या कहा? ध्यानाग्नि से कर्मकलंक का नाश किया। अब कर्मकलंक के दो प्रकार:—एक जड़कर्म और एक अशुद्ध भावकर्म / विकारी भाव। यह अशुद्धनिश्चयकर नाश किया। क्योंकि उसकी पर्याय में थे न वे? भावकर्म का नाश अशुद्धनिश्चयनयकर किया। समझ में आया?

स्वरूप का ध्यान करने से अशुद्धता के परिणाम का नाश (हुआ), वह अशुद्ध निश्चयनय से कहने में आता है। क्योंकि उसकी पर्याय में है न? इसलिए अशुद्ध निश्चय से नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! और द्रव्यकर्म का नाश, ध्यान से कर्मकलंक भस्म किया। अब कर्मकलंक अर्थात् क्या? इसकी व्याख्या की। कर्म-कलंक के दो प्रकार। जड़कर्म और अशुद्ध भावकर्म। अशुद्ध भावकर्म का नाश, वह अशुद्ध निश्चयनय से कहा जाता है। क्योंकि उसकी पर्याय में था। है व्यवहारनय, परन्तु उसकी पर्याय में था, इस अपेक्षा से निश्चय, मलिन है, इसलिए अशुद्ध, उसका नाश किया, यह अशुद्ध निश्चयनय से कहा जाता है। अब ऐसा कहाँ सीखे? ऐई! मगनभाई! धन्धा में रहना या यह करना? आहाहा!

णमो अरिहंताणं आया न? उसमें कहते हैं कि कर्मरूपी जड़ शत्रु और भावकर्मरूपी भावकर्म शत्रु। दोनों को हनन करने में विकारी भाव का नाश किया और वह अशुद्ध निश्चयनय से कहा जाता है और भगवान ने कर्म नाश किये, यह द्रव्यकर्म असद्भूत—झूठी दृष्टि से (कहा जाता है)। **असद्भूत अनुपचरित...** कर्म नजदीक में है न? स्त्री-पुत्र पर है और कर्म नजदीक हैं, इसलिए अनुपचरित। स्त्री-पुत्र का त्याग करना, वह उपचरित असद्भूतव्यवहारनय कहा जाता है। बहुत सरस वर्णन किया है।

असद्भूत अर्थात् कि आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय में जड़कर्म नहीं। उसकी पर्याय में भी जड़कर्म नहीं, इसलिए असद्भूत। अनुपचरित परन्तु नजदीक में है; इसलिए अनुपचरित। **व्यवहारनयकर...** अर्थात् परवस्तु है न? **व्यवहारनयकर हुआ...** द्रव्यकर्म का नाश असद्भूत अनुपचरित व्यवहारनय से कहा गया है। कठिन, भाई! एक-एक व्याख्या! क्या कहा यह?

सिद्ध भगवान ध्यानाग्नि से कर्म के कलंक को नाश करते हुए। अब इसकी व्याख्या। ध्यान अर्थात् क्या? कि शुद्ध स्वरूप को ध्येय बनाकर अखण्डानन्द पूर्णानन्द को ध्येय बनाकर जो पर्याय हो, वह ध्यान। अब ध्यान में होता क्या है उसका फल? कि जिसमें परमानन्द सुख, वीतराग सुखरसी भाव प्रगट हो, वह ध्यान का लक्षण। अब उस ध्यान द्वारा कर्म का नाश किया। तो कर्म किस प्रकार के? कर्म दो प्रकार के। एक जड़कर्म, एक अशुद्धता का भावकर्म। अशुद्धता के भावकर्म का नाश अशुद्ध निश्चयनय से कहने में आता है और जड़कर्म का नाश असद्भूत अनुपचार व्यवहार से कहने में आता है। क्योंकि आत्मा की पर्याय में नहीं परन्तु अनुपचरित—नजदीक में है। व्यवहार अर्थात् परवस्तु है, निमित्त है, वह व्यवहार हो गया। वह असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय से उसका नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! पर है न, इसलिए व्यवहार। अशुद्धता, वह तो अशुद्ध निश्चय हुआ। विकारी अपने में ही है न? इसलिए अशुद्ध निश्चय। वह (जड़कर्म) तो परवस्तु है इसलिए व्यवहार हो गया। आहाहा! अब ऐसा कब सीखना? यह दूसरे जो अन्यमति दूसरे प्रकार से कहते हैं न? इसका निराकरण करने के लिये यह बात है। समझ में आया? यह कहेंगे अभी। शब्दनय, आगमनय, मतार्थनय पाँचों ही वापस इसमें घटित करेंगे। आहाहा!

शुद्ध निश्चयकर तो जीव के बन्ध-मोक्ष दोनों ही नहीं है। त्रिकाली भगवान मोक्षस्वरूप ही है। उसके बन्ध-मोक्ष की पर्याय में त्रिकाली निश्चयनय की अपेक्षा से उसमें है नहीं। बन्ध-मोक्ष तो पर्यायनय की अपेक्षा से है। आत्मा को अशुद्ध भावकर्म का बन्ध, अशुद्धनय अर्थात् पर्यायनय हुआ। और जड़कर्म का नाश, वह भी पर्यायनय अर्थात् पर व्यवहारनय और वह भी असद्भूत। उसे इस प्रकार से कहने में आया। आहाहा! णमो अरिहंताणं। कर्मरूपी वैरी को नाश किया। कर्म तो जड़ है। जड़ को आत्मा नाश करे? परन्तु जड़ की अवस्था अशुद्ध, कर्म का नाश होने के काल में कर्म की अवस्था अकर्मरूप होने का उसका काल था, इसलिए वह हुई। परन्तु भगवान आत्मा ने इसका नाश किया। यह असद्भूत अनुपचार व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! ऐसा है! गिरधरभाई!

शुद्धनिश्चय से भगवान त्रिकाली, वह तो उसे राग की, अशुद्धता की पर्याय भी नहीं और मोक्ष की सिद्ध पर्याय भी शुद्ध में नहीं। त्रिकाली की अपेक्षा से बन्ध-मोक्ष उसकी पर्याय में है, वस्तु में नहीं। त्रिकाली की अपेक्षा से बन्ध-मोक्ष है ही नहीं। आहाहा! **बन्ध मोक्ष दोनों ही नहीं है। इस प्रकार कर्मरूपी मलों को भस्मकर जो भगवान हुए, वे कैसे हैं?** यह विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल ११, मंगलवार,
दिनांक-०८-०६-१९७६, गाथा-१-२, प्रवचन-३

यह परमात्मप्रकाश है। पहली गाथा। सिद्ध को पहले नमस्कार करते हैं। सिद्ध को नमस्कार करते हुए ऐसा कहा है कि जिन्होंने ध्यानाग्नि से कर्म को जलाकर, जिन्होंने परम आनन्द और वीतरागदशा प्राप्त की, ऐसे सिद्ध नित्य ज्ञानमय निरंजन हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। और वह ध्यान कैसा? ध्यानाग्नि से कर्म नाश हुआ। ध्यान कैसा है? कि अन्तर स्वरूप शुद्ध चैतन्य का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उससे उत्पन्न होनेवाला परमरसी सुखस्वाद, अमृत के स्वाद का जिसमें अनुभव आता है। ऐसा जो ध्यान, उस ध्यानाग्नि द्वारा कर्मों का नाश हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : परपदार्थ का नाश आत्मा के भाव से होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का भाव, दूसरे का कहाँ था।

वस्तु टंकोत्कीर्ण ध्रुव जो शुद्ध चिदानन्द प्रभु एक स्वभावी वस्तु जो ध्रुव है, उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह उसका ध्यान है। उससे उत्पन्न हुआ परमसुखसमरसी स्वाद, परमसुखसमरसी वीतरागी आनन्द स्वाद, वह ध्यान का लक्षण है। आहाहा! समझ में आया? ध्यान करना... ध्यान करना... लोग कहते हैं। परन्तु ध्यान किसका? और ध्यान में क्या होता है? ध्यान, उसका ध्येय शुद्ध चैतन्य अखण्ड परमात्मस्वरूप है। ध्यान का ध्येय और ध्येय को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की श्रद्धा, ज्ञान की रमणता जानकर और उससे उत्पन्न हुआ आनन्द समरसीस्वभाव शान्त-आनन्द, वह ध्यान का लक्षण है। उस ध्यानाग्नि से कर्मकलंक का नाश किया।

कर्मकलंक के दो प्रकार—जड़कर्म और भावकर्म। भावकर्म का नाश किया, यह अशुद्ध निश्चयनय से कहा जाता है। विकारी भाव जो पर्याय में थे, अशुद्ध निश्चयनय से उनका नाश किया, ऐसा कहने में आता है। ३४वीं गाथा में तो ऐसा कहा। राग का नाशकर्ता नाममात्र है। है? समयसार। परन्तु यहाँ समझाया है। आत्मा अपने आनन्दस्वरूप का ध्यान करके जो आनन्ददशा प्रगट की, उसके द्वारा परमानन्ददशा परमात्म (दशा)

प्रगट की। उस दशा में अशुद्धता जो पुण्य-पाप के भाव थे, उनका नाश किया, वह अशुद्ध निश्चय से कहा जाता है। जड़कर्म का नाश किया, वह असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय से कहा जाता है। असद्भूत अर्थात् उसकी पर्याय में नहीं। अनुपचार अर्थात् कर्म निकट—नजदीक एकक्षेत्रावगाह है, इसलिए अनुपचार कहा। व्यवहार, वह पर है, इसलिए व्यवहार कहा। असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय से जड़कर्म का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! जिसे इस नय का ज्ञान न हो, उसे कठिन पड़े, यह सब।

और शुद्ध निश्चयनय से देखें तो बन्ध और मोक्ष है ही नहीं। वह तो पर्याय में बन्ध और पर्याय में मुक्ति है। समझ में आया? अशुद्ध निश्चयनय से संसार के विकार का नाश और एकदेश शुद्धनय से सिद्धपर्याय की उत्पत्ति। और कर्म का नाश, यह तो असद्भूत अनुपचारनय से व्यवहार से कहा जाता है। वस्तु देखें तो एक समय में ज्ञायकभावरूप वस्तु जो है, उस दृष्टि से देखें तो उसमें बन्ध और मोक्ष है नहीं। पर्याय में बन्ध और पर्याय में मुक्ति है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। यहाँ तक आया है।

इस प्रकार कर्मरूप मलों को भस्मकर जो भगवान हुए,... सिद्ध भगवान हुए। इस विधि से हुए, ऐसा भी विधि का ज्ञान करके नमस्कार करते हैं। समझ में आया? आहाहा! **वे कैसे हैं?** कैसे हैं सिद्ध भगवान वर्तमान? **वे भगवान सिद्ध परमेष्ठी नित्य निरंजन ज्ञानमयी हैं।** ध्यानाग्नि से अशुद्धता का नाश करके, कर्म का नाश शुद्ध से होकर परमात्मपद को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! वे भगवान सिद्ध परमेष्ठी नित्य हैं, निरंजन हैं, ज्ञानमय हैं। अब तीन की व्याख्या अपने पहले। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ पर नित्य जो विशेषण किया है, वह एकान्तवादी बौद्ध जो कि आत्मा को नित्य नहीं मानता,.... बौद्ध मानते नहीं न नित्य, इस अपेक्षा से कहा है। ऐसे सिद्धपर्याय तो पर्यायनय की अपेक्षा से पर्यायनय का विषय है। परन्तु वस्तु सिद्धपना कायम रहेगा अथवा द्रव्यरूप से कायम है, इस अपेक्षा से उसे नित्य कहा जाता है। समझ में आया? बौद्ध **क्षणिक मानता है, उसको समझाने के लिये है।** यह नित्य शब्द लिया है सिद्ध। बौद्ध क्षणिक मानते हैं, उन्हें समझाने के लिये नित्य शब्द लिया है। सिद्ध भगवान नित्य हैं। आहाहा!

द्रव्यार्थिकनयकर आत्मा को नित्य कहा है,... देखो! वस्तु है न, वस्तु—ऐसा कहा है। द्रव्य अर्थात् वस्तु जिसका प्रयोजन है, ऐसा जो ज्ञान, वस्तु त्रिकाल जिसका प्रयोजन है, ऐसा द्रव्यार्थिकनय—ज्ञान। आहाहा! उसे देखें तो **टंकोत्कीर्ण अर्थात् टांकी का सा घड्या सुघट ज्ञायक...** अर्थात् ज्ञायकभाव, चैतन्यस्वभाव ऐसा का ऐसा अनादि है। वस्तुरूप से ज्ञानभाव, आनन्दभाव, चैतन्यस्वभाव, ऐसे स्वभाव एकरूप, द्रव्यस्वभाव में एकरूप है, उस दृष्टि से... आहाहा! **परम द्रव्य है, ऐसा निश्चय कराने के लिये नित्यपने का निरूपण किया है।** ऐसा का ऐसा भगवान अनादि से वस्तुरूप से नित्य ध्रुव एकरूप स्वभाव, जिसमें बन्ध और मोक्ष की पर्याय का भी अभाव है। आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश में नय घटित किये हैं। जैसे द्रव्यसंग्रह में घटित किये हैं न? वैसे यहाँ घटित किये हैं।

टांकी का सा घड्या सुघट ज्ञायक... सुघट—ऐसा... ऐसा ज्ञायकभाव, ज्ञानभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, श्रद्धाभाव, ज्ञानभाव, आनन्दभाव, अस्तित्वभाव, वस्तुत्वभाव यह सब होकर ज्ञायक एकरूप शुद्ध ही है। मानो कि घड़ित हो ऐसा का ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा निश्चय कराने के लिये नित्यपने का निरूपण किया है।** सिद्ध नित्य, निरंजन और ज्ञानमय है, (ऐसे) तीन बोल प्रयोग किये हैं।

ध्यानाग्नि से भस्म किया है, यह तो पहले बात हो गयी। अब वर्तमान जो सिद्ध हैं, वे नित्य हैं, निरंजन हैं, ज्ञानमय है। नित्य बौद्ध के लिये समझाया है।

इसके बाद निरंजनपने का कथन करते हैं। भगवान परमात्मा निरंजन है। उन्हें अंजन—मैल नहीं है। यह नैयायिकमति के लिये है। **जो नैयायिकमती हैं वे ऐसा कहते हैं 'सौ कल्पकाल चले जाने पर'....** सौ-सौ कल्पकाल जाने पर तब **जगत् शून्य हो जाता है।** सब जीव मोक्ष लेते हैं। **सब जीव उस समय मुक्त हो जाते हैं। तब सदाशिव को जगत् के करने की चिन्ता होती है।** देखो! यह मूर्खाई। ऐसा वे लोग कहते हैं कि यह सब जीव समाप्त हो जाते हैं, अब यहाँ रहे कौन? इसलिए मोक्ष के जीवों को फिर कर्म लगाकर वापस संसार में भेजते हैं। आहाहा! **तब सदाशिव को जगत् के करने की**

चिन्ता होती है। इसके बाद जो मुक्त हुए थे,... मुक्त जो सिद्ध परमात्मा हुए थे, **उन सबके कर्मरूप अंजन का संयोग करके...** कर्म का संयोग करा दिया। ठीक! **संसार में पुनः डाल देता है...** वापस संसार में लाये। आहाहा!

मुमुक्षु : कैसे गप्प मारते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है न। लोगों की श्रद्धा। वस्तुस्थिति क्या है ? त्रिकाल ध्रुव है और वर्तमान उत्पाद-व्यय पर्याय है। उत्पाद-व्यय-पर्याय है, तथापि ध्रुव तो है, ऐसी दो सहित तत्त्व है, उसकी खबर नहीं। अकेले या ध्रुव को माने, यह वेदान्तमति आदि। और अकेले क्षणिक को माने, बौद्धस्थानी। दोनों तत्त्व की भूल है पूरी मूल में (भूल है)।

पर्याय से संसार, पर्याय से मोक्षमार्ग और पर्याय से मोक्ष। ये तीनों पर्याय में हैं। यदि पर्याय न माने तो तीन सिद्ध नहीं होते। और ध्रुव न माने तो ध्रुव पर्याय से सिद्ध करने जाये तो स्वयं ध्रुव है। पर्याय से सिद्ध करने जाये तो ध्रुव है। यह ध्रुव सिद्ध न हो तो ध्रुव सिद्ध तो पर्याय भी रही नहीं और द्रव्य भी रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? मस्तिष्क फैलाना पड़े, ऐसा है यह।

उनके सम्बोधन के लिये निरंजनपने का वर्णन किया कि.... लो! **भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप अंजन का संसर्ग सिद्धों के कभी नहीं होता।** जो भावकर्म अशुद्ध निश्चयनय से नाश किये और जड़कर्म असद्भूत अनुपचार से नाश किये, उनका कलंक फिर से नहीं आता। सिंका हुआ चना, वह फिर से उगता नहीं है; उसी प्रकार सिद्ध हुए उन्हें कर्म का कलंक नहीं होता। आहाहा! कलंक का नाश करके तो सिद्ध हुए। अब कर्मकलंक कहाँ से आया ? आहाहा! मिथ्यात्व की भ्रान्ति भी स्वरूप के आश्रय से भान करके नाश की, वह भ्रानित फिर से नहीं होती। भ्रान्ति फिर से होने नहीं देता। वह पूर्ण सिद्ध हो, तब उसे कर्म का कलंक लगे और फिर संसार में आवे, ऐसी मान्यता है। यह लोग उसका माने दयानन्द सरस्वतीवाले।

मुमुक्षु : बड़े में बड़ा ग्रन्थ लिखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष हो परन्तु वापस आवे।

भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप अंजन का संसर्ग सिद्धों के कभी नहीं होता।

इसीलिए सिद्धों को निरंजन ऐसा विशेषण कहा है। नित्य बौद्ध के लिये कहा; निरंजन—अंजनरहित नैयायिक मानते नहीं, उन्हें कहा। पूर्ण सिद्ध हुए, उनकी मुक्ति हुई, वे संसार में नहीं आते। जहाँ पूर्ण दशा प्रगट हो गयी। शक्ति में से व्यक्तता पूर्ण हुई। शक्तिरूप से तो सिद्धपद था। वस्तु में सिद्धपद तो था ही। मुक्तस्वरूप ही है, उसके आश्रय से मुक्त पर्याय प्रगट की, उसे अब बन्ध का कलंक आवे—ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' जब से पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ, तब से अनन्त-अनन्त काल, अनन्त अनन्त समाधिसुख में भगवान सिद्ध परमात्मा विराजते हैं। उन्हें कर्म का कलंक कहना, यह अत्यन्त विरुद्ध बात है।

अब ज्ञानमय। तीसरा शब्द है न! **अब सांख्यमती कहते हैं—जैसे सोने की अवस्था में...** मनुष्य सो जाता है न? सो जाता है। **सोते हुए पुरुष को बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं होता,...** सोते हुए प्राणी को बाह्य पदार्थ का ज्ञान नहीं होता। **वैसे ही मुक्त जीवों को बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं होता है।** है न, जगत में एक मत है। **ऐसे जो सिद्धदशा में ज्ञान का अभाव मानते हैं,...** सिद्ध दशा में ज्ञान नहीं। सोते हुए प्राणी को जैसे बाह्य पदार्थ का ज्ञान नहीं, उसी प्रकार मुक्त हुए को बाह्य का ज्ञान नहीं, ऐसा अज्ञानी—सांख्यमति मानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सोते हुए का दृष्टान्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : सोते हुए का दृष्टान्त कहा न! अज्ञानी की दलील तो होती है, दलील। पंचाध्यायी में कहा कि वे लोग दृष्टान्त देते हैं, परन्तु दृष्टान्त ठिकाने बिना के होते हैं। पंचाध्यायी में कहा है। आहाहा!

उनको प्रतिबोध कराने के लिये तीन जगत्... सिद्ध भगवान (को) तीन जगत—ऊर्ध्व, मध्यलोक, (अधोलोक) **तीन काल...** भूत-वर्तमान-भविष्य। **सब पदार्थों का...** तीन जगत, तीन कालवर्ती, **सब पदार्थों का एक समय में ही जानना है,...** जिसकी ज्ञानदशा शक्तिरूप से तो सर्वज्ञपद था। सर्वज्ञ शक्तिरूप से अर्थात् ज्ञ-स्वभाव वस्तु, ज्ञ स्वभाव; ज्ञ स्वभाव कहो या सर्वज्ञस्वभाव कहो, उसका ध्यान करके जिसने शक्ति में से व्यक्ति—सर्वज्ञदशा प्रगट की है, उस सर्वज्ञपने में तीन काल, तीन लोक में रहे हुए

पदार्थ (ज्ञात हो जाते हैं)। तीन लोक अर्थात् तीन जगत, तीन काल अर्थात् तीन कालवर्ती। उसमें रहे हुए पदार्थ, उनके द्रव्य, गुण और पर्याय एक समय में जाने, ऐसी सिद्ध की दशा होती है।

जिसमें समस्त लोकालोक के जानने की शक्ति है,... पर्याय की बात है, हों! यह। वस्तु है अस्ति तत्त्व, आत्मा, उसमें ज्ञानशक्ति है। ज्ञानशक्ति का सामर्थ्य, सामर्थ्य तीन काल—तीन लोक को जानने का है। उसका सामर्थ्य ही इतना है। उस सामर्थ्य में से पर्याय प्रगट की। वास्तव में तो जो सामर्थ्य है, वह पर्याय में अनन्तवें भाग की ज्ञानदशा आयी है। आहाहा! नियमसार में कहा है न कि तीन काल—तीन लोक को ज्ञान, दर्शन जानता है। त्रिकाल-त्रिकाल। त्रिकाली वस्तु को त्रिकाली ज्ञान-दर्शन जाने-देखे, ऐसी उसकी शक्ति है। त्रिकाल, हों! आहाहा!

जिसके ज्ञान और दर्शन स्वभाव में, स्वभाव में तीन काल—तीन लोक के ज्ञान और दर्शन को जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसा ही उसका स्वभाव है। स्वभाव को मर्यादा क्या हो? ऐसी अपरिमित जो शक्ति थी, उसे ध्यानाग्नि द्वारा प्रगट की। अब वह शक्ति जैसे यहाँ ध्रुव रही, ध्रुव थी। पर्याय प्रगट हुई, वह भी ध्रुव रहती है अर्थात् कायम ऐसी की ऐसी रहती है। समझ में आया? पंचास्तिकाय में उसे कूटस्थ कहा है। केवलज्ञान कूटस्थ। कूटस्थ अर्थात् ऐसा का ऐसा रहता है। है तो पर्याय। आहाहा! 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में।' जिसका फल ऐसा है, उसका उपाय भी अलौकिक होगा न? बात समझ में आती है? आहाहा! जो स्वभाव की पूर्णता प्राप्त होती है, उसका कारण भी स्वभाव की दशा ही होती है। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली स्वभाव वस्तु है, उसके स्वभाव के आश्रय से पलटती स्वभावदशा, उस पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति का यह उपाय है। न्याय समझ में आता है? आहाहा!

पुण्य-पाप (अधिकार) में नहीं कहा? कि बन्धभाव मोक्ष का कारण कैसे होगा? मोक्ष स्वभाव है तो मोक्ष का कारण होता है। यह समयसार में पुण्य-पाप (अधिकार) में कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा मोक्षस्वभाव ही उसका है। मोक्षस्वभाव, वह मोक्ष के कारणरूप पर्याय होती है। मोक्ष का स्वभाव है, उसकी पर्याय मोक्ष के स्वभाव

में कारण, पूर्ण प्राप्ति का वह कारण होता है। बन्धभाव (कारण नहीं होता)। आहाहा! पुण्य-पाप (अधिका) में है। गजब काम किया है। समयसार में तो एक-एक कड़ी में और एक-एक पद में बहुत ही गम्भीर भाव।

जैसे पीपर का दाना है। लींडी पीपर—छोटी पीपर। कद में छोटी लगे परन्तु अन्दर में इसका स्वभाव तो चौंसठ पहरा चरपरा है। चौंसठ पहरी अर्थात् पूर्ण। उसे क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं। कि बड़ा क्षेत्र हो तो बड़ी शक्ति हो, ऐसा नहीं है। उसके स्वभाव का सामर्थ्य, क्षेत्र छोटा तो भी चौंसठ पहरा चरपरा रस जिसका स्वभाव है। उसका स्वभाव है। चौंसठ पहरी पर्याय उसमें से आती है। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा सर्वज्ञ—सर्वदर्शी पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य, ऐसा उसका स्वभाव ही है। अनन्त चतुष्टय, अनन्त चतुष्टय, यह, हों! वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसे अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप से त्रिकाल है। उसमें ध्यानाग्नि से अर्थात् सुख समाधि के आनन्द के स्वाद की दशा द्वारा उस शक्ति की व्यक्तता होती है। आहाहा! यह बनिया अकेला व्यापार करे उसी और उसी में मग्न। लम्बी बुद्धि न हो, वहाँ। ऐई! बाबूभाई! यह सोना इस भाव, अमुक इस भाव में, वह की वह बात पूरे दिन। ऐसे को यह सूक्ष्म पड़े। आहाहा!

कहते हैं, जिसने तीन काल—तीन लोकवर्ती पदार्थ को जाना, ऐसी जिसकी जानने की शक्ति प्रगट हो गयी है। स्वभाव में शक्ति तो थी, वह अब प्रगट हुई है। **ऐसे ज्ञायकतारूप केवलज्ञान के स्थापन करने के लिये...** ऐसा ज्ञायकपना, केवलज्ञानपना **स्थापन करने के लिये सिद्धों का ज्ञानमय विशेषण किया।** आहाहा! उसमें नहीं आया? आ गया न उसमें? मोक्ष का। ३९ गाथा का (कलश ३३ समयसार में है) धीर है, उदात्त अनाकुल उसका विशेषण है, उसका आभूषण है। आहाहा! आत्मा का आनन्द प्रगट हुआ है, वह दशा धीर है। धीर है, अब शाश्वत् हो गयी है। उदार है। नयी-नयी पर्याय प्रगट हो, तथापि उसका अन्त आता नहीं। ऐसी उदार दशा है। आहाहा! वह अनाकुल है, आनन्दमय है। यह अनुभव के विशेषण हैं। मोक्षमार्ग के विशेषण है। आहाहा! यह तो अन्तर की क्रीड़ा की बातें हैं।

मुमुक्षु : प्रयोजनभूत....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रयोजनभूत है, भाई!

वे भगवान नित्य हैं, निरंजन हैं, और ज्ञानमय हैं, ऐसे सिद्ध परमात्माओं को नमस्कार करके... आहाहा! ऐसे सिद्ध भगवान इस ध्यानाग्नि द्वारा हुए, ऐसा जिसे ज्ञान है, ऐसे ज्ञान में, सिद्ध भगवान कैसे होते हैं और कैसे हुए,—ऐसा जानकर उन्हें नमस्कार करता है। ऐसा का ऐसा णमो सिद्धाणं (नहीं करता), ऐसा कहते हैं। आहाहा! सिद्ध कैसे हुए? और हुए तब कैसे होते हैं? और हुए कैसे? ऐसा जिसे ज्ञान है, वह ज्ञान में जानकर सिद्ध को नमस्कार करता है।

मुमुक्षु : भाव नमस्कार।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। दोनों नमस्कार किये हैं।

अब **ग्रन्थ का व्याख्यान करता हूँ। यह नमस्कार शब्दरूप वचन...** नमस्कार के दो प्रकार। **नमस्कार शब्दरूप वचन द्रव्यनमस्कार है और केवलज्ञानादि अनन्त गुणस्मरणरूप...** अनन्त गुण की धारणा से अन्दर स्मरण करे। केवलज्ञान, केवलदर्शन अनन्त है, ऐसी जो श्रद्धा वर्त कर उसका भान, उसका स्मरण करते हैं। यह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, ऐसा स्मरण है, वह भावनमस्कार है। आहाहा! है? आहाहा!

यह द्रव्य-भावरूप नमस्कार व्यवहारनयकर साधकदशा में कहा है,... क्या कहा है? कि वचन से नमस्कार और भाव से नमस्कार यह व्यवहार साधकदशा की अपेक्षा से बात की है। आहाहा! **साधकदशा में कहा है, शुद्धनिश्चयनयकर वंद्य-वंदकभाव नहीं है।** पूर्णानन्द के नाथ में वंद्य-वंदक है नहीं। श्रीमद् में आता है न? 'गुरु रहे छद्मस्थ पण विनय करे भगवान।' वंद्य-वंदकभाव होता ही नहीं। वह तो पूर्ण हो गया। साधकदशा में विकल्प से नमस्कार और निर्विकल्प से नमस्कार, ऐसा साधक में होता है। पूर्णदशा में फिर वंद्य-वंदक है नहीं। आहाहा! वे केवली भगवान किसका विनय करे? यह तो तब ऐसा अर्थ किया था। (संवत्) १९९५ में। केवली हुए, उन्होंने पूर्व में गुरु का विनय किया था, ऐसा उनके ज्ञान में आया। १९९५ में ऐसा अर्थ किया। 'आत्मसिद्धि' है न? आत्मसिद्धि के प्रवचन पाँच-छह हजार (पुस्तकें प्रकाशित हुई

हैं)। परन्तु ऐसा अर्थ तब किया था। ऐसा नहीं, केवलज्ञानी परमात्मा छद्मस्थ गुरु का विनय करे, यह बात बिल्कुल झूठी है। वंद्य-वंदक भाव छठवें (गुणस्थान) तक होता है। बाद में नहीं होता। तब कहा, इसका अर्थ ऐसा चाहिए। उनके कहने का आशय यह नहीं है। तब कहा था। सर्वज्ञ हैं, उनके ज्ञान में पूर्व में गुरु का विनय किया था, इसका ज्ञान हुआ, उसका नाम विनय कहा। दूसरा कुछ है नहीं। आहाहा! ऐई! यह लोगों को बहुत लगता है। श्रीमद् ने कहा, उनका एक-एक अक्षर... भाई! सुन न अब। श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य को वन्दन करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य को उन्होंने वन्दन किया है, इसलिए उनकी सब बात स्वीकार है, ऐसा आ जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बात स्वीकार। बाद में तो रखी है सब। पहले जरा अन्तर था। बाद में अन्त में बीस शास्त्र, सत्सूत्र के नाम दिये, उसमें उन्नीस दिगम्बर शास्त्र के नाम दिये। उसमें श्वेताम्बर का एक भी दिया नहीं। एक ग्रन्थ का नाम दिया है। हरिभद्रसूरि का ग्रन्थ है न। उसे बहुत, वह भगवानदास है न? बहुत स्पष्टीकरण करके चालीस रुपये का ग्रन्थ बनाया है। अनुकूल लगे न, वह ग्रन्थ बनाया, १९ का कुछ नहीं। बीस में से (वह) बड़ी पुस्तक बनायी है। श्वेताम्बर का है न। ग्रन्थ। चालीस रुपये की कीमत का। भगवानदास है न? अरे! क्या हो? भाई!

दिगम्बर है, वह कोई पक्ष नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वस्तु की स्थिति की मर्यादा ऐसी है। मुनि हो, तब नग्नदशा हो जाती है। अन्दर में तीन कषाय का अभाव होता है। विकल्प हो तो अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प होता है। खड़े-खड़े आहार हो। नग्नदशा हो। अजीव की दशा ऐसी हो जाती है, करते नहीं। यह जैनदर्शन है। इसके अतिरिक्त यह भाषा आती है न? 'नग्गो मोक्खा भणियो।' नग्न को मोक्ष है। 'शेषा उमग्गा' दूसरे सब उन्मार्ग हैं। वहाँ तो स्पष्ट कहा है। स्थानकवासी और श्वेताम्बर, वे उन्मार्गी हैं, जैनमार्गी हैं ही नहीं। ऐई...! ऐई! मगनभाई! सुना है या नहीं वहाँ? धन्धे के कारण वांचन का समय कहाँ है? आत्मसिद्धि के प्रवचन हुए हैं। है या नहीं घर में? होंगे तो सही। रखे होंगे।

यहाँ कहते हैं, **वंद्य-वंदकभाव...** द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से देखे तो है नहीं। केवलज्ञान होता है तो वंद्य-वंदकभाव है नहीं। आहाहा! जब तक साधकदशा है, तब उसे वाणी का विकल्प आता है। अन्दर स्मरण का। याद करे तो उस जाति का भाव (आता है)। पूर्ण दशा हो गयी, पश्चात् उसे द्रव्यनमस्कार नहीं और भाव (नमस्कार भी नहीं), दोनों नहीं। आहा! द्रव्यसंग्रह में भी आता है। द्रव्यसंग्रह है न? उसमें आता है। द्रव्यसंग्रह श्रीमद् ने बाद में कहा था। निकाला था उसमें से। ईडर में लाईब्रेरी में से। अपनी मौजूदगी में। उसमें भी ऐसा है। छठवें गुणस्थान तक वंद्य-वंदकभाव है। जब तक विकल्प है। अधूरी दशा है न? .... वस्तु की स्थिति ऐसी है। परन्तु श्वेताम्बर ने सब बदल दिया। केवली विनय करे, केवली को भी एक समय में ज्ञान और दूसरे समय में दर्शन। यह वह कहीं 'हें' पूर्ण ज्ञान और पूर्ण दर्शन जहाँ है... आहाहा! उसे खण्ड कैसा? और उसे क्रम कैसा? ऐसा जहाँ स्वरूप की स्थिति ऐसी है वहाँ। बहुत फेरफार हो गया।

यहाँ कहते हैं, **शुद्धनिश्चयनयकर वंद्य-वंदकभाव नहीं है। ऐसे पदखण्डनारूप शब्दार्थ कहा...** क्या कहा? एक-एक शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थ किया। यह पद खण्डन किया। **पदखण्डनारूप शब्दार्थ कहा और नयविभागरूप कथनकर नयार्थ भी कहा,...** नय का कहा। अशुद्ध निश्चय से ऐसा होता है, असद्भूत से ऐसा होता है, शुद्ध निश्चय से उसे होता नहीं कुछ पर्याय में। **तथा बौद्ध, नैयायिक, सांख्यादि मत के कथन करने से मतार्थ कहा,...** शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, (आगमार्थ, भावार्थ)। पाँच बोल है न? यह पाँचों ही कहे, ऐसा कहते हैं। अरे! ऐसा सब ध्यान कहाँ इसे?

इस प्रकार अनन्त गुणात्मक सिद्धपरमेष्ठी संसार से मुक्त हुए हैं,... अनन्त गुणस्वरूप भगवान संसार से मुक्त हुए। यह आगम कहा। यह सिद्धान्त का अर्थ किया। शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ। अब रहा भावार्थ। आहाहा! कहाँ से पुस्तक ... ... पास में आया? परमात्मप्रकाश है? आया होगा।

और निरंजन ज्ञानमयी परमात्मद्रव्य आदरनेयोग्य हैं,... यह भावार्थ। निरंजन ज्ञानमयी परमात्मद्रव्य। जिसे नय ही नहीं, जो ज्ञानमय अकेली वस्तु है, ऐसा परमात्मद्रव्य।

ज्ञानप्रधान की बात की है न! ज्ञानप्रधान। बाकी अनन्त गुण हैं। ज्ञानमयी परमात्मद्रव्य वस्तु, वह आदरणीय है। वही उपादेय है। पर्याय नहीं, निमित्त नहीं; मात्र त्रिकाली आत्मा उपादेय है। आहाहा! उपादेय माननेवाली पर्याय है परन्तु उपादेय द्रव्य है। समझ में आया? आहाहा! नित्य का निर्णय करनेवाला अनित्य है। परन्तु निर्णय करने का विषय है, वह नित्य है। आहाहा! वह उपादेय है। **यह भावार्थ है...** कहा न? पाँचों बोल हो गये। शब्दनय। पहला शब्द-शब्द। भावार्थ एक-एक शब्द का पद खण्डन किया। नय—सांख्यमति आदि की व्याख्या की। मत-अन्यमति की बात की। नयार्थ—निश्चय और व्यवहार। मत—अन्यमति, आगम—सिद्धान्त। भावार्थ।

इसी तरह शब्द नय, मत, आगम, भावार्थ व्याख्यान के अवसर पर सब जगह जान लेना। यह पाँच बोल प्रत्येक व्याख्या में ले लेना, कहते हैं। आहाहा! पहली ही गाथा में डाला। शब्द है, पद है, उसका अर्थ , नयार्थ—किस नय का वाक्य है, वह नयार्थ और मतार्थ—अन्यमति के कथन का निषेध के लिये मतार्थ, आगम ऐसा कहता है कि पूर्ण सिद्ध की प्राप्ति आदि वह आगम। भावार्थ—.... द्रव्य आदरणीय है, यह भावार्थ। आहाहा! कितना याद रहे इसमें? एक घण्टे में कितना (आवे)! अभी तो घण्टा भी नहीं हुआ। यह तो जिसे आत्मा का हित करना है, उसे यह सब प्रकार जानना चाहिए। समझ में आया? एकान्त न हो जाये, वस्तु के स्वरूप से विरुद्धता न हो, अविरुद्धता कैसे रहे, इसके लिये यह सब जानना चाहिए। समझ में आया? यह एक गाथा हुई।

'जे जाया' जो हुए **'झाणग्गियएँ'** ध्यानरूपी अग्नि से हुए। **'कम्म-कलंक डहेवि।'** इस गाथा का अर्थ करते हैं। **'जे जाया'** हुए **'झाणग्गियएँ'** ध्यान अग्नि से हुए। **'कम्म-कलंक डहेवि। णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि'** ऐसे परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। प्रत्येक शब्द का (अर्थ किया)... आहाहा! समझ में आया? यह तो अब शीतल पहर की बात है न! यहाँ शान्ति है। बाहर निकले थे तो मुम्बई में दस-दस हजार लोग, पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग। परन्तु सब सुनते थे। अब लोग सुनते हैं। ३२० गाथा सूक्ष्म। ग्यारह व्याख्यान (हुए)। सब सुनते थे। सुनो, भाई! मार्ग यह है। बहुत लोग। अब यहाँ तो शीतल पहर हुआ तो विस्तार से स्पष्टीकरण अधिक होता है। गिरधरभाई! आहाहा!

गाथा - २

अथ संसारसमुद्रोत्तरणोपायभूतं वीतरागनिर्विकल्पसमाधिपोतं समारुह्य ये शिवमय-निरुपमज्ञानमया भविष्यन्त्यग्रे तानहं नमस्करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा ग्रन्थकारः सूत्रमाह, इत्यनेन क्रमेण पातनिकास्वरूपं सर्वत्र ज्ञातव्यम् –

२) ते वंदउँ सिरि-सिद्ध-गण होसहिँ जे वि अणंत।
सिवमय-णिरुवम-णाणमय परम-समाहि भजंत।।२।।

तान् वन्दे श्रीसिद्धगणान् भविष्यन्ति येऽपि अनन्ताः।
शिवमयनिरूपमज्ञानमयाः परमसमाधिं भजन्तः।।२।।

ते वंदउं तान् वन्दे। तान् कान्। सिरिसिद्धगण श्रीसिद्धगणान्। ये किं करिष्यन्ति। होसहिं जे वि अणंत भविष्यन्त्यग्रे येऽप्यनन्ताः। कथंभूता भविष्यन्ति। सिवमयणिरुवमणाणमय शिवमयनिरुपमज्ञानमयाः, किं भजन्तः सन्तः इत्थंभूता भविष्यन्ति। परमसमाहि भजंत रागादि-विकल्परहितपरमसमाधिं भजन्तः सेवमानाः इतो विशेषः। तथाहि-तान् सिद्धगणान् कर्मतापन्नान् अहं वन्दे। कथंभूतान्। केवलज्ञानादिमोक्षलक्ष्मीसहितान् सम्यक्त्वाद्यष्ट-गुणविभूतिसहितान् अनन्तान्। किं करिष्यन्ति। ये वीतरागसर्वज्ञप्रणीतमार्गेण दुर्लभबोधिं लब्ध्वा भविष्यन्त्यग्रे श्रेणिकादयः। किंविशिष्टा भविष्यन्ति। शिवमयनिरुपमज्ञानमयाः। अत्र शिवशब्देन स्वशुद्धात्म-भावनोत्पन्नवीतरागपरमानन्दसुखं ग्राह्यं, निरुपमशब्देन समस्तोपमानरहितं ग्राह्यं, ज्ञानशब्देन केवलज्ञानं ग्राह्यम्। किं कुर्वाणाः सन्त इत्थंभूताः भविष्यन्ति। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्म-तत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपामूल्यरत्नत्रयभारपूर्णं मिथ्यात्वविषयकषायादिरूपसमस्त-विभावजलप्रवेशरहितं शुद्धात्मभावनोत्थसहजानन्दैकरूपसुखामृतविपरीतनरकादिदुःखरूपेण क्षारजलेन पूर्णस्य संसारसमुद्रस्य तरणोपायभूतं समाधिपोतं भजन्तः सेवमानास्तदाधारेण गच्छन्त इत्यर्थः। अत्र शिवमयनिरुपमज्ञानमयशुद्धात्मस्वरूपमुपादेयमिति भावार्थः।।२।।

अब संसार-समुद्र के तरने का उपाय जो वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप जहाज है, उस पर चढ़ के उस पर आगामी काल में कल्याणमय अनुपम ज्ञानमई होंगे, उनको मैं नमस्कार करता हूँ-

शिवमयी निरुपम ज्ञानमय उत्कट समाधि सेवते।
जो सिद्धगण होंगे अनन्तों नमन हो उनके लिये।।२।।

अन्वयार्थ :– [‘अहं’] मैं [तान्] उन [सिद्धगणान्] सिद्ध समूहों को [वन्दे] नमस्कार करता हूँ, [येऽपि] जो [अनन्ताः] आगामी काल में अनंत [भविष्यन्ति] होंगे। कैसे होंगे? [शिवमयनिरूपमज्ञानमया] परमकल्याणमय, अनुपम और ज्ञानमय होंगे। क्या करते हुए? [परमसमाधि] रागादि विकल्प रहित परमसमाधि उसको [भजन्तः] सेवते हुए।

भावार्थ :– जो सिद्ध होंगे, उनको मैं वन्दता हूँ। कैसे होंगे, आगामी काल में सिद्ध, केवलज्ञानादि मोक्षलक्ष्मी सहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों सहित अनंत होंगे। क्या करके सिद्ध होंगे? वीतराग सर्वज्ञदेवकर प्ररूपित मार्गकर दुर्लभ ज्ञान को पाके राजा श्रेणिक आदिक के जीव सिद्ध होंगे। पुनः कैसे होंगे? शिव अर्थात् निज शुद्धात्मा की भावना, उसकर उपजा जो वीतराग परमानंद सुख, उस स्वरूप होंगे, समस्त उपमा रहित अनुपम होंगे और केवलज्ञानमई होंगे। क्या करते हुए ऐसे होंगे? निर्मल ज्ञान–दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा है, उसके यथार्थ श्रद्धान–ज्ञान–आचरणरूप अमोलिक रत्नत्रयकर पूर्ण और मिथ्यात्व विषय कषायादिरूप समस्त विभावरूप जल के प्रवेश से रहित शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो सहजानंदरूप सुखामृत, उससे विपरीत जो नारकादि दुःख वे ही हुए क्षारजल, उनकर पूर्ण इस संसाररूपी समुद्र के तरने का उपाय जो परमसमाधिरूप जहाज उसको सेवते हुए, उसके आधार से चलते हुए, अनंत सिद्ध होंगे। इस व्याख्यान का यह भावार्थ हुआ, कि जो शिवमय अनुपम ज्ञानमय शुद्धात्मस्वरूप है वही उपादेय है।।२।।

गाथा – २ पर प्रवचन

अब संसार–समुद्र के तरने का उपाय जो वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप जहाज है,... आहाहा! संसार सिन्धु। बड़ा समुद्र। अज्ञान में उत्पत्ति होने से उसे चौरासी लाख में उत्पत्ति हो, ऐसा संसार महा समुद्र। संसार सिन्धु। समुद्र कहा न? देखो न! संसार समुद्र। संसाररूपी महा सिन्धु। आहाहा! **तरने का उपाय...** उससे तिरने का उपाय। **जो वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप जहाज...** आहाहा! वीतराग निर्विकल्प शान्तिरूपी, समाधिरूपी जहाज। आहाहा! जहाज। भवसमुद्र को तिरने के लिये.... आहाहा!

वहाँ रमणीकभाई के मकान में उतरे थे न? वहाँ नजदीक में ही समुद्र है। परन्तु

समुद्र का पानी तो कहीं.... अपार... अपार। बगुले सफेद बगुले, मछलियाँ खाने (के लिये) सैंकड़ों वहाँ घूमते हैं। नजदीक ही समुद्र के किनारे रमणीकभाई का मकान है। आमोदवाले नहीं? पाँच करोड़ रुपये हैं। मकान ही सत्तर लाख का है। उस मकान में उतरे थे, वह सत्तर लाख का है। एक का एक मकान। साथ में यह समुद्र। कहा, यह भवसिन्धु। आहाहा! इसके एक-एक बिन्दु में असंख्य पानी (के) जीव।

मुमुक्षु : एक-एक बिन्दु में असंख्य जीव।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक बिन्दु में असंख्य जीव। ऐसे बड़ा दल, ऐसा लम्बा, ऐसा गहरा बहुत। आहाहा! उसका कब पार आवे? कब मनुष्य हो, उसमें कब आर्यकुल मिले।

मुमुक्षु : ऐयरोप्लेन में बैठकर जाये तो एक दिन में उतर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी... यह तो समुद्र (पार उतर जाये), परन्तु यह संसार समुद्र? आहाहा!

मुमुक्षु : वह अन्तर्मुहूर्त में तिर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! कहते हैं कि वह (पार) उतरने का उपाय? वीतराग निर्विकल्प समाधि जो कि निश्चयमोक्षमार्ग। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह वीतराग निर्विकल्प शान्ति है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय विकल्प है, वह मोक्ष का उपाय नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! संसारसमुद्र को तिरने का उपाय वीतराग अभेद समाधि शान्त... शान्त। अखण्डानन्द प्रभु आनन्द और शान्ति के एकरूप स्वभाव से भरपूर प्रभु, उसकी सन्मुखता की समाधि। स्वयं समाधिस्वरूप है। त्रिकाली समाधिस्वरूप ही है। अर्थात्? वीतरागी अभेद समाधिस्वरूप ही उसका है। उसमें से परिणति वीतरागी दशा प्रगट करना, वह संसार समुद्र को तिरने का उपाय है। आहाहा!

वीतराग अभेद समाधिरूप जहाज, **उस पर चढ़के...** आहाहा! पूर्ण परमात्मस्वरूप 'समयसार'.... वह पर्याय में आया। यह १४४ (गाथा) में आया। कर्ता-कर्म (अधिकार) की १४४ गाथा है न? एक समय की पर्याय में अखण्ड प्रतिभासमय, प्रभु अखण्ड प्रतिभासमय एक समय में उसे जानता है। ऐसी जो निर्विकल्प ज्ञानदशा, जिसमें भगवान

अखण्ड प्रतिभास, पूर्ण स्वरूप का ज्ञान होता है। पूर्ण स्वरूप उसकी पर्याय में आता नहीं। परन्तु उसका प्रतिभास, एक समय में अखण्ड प्रतिभास होता है। ऐसा जो परमात्मरूप, समयसाररूप... आहाहा! समझ में आया? यह मोक्ष का मार्ग। वह यह वीतरागस्वरूप कहा।

वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप जहाज, **उस पर चढ़के उस पर आगामी काल में कल्याणमय अनुपम ज्ञानमयी होंगे,...** आहाहा! भविष्य में मोक्ष होंगे सिद्ध, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। कल-परसों कहा था न? नहीं? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। धवल में यह पद है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। कितनी विशालता! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। पाँच पद ऐसे हैं। फिर संक्षिप्त करके किया, णमो लोए सव्व साहूणं कर दिया। यह सबको लागू पड़ता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व (सिद्धाणं).... त्रिकालवर्ती साथ में डाल देना। आहाहा! यह यहाँ (नमस्कार) करते हैं।

भविष्य में सिद्ध होंगे, उन्हें मैं अभी नमस्कार करता हूँ। है? **आगामी काल में कल्याणमय...** आहाहा! **अनुपम ज्ञानमयी होंगे,...** सिद्ध होंगे। आहाहा! **उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** आहाहा! दूसरी गाथा।

२) ते वंदउँ सिरि-सिद्ध-गण होसहिं जे वि अणंत।
सिवमय-णिरुवम-णाणमय परम-समाहि भजंत।।२।।

आहाहा! इसका शब्दार्थ। **मैं...** योगीन्द्रदेव कहते हैं कि **मैं उन सिद्ध समूहों को...** देखा! एक-दो नहीं, हों! समूह। अनन्त सिद्ध समूह होगा। आहाहा! समयसार की पहली गाथा में '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' कहा है न? वे यह सिद्धगण। ऐसा है न! सिद्धरूपी गण-समूह। **वन्दे नमस्कार करता हूँ, जो आगामी काल में अनन्त होंगे।** भविष्य में अनन्त सिद्ध होंगे। आहाहा! अभी अनन्त काल बाद होंगे। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। वह जीव अभी नरक में पड़ा हो। समझ में आया? परन्तु भविष्य में होगा। आहाहा!

आगामी काल में अनन्त होंगे। कैसे होंगे? 'शिवमयनिरूपमज्ञानमया' शिव अर्थात् परमकल्याणमय। परमकल्याणमय सिद्धपद होगा। आहाहा! णमोत्थुणं में आता है न? 'सिवमलयमरु।' णमोत्थुरणं में आता है। णमोत्थुणं। णमोत्थुणं, अरिहंताणं... सिवमलयमरुयमणंतमक् खयमव्वाबाहम... आहाहा! श्वेताम्बर में णमोत्थुणं आता है। **परमकल्याणमय, अनुपम...** कैसे सिद्ध होंगे? श्रेणिक आदि। टीका में लेंगे। अनुपम—जिसे कोई उपमा नहीं। आहाहा! ऐसे सिद्ध होंगे। **ज्ञानमय होंगे....** उसमें डाला था न? नित्य निरंजन ज्ञानमय। तीन शब्द पहले थे। अब यह डाला। '**शिवमयनिरूपमज्ञानमया**' अकेला ज्ञानमय... आहाहा!

क्या करते हुए? वापस यह भी डाला। भविष्य में होंगे। भूतकाल में हुए, वे क्या करके हुए? कि ध्यानाग्नि से। भविष्य में होंगे। क्या करके होंगे? आहाहा! कि परमसमाधि। **रागादि विकल्परहित परमसमाधि उसको सेवते हुए। 'भजन्तः'** आहाहा! वीतरागीदशा को भजता हुआ, सेवन करता हुआ। त्रिकाली वीतरागस्वरूप जिनस्वरूप प्रभु के आश्रय से प्रगट हुई वीतरागीदशा, उसे सेवन करता हुआ। वीतरागीदशा को सेवन करते हुए सिद्ध होंगे। आहाहा!

'शिवमयनिरूपमज्ञानमया परमसमाधि भजन्तः' भजन करे वह। वीतरागी पर्याय का भजन करते हुए सिद्ध होंगे। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय को सेवन करते हुए सिद्ध होंगे, वह नहीं। आहाहा! वे कहते हैं न कि मोक्षमार्ग एक ही है। वे कहें, नहीं, दो हैं। रतनचन्द कहते हैं। रतनचन्द मुखत्यार है न? उनके गाँव के। ऐसा कि, दो मोक्षमार्ग न माने, वे भ्रम में हैं। टोडरमलजी कहते हैं, दो मोक्षमार्ग माने, वे भ्रम में हैं। आहाहा! यह एक ही मार्ग है। आहाहा! **क्या करते हुए?** समाधि करते हुए। वीतरागीदशा करते हुए। निश्चय मोक्षमार्ग है। समझ में आया? एक ही है। '**एको मोक्षपथा**' आता है न? कलश आता है। आहाहा! यह शब्दार्थ किया। अब विशेष कहेंगे।

भावार्थ :- जो सिद्ध होंगे... जो सिद्ध हुए, उनकी बात पहली गाथा में की। अब सिद्ध होंगे, यह दूसरी (गाथा) में बात करते हैं। आहाहा! तीन काल को पेट में ले लिया है न। आहाहा! परमात्मप्रकाश को करने से पहले में ऐसे सिद्धों को नमस्कार

करता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परमात्मप्रकाश प्रगट हो गया जिन्हें और जिन्हें परमात्मप्रकाश प्रगट होगा, उसे वन्दन करके परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करूँगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वीतरागमार्ग, भाई! सूक्ष्म बहुत है। साधारण बुद्धिवाले ऐसा मानते हैं कि दया पालो, व्रत करो, अपवास करो। यह ओळी करे। करते हैं न ओळी? रूखा खाना। धूल भी नहीं। सुन! यह तो सब राग की क्रिया, राग मन्द हो तो। आहाहा!

मुमुक्षु : वीतराग निर्विकल्प समाधि यह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। रागरहित निर्विकल्प शान्ति, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, यह तीन निर्विकल्प शान्ति है। समरसी वीतरागभाव है। जिसमें आनन्द का स्वाद है, ऐसी निर्विकल्प समाधि। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अभी 'जैनसन्देश' में आया है, शुभभाव यह पहले करना चाहिए। शुभभाव में आवे तो बहुत है। धूल में तेरे... आहाहा!

मुमुक्षु : अपेक्षा लगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी अपेक्षा? शुभभाव अधर्म है।

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग भी निश्चय से शुभ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभ तो निश्चय, वह शुभ है। पुण्य-पाप के अधिकार में आया है न! पुण्य-पाप। जो निश्चयमोक्षमार्ग है, उसे शुभ कहा। वह शुभ नहीं। आहाहा! पुण्य-पाप अधिकार में पहली गाथाओं में है। आहाहा!

आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण शक्ति सामर्थ्य। शक्ति अर्थात् सामर्थ्य। जिसका ज्ञान, दर्शन, आनन्द, ऐसी जिसकी शक्ति है। शक्तिवान वस्तु है, उसकी ऐसी शक्ति है। उस शक्तिवान को श्रद्धा में लेकर, उसे ज्ञान का ज्ञेय बनाकर, ज्ञान में लेकर स्थिरता होना, वह मोक्ष का उपाय है। आहाहा! उसकी श्रद्धा में तो पहले निर्णय करे कि यह ही मार्ग है। आहाहा! एकान्त है। और ऐसा कहते हैं। सम्यक् एकान्त है। यह एक ही मार्ग है, दूसरा मार्ग नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरा नहीं, यह अनेकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनेकान्त है। यह है और दूसरा नहीं, यह अनेकान्त हुआ। यह है और यह भी है, यह अनेकान्त नहीं है। यह तो फुदड़ीवाद है। आहाहा!

उनको मैं वन्दता हूँ। कैसे होंगे, आगामी काल में सिद्ध, केवलज्ञानादि मोक्षलक्ष्मी सहित... आहाहा! **केवलज्ञानादि मोक्षलक्ष्मी सहित...** यह धूल की लक्ष्मीसहित नहीं। आहाहा! यह पर्याय की बात है, हों! केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी अनन्त शक्ति की व्यक्तता जो हुई, वह मोक्षलक्ष्मी। अनन्त जितने गुण थे, उन सबकी पर्याय की व्यक्तता हुई। आहाहा! ऐसी ज्ञानादि मोक्षलक्ष्मी सहित **और सम्यक्त्वादि आठ गुणों सहित...** मुख्यरूप से। गुण अर्थात् है तो पर्याय। भाषा तो गुण है। **सम्यक्त्वादि आठ गुणों सहित अनन्त होंगे।** आहाहा! ऐसे अनन्त जीव भविष्य में होंगे। ओहोहो! अपना आत्मा भी भविष्य में सिद्ध होगा, उसे वर्तमान में नमस्कार करते हैं। बराबर है? आहाहा! **क्या करके सिद्ध होंगे?** यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल १२, बुधवार,
दिनांक-०९-०६-१९७६, गाथा-२-३-४, प्रवचन-४

परमात्मप्रकाश, पृष्ठ १०वाँ हैं। भूतकाल के अनन्त सिद्धों को पहले नमस्कार किया। पहली गाथा में। दूसरी गाथा में भविष्य में सिद्ध होंगे, उन्हें नमस्कार करते हैं। कहते हैं, **क्या करके सिद्ध होंगे ?** भविष्य में अनन्त—श्रेणिक राजा आदि सिद्धपद को प्राप्त करेंगे। क्या करके ? **क्या करके... वीतराग सर्वज्ञदेवकर प्ररूपित मार्गकर...** यह सत्। सर्वज्ञ वीतरागदेव, का कहा हुआ **मार्गकर दुर्लभ ज्ञान को पाके...** आहाहा! आत्मा का ज्ञान, आत्मज्ञान, आत्मज्ञान। **दुर्लभ ज्ञान को पाके...** अर्थात् आत्मज्ञान को प्राप्त करके। पर का ज्ञान नहीं, विकार का नहीं, एक समय की पर्याय का नहीं। आहाहा! आत्मज्ञान। ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान। आत्मा जो अखण्ड-अभेद, उसका ज्ञान। द्रव्य का ज्ञान। पर का नहीं, पर्याय का नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

श्रेणिक राजा आदि सर्वज्ञ वीतराग ने कहे हुए मार्ग.... आहाहा! **दुर्लभ ज्ञान को पाके...** आत्मज्ञान दुर्लभ है, जो अनन्त काल में प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे **दुर्लभ ज्ञान को पाके राजा श्रेणिक आदिक जीव...** श्रेणिक आदि जीव भविष्य में सिद्ध होनेवाले हैं न! सबको याद किया है। परमात्मप्रकाश कहूँगा, परन्तु ऐसे परमात्मा को याद करके, नमस्कार करके कहूँगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

पुनः कैसे होंगे ? शिव अर्थात् निज शुद्धात्मा की भावना,... निज भगवान आत्मा शुद्धात्मा त्रिकाली वस्तु ध्रुव, उसकी भावना—उसकी एकाग्रता। शुद्धात्मारूपी भाव की भावना। त्रिकाल शुद्ध स्वभाव भगवान आत्मा, ऐसा जो स्वभावभाव, उसकी भावना। आहाहा! **उसकर उपजा जो वीतराग परमानन्द सुख,...** उससे उत्पन्न वीतराग परमानन्द। संसारी के सुख तो रागवाले अज्ञान में हैं। सुख की कल्पना करके मानता है न! शास्त्र ऐसा कहे, व्यवहार से। है तो दुःख। परन्तु यह मानता है न, हम कुछ सुखी हैं। पैसे से, इज्जत से सुखी हैं। यह तो कल्पना है। वास्तव में दुःख है।

मुमुक्षु : वास्तव में दुःखी है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी है। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद बिना पुण्य-पाप के राग के स्वादिया दु:खी हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : जहाँ तक अतीन्द्रिय का स्वाद न आवे, वहाँ तक दु:खी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी है। वहाँ तक दु:खी है। आहाहा! आनन्द तो प्रभु आत्मा में है। आहा! सुखशक्ति। भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें सुख का सामर्थ्य है। शक्ति तो उसमें है। अतीन्द्रिय आनन्द का भाव शक्ति सुख, उसे प्राप्त किये बिना प्राणी दु:खी है। और निज शुद्धात्मा भगवान आत्मा पूर्ण द्रव्य शुद्धस्वरूप ऐसा जो स्वभावभाव, उसकी भावना—उसकी अन्दर एकाग्रता। उससे उत्पन्न हुआ **वीतराग परमानन्द सुख,...** आहाहा! यह तो एकदम सिद्ध को वन्दन करते हैं न! सिद्ध ऐसे हैं और उन्हें स्वयं को होना है न वापस। आहाहा!

वीतराग परमानन्द सुख, उस स्वरूप होंगे... वीतराग परमानन्द सुखरूप होंगे। सिद्ध होंगे अर्थात् ऐसे होंगे, ऐसा कहते हैं। सिद्ध होंगे अर्थात् क्या? कि **वीतराग परमानन्द सुख, उस स्वरूप होंगे...** आहाहा! वीतरागी परमानन्द सुख की दशारूप होंगे। यह सिद्धपद। आहाहा! **समस्त उपमा रहित अनुपम होंगे,...** आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय परम आनन्द के सुख की प्राप्ति, ऐसे जो श्रेणिक राजा भविष्य में सिद्ध होंगे, उनके सुख की उपमा क्या कहना? कहते हैं। दुनिया के चार गति के प्राणी तो दु:खी हैं, तो उनकी उपमा उन्हें (सिद्ध को) क्या हो? उनकी उपमा उन्हें। है? **समस्त उपमा रहित...** सब उपमारहित प्रभु का आनन्द है। आहाहा! **समस्त उपमा रहित अनुपम होंगे,...** अनुपम होंगे। जिसे उपमा नहीं, ऐसे सिद्ध होंगे। आहाहा!

अभूतपूर्व आया था न? पंचास्तिकाय में। भूतकाल में यह पर्याय उत्पन्न हुई नहीं, ऐसी दशा होगी। आहाहा! सिद्ध। वस्तु तो है। वस्तु तो परम आनन्दमय ही है। वीतराग परम आनन्दमय, परम आनन्दस्वरूप ही है। उसकी भावना से, एकाग्रता से परम आनन्दस्वरूप पर्याय में होंगे कि जिसकी परमानन्ददशा उपमारहित है। आहाहा! समझ में आया?

और केवलज्ञानमयी होंगे। सुख और ज्ञान दो की मुख्यता की। अकेली ज्ञानदशा,

पर्याय में केवलज्ञान अकेली पर्याय पूर्ण। वस्तु तो ज्ञान पूर्ण है। ऐसा पूर्ण ज्ञान का स्वरूप ही शुद्ध आत्मा है। उसकी भावना से, परम आनन्द की भावना से, वह परम केवलज्ञान को प्राप्त होंगे। देखो! श्रेणिक राजा होंगे, उन्हें पहला नमस्कार करते हैं। अभी तो नरक में हैं। परन्तु उन्हें स्मरण करते हैं कि ओहोहो! ऐसी दशा आपको प्राप्त होगी। इस प्रकार मैं भविष्य में सिद्ध प्राप्त होंगे, उन्हें मेरा नमस्कार। भूतकाल में अनन्त सिद्ध हो गये, उन्हें मैंने स्मरण करके भावनमस्कार किया। पहले विकल्प से द्रव्यनमस्कार (किया)। भविष्य में यह होंगे। ओहोहो! यहाँ तो सिद्ध की टोली इकट्ठी हुई, उसकी बातें हैं। आहाहा! सिद्ध का गाँव बसता है वहाँ। सब सिद्ध वहाँ बसते हैं। आहाहा! अनन्त काल में हो गये, भविष्य में राजा श्रेणिक राजा आदि होंगे।

क्या करते हुए ऐसे होंगे ? क्या करके होंगे ? पहली शुद्धात्मभावना। यह साधारण बात की थी, अब स्पष्ट खुलासा—स्पष्टीकरण करते हैं। गजब टीका है! यह भावना ग्रन्थ है न! भावना का ग्रन्थ है। समाधिशतक भाव... आहाहा! **क्या करते हुए ऐसे होंगे ?** श्रेणिक राजा आदि भविष्य में परमात्मा सिद्ध होंगे, वे क्या करके होंगे ? पहली बात तो की थी कि शुद्धात्मा की भावना (करके होंगे)। परन्तु वह भावना क्या चीज ? आहाहा!

निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा है,... आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा ? **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव...** उसका तो ज्ञान—ज्ञाता और दृष्टा। निर्मल ज्ञान और निर्मल दर्शन, ऐसा जिसका निज स्वभाव, ऐसा शुद्धात्मा। आहाहा! यह पर्याय की बात नहीं। **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा है,...** आहाहा! शाश्वत् वस्तु जो ध्रुव अनादि-अनन्त निर्मल ज्ञान-दर्शनमय जो शुद्धात्मा... आहाहा! **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा है,...** ऐसा कहा न ? आहाहा! कोई पूछता था, वह लड़का सुने तो कहे, आत्मा क्या है ? पूरे दिन बात तो यह चलती है। आहाहा! आत्मा अर्थात् निर्मल ज्ञान-दर्शनमय वह आत्मा। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्मल ज्ञान-दर्शन का अर्थ करना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल अर्थात् पवित्र-शुद्ध। आगे कहेंगे। अमोलिकी, ऐसा कहेंगे रत्नत्रय को। जिसकी कीमत / मोल नहीं, ऐसे रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

आहाहा! यहाँ ही होगी। इसमें ही लिखा है। बहुत सरस बात है। आहाहा!

निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव... निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव ऐसा शुद्धात्मा। स्वभाववान शुद्धात्मा, ऐसा स्वभाव। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वभाव ही निर्मल ज्ञान-दर्शन।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव निर्मल है। आहाहा!

उसकी यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अमोलिक रत्नत्रयकर... आहाहा! ऐसा जो भगवान निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव ऐसा शुद्धात्मा, जिसका यथार्थ श्रद्धान। आहाहा! श्रद्धा ने पूरे निर्मल आनन्द के नाथ की प्रतीति ली। आहाहा! प्रतीति में पूर्णानन्द के नाथ को पाचन करने की शक्ति है। अग्नि में जैसे अनाज पकाने की शक्ति है; उसी प्रकार भगवान आत्मा में—सम्यग्दर्शन में पूर्णानन्द को पाचन करने की अर्थात् पूर्णानन्द को स्वीकार करने की, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसके ध्येय में आया, उसे मानने की उसकी शक्ति है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसकी प्रतीति करने की, पाचन करने की शक्ति है। भले एक समय की पर्याय हो। है सम्यग्दर्शन एक समय की पर्याय, परन्तु उसे पाचन में तो पूर्णानन्द का नाथ पाचन करने की उसकी शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी धर्म की बात! इसमें एकेन्द्रिय की, दो इन्द्रिय की दया पालना और...! ऐई! जादवजीभाई! आहाहा! बापू! तुझे तेरी दया है या नहीं? दया का अर्थ—जितना निजस्वभाव निर्मल आनन्द पूर्ण है, उसे वैसा जीवता स्वीकार करना, इसका नाम दया है। इसका नाम अहिंसा है; और ऐसे पूर्णानन्द के नाथ को राग और पुण्य-पापवाला स्वीकार करना और पुण्य-पाप है, ऐसे स्वीकार में अनन्त ज्ञान का अनादर होता है। इसका नाम हिंसा है। आहाहा! निर्मल ज्ञान-दर्शनमय शुद्धात्मा का स्वीकार नहीं और पुण्य और पाप के विकल्प विभाव कृत्रिम उपाधि दुःख, उसका स्वीकार, उसका जीवन, वह मेरा और यह जीवन वह नहीं, यह उसकी हिंसा की। हिंसा का अर्थ (यह कि) है, उसका नकार किया। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें मारकूट तो कुछ होती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मारकूट हो गयी न। चोट पड़ी न! निरोगी शरीर पर जैसे छुरे की चोट पड़ती है, उसी प्रकार पुण्य-पाप मेरे, यह चैतन्य के स्वभाव में चोट पड़ती है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब व्यवहार की बातें हैं। ऐसे योग तो तीर्थंकर के अनन्त बार मिले। समवसरण अनन्त बार मिला। आहाहा! परमात्मप्रकाश में आगे आयेगा— भव-भव में जिनवर के समवसरण में जिनवर की पूजायें कीं। परन्तु वह तो परद्रव्य की पूजा, वह तो विकल्प है। आहाहा! लोगों को बाहर से पर से कुछ हो तो उसे ठीक पड़ता है। पर से क्या होगा? प्रभु! पर का आश्रय करने जाये तो राग ही होगा। चाहे तो तीन लोक के नाथ और उनकी वाणी सुनने का समय होगा, वहाँ शुभराग ही होगा। आहाहा!

समयसार के कर्ता-कर्म अधिकार की ७४ गाथा में तो ऐसा कहा है कि शुभभाव है, वह वर्तमान दुःखरूप है। भगवान आनन्द के स्वभाव से विपरीत भाव है, दुःख है और भविष्य में दुःख का कारण है। आहाहा! यह शुभभाव से पुण्य बँधेगा और पुण्य के कारण कदाचित् वीतराग और वीतराग की वाणी मिलेगी। परन्तु वह परद्रव्य है; इसलिए उनके ऊपर तेरा लक्ष्य जायेगा तो (तुझे) राग ही होगा।

मुमुक्षु : कोई अपेक्षा कही होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही अपेक्षा। (दूसरी) कौन सी ओर? पराश्रित व्यवहार, स्वआश्रित निश्चय। यह वाणी और भगवान मिलना, उसके ऊपर लक्ष्य जाएगा तो राग ही होगा। दुःख होगा।

मुमुक्षु : आये बिना रहता नहीं, आप ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग बात है। आवे तो भी दृष्टि में वह नहीं। दृष्टि के विषय में और दृष्टि में वह आदर में नहीं। आहाहा! पूर्ण न हो, तब होता तो अवश्य है, परन्तु हेयबुद्धि से है। आहाहा! यह तो निर्विकल्पस्वभाव वीतरागमार्ग है, भाई! आहाहा! ऐसी बात पूर्ण है, वह शुद्ध है, यह सुनना भी महामुश्किल है। उसमें ऐसा नहीं कहा?

अध्यात्म बात सुननेवाले ऊँचे हैं, और जिन्हें ऐसी अध्यात्म की बात यथार्थरूप से—रुचिरूप से सुनी। भावी निर्वाण भाजनम्। कहा है न? समयसार में सामने रखा है। पद्मनन्दि पंचविंशति। आहाहा! तीन लोक का नाथ शुद्ध चैतन्यघन, जिसने सुना। सुना उसे कहते हैं कि जिसे अन्दर रुचि हुई। आहाहा! रुचि से सुना।

मुमुक्षु : सुनने का अर्थ रुचि?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला सुना है तो अनन्त बार सुना है। आहाहा! इसकी रुचि में पूर्ण आनन्द जिसे पोषण में आया, पोसाता है; जैसे व्यापारी को माल पोसाता है न? कि ढाई रुपये में वहाँ से मिलता है और यहाँ तीन रुपये उपजेंगे, तो लेता है। तिल या गेहूँ आदि। इसी प्रकार समकिती को यह आत्मा पोसाता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! भाई! संसार के दुःख से मुक्त होना और परमानन्द की प्राप्ति (करना), उसका उपाय कोई अलौकिक होता है। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

ऐसा जो भगवान निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा, उसकी यथार्थ श्रद्धा। भगवान परमात्मा की श्रद्धा, ऐसा नहीं। इसकी श्रद्धा—निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभावमय शुद्धात्म वस्तु, मौजूदगी, उसकी मौजूदगी की प्रतीति। आहाहा! उसके सन्मुख होकर, उसके सन्मुख होकर निमित्त, राग और पर्याय से विमुख होकर। आहाहा! संयोग, राग की पर्याय से विमुख होकर। त्रिकाली भगवान सत्य प्रभु उसके सन्मुख होकर। आहाहा! है आगे, सत् कहेंगे। आहाहा! उसका श्रद्धान, उसका ज्ञान। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभावरूप शुद्धात्मा, उसका ज्ञान, उसकी प्रतीति और उसका ज्ञान, आहाहा! और उसका आचरण। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभावरूप शुद्धात्मा वस्तु, उसका आचरण। वस्तु के स्वभाव का आचरण। यह विकल्प दया, दान और व्रत और यह आचरण तो बन्ध के कारण हैं। आहाहा! बहुत कठिन। वर्तमान में... आहाहा!

अमोलिक रत्नत्रयकर... जिसका मूल्य नहीं। रत्नत्रय। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो रत्नत्रय, अमोलिक—जिसकी कीमत नहीं। आहाहा! जो मोल से मिले, ऐसा नहीं। अमोलिक है। आहाहा! समझ में आया? यह पर्याय की बात है। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव, ऐसा शुद्धात्मा, यह वस्तु कही और इस वस्तु की श्रद्धा, ज्ञान और आचरण अमोलिक रत्नत्रय, वह पर्याय है। आहाहा! यह तो अकेला मक्खन है,

भाई! आहाहा! परमात्मप्रकाश अर्थात् अकेला भगवान... भगवान... भगवान... आहाहा!

अमोलिक रत्नत्रयकर पूर्ण... आहाहा! किसमें आया? उस ओर है। '**अनुचरण-रूपामूल्यरत्नत्रय**' संस्कृत में अमूल्य शब्द है। अमुलक-अमूल्य। आहाहा! विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व, उसका सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप अमूल्य रत्नत्रय। आहाहा! **अमोलिक रत्नत्रयकर पूर्ण और मिथ्यात्व...** भर लिया है न। भर शब्द है वहाँ। अर्थात् पूर्ण। पूर्ण निर्मल स्वभाव, ऐसा शुद्धात्म भगवान मौजूद वस्तु है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और आचरण अमोलिक रत्नत्रय से पूर्ण। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से पर्याय में पूर्ण। वस्तु से पूर्ण है और पर्याय में पूर्ण हुआ। आहाहा!

और मिथ्यात्व विषय कषायादिरूप समस्त विभावरूप जल के प्रवेश से रहित... यह संसार खारा है, ऐसा बतायेंगे। मिथ्यात्व—भ्रान्ति, विषय-कषायादि विभावरूप जाल, उसके प्रवेशरहित है, ऐसे अमोलिक ज्ञान-दर्शन-चारित्र के रत्नत्रय से पूर्ण है और **मिथ्यात्व विषय कषायादिरूप समस्त विभावरूप जल के प्रवेश से रहित...** है। आहाहा! ऐसी **शुद्धात्म की भावना से उत्पन्न हुआ...** ऐसा शुद्धात्मरूप भगवान त्रिकाल, उसकी भावना वह त्रय—रत्नत्रय। ऐसी भावना से उत्पन्न हुआ। आहाहा! **जो सहजानन्दरूप सुखामृत,...** स्वाभाविक आनन्दरूप सुखामृत। आहाहा! कितने शब्द प्रयोग किये हैं! स्वाभाविक आनन्द जो स्वरूप में था, वह पर्याय में सहजानन्दरूप सुखामृत, सुखरूपी अमृत, **उससे विपरीत जो नारकादि दुःख...** आहाहा! चारों ही गति के दुःख हैं। स्वर्ग, वह दुःखरूप है। **नारकादि दुःख, वे ही हुए क्षार जल,...** आहाहा!

उनकर पूर्ण इस संसाररूपी समुद्र... इस ओर लिया था—रत्नत्रय पूर्ण। आहाहा! इस ओर पूर्ण वस्तु; पर्याय में रत्नत्रय पूर्ण; इस ओर क्षारसमुद्र पूर्ण। आहाहा! **वे ही हुए क्षार जल,...** आहाहा! चार गति के दुःखरूपी खारा जल। **उनकर पूर्ण इस संसाररूपी समुद्र के तरने का उपाय...** आहाहा! **जो परमसमाधिरूप जहाज...** परमसमाधिरूपी जहाज। ऐसा जो क्षारसमुद्र से पूर्ण ऐसा संसार। आहाहा! दुःखरूप है। उसे तिरने का उपाय **परमसमाधिरूप जहाज उसको सेवते हुए,...** आहाहा! परमसमाधि को सेवन करते हुए सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं। दुःख को पाते हुए, चारित्र दुःख है, यह है, (ऐसा

अज्ञानी कहते हैं)। वह तो परम आनन्द के सुख को प्राप्त होते हुए सिद्धपद को प्राप्त करते हैं। समझ में आया? ऐसा कि यह साधु चारित्र में दु:ख और क्लेश (भोगते) हैं। उसकी व्याख्या की खबर नहीं।

मुमुक्षु : लोहा चबाने के बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें खोटी हैं। दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना, बापू! ऐसा चारित्र... उसे दु:खदायी होगा? भाई! तुझे खबर नहीं। चारित्र तो अनन्त आनन्द के रस में उत्पन्न हो, वह चारित्र है। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में दशा स्थिर हो, उसका नाम चारित्र। आहाहा! अरे! यह लोग कहाँ का कहाँ बेचारे कसकर मार डालते हैं। आहाहा!

पूर्ण इस संसाररूपी समुद्र के तरने का उपाय... क्षाररस से पूर्ण, उसे तिरने का उपाय पूर्णानन्द के नाथ की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र से पूर्ण रत्नत्रय... आहाहा! **उसके आधार से चलते हुए,...** परमानन्द के आधार से अन्दर रमते हैं। अभी बुखार मिटा नहीं भाई को? निर्बलता है। आहाहा! अमृत बहाया है। मोक्ष को अमृत कहा है न? मोक्ष को अमृत कहा है। आहाहा!

कहते हैं कि **परमसमाधिरूप जहाज...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह परम आनन्दरूपी जहाज है। आहाहा! परम आनन्दरूपी जहाज से ऐसा जो क्षार संसार चार गति के दु:ख, उससे पार पाया जाता है। मुक्ति कही जाती है। मुक्ति अर्थात् दु:ख से मुक्ति। नास्ति से कथन है न। अर्थात् मुक्ति किसकी? दु:ख से। प्राप्ति किसकी? कि आनन्द की। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **अनन्त सिद्ध होंगे।** श्रेणिक राजा आदि जीव भविष्य में पूर्णानन्द के नाथ की श्रद्धा, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण रत्नत्रय (प्राप्त कर-प्रगटाकर), उससे क्षारसमुद्र का अन्त लायेंगे और परम आनन्द को प्राप्त करेंगे। ऐसे सिद्ध को मैं नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इस व्याख्यान का यह भावार्थ हुआ कि, जो शिवमय अनुपम ज्ञानमय शुद्धात्मस्वरूप है, वही उपादेय है। वह आदरणीय है। यह इसका सार है। शिवमय अर्थात् निरुपद्रव आनन्दमय, अनुपम—जिसकी उपमा नहीं। आया न ऊपर? ज्ञानमय

शुद्धात्मस्वरूप। अकेला ज्ञानमय, ज्ञानमय। ज्ञानवाला भी नहीं। आहाहा! **शुद्धात्मस्वरूप है, वही उपादेय है।** त्रिकाली आनन्द का नाथ, वह आदरणीय है। आहाहा! निमित्त नहीं, व्यवहार नहीं, एक (समय की) पर्याय भी नहीं। पर्याय में त्रिकाली आदरणीय है। समझ में आया? आहाहा!

शिवमय अनुपम... आहाहा! ऊपर कहा था न? शिव नहीं कहा था? निज **शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो सहजानन्दरूप सुखामृत,...** पहले कहा था। तीसरी लाईन। शिव-शिव। शिव कहा था। अनुपम कहा था। दो—शिव, अनुपम, ज्ञानमयी। ऐसा जो शुद्धात्मस्वभाव, शुद्धात्मभाव, वह आदरणीय है। वह अन्दर में सत्कार करनेयोग्य है। उसका स्वीकार करनेयोग्य है। वह आदरणीय एक ही यह चीज़ है। व्यवहार और भगवान भी आदरणीय नहीं। आहाहा!

दो गाथा हुई। दो में यह कहा। पहले में यह कहा। अनन्त सिद्ध हुए। किस प्रकार से हुए, यह बात करके (नमस्कार किया)। भविष्य में होंगे। किस प्रकार, यह बात की। आहाहा!

गाथा - ३

अथानन्तरं परमसमाध्यग्निना कर्मेन्धनहोमं कुर्वाणान् वर्तमानान् सिद्धानहं नमस्करोमि–

३) ते हउँ वंदउँ सिद्ध–गण अच्छहिँ जे वि हवंत।
परम–समाहि–महग्गिएँ कम्मिंधणइँ हुणंत।।३।।

तान् अहं वन्दे सिद्धगणान् तिष्ठन्ति येऽपि भवन्तः।
परमसमाधिमहाग्निना कर्मेन्धनानि जुह्वन्तः।।३।।

ते हउं वंदउं सिद्धगण तानहं सिद्धगणान् वन्दे। ये कथंभूताः। अत्थ(च्छ) हिं जे वि हवंत इदानीं तिष्ठन्ति ये भवन्तः सन्तः। किं कुर्वाणास्तिष्ठन्ति। परमसमाहिमहग्गिएँइँ कम्मिंधणइँ हुणंत परमसमाध्यग्निना कर्मेन्धनानि होमयन्तः। अतो विशेषः। तद्यथा–तान् सिद्धसमूहानहं वन्दे वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानलक्षणपारमार्थिकसिद्धभक्त्या नमस्करोमि। ये किंविशिष्टः। इदानीं पञ्चमहाविदेहेषु भवन्तस्तिष्ठन्ति श्रीसीमन्धरस्वामिप्रभृतयः। किं कुर्वन्तस्तिष्ठन्ति। वीतरागपरमसामायिकभावनाविनाभूतनिर्दोषपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेद–रत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिवैश्वानरे कर्मेन्धनाहुतिभिः कृत्वा होमं कुर्वन्त इति। अत्र शुद्धात्म–द्रव्यस्योपादेयभूतस्य प्राप्त्युपायभूतत्वान्निर्विकल्पसमाधिरेवोपादेय इति भावार्थः।।३।।

आगे परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप इंधन का होम करते हुए वर्तमानकाल में महाविदेहक्षेत्र में सीमंधरस्वामी आदि तिष्ठते हैं, उनको नमस्कार करता हूँ –

उत्कट समाधि महानल से कर्म ईंधन को जला।
जो हो रहे हैं सिद्धगण उन सभी को वन्दन सदा।।३।।

अन्वयार्थ :– [अहं] मैं [तान्] उन [सिद्धगणान्] सिद्ध समूहों को [वन्दे] नमस्कार करता हूँ [येऽपि] जो [भवन्तः तिष्ठन्ति] वर्तमान समय में विराज रहे हैं, क्या करते हुए? [परमसमाधिमहाग्निना] परमसमाधिरूप महा अग्निकर [कर्मेन्धनानि] कर्मरूप ईंधन को [जुह्वन्तः] भस्म करते हुए।

भावार्थ :– उन सिद्धोंको मैं वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञानरूप परमार्थ सिद्धभक्तिकर नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं वे ? अब वर्तमान समयमें पंच महाविदेहक्षेत्रोंमें

श्रीसीमंधरस्वामी आदि विराजमान हैं। क्या करते हुए ? वीतराग परमसामायिकचारित्रकी भावनाकर संयुक्त जो निर्दोष परमात्माका यथार्थ श्रद्धान–ज्ञान–आचरणरूप अभेद रत्नत्रय उस मई निर्विकल्पसमाधिरूपी अग्निमें कर्मरूप ईंधनको होम करते हुए तिष्ठ रहे हैं। इस कथनमें शुद्धात्मद्रव्यकी प्राप्तिका उपायभूत निर्विकल्प समाधि उपादेय (आदरने योग्य) है, यह भावार्थ हुआ।।३।।

गाथा - ३ पर प्रवचन

तीसरी गाथा। **आगे परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप ईंधन का होम करते हुए वर्तमान काल में...** सीमन्धर भगवान आदि। आहाहा! परमसमाधि। केवलज्ञानी है न वे तो? परमसमाधि—परमसमाधि। वीतरागभावरूपी परमशान्ति, परम आनन्द, वह अग्नि। **परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप ईंधन का होम...** समय–समय में चार घातिकर्म है, उनका नाश होता है। आहाहा! **होम करते हुए...** लो! **परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप ईंधन का होम करते हुए...** आहाहा! **वर्तमान काल में महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धरस्वामी आदि तिष्ठते हैं,...** बीस तीर्थंकर विराजते हैं। आहाहा! वर्तमान काल में परम आनन्दरूपी अग्नि, समाधिरूपी अग्नि से कर्मरूपी ईंधन को होम–जलाते हुए विराजते हैं। आहाहा! **महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धरस्वामी आदि तिष्ठते हैं, उनको नमस्कार करता हूँ।** तीसरी (गाथा)।

३) ते हउँ वंदउँ सिद्ध–गण अच्छहिं जे वि हवंत।
परम–समाहि–महग्गिएँ कम्मिंधणइँ हुणंत।।३।।

अन्वयार्थ :- मैं... योगीन्द्रदेव कहते हैं कि मैं, **उन सिद्ध समूहों को नमस्कार करता हूँ...** वे सिद्धसमूह ही है न! आहाहा! **जो वर्तमान समय में विराज रहे हैं,... 'भवन्तः तिष्ठन्ति'** है न? **वर्तमान समय में विराज रहे हैं,...** आहाहा! **क्या करते हुए? परमसमाधिरूप महा अग्निकर कर्मरूप ईंधन को भस्म करते हुए। सब पदार्थों...** लो! है न? **अब विशेष व्याख्यान करते हैं।** यह तो गाथा का शब्दार्थ किया।

भावार्थ :- उन सिद्धों को मैं वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप परमार्थ

सिद्धभक्तिकर नमस्कार करता हूँ। भाषा देखो! ऐसे सिद्ध जो वर्तमान तीर्थंकर परमात्मा विराजते हैं। वे सिद्ध ही हैं न? **मैं वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप परमार्थ सिद्ध भक्तिकर....** यह सिद्धभक्ति। सिद्धभक्ति आती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। वह तो यह। **वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञान...** राग बिना का अभेद, स्व-अपना वेदन। ज्ञानस्वरूप आनन्द का वेदन, ऐसी परमार्थ सिद्धभक्ति। यह नमस्कार। आहाहा!

उन सिद्धों को मैं.... वीतराग निर्विकल्प अभेद स्वसंवेदनज्ञानरूप परमार्थ सिद्ध भक्तिकर नमस्कार करता हूँ। लो! यह भावनमस्कार। आहाहा! **कैसे हैं वे? अब वर्तमान समय में पंच महाविदेहक्षेत्रों में श्री सीमन्धरस्वामी आदि विराजते हैं।** भगवान विराजमान है। आहाहा! कितने अस्तित्व की...! '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' आता है न? सर्व सिद्धों का अस्तित्व स्वीकार करके और इनका आदर करता हूँ। है यह। अनन्त सिद्ध हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हमारा भला करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : भला कौन करता था? यह तो उसमें आया है। हे परमात्मा! आप पूर्ण सिद्ध हो। प्रतिध्वनि आती है कि हे परमात्मा! तू पूर्ण है। 'प्रतिच्छन्द' आता है न? पहली गाथा (समयसार) '**वंदित्तु सव्व सिद्धे।**' प्रतिच्छन्द के सथान पर है। आहाहा! जैसा यह शब्द उठाता है कि हे नाथ! प्रभु! आप पूर्ण हो। प्रतिध्वनि सामने ध्वनि आती है, हे नाथ! तू पूर्ण हो। प्रतिध्वनि नहीं कहते? राणपुर में है न। गाँव में कुछ हो तो सामने गढ़ है। पाँच सौ वर्ष प्राचीन। पाँच सौ वर्ष का पत्थर का प्राचीन विशाल गढ़ है। यहाँ से बन्दूक बजी हो तो वहाँ से आती हो ऐसा लगे। धड़ाका वहाँ जाकर वापस आवे। इसी प्रकार पडघो—प्रतिघात। आवाज का प्रति—वापस मुड़ना। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ प्रभु आप हो। उसकी प्रतिध्वनि आवाज वापस ऐसी आती है कि पूर्णानन्द के नाथ आप हो। आहाहा! ऐसी बात है, भाई अध्यात्म की!

मुमुक्षु : हिन्दी में झांईं कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न पडघो। प्रतिघात। यहाँ यह है प्रतिघात। बिम्ब का

प्रतिबिम्ब। सामने बिम्ब हो, काँच में प्रतिबिम्ब पड़ता है न? इसी प्रकार घा का प्रतिघात। आवाज का प्रतिघात। गुलांट खाती है। आहाहा! ऐसी बात है।

क्या करते हुए? भगवान क्या करते हुए विराजमान वर्तमान सिद्ध समूह तीर्थंकर (हुए)? **वीतराग परमसामायिकचारित्र की भावनाकर संयुक्त...** आहाहा! वीतराग परमसामायिक चारित्र। देखो! उसकी भावना से, एकाग्रता से **संयुक्त जो निर्दोष परमात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप...** आहाहा! दूसरी लाईन, दूसरी लाईन में शब्द प्रयोग करते हैं। **अभेद रत्नत्रय उसमयी निर्विकल्पसमाधिरूपी अग्नि...** आहाहा! है? **परमात्मा का यथार्थ... निर्दोष परमात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेद रत्नत्रय उसमयी निर्विकल्पसमाधिरूपी अग्नि में कर्मरूप ईंधन को होम करते हुए...** वर्तमान परमात्मा विराजते हैं। समय-समय में आनन्द की अग्नि ज्वाला में कर्मरूपी लकड़ी (ईंधन) का होम करते हैं। स्वाहा। यह स्वाहा। समझ में आया?

मुमुक्षु : तब प्रकाशमय परमात्मा होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक अरिहन्त परमात्मा होते हैं और एक सिद्ध परमात्मा होते हैं। ऐसा। यहाँ तो वे पर्याय में निर्दोष हुए। वस्तु दो प्रकार की है। एक कारणपरमात्मा, एक कार्यपरमात्मा। कारणपरमात्मा, वह वस्तु से निर्दोष है। कार्यपरमात्मा, वह पर्याय में निर्दोष है। आहाहा! **तिष्ठ रहे हैं।**

इस कथन में शुद्धात्मद्रव्य की प्राप्ति का उपायभूत... है? इस कथन से शुद्धात्मद्रव्य वस्तु की प्राप्ति का उपाय। **उपायभूत निर्विकल्प समाधि उपादेय (आदरनेयोग्य) है,...** लो! उसमें आत्मा कहा था। दूसरे में। इसमें निर्विकल्प समाधि। वीतरागी समाधि प्रगट करनेयोग्य है। वह आदरनेयोग्य है। व्यवहार विकल्प है, वह आदरनेयोग्य है, ऐसा इसमें नहीं कहा। आदरनेयोग्य नहीं है। राग, वह तो विकार-दुःख है। आहाहा! **यह भावार्थ हुआ।** यह तीसरी गाथा हुई।

गाथा - ४

अथ पूर्वकाले शुद्धात्मस्वरूपं प्राप्य स्वसंवेदनज्ञानबलेन कर्मक्षयं कृत्वा ये सिद्धा भूत्वा निर्वाणे वसन्ति तानहं वन्दे -

४) ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण जे णिव्वाणि वसंति।
णाणिं तिहुयणि गरुया वि भव-सायरि ण पडंति।।४।।

तान् पुनः वन्दे सिद्धगणान् ये निर्वाणे वसन्ति।
ज्ञानेन त्रिभुवने गुरूका अपि भवसागरे न पतन्ति।।४।।

ते पुणु वंदउं सिद्धगण तान् पुनर्वन्दे सिद्धगणान्। किंविशिष्टान्। जे णिव्वाणि वसंति ये निर्वाणे मोक्षपदे वसन्ति तिष्ठन्ति। पुनरपि कथंभूता ये। णाणिं तिहुयणि गरुया वि भवसायरि ण पडंति ज्ञानेन त्रिभुवनगुरुका अपि भवसागरे न पतन्ति। अत ऊर्ध्वं विशेषः। तथाहितान् पुनर्वन्देऽहं सिद्धगणान् ये तीर्थंकरपरमदेवभरताधवपाण्डवादयः पूर्वकाले वीतरागनिर्विकल्प-स्वसंवेदनज्ञानबलेन स्वशुद्धात्मस्वरूपं प्राप्य कर्मक्षयं कृत्वेदानीं निर्वाणे तिष्ठन्ति सदापि न संशयः। तानपि कथंभूतान्। लोकालोकप्रकाशकेवलज्ञानस्वसंवेदनत्रिभुवनगुरून्। त्रैलोक्यालोकन-परमात्मस्वरूपनिश्चयव्यवहारपदपदार्थव्यवहारनयकेवलज्ञानप्रकाशेन समाहितस्वस्वरूपभूते निर्वाणपदे तिष्ठन्ति यतः ततस्तन्निर्वाणपदमुपादेयमिति तात्पर्यार्थः।।४।।

आगे जो महामुनि होकर शुद्धात्मस्वरूप को पाके सम्यग्ज्ञान के बल से कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए निर्वाण में बस रहे हैं, उनको मैं वन्दता हूँ -

जो ज्ञान से त्रिभुवन गुरु होते हुए भी न गिरें।
भव-जलधि में निर्वाणवासी सिद्धगण को नमन है।।४।।

अन्वयार्थ :- [पुनः] फिर [‘अहं’] मैं [तान्] उन [सिद्धगणान्] सिद्धों को [वन्दे] बन्दता हूँ, [ये] जो [निर्वाणे] मोक्ष में [वसन्ति] तिष्ठ रहे हैं। कैसे हैं, वे [ज्ञानेन] ज्ञान से [त्रिभुवने गुरु का अपि] तीन लोक में गुरु हैं, तो भी [भवसागरे] संसार-समुद्र में [नपतन्ति] नहिं पडते हैं।

भावार्थ :- जो भारी होता है, वह गुरुतर होता है, और जल में डूब जाता है, वे भगवान त्रैलोक्य में गुरु हैं, परंतु भव-सागर में नहीं पड़ते हैं। उन सिद्धों को मैं वंदता

हूँ, जो तीर्थंकरपरमदेव, तथा भरत, सगर, राघव, पांडवादिक पूर्वकाल में वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से निजशुद्धात्मस्वरूप पाके, कर्मों का क्षयकर, परमसमाधानरूप निर्वाणपद में विराज रहे हैं, उनको मेरा नमस्कार होवे यह सारांश हुआ।।४।।

गाथा - ४ पर प्रवचन

आगे जो महामुनि होकर शुद्धात्मास्वरूप को पाके... पहले तो सिद्ध हो गये, होंगे, वर्तमान है, उनकी बात की। अब महामुनि होकर सिद्ध होंगे। आहाहा! फिर अभी आचार्य, उपाध्याय की गाथा अन्तिम आयेगी। यह तो पहली समुच्चय बात है। महामुनि आनन्दरूपी आनन्द में रमणता करते हुए। आहाहा! **शुद्धात्मास्वरूप को पाके...** महामुनि आनन्दमय होकर शुद्धात्मस्वरूप को प्राप्त करके। जिन्होंने शुद्धात्मस्वरूप को दशा में प्राप्त किया है, उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान के बल से... आहाहा! आत्मा के स्वसंवेदन ज्ञान के बल से **कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए...** कर्मों का नाश करके। देखा! शुद्धात्मस्वरूप को पाकर **सम्यग्ज्ञान के बल से...** अन्तर ज्ञान के बल से **कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए...** कोई व्यवहार करते-करते सिद्ध हुए हैं, ऐसा नहीं है। यह बड़ा विवाद अभी का। आहाहा! व्यवहार भी मोक्षमार्ग है, यह तुम्हारे रतनचन्दजी कहते हैं। दो मोक्षमार्ग हैं। दो न माने, वह भ्रम में हैं। (पंडित) टोडरमलजी कहते हैं कि दो मोक्षमार्ग माने, वे भ्रम में हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी कहता है न ? कैसा विचार ? कैसा तुम्हारा ? विवेकसागर। है ? विकासचन्दजी। ऐसा कहता है न कि टोडरमलजी भूले हैं। चौथे गुणसथान में निश्चय सम्यग्दर्शन वीतराग हो, यह मानकर भूले हैं। श्रीमद् भूले हैं, तुम (गुरुदेव कानजीस्वामी) भूले हैं। ऐसा पत्र आया है। विकासचन्दजी एक ब्रह्मचारी है। यहाँ चेतनजी का (मित्र) दोस्ताना था, पहले। छोटे गाँव में कहीं रहते हैं।

मुमुक्षु : रतनचन्दजी...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वे रतनचन्दजी।

चौथे गुणस्थान में निश्चयसम्यग्दर्शन वीतरागी हो, (ऐसा माननेवाले) भूले हुए हैं। चौथे गुणस्थान में सराग समकित ही होता है। जयसेनाचार्य ऐसा कहते हैं, ऐसा कहकर (आधार देता है)। समकित रागसहित, वह तो चारित्र के दोषसहित की बात की। समकित तो वीतरागी समकित है। पूर्णानन्द के नाथ की अन्तर अनुभव में प्रतीति, वह तो वीतरागी पर्याय है। चौथे गुणस्थान में वीतरागी पर्याय का समकित है। आहाहा! बहुत पत्र आते हैं। महीने, दो महीने में पत्र आते हैं, शिक्षा देने के लिये। उसे जँचा नहीं न!

मुमुक्षु : कहे, वह अलग विषय और शिक्षा दे, वह अलग विषय।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ऐसा कि तुम भूल में (हो और) इन सब लोगों को भूल में डालते हो। चौथे गुणस्थान में तो सराग समकित ही होता है। (वह ऐसा कहता है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, महामुनि होकर... आहाहा! तीन कषाय का अभाव होकर जिसने महामुनि शुद्धात्मस्वरूप को प्राप्त किया है। आहाहा! आनन्द के नाथ को जिसने पर्याय में हथेली में जैसे रखे, वैसे प्राप्त किया है। आहाहा! उसे मुनि कहते हैं। **महामुनि होकर शुद्धात्मास्वरूप को पाके...** विद्यानन्दजी कुछ कहते हैं। रात्रि में बोलते हैं। रात्रि में बात भी करते हैं। ३५ प्रकार के साधु हैं, उसमें का मैं साधु हुआ। ऐसा ... कुछ। आहाहा! अरे रे! भाई! अभी तो व्यवहार की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। परन्तु लोग मिलते हैं न पागल सब... बड़ी सभा होती है, प्रसन्न-प्रसन्न कर दे।

यहाँ तो कहते हैं कि मुनि उसे कहते हैं, जिसे शुद्धस्वरूप अनुभव में प्राप्त हुआ है। जिसकी पर्याय में शुद्धात्मा प्राप्त हुआ है। द्रव्य में तो है। आहाहा! वीतरागी तीन कषाय के अभाव की पर्याय में शुद्धात्मा प्राप्त किया है, पवित्र आनन्द के नाथ को प्राप्त किया है। आहाहा! और उसके सम्यग्ज्ञान के बल से। वह सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ, उसके बल से **कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए निर्वाण में बस रहे हैं,...** ऐसे महामुनि भी निर्वाण में अभी बसते हैं। **उनको मैं वन्दता हूँ।** आहाहा! क्या सिद्ध की भक्ति का प्रेम उछला है न! छह गाथा तक यह लेंगे। सातवीं के बाद आचार्य, उपाध्याय, साधु, लेंगे। फिर

आठवें में प्रभाकरभट्ट प्रश्न करेगा।

४) ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण जे णिव्वाणि वसंति।
णाणिं तिहुयणि गरुया वि भव-सायरि ण पडंति।।४।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :- फिर मैं उन सिद्धों को वन्दता हूँ, जो मोक्ष में तिष्ठ रहे हैं।** मोक्ष में रहे हैं। आहाहा! **कैसे हैं, वे ज्ञान से तीन लोक में गुरु हैं,...** ज्ञान से तीन लोक के गुरु हैं। आहाहा! **तो भी संसार-समुद्र में नहीं पड़ते हैं।** अर्थात् क्या कहते हैं? गुरु हैं, तथापि नीचे नहीं पड़ते। भरी चीज़ तो नीचे गिरती है। आहाहा! तीन लोक के बड़े गुरु हैं। ओहो! **तो भी संसार-समुद्र में नहीं पड़ते हैं।**

भावार्थ :- जो भारी होता है, वह गुरुतर होता है,... लोहा वजनदार (होता है)। **और जल में डूब जाता है,...** भारी चीज़ जल में डूब जाती है। **वे भगवान त्रैलोक्य में गुरु हैं,...** आहाहा! तीन लोक में उनके जैसा कोई बड़ा गुरु नहीं। सिद्ध समान बड़ी कोई चीज़ नहीं। आहाहा! **परन्तु भव-सागर में नहीं पड़ते हैं।** आहाहा! तीन लोक में बड़े हैं, महन्त हैं। आहाहा! महात्मा, महा-आत्मा हो गये वे तो। तो भी भवसागर में नहीं पड़ती। कैसी शैली ली, देखा! उसमें लिया है न कहीं? नहीं? ऐसा कि सिद्ध की संख्या थोड़ी है तो भी सिद्ध की संख्या संसारी को खींचती है, सिद्ध होने के लिये। आता है न? आता है। सिद्ध थोड़े होने पर भी ऊँचे और बड़े हैं। वे संसारीजीव को खींचते हैं। संसारी जीव उन्हें नहीं खींच सकता। ऐसा आता है। 'अष्टपाहुड़' में आता है प्रायः। अष्टपाहुड़ है न? उसमें है। आहाहा! अष्टपाहुड़ में कहीं है। आहाहा! अनन्त सिद्ध ऊँचे रहे होने पर भी लोक के अग्र में, वे खींचकर संसारी अनन्त हैं, वे खिंचकर यहाँ नहीं आते। परन्तु सिद्ध की ऐसी शक्ति है कि उनका लक्ष्य करता है, वह संसारी खिंचकर सिद्ध होता है। आहाहा! ऐसा करके यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि सिद्ध हैं, वे संसार में नहीं आते। ऐसा। यह लोग कहते हैं न, सब मोक्ष जाते हैं... कल आया था न? चिन्ता हो, इसलिए डालो इन्हें नीचे वापस। भान बिना के। आहाहा!

उन सिद्धों को मैं वन्दता हूँ,... कैसे? परमात्मपद महामहत्ता प्राप्त होने पर भी नीचे नहीं आते। ऐसे सिद्धों को मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! **जो तीर्थंकर परमदेव तथा**

भरत,... चक्रवर्ती। **सगर...** चक्रवर्ती। **राघव,...** राघव अर्थात् राम। **पाण्डवादिक पूर्व काल में वीतराग निर्विकल्प...** आहाहा! पाँचों पाण्डव। **पूर्व काल में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से निजशुद्धात्मस्वरूप पाके,...** तीन मोक्ष में पधारे हैं, वे तो (दो) सर्वार्थसिद्धि में गये हैं। आहाहा! ये पाँच पाण्डव... जरा विकल्प आ गया, कैसे होगा? कहो, मात्र साधर्मी है। जिन्हें लोहे के (गर्म गहने) पहनाये। आहाहा! कहो, ऐसा चौथे काल में ऐसे मुनियों को लोहे के धगधगते गहने पहनाये। तीन तो ध्यान में रहकर मोक्ष पधारे। दो को जरा विकल्प रहा। विकल्प तो शुभ आया था। कैसे होगा? ३३ सागर का आयुष्य बँध गया। केवलज्ञान दूर हो गया। आहाहा! एक शुभविकल्प (कि) साधर्मी को कैसे है, ऐसे विकल्प में ३३ सागर बढ़ गये। और फिर भी अभी एक दूसरा भव मनुष्य का करेंगे। आहाहा! शुभभाव संसार में दाखिल करने की चीज़ है। आता है न? पुण्य-पाप (अधिकार) में। यह मुनि शुभभाव से संसार में दाखिल हुए। दो भव हुए। अब उस शुभभाव से आत्मा को धर्म हो, लाभ हो, (यह तो) बहुत दृष्टि की विपरीतता।

यहाँ कहते हैं तीर्थंकरदेव **परमदेव, तथा भरत (चक्रवर्ती), सगर (चक्रवर्ती), राघव,...** अर्थात् राम। रामचन्द्रजी मोक्ष पधारे हैं। **पाण्डवादिक पूर्व काल में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** लो! इस बल से मोक्ष पधारे हैं, ऐसा कहते हैं। वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन आत्मा के वेदन के ज्ञानबल से **निज शुद्धात्मस्वरूप पाके,...** आहाहा! निज अर्थात् अपना शुद्धात्मस्वरूप पर्याय में पाकर **कर्मों का क्षयकर,...** आहाहा! **परमसमाधानरूप...** यह निर्वाण की व्याख्या करते हैं। चौथा है न? चौथा है। **'निर्वाणे तिष्ठन्ति' 'समाहितस्व'...** हाँ आया। **'समाहितस्वस्वरूपभूते निर्वाणपदे तिष्ठन्ति'** लिखा है। **'समाहितस्वस्वरूपभूते** आहाहा! समान समाधान, ...समाधान। आहाहा! ऐसे **ऐसे निर्वाणपद में विराज रहे हैं, उनको मेरा नमस्कार हो...** यह चार गाथा हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा – ५

अतः ऊर्ध्वं यद्यपि व्यवहारनयेन मुक्तिशिलायां तिष्ठन्ति शुद्धात्मनः हि सिद्धास्तथापि निश्चयनयेन शुद्धात्मस्वरूपे तिष्ठन्तीति कथयति –

५) ते पुणु वंदउँ सिद्ध–गण जे अप्पाणि वसंत।
लोयालोउ वि सयलु इहु अच्छहिँ विमलु णियंत।।५।।

तान् पुनर्वन्दे सिद्धगणान् ये आत्मनि वसन्तः।
लोकालोकमपि सकलं इह तिष्ठन्ति विमलं पश्यन्तः।।५।।

ते पुणु वंदउं सिद्धगण तान् पुनर्वन्दे सिद्धगणान्। जे अप्पाणि वसंत लोयालोउ वि सयलु इहु अत्थ (च्छ) हिं विमलु णियंत ये आत्मनि वसन्तो लोकालोकं सततस्वरूपपदार्थं निश्चयन्त इति। इदानीं विशेषः। तद्यथा–तान् पुनरहं वन्दे सिद्धगणान् सिद्धसमूहान् वन्दे कर्म–क्षयनिमित्तम्। पुनरपि कथंभूतं सिद्धस्वरूपम्। चैतन्यानन्दस्वभावं लोकालोकव्यापिसूक्ष्मपर्याय–शुद्धस्वरूपं ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणम्। निश्चय एकीभूतव्यवहाराभावे स्वात्मनि अपि च सुखदुःख–भावाभावयोरेकीकृत्य स्वसंवेद्यस्वरूपे स्वयत्ने तिष्ठन्ति। उपचरितासद्भूतव्यवहारे लोकालोका–वलोकनं स्वसंवेद्यं प्रतिभाति, आत्मस्वरूपकैवल्यज्ञानोपशमं यथा पुरुषार्थपदार्थदृष्टोः भवति तेषां बाह्यवृत्तिनिमित्तमुत्पत्तिस्थूलसूक्ष्मपरपदार्थव्यवहारात्मानमेव जानन्ति। यदि निश्चयेन तिष्ठन्ति तर्हि परकीयसुखदुःखपरिज्ञाने सुखदुःखानुभवं प्राप्नोति, परकीयरागद्वेषहेतुपरिज्ञाने च रागद्वेषमयत्वं च प्राप्नोतीति महद्दूषणम्। अत यत् निश्चयेन स्वस्वरूपेऽवस्थानं भणितं तदेवोपादेयमिति भावार्थः।।५।।

आगे यद्यपि वे सिद्ध परमात्मा व्यवहारनयकर लोकालोक को देखते हुए मोक्ष में तिष्ठ रहे हैं, लोक के शिखर ऊपर विराजते हैं, तो भी शुद्ध निश्चयनयकर अपने स्वरूप में ही स्थित हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

जो लोक और अलोक को भी सकल निर्मलरूप में।
हैं देखते तो भी रहें नित आत्म–मग्न नमन उन्हें।।५।।

अन्वयार्थ :– [‘अहं’] मैं [पुनः] फिर [तान्] उन [सिद्धगणान्] सिद्धों के समूह को [वन्दे] वंदता हूँ [ये] जो [आत्मनि वसन्तः] निश्चयनयकर अपने स्वरूप में तिष्ठते हुए

व्यवहारनयकर [सकलं] समस्त [लोकालोकं] लोक अलोक को [विमलं] संशय रहित [पश्यन्तः] प्रत्यक्ष देखते हुए [तिष्ठन्ति] ठहर रहे हैं।

भावार्थ :- मैं कर्मों के क्षय के निमित्त फिर उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं और व्यवहारनयकर सब लोकालोक को निःसंदेहपने से प्रत्यक्ष देखते हैं, परंतु पदार्थों में तन्मयी नहीं हैं, अपने स्वरूप में तन्मयी हैं। जो परपदार्थों में तन्मयी हो, तो पर के सुख-दुःख से आप सुखी-दुःखी होवे, ऐसा उनमें कदाचित् नहीं है। व्यवहारनयकर स्थूलसूक्ष्म सबको केवलज्ञानकर प्रत्यक्ष निःसंदेह जानते हैं, किसी पदार्थ से राग-द्वेष नहीं है। यदि राग के हेतु से किसी को जाने, तो वे राग द्वेषमयी होवें, यह बड़ा दूषण है, इसलिये यह निश्चय हुआ कि निश्चयनयकर अपने स्वरूप में निवास करते हैं पर में नहीं, और अपनी ज्ञायकशक्तिकर सबको प्रत्यक्ष देखते हैं जानते हैं। जो निश्चयकर अपने स्वरूप में निवास कहा, इसलिए वह अपना स्वरूप ही आराधने योग्य है, यह भावार्थ हुआ।।५।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल १३, गुरुवार,
दिनांक-१०-०६-१९७६, गाथा-५-६, प्रवचन-५

परमात्मप्रकाश बनाया। उसमें सात गाथा में सिद्ध भगवान को नमस्कार किया है। सात गाथा। पहली गाथा में भूतकाल के सिद्धों को नमस्कार किया। अनन्त सिद्ध। दूसरी गाथा में भविष्य में अनन्त सिद्ध होंगे, उन्हें नमस्कार किया। तीसरी गाथा में वर्तमान भगवान विराजते हैं, वे भी भाव से सिद्ध हैं न? उन्हें नमस्कार किया। चौथी में महामुनि होकर निर्वाण को प्राप्त हुए, समुच्चय महामुनि लिये, गणधर का आया है इसमें, चौथी में वह नमस्कार किया। पाँचवीं में उनका निवासस्थान कहाँ है, यह निर्णय करके नमस्कार करते हैं। छठी में उनकी पर्याय में गुण क्या है, उसका स्मरण करके नमस्कार करते हैं और सातवीं में आचार्य-उपाध्याय-साधु को नमस्कार करते हैं। इस प्रकार सात गाथाओं में नमस्कार (की विधि यह है)। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

फिर से। पहली गाथा में भूतकाल के अनन्त सिद्धों को याद करके और सिद्ध

कैसे पाये, उस स्थिति का वर्णन करके उन्हें नमस्कार किया। भविष्य में भी अनन्त श्रेणिक राजा आदि किसी विधि से मोक्षमार्ग से मोक्ष पायेंगे, उसे याद करके भविष्य के अनन्त सिद्धों को नमस्कार किया। वर्तमान में तीर्थंकरदेव कर्म ईंधन में अग्नि में कर्म जलाते हैं। चार घाति है न, उन्हें याद करके उन्हें नमस्कार किया। चौथी में महामुनि गणधर आदि। चौथा बोल ऐसा है। उन्हें नमस्कार (किया)। सिद्धपद पाये उन्हें नमस्कार किया। और यह पाँचवीं आयी। पाँचवीं गाथा में उनका निवासस्थान कहाँ है, यह निर्णय करके नमस्कार करते है। वे सिद्ध हैं कहाँ? समझ में आया? यह पाँचवीं गाथा है।

आगे यद्यपि वे सिद्ध परमात्मा व्यवहारनयकर लोकालोक को देखते हुए मोक्ष में तिष्ठ रहे हैं,... लोकालोक को जानकर मोक्ष में रहे हैं। यह व्यवहार हुआ। आहाहा! **लोक के शिखर पर विराजते हैं तो भी शुद्ध निश्चयनयकर अपने स्वरूप में ही स्थित हैं,...** बाह्य क्षेत्र से व्यवहार से बात की। निश्चय से तो अपने स्वरूप में वहाँ विराजते हैं। उन सिद्धों को याद करके नमस्कार किया है। पाँचवीं गाथा।

मुमुक्षु : णमो सिद्धाणं का रहस्य है।

(५) ते पुणु वंदउँ सिद्ध–गण जे अप्पाणि वसंत।
लोयालोउ वि सयलु इहु अच्छहिं विमलु णियंत।।५।।

देखा! '**अप्पाणि वसंत**' वजन यहाँ है। आत्मा बसता है कहाँ, यह अपेक्षा लेकर वन्दन किया है। क्योंकि दूसरे अन्यमत में तो ऐसा कुछ है नहीं। परमात्मा कहाँ है और परमात्मपद पाये उनका कुछ स्थान होगा या नहीं? स्थान के लिये व्यवहार से लोक के ऊपर, निश्चय स्वयं में। आहाहा! समझ में आया?

अन्वयार्थ :- मैं फिर उन सिद्धों के समूह को वन्दता हूँ... आहाहा! बहुत ही मांगलिक। परमात्मप्रकाश का वर्णन करना है न। **जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में तिष्ठते हुए...** यह सिद्धान्त है। आहाहा! निश्चय से भगवान अपने स्वरूप में ही है वहाँ। लोकाग्र में है, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। आहाहा! वह तो व्यवहार है, ऐसा बताया सही। उनका स्थान व्यवहार से पर लोकाग्र में है और निश्चय में तो भगवान अपने आनन्दस्वरूप में उसका निवास है। लोक में शिखर पर निवास है, वह तो

व्यवहार से निमित्तपने का ज्ञान कराने के लिये बात की है। आहाहा!

निश्चयनयकर अपने स्वरूप में तिष्ठते हुए... 'आत्मनि वसन्तो' आहाहा! कोई कहते हैं न कि बैकुण्ठ में है और अमुक है और ढींकना है। हमारे साधु को तुम आहार-पानी दोगे तो बैकुण्ठ में तुमको आहार-पानी देंगे। वहाँ लड्डू मिलेंगे।

मुमुक्षु : मतार्थ को निषेधते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... निषेध होता है। मतार्थ, आगमार्थ, नयार्थ, यह सब एक-एक गाथा में पहले कह गये हैं न? इस प्रकार से उतारा है। ओहोहो!

समस्त लोक-अलोक को संशयरहित प्रत्यक्ष देखते हुए... है? **समस्त लोक-अलोक को संशयरहित प्रत्यक्ष देखते हुए ठहर रहे हैं।** आहाहा! **मैं कर्मों के क्षय के निमित्त...** आचार्य स्वयं कहते हैं। **मैं कर्मों के क्षय के निमित्त फिर उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ... कर्मों के क्षय के निमित्त...** मेरा लक्ष्य स्वभाव के ऊपर है, उसमें नमस्कार करने में भले विकल्प है परन्तु मेरा लक्ष्य स्वभाव के ऊपर जोर है। उसके कारण कर्म का क्षय होता है।

अमृतचन्द्राचार्य ने कहा न? कि इस टीका से ही मेरी शुद्धि बढ़ो, अशुद्धि टलो। कहा न? मम विशुद्धि। टीका एव, ऐसा शब्द है। उसका अर्थ है कि टीका के काल में मेरा लक्ष्य जो द्रव्य के ऊपर के जोर में है, उस काल में शुद्धि बढ़ो। आहाहा! समझ में आया? वरना टीका करने का तो विकल्प है। टीका से मेरी विशुद्धि होओ और अशुद्धि टलो, पाठ तो ऐसा है। टीका के काल में मेरा घोलन अखण्ड आनन्द के प्रति, प्रभु के प्रति... (स्वयं प्रभु) उसके प्रति मेरा घोलन बढ़ेगा, उसमें अशुद्धि टलेगी और शुद्धि बढ़ेगी। समझ में आया? ज्ञाता में आया है न? 'तद्गुण लब्धये'।

मुमुक्षु : मोक्षमार्गस्य नेतारं भेतारं कर्म भूभृताम,
ज्ञातारं विश्व तत्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये। (तत्त्वार्थसूत्र, मंगलाचरण)

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे गुण की प्राप्ति के लिये तुमको वन्दन करता हूँ। उनके गुण की प्राप्ति वन्दन के विकल्प से होती है? समझ में आया?

मुमुक्षु : गाथा तो ऐसा कहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या अपेक्षा है, यह जानना चाहिए न! उसका हृदय क्या है? आहाहा! उसका विवाद है। यह विवाद (करते हैं), देखो! भगवान को वन्दन करने से भी उनके गुण की प्राप्ति होती है। विकल्प से भी (होती है)। इसका अर्थ किया। ऐसा नहीं है, भाई! यह तो व्यवहार के शब्द हैं। परन्तु मैं वन्दन करता हूँ और उनके जो गुण मेरा चैतन्य है, उसके गुण पर मेरा जोर अन्दर से है। इसलिए वन्दना के काल में मेरा स्वभाव सन्मुख का जोर है, उससे मुझे गुण की प्राप्ति होगी। आहाहा! ऐसा है सब। शब्दार्थ बदल डाले।

मुमुक्षु : आप तो सब शब्द का अर्थ बदल देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बदल देते हैं, कहते हैं।

मुमुक्षु : आप तो बदले हुए को बदलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ शब्द यह है, इसलिए यहाँ तो निकालना पड़ा। संस्कृत पाठ है, हों! है न? आहाहा!

'**कर्मक्षयनिमित्तम्**' संस्कृत में है। चौथी लाईन '**सिद्धगणान् सिद्धसमूहान् वन्दे कर्मक्षयनिमित्तम्।**' चौथी लाईन है। इसका अर्थ जानना चाहिए न! एक ओर परमात्मा ऐसा कहे कि परद्रव्य के आश्रय से तो राग ही होता है। तथा एक ओर (कहे), परद्रव्य के आश्रय से कर्म का क्षय होता है। यह न्याय क्या है, वह समझना चाहिए न, बापू! किस शैली की यह व्याख्या है। देखो! इसमें कर्म का क्षय होता है। भगवान के चरणवन्दन से, स्तुति करने से। धवल में भी ऐसा आता है। शास्त्र की स्वाध्याय करने से असंख्य कर्म की निर्जरा होती है। शास्त्र की, हों! पाठ ऐसा है। क्या शैली है, यह जानना चाहिए न! एक ओर कहे, शास्त्र का स्वाध्याय है, बाहर का ज्ञान है, वह विकल्प है। कलशटीका में। कलशटीका में है। आहाहा! भाई!

मुमुक्षु : कलशटीका तो गृहस्थ की है, वह आचार्य का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे जो हो। विकल्प है, वह बन्ध का कारण है और उसमें भी अनुभूति कही है, ऐसा लिखा है। कलश है न? कलश में। बारह अंग में, बारह अंग का ज्ञान है, वह विकल्प है। परन्तु उसमें भी भगवान आत्मा का अनुभव करना, ऐसा कहा है। कलशटीका में है। समझ में आया?

कलश १३। **ऐसा जानना कि आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। इस प्रसंग में और भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशांग ज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है,...** आहाहा! कर्म का क्षय शुद्धात्मानुभूति से होता है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध आत्मा, उसका अनुभव, उसे अनुसरकर द्रव्य के आश्रय से निर्मल वीतरागीदशा हो, वह मोक्षमार्ग और वह कर्मक्षय का कारण है। है? कलश है। १३, नीचे। एकदम नीचे। है न? दूसरी लाईन नीचे। **ऐसा जानना कि आत्मानुभव मोक्षमार्ग है।** इसकी नीचे एकदम पहला। **इस प्रसंग में और भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशांग ज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है।** आहाहा! **उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है,...** आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग चैतन्य को चैतन्य का सम्बन्ध...

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डितजी! जानना चाहिए न क्या अपेक्षा है, भाई! भगवान की वाणी पूर्वापर अविरोध होती है। पूर्वापर अविरोध होती है, विरोध नहीं होता। पूर्वापर विरोध हो, वह वीतराग की वाणी ही नहीं होती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **मैं कर्मों के क्षय के निमित्त फिर...** चार गाथा में तो नमस्कार किया। भूतकाल के, भविष्य के, वर्तमान के और मुनि मोक्ष पधारे उन्हें। **फिर उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं,...** यहाँ वजन है। इस गाथा में यहाँ बसन्तं है। बसन्तं है न वापस पाठ? आत्मा... आहाहा! भगवान वहाँ आत्मा में बसते हैं। आहाहा! अपनी शुद्ध आनन्द की परिणति और चतुष्टय आदि अनन्त गुण की दशा में वे बसते हैं। ऐसे बसन्तं करके याद करके नमस्कार किया है। कर्म के क्षय का अर्थ मेरे स्वभाव सन्मुख मेरा जोर है। इसलिए वे भगवान यहाँ बसते हैं, ऐसा याद करके मुझे क्षय होगा, यह स्वभाव के आश्रय से होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....बात करते हो।...

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग वाणी, बापू! सर्वज्ञ का मार्ग बहुत गहन गूढ। यह तो

गूढ बात है। गूढवाद अर्थात् जिस पर्याय में पूरा द्रव्य आता नहीं—ऐसा जो द्रव्य, वह गूढवाद है, रहस्यवाद है, स्वभाववाद है। समझ में आया?

मुमुक्षु : फिर से फरमाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय में द्रव्यस्वभाव आता नहीं और पर्याय के लक्ष्य से उसका लक्ष्य नहीं होता। आहाहा! ऐसा जो भगवान एक समय में द्रव्यस्वभाव, गूढस्वभाव, गूढ है, रहस्य है। आहाहा! वह द्रव्यस्वभाव का रहस्य है। वह परमात्मा का रहस्यवाद है। गूढवाद है, स्वभाववाद है। एक समय में भगवान पूर्ण शुद्ध अनन्त आनन्दकन्द है। वह पर्याय के पीछे है, इसलिए गूढ है। आहाहा! समझ में आया? अन्यमति में गूढवाद चलता है। कहते हैं, परन्तु वह गूढ यह है। आहाहा! जिसकी लीनता एक समय की पर्याय में अनादि से रमती है, उसे गूढ रहस्य समझना कठिन पड़ता है। जो पर्याय में नहीं और वस्तु में है... आहाहा! उसकी दृष्टि में वह गूढवाद, रहस्यवाद आना चाहिए। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि मैंने सिद्ध को वन्दन तो किया चार गाथाओं में। परन्तु पाँचवीं में वे प्रभु कहाँ बसते हैं, उन्हें याद करके मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? कोई व्यक्ति ऐसा तो विचार करे न कि यह शुद्ध चैतन्य आत्मा है, उसका जिसे साधकपना प्रगट हुआ, शुद्धस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई, ऐसे साधकजीव को सिद्ध होने में तो असंख्य समय चाहिए। क्या कहा, समझ में आया? अनन्त समय नहीं चाहिए। आहाहा! भले पन्द्रह भव करे। परन्तु है असंख्य समय। कोई अन्तर्मुहूर्त में समकित पाकर वहीं का वहीं केवल (ज्ञान) पावे तो भी केवलज्ञान प्राप्त करने में असंख्य समय है। अर्थात्? कि यह वस्तु है, उसके साधक स्वभाव में जो चढ़ा, उसे सिद्ध होने में तो असंख्य समय ही लगेंगे। समझ में आया? तो फिर अनन्त काल में साधक हुए, वे असंख्य समय हो गये और अनन्त काल गया, अनन्त सिद्ध हुए। समझ में आया? उनका क्षेत्र कुछ चाहिए या नहीं?

वस्तु है, उसे जिसने अन्दर ज्ञान-दर्शन-चारित्र द्वारा साधी है और साधकर साध्य तो वह असंख्य समय में प्रगट होता है। और गया अनन्त काल। तब असंख्य समय प्रगट

हुआ, ऐसे सिद्ध रहे कहाँ हैं? समझ में आया? क्योंकि ऐसे अनन्त हुए। अन्तर साधक होकर असंख्य समय में सिद्ध होते हैं और अनन्त काल गया तो अनन्त सिद्ध हुए। समझ में आया? अनन्त काल। आहाहा! वह अनन्त है, वे किस क्षेत्र में हैं? व्यवहारक्षेत्र क्या? निश्चयक्षेत्र क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : यह स्पष्टीकरण किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डितजी! इसके भाव के पश्चात् छठी गाथा में लेंगे। गुण और पर्याय छठवीं में लेंगे। और सातवीं गाथा में लेंगे आचार्य-उपाध्याय-साधु। ऐसा करके सात गाथा तक नमस्कार (किया है)। आहाहा! देखो! यह मांगलिक किया है।

कहते हैं कि **उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं,...** क्षेत्र बतलाना है न? ऐसे सिद्ध हुए तो कहाँ हैं अब? व्यवहार से लोकाग्र में है; निश्चय से अपने स्वरूप में है। आहाहा! समझ में आया? णमो सिद्धाणं... णमो सिद्धाणं (बोले) परन्तु णमो सिद्धाणं, वे सिद्ध हुए किस प्रकार? और सिद्ध हुए तो है क्या उनका भाव? और हुए तो उनका क्षेत्र कौन सा है? आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो कमाल कर दिया है! आहाहा! लोगों को तो ऐसा है कि अरिहन्त हैं। जब ऐसा कहो कि स्वरूप साधन करके जीव है कहाँ? तो एक तो यह कहे कि शरीरसहित है, वह भी कहाँ? और शरीररहित है, वह भी कहाँ? समझ में आया? पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर भी वाणी निकलती है तो शरीरसहित है। उनकी वाणी है न? वह शरीरसहित है तो वे कहाँ? और शरीररहित हो गये, वे कहाँ? समझ में आया? आहाहा! देखो न, परमात्मप्रकाश! आहाहा! यह जहाँ वृक्ष उगाये, फिर उसे चबूतरा बनाये न पहले? ओटलो समझते हो? क्या कहते हैं? वह वृक्ष में नीचे है न? अपने ओटला कहते हैं न। उसे क्या कहते होंगे?

मुमुक्षु : चबूतरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चबूतरा-चबूतरा। यह चबूतरा बनाया। आहाहा! परमात्मप्रकाश कहने से पहले उसके मूल सिद्ध को स्थापित किये। एक-एक काल के। उसके भूत के, भविष्य के, वर्तमान के, मुनि हुए उन्हें, और किस क्षेत्र में रहे उन्हें। आहाहा!

मुमुक्षु : क्षेत्र बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षेत्र बताते हैं। आहा! यह कहीं अध्धर की बात नहीं, ऐसा बताते हैं। वस्तु की ऐसी स्थिति है। आहाहा! एक तो कर्म और क्षय निमित्त का अर्थ किया।

फिर उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं,... ओहो! असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण की शक्ति और उनकी परिणति अनन्त गुण की अपने में है। आहाहा! वहाँ यह उतारा है न कि पर्याय का क्षेत्र भिन्न है, द्रव्य का क्षेत्र भिन्न है। क्या कहा यह? संवर अधिकार में कहा है। विकार वस्तु का है, उसका क्षेत्र अलग है। विकार... विकार। जितने क्षेत्र में उत्पन्न होता है न? उतना क्षेत्र अलग है। ध्रुव क्षेत्र अलग। उसकी निर्मल पर्याय भी जितने क्षेत्र में से उत्पन्न होती है, उतना क्षेत्र पर्याय का अलग है और द्रव्य का अलग है। समझ में आया? यहाँ तो द्रव्य और पर्याय बाह्य क्षेत्र में कहाँ है, अन्दर में कहाँ है, यह बात करते हैं। आहाहा!

निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं,... आहाहा! स्वरूप में स्थित है, यह तो ठीक, परन्तु अब व्यवहारक्षेत्र कौन सा? यहाँ सिद्ध हुए, वे वहीं के वहीं रहे हैं? सिद्ध तो यहाँ हुए हैं न? वहाँ सिद्ध नहीं हुए, सिद्ध तो यहाँ हुए हैं। आठों कर्मों का अभाव होकर सिद्ध तो यहाँ हुए हैं। स्वरूप में स्थित है वह तो ठीक। परन्तु अब क्षेत्र यहीं का यहीं है या दूसरा क्षेत्र है उन्हें? समझ में आया? आहाहा! **निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं, और व्यवहारनयकर...** है न व्यवहार? दूसरा क्षेत्र है न? आहाहा!

सब लोकालोक को निःसन्देहपने से प्रत्यक्ष देखते हैं,... यह बात ली अब। भले वे क्षेत्र अग्र में हैं (लोकाग्र में हैं)। परन्तु इतने क्षेत्र को नहीं, लोकालोकक्षेत्र को जानते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा का ऐसा रच दे, ऐसा नहीं। उसे अन्दर भाव में उसका माहात्म्य आना चाहिए। आहाहा! टोडरमलजी ने भावभासन कहा है। भाव का भासन अर्थात्? भाव ऐसा है, ऐसा उसका ज्ञान आना चाहिए। ऐसी की ऐसी बातें धार ले, यह तो अनन्त बार किया है। आहाहा!

व्यवहारनयकर सब लोकालोक को निःसन्देहपने से प्रत्यक्ष देखते हैं, परन्तु पदार्थों में तन्मयी नहीं हैं... पर को जानते हैं परन्तु पर से तन्मय नहीं। तन्मय तो अपनी पर्याय में है। तन्मय—उसरूप। लोकालोक को जानते हुए उसरूप नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? **परन्तु पदार्थों में तन्मयी नहीं हैं, अपने स्वरूप में तन्मयी हैं।** यह सिद्ध करना है। आहाहा! लोकालोक को जानने पर भी, वे लोकालोक के साथ तन्मय नहीं है। तन्मय—उसरूप तो अपनी पर्याय में एकरूप है। आहाहा!

जो परपदार्थों में तन्मयी हो, तो पर के सुख-दुःख से आप सुखी-दुःखी होवे,... शिखर के क्षेत्र करते यह बात अधिक वर्णन की है। समझ में आया? ऊपर क्षेत्र की अपेक्षा यह अधिक वर्णन किया है। स्वयं रहे हैं, अपने भावस्वरूप में, यह तो बराबर है, परन्तु अब लोकालोक को जानते हैं न, वह व्यवहार से? तो व्यवहार से जानते हैं तो उस जानने की वस्तु के साथ तन्मय होकर जानते हैं? या अपने में रहकर जानते हैं? आहाहा! **जो परपदार्थों में तन्मयी हो, तो पर के सुख-दुःख से आप सुखी-दुःखी होवे,...** नारकी के दुःख को जानते हैं तो उसे वे तन्मय होकर (जाने तो) स्वयं को दुःख हो। ऐसा तो है नहीं। आहाहा! **ऐसा उनमें कदाचित् नहीं है। व्यवहारनयकर स्थूलसूक्ष्म सबको केवलज्ञानकर प्रत्यक्ष निःसन्देह जानते हैं,...** व्यवहारनय से **स्थूलसूक्ष्म सबको केवलज्ञानकर...** अर्थात् क्या कहते हैं? कि भाई! स्थूल चीज़ है, वह केवलज्ञान में ज्ञात होती है या नहीं? और सूक्ष्म है, वह ज्ञात होती है या नहीं? कि स्थूल-सूक्ष्म सबको जानते हैं।

प्रत्यक्ष निःसन्देह जानते हैं, किसी पदार्थ से राग-द्वेष नहीं है। एक दूसरी बात ली है अब। पर के साथ तन्मय नहीं, पर को जानने से राग-द्वेष नहीं। समझ में आया? **यदि राग के हेतु से किसी को जाने, तो वे राग-द्वेषमयी होवें, यह बड़ा दूषण है,...** राग के हेतु से दूसरे को जाने, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो अपने ज्ञान के आनन्द के स्वभाव से जानते हैं। आहाहा! **इसलिए यह निश्चय हुआ कि निश्चयनयकर अपने स्वरूप में निवास करते हैं, पर में नहीं,....** पर को जानने पर भी पर में निवास नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयनयकर अपने स्वरूप में निवास करते हैं, पर में नहीं, और अपनी

ज्ञायकशक्तिकर... ज्ञायकशक्ति अपने सामर्थ्य से। वह तो जानने के शक्ति के सामर्थ्य से **सबको प्रत्यक्ष देखते हैं...** पर है, इसलिए पर को देखते हैं, ऐसा नहीं है। **अपनी ज्ञायकशक्तिकर सबको प्रत्यक्ष देखते हैं...** आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह पर्याय की बात है, हों! प्रगट पर्याय। **अपनी ज्ञायकशक्तिकर...** भाई! यह तो परमात्मप्रकाश है। इसलिए इसे समझने के लिये जरा धीर होना चाहिए। धीर... धीर। आहाहा! **सबको प्रत्यक्ष देखते हैं, जानते हैं।**

जो निश्चयकर अपने स्वरूप में निवास कहा,... देखा! है न? वास्तव में अपने स्वरूप में निवास। पर को जानने पर भी, पर में निवास नहीं; पर को जानने पर भी, राग-द्वेष नहीं। ऐसा स्वरूप है, ऐसा सिद्ध करके नमस्कार करते हैं। आहाहा! ऐसा का ऐसा सिद्ध को नमस्कार (किया) ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! **इसलिए वह अपना स्वरूप ही आराधने योग्य है,...** लो! लोकालोक को जाने, इसलिए परस्वरूप आराधनेयोग्य है, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अपना जो शुद्धात्मस्वभाव, वह आराधनेयोग्य है। आहाहा! जो अपने में बसा हुआ है। भगवान अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि स्वभावरूप से बसा हुआ तत्त्व है। उसका आराधन करने से मुक्ति होती है। वह आराधनेयोग्य है। पर को जाने, इसलिए पर आराधनेयोग्य है, यह नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञायकशक्ति पर को जानती है। समझ में आया? परन्तु वह ज्ञायकशक्ति प्रगट कैसे हुई? अपना शुद्धात्मस्वभाव, जिसमें अनन्त गुण बसे हैं, अनन्त शान्ति, आनन्द बसे हैं। आहाहा! वह गूढ स्वभाव है, गम्भीर स्वभाव है। जिसका स्वरूप ही शक्तिमय स्वभावमय है, उसका आराधन करना। आहाहा! जिसमें बसे हुए हैं, उसका आराधन करना। आहाहा! लोकालोक यहाँ नहीं, देव-गुरु यहाँ नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञायकशक्ति वळे, तब ज्ञायकशक्ति को पर्याय गिनना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय। पर्याय है न यहाँ। **ज्ञायकशक्तिकर सबको प्रत्यक्ष देखते हैं,...** यह तो वर्तमान पर्याय की बात है। आहाहा!

जो निश्चयकर अपने स्वरूप में निवास कहा,... इस गाथा का सार यह। अन्तिम भावार्थ कहते हैं न प्रत्येक में? कि इसमें क्या निकालना तब? **अपने स्वरूप में निवास**

कहा, इसलिए वह अपना स्वरूप ही आराधने योग्य है, यह भावार्थ हुआ। आहाहा! यह परमात्मप्रकाश की मांगलिक की विधि अलग प्रकार की है। समयसार में तो कहा है, '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' वहाँ तो प्रतिघात के स्थान पर कहकर सिद्ध को पर्याय में स्थापित किया। श्रोता की पर्याय में (स्थापित किया), अपनी पर्याय में स्थापित किया। अब पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित किया तो उसका लक्ष्य द्रव्य पर जायेगा। ऐसे द्रव्य के लक्ष्य से अब सुन, ऐसा कहते हैं। **समयसार कहूँगा।** आहाहा! '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' फिर तो सिद्ध की स्थिति का वर्णन किया है। जैसे यहाँ सिद्ध का वर्णन किया है ऐसे। वहाँ '**ध्रुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते वोच्छामि...**' समयप्राभृत कहूँगा। '**समयपाहुडमिणमो सुदकेलीभणिदं।**' श्रुतकेवली और केवलियों से कही हुई बात को कहूँगा। आहाहा! चौथा पद श्रुतकेवली अर्थात् अकेले श्रुतकेवली नहीं, ऐसा। हों! कितने ही उसमें यह निकालते हैं कि यह तो श्रुतकेवली इतना शब्द है। परन्तु टीका में श्रुतकेवली और केवली दो अर्थ निकाले हैं। समझ में आया? और इसका अर्थ वापस नियमसार में किया है। नियमसार की पहली गाथा है न? है नियमसार? पहली गाथा।

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं॥१॥

दोनों अलग किये। '**केवलिसुदकेवलीभणिदं**' अर्थात् वहाँ दो निकाले। '**सुदकेवलीभणिदं**' है न चौथा पद वहाँ? '**सुदकेवलीभणिदं**' यहाँ '**केवली**' और '**सुदकेवलीभणिदं**' इसी और इसी का अर्थ निकाला, अर्थात् श्रुतकेवली के दो (अर्थ) निकाले। केवली और श्रुतकेवली। उनकी कही हुई बात मैं कहूँगा। आहाहा! स्वयं सब कहने को समर्थ है, परन्तु निर्मान है। भगवान केवली परमात्मा और श्रुतकेवलियों ने कहा है, वह मैं कहूँगा। आहाहा! यह पाँच गाथायें हुई।

छठवीं में अब उनके गुण को स्मरण करते हैं। यह क्षेत्र का निवास अपने में है... अब उनकी पर्याय है न? ... गुण अर्थात् पर्याय। उनकी—भगवान की–सिद्ध की पर्याय कैसी है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो मोक्ष का मण्डप रोपने को खड़े हुए हैं। परमात्मप्रकाश—परमात्मा होने का... आहाहा! ... मुद्दत है परमात्मा होने की, परन्तु परमात्मा होने का... आहाहा!

गाथा - ६

अथ निष्कलात्मानं सिद्धपरमेष्ठिनं नत्वेदानीं तस्य सिद्धस्वरूपस्य तत्प्राप्त्युपायस्य च प्रतिपादकं सकलात्मानं नमस्करोमि -

६) केवल-दंसण-णाणमय केवल-सुक्ख-सहाय।
जिणवर वंदउँ भत्तियए जेहिं पयासिय भाव।।६।।

केवलदर्शनज्ञानमयान् केवलसुखस्वभावान्।
जिनवरान् वन्दे भक्त्या यैः प्रकाशिता भावाः।।६।।

केवलदर्शनज्ञानमयाः केवलसुखस्वभावा ये तान् जिनवरानहं वन्दे। कया। भक्त्या। यैः किं कृतम्। प्रकाशिता भावा जीवाजीवादिपदार्था इत। इतो विशेषः। केवलज्ञानाद्यनन्त-चतुष्टयस्वरूपपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपाभेदरत्नत्रयात्मकं सुखदुःखजीवितमरण-लाभालाभशत्रुमित्रसमानभावनाविनाभूतवीतरागनिर्विकल्पसमाधिपूर्वं जिनोपदेशं लब्ध्वा पश्चादनन्तचतुष्टयस्वरूपा जाता ये। पुनश्च किं कृतम्। यैः अनुवादरूपेण जीवादिपदार्थाः प्रकाशिताः। विशेषेण तु कर्माभावे सति केवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्वरूपलाभात्मको मोक्षः, शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मको मोक्षमार्गश्च, तानहं वन्दे। अत्रार्हद्गुण-स्वरूपस्वशुद्धात्मस्वरूपमेवोपादेयमिति भावार्थ :।।६।।

आगे निरंजन, निराकार, निःशरीर सिद्धपरमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ -

जो ज्ञान दर्शनमयी केवल सुखस्वभावी जिनवरा।
सब भाव के हैं प्रकाशक है भक्ति से वन्दन सदा।।६।।

अन्वयार्थ :- [केवलदर्शनज्ञानमयाः] जो केवलदर्शन और केवलज्ञानमयी हैं, [केवलसुखस्वभावाः] तथा जिनका केवलसुख ही स्वभाव है और [यैः] जिन्होंने [भावाः] जीवादिक सकल पदार्थ [प्रकाशिताः] प्रकाशित किये, उनको मैं भक्त्या भक्ति से [वन्दे] नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ :- केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयस्वरूप जो परमात्मतत्त्व है, उसके यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान और अनुभव, इन स्वरूप अभेदरत्नत्रय वह जिनका स्वभाव है, और सुख-दुःख, जीवित-मरण, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र, सबमें समान भाव होने से उत्पन्न

हुई वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि उसके कहनेवाले जिनराज के उपदेश को पाकर अनंत चतुष्टयरूप हुए, तथा जिन्होंने यथार्थ जीवादि पदार्थों का स्वरूप प्रकाशित किया तथा जो कर्म का अभाव है वह वही केवलज्ञानादि अनंत गुणरूप मोक्ष और जो शुद्धात्मा का यथार्थ श्रद्धान–ज्ञान–आचरणरूप अभेदरत्नत्रय वही हुआ मोक्षमार्ग ऐसे मोक्ष और मोक्षमार्ग को भी प्रगट किया, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। इस व्याख्यान में अरहंतदेव के केवलज्ञानादि गुणस्वरूप जो शुद्धात्मस्वरूप है, वही आराधने योग्य है, यह भावार्थ जानना।।६।।

गाथा - ६ पर प्रवचन

आगे निरंजन, निराकार, निःशरीर सिद्धपरमेष्ठी को... अर्थात् पर्याय में सिद्ध कैसे हैं ? निरंजन हैं, निराकार है, निःशरीर है। सिद्ध परमेष्ठी, उन्हें **नमस्कार करता हूँ।** अन्तिम लेंगे। **इस व्याख्यान में अरहन्तदेव के केवलज्ञानादि गुणस्वरूप जो शुद्धात्मस्वरूप है, वही आराधनेयोग्य है,...** अन्तिम शब्द है। बहुत टीका.... छठवीं (गाथा)

६) केवल–दंसण–णाणमय केवल–सुक्ख–सहाय।
जिणवर वंदउँ भत्तियए जेहिँ पयासिय भाव।।६।।

अन्वयार्थ :- जो केवलदर्शन और केवलज्ञानमयी हैं,... देखा! केवलज्ञान, केवलदर्शनवाले नहीं। मयी—केवलज्ञान, केवलदर्शनमयी है। आहाहा! दिगम्बर सन्त वे तो केवली के पथानुगामी! केवली को खड़ा रखा है! **केवलदर्शन और केवलज्ञानमयी हैं, तथा जिनका केवलसुख ही स्वभाव है...** 'मयी' कहकर फिर यहाँ केवलसुखमयी न कहकर केवलसुखस्वभाव (कहा)। **जिनका केवलसुख ही स्वभाव है...** आहाहा! अकेला आनन्द जिसका स्वभाव है। सिद्ध भगवान का... आहाहा! यह गुणों का वर्णन है। वह निवास का था। आहाहा! अपने एक क्षेत्र में रहे हैं, परन्तु उनकी गुण की दशा कैसी है ? कि केवलदर्शन, केवलज्ञानमयी भगवान है।

जिनका केवलसुख ही स्वभाव है... अकेला आनन्दस्वभाव है। आहाहा! सिद्ध

भगवान की पर्याय में अकेला आनन्दस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? उसमें केवलदर्शन और ज्ञानमयी कहकर, यह उनका आनन्दस्वभाव है, (ऐसा कहते हैं)। अतीन्द्रिय आनन्द की स्वभावदशा में रमते हैं। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि यह लोकालोक को जानते हैं, इसलिए सुखी—ऐसा नहीं। वे स्वयं ही केवलसुखमयी है। सुख ही जिनका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

केवलसुख ही स्वभाव है और जिन्होंने जीवादिक सकल पदार्थ प्रकाशित किये, उनको मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ। अरिहन्त के केवलज्ञान का वर्णन करके सिद्ध का वर्णन ऐसा करते हैं। अरिहन्त का वर्णन है। कहा है, ऐसा कहा न! आहाहा! तीन में सिद्धों को नमस्कार (किया)। भूत, भविष्य, वर्तमान। चौथे में मुनि मोक्ष में पधारे, महा गणधर आदि। पाँचवें में निवासस्थान की अस्ति, छठवें में अरिहन्त के गुणों का वर्णन करके अरिहन्त को नमस्कार करते हैं। इसलिए सिद्ध का आया, मुनि का आया। अरिहन्त आये न! अब तीन पद रहे, वह सातवीं गाथा में डालेंगे। आचार्य, उपाध्याय, साधु। आहाहा! पहले सिद्ध को लिया, फिर अरिहन्त को लिया और फिर (आचार्य)। समझ में आया? यह तो भगवान की कथा है, भाई! यह कहीं वार्ता नहीं। आहाहा! भगवान के दरबार में कैसे प्रविष्ट होना, उसकी यह बात है।

क्या कहा? **जीवादिक सकल पदार्थ प्रकाशित किये,...** अरिहन्त लिये। सिद्ध को कहाँ प्रकाशना है? सिद्ध की व्याख्या हुई। अब यहाँ अरिहन्त लिये। आहाहा! जिसने जीवादि सकल पदार्थ तीन काल के—लोक के जिसने प्रकाशित किये—अरिहन्त परमात्मा... आहाहा! उन्हें मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ। ओहो! **भक्ति से नमस्कार करता हूँ।** बेगार से नहीं, उन्हें बहुमान से नमस्कार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो परमात्मतत्त्व है,... केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टयस्वरूप वर्तमान प्रगट, **जो परमात्मतत्त्व है, उसके यथार्थ...** यह त्रिकाल की बात की। **केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो परमात्मतत्त्व है, त्रिकाल, उसके यथार्थ श्रद्धान...** उसकी यथार्थ श्रद्धा। आहाहा!

मुमुक्षु : पहली त्रिकाल ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। प्रगट होगी उससे। परन्तु यह किसका? केवलज्ञान आदि

अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप जो स्वभाव, ऐसा परमात्मतत्त्व द्रव्य **उसके यथार्थश्रद्धान,...** ऐसा है न? आहाहा!

मुमुक्षु : परमात्मतत्त्व कैसा है? कि केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शक्तिरूप से, ऐसा यहाँ अभी पहले यह लेना। फिर प्रगट कैसे होते हैं, यह लेना है। अरिहन्त को केवलज्ञानादि कैसे प्रगट हुए? यह बात लेते हैं। उपाय भी बताते हैं। यह कहते हैं।

केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो परमात्मतत्त्व है, त्रिकाल, उसके यथार्थ श्रद्धान... आहाहा! अनन्त चतुष्टयस्वरूप परमात्मा है, उसका विश्वास आना अन्दर। आहाहा! ऐसा जो श्रद्धान। पूर्ण परमात्मतत्त्व की पाचनशक्ति श्रद्धान में है। समझ में आया? उस परमात्मतत्त्व का ज्ञान। अनन्त केवलज्ञान चतुष्टयस्वरूप जो परमात्मा त्रिकाली है, उसका ज्ञान। आहाहा! और परमात्मतत्त्व का **अनुभव...** वह आचरण। अनुभव का आचरण, चारित्र। परमात्मतत्त्व का आचरण, पूर्णानन्द के नाथ का आचरण, उसका अनुभव। 'अनुभव लक्ष्य प्रतीत....' श्रीमद् में आता है न? लक्ष्य, वह ज्ञान; प्रतीति, वह श्रद्धा; अनुभव वह चारित्र, वहाँ ऐसे तीन लिये हैं। आत्मसिद्धि में आता है। 'अनुभव लक्ष्य प्रतीत।' लक्ष्य वह ज्ञान; प्रतीति, वह श्रद्धा; अनुभव वह चारित्र। वहाँ... अनुभव चारित्र। वह चारित्र अर्थात् आनन्दस्वरूप भगवान में रमना, उसका नाम चारित्र। यह पंच महाव्रत और नग्नपना, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! अब मोक्षमार्ग भी साथ में बताते हैं।

इन स्वरूप अभेदरत्नत्रय वह जिनका स्वभाव है,... देखा! आहाहा! ऐसा अभेदरत्नत्रय जिनका स्वभाव है। यह पहला, इसका बाद में। **और सुख-दुःख, जीवित-मरण, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र सबमें समान भाव होने से उत्पन्न हुई वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि उसके कहनेवाले जिनराज के उपदेश को पाकर...** ऐसे कहनेवाले के उपदेश को पाकर **अनन्त चतुष्टयरूप हुए,...** ऐसा कहते हैं।

फिर से। जो यह परमात्मतत्त्व त्रिकाल है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और उसका अनुभव, उस **स्वरूप अभेदरत्नत्रय वह जिनका स्वभाव है,...** जिसका स्वभाव है। **और**

सुख-दुःख,... संयोग अनुकूल-प्रतिकूल **जीवित-मरण,...** प्राण रहे या न रहे। **लाभ-अलाभ,...** अनुकूल-प्रतिकूल **शत्रु-मित्र सबमें समान भाव...** आहाहा! **सबमें समान भाव होने से उत्पन्न हुई वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि...** लो! **सबमें समान भाव होने से उत्पन्न हुई वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि उसके कहनेवाले जिनराज के उपदेश को...** आहाहा! ऐसा कहनेवाले जिनराज के उपदेश को प्राप्त करके **अनन्त चतुष्टयरूप हुए,...** ऐसे जिनराज का उपदेश जिसे मिला और अनन्त चतुष्टय हुए। आहाहा! ऐसी वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि। लोगस्स में आता है, 'समाहिवरमुत्तंदिंतु' परन्तु उस समाधि का अर्थ समझे नहीं। वह यह। वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि। आहाहा!

उसके कहनेवाले जिनराज के उपदेश को... भगवान ने ऐसा कहा। **पाकर अनन्त चतुष्टयरूप हुए...** लो! जो अनन्त शक्तिरूप से था, वह व्यक्तरूप हुए। आहाहा! **तथा जिन्होंने यथार्थ जीवादि पदार्थों का स्वरूप प्रकाशित किया...** अरिहन्त लेना है न? अरिहन्त लेना है न वापस। **जिन्होंने यथार्थ जीवादि पदार्थों का स्वरूप प्रकाशित किया...** प्ररूपणा की। **तथा जो कर्म का अभाव है, वह वही केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप मोक्ष...** मोक्ष और मोक्ष का मार्ग—दो को याद करके नमस्कार करते हैं। आहाहा!

जो कर्म का अभाव है, वह वही केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप मोक्ष और जो शुद्धात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय वही हुआ मोक्षमार्ग... आहाहा! इन दो को कहनेवाले यह। यह अरिहन्त ने कहा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? यह मोक्षमार्ग और मोक्ष। **और मोक्षमार्ग को भी प्रगट किया, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** आहाहा! जिसने परमात्मतत्त्व की यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान और अनुभव करके अभेदरत्नत्रयी समभाव से वीतराग समाधि हुई और ऐसा जिनराज का उपदेश, उसे पाकर और अनन्त चतुष्टय परमात्मा का उपदेश ऐसा था, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

पूर्णानन्द की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र जो रत्नत्रय, वह परमात्मा का उपदेश था। आहाहा! उसे पाकर अनन्त चतुष्टय हुए। आहाहा! अर्थात् वीतराग का उपदेश कैसा होता है, यह बात साथ में ली। आहाहा! जिसने परमात्मतत्त्व पूर्ण है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र अभेदरत्नत्रय उत्पन्न हुए—समाधि पूर्ण, ऐसा जिनका उपदेश है। आहाहा!

ऐसे उपदेश को प्राप्त करके जो स्वयं अनन्त चतुष्टय हुए। उस अभेदरत्नत्रय से हुए, ऐसा साथ में आया। आहाहा! उस व्यवहार को तो याद भी नहीं किया। वे कहें, नहीं। व्यवहारमार्ग है... व्यवहारमार्ग है। यहाँ कहते हैं, भगवान ने व्यवहार को मार्ग कहा ही नहीं। आहाहा! उन्होंने तो परमसमाधिरूप कहनेवाले... ऐसी वीतराग परमसमाधि के कहनेवाले भगवान। आहाहा!

देखो! ऐसा उपदेश वीतराग का होता है। जिनवाणी में यह होता है। चाहे कोई चाहे जो वाणी हो, परन्तु यह उनका वीतराग का उपदेश अन्दर है। आहाहा! कहा न उसमें? वीतरागता तात्पर्य कहा है। पंचास्तिकाय (गाथा) १७२। पूरे शास्त्र का तात्पर्य वीतराग... वीतराग... वीतराग है। ऐसा जिसने उपदेश किया है। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प समाधि के कहनेवाले। आहाहा! सूक्ष्म बाते हैं, भाई! यह परमात्मप्रकाश की शैली ही अलग प्रकार की है। आहाहा!

जिनराज ने उपदेश किया कैसा? कहते हैं। आहाहा! जिसे परमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव अभेदरत्नत्रय हुए, समभाव प्रगट हुआ और वीतराग और समाधि (प्रगट हुए), उसके कहनेवाले **जिनराज के उपदेश को पाकर अनन्त चतुष्टयरूप हुए,...** आहाहा! अरिहन्त की बात है, हों! यह। **जिन्होंने यथार्थ जीवादि पदार्थों का स्वरूप प्रकाशित किया तथा जो कर्म का अभाव है वह वही केवलज्ञानादि...** अब यह मोक्ष का वर्णन है। मोक्ष भी उसे कहते हैं, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसा मोक्ष और मोक्ष का मार्ग भगवान ने कहा है।

और जो शुद्धात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय वही हुआ मोक्षमार्ग... आहाहा! पहले वहाँ कहा था न? परमात्मतत्त्व। यह शुद्ध आत्मा। शुद्ध आत्मा नित्यानन्द प्रभु, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, आचरण, **वही हुआ मोक्षमार्ग, ऐसे मोक्ष और मोक्षमार्ग को भी प्रगट किया,...** अरिहन्त ने। अरिहन्त भगवान ने यह प्रगट किया। **उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** आहाहा!

इस व्याख्यान में अरहन्तदेव के केवलज्ञानादि गुणस्वरूप जो शुद्धात्मस्वरूप है, वही आराधने योग्य है,... अरिहन्त के केवलज्ञानादि हैं, वे आराधनेयोग्य हैं। ऐसा कहकर, इसका भावार्थ कहा है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ७

अथानन्तरं भेदाभेदरत्नत्रयाराधकानाचार्योपाध्यायसाधून्नमस्करोमि -

७) जे परमप्पु णियंति मुणि परम-समाहि धरेवि।
परमाणंदह कारणिण तिण्णि वि ते वि णवेवि।।७।।

ये परमात्मानं पश्यन्ति मुनयः परमसमाधिं धृत्वा।
परमानन्दस्य कारणेन त्रीनपि तानपि नत्वा।।७।।

जे परमप्पु णियंति मुणि ये केचन परमात्मानं निर्गच्छन्ति स्वसंवेदनज्ञानेन जानन्ति मुनयस्तपोधनाः। किं कृत्वा पूर्वम्। परमसमाहि धरेवि रागादिविकल्परहितं परमसमाधिं धृत्वा। केन कारणेन। परमाणंदह कारणिण निर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्न-सदानन्दपरमसमरसीभाव-सुखरसास्वादनिमित्तेन तिण्णि वि ते वि णवेवि त्रीनप्याचार्योपाध्यायसाधून् नत्वा नमस्कृत्येत्यर्थः। अतो विशेषः। अनुपचरितासद्भूतव्यवहारसंबन्धः द्रव्यकर्मनोकर्मरहितं तथैवाशुद्धनिश्चयसंबन्धः मतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायरहितं च यच्चिदानन्दैकस्वभावं शुद्धात्मतत्त्वं तदेव भूतार्थं परमार्थरूपसमयसारशब्दवाच्यं सर्वप्रकारोपादेयभूतं तस्माच्च यदन्यत्तद्धेयमिति। चलमलिनावगाढरहितत्वेन निश्चयश्रद्धानबुद्धिः सम्यक्त्वं तत्राचरणं परिणमनं दर्शनाचारस्तत्रैव संशयविपर्यासानध्यवसायरहितत्वेन स्वसंवेदनज्ञानरूपेण ग्राहकबुद्धिः सम्यग्ज्ञानं तत्राचरणं परिणमनं ज्ञानाचारः, तत्रैव शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितत्वेन नित्यानन्दमयसुखरसास्वादस्थिरानु-भवनं च सम्यक्चारित्रं तत्राचरणं परिणमनं चारित्राचारः, तत्रैव परद्रव्येच्छानिरोधेन सहजानन्दैक-रूपेण प्रतपनं तपश्चरणं तत्राचरणं परिणमनं तपश्चरणाचारः, तत्रैव शुद्धात्मस्वरूपे स्वशक्त्यनव-गूहनेनाचरणं परिणमनं वीर्याचार इति निश्चयपञ्चाचाराः। निःशङ्काद्यष्टगुणभेदो बाह्यदर्शनाचारः, कालविनयाद्यष्टभेदो बाह्यज्ञानाचारः, पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितित्रिगुप्तिनिर्ग्रन्थरूपो बाह्यचारित्राचारः, अनशनादिद्वादशभेदरूपो बाह्यतपश्चरणाचारः, बाह्यस्वशक्त्यनवगूहनरूपो बाह्यवीर्याचार इति। अयं तु व्यवहारपञ्चाचारः पारंपर्येण साधक इत। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्-श्रद्धानज्ञानानुष्ठानबहिर्द्रव्येच्छानिवृत्तिरूपं तपश्चरणं स्वशक्त्यनवगूहनवीर्यरूपाभेदपञ्चाचार-रूपात्मकं शुद्धोपयोगभावनान्तर्भूतं वीतरागनिर्विकल्पसमाधिं स्वयमाचरन्त्यन्यानाचारयन्तीति भवन्त्याचार्यास्तानहं वन्दे। पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु मध्ये शुद्धजीवास्तिकायशुद्ध-जीवद्रव्यशुद्धजीवतत्त्वशुद्धजीवपदार्थसंज्ञं स्वशुद्धात्मभावमुपादेयं तस्माच्चान्यद्धेयं कथयन्ति, शुद्धात्मस्वभावसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकं निश्चयमोक्षमार्गं च ये कथयन्ति

ते भवन्त्युपाध्यायस्तानहंवन्दे। शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरण-तपश्चरणरूपाभेदचतुर्विधनिश्चयाराधनात्मकवीतरागनिर्विकल्पसमाधिं ये साधयन्ति ते भवन्ति साधवस्तानहं वन्दे। अत्रायमेव ते समाचरन्ति कथयन्ति साधयन्ति च वीतरागनिर्विकल्पसमाधिं तमेवोपादेयभूतस्य स्वशुद्धात्मतत्त्वस्य साधकत्वादुपादेयं जानीहीति भावार्थ : ।।७।। इति प्रभाकरभट्टस्य पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारकरणमुख्यत्वेन प्रथममहाधिकारमध्ये दोहकसूत्रसप्तकं गतम्।

आगे भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक जो आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ –

जो मुनि परमानन्द पाते धार परम समाधि को।
परमात्मा को देखते करते नमन उन तीन को।।७।।

अन्वयार्थ :– [ये मुनयः] जो मुनि [परमसमाधिं] परमसमाधि को [धृत्वा] धारण करके सम्यग्ज्ञानकर [परमात्मानं] परमात्मा को [पश्यन्ति] देखते हैं। किसलिए [परमानंदस्य कारणेन] रागादि विकल्प रहित परमसमाधि से उत्पन्न हुए परमसुख के रस का अनुभव करने के लिए [तान् अपि] उन [त्रीन् अपि] तीनों आचार्य, उपाध्याय, साधुओं को भी [नत्वा] मैं नमस्कार करके परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ।

भावार्थ :– अनुपचरित अर्थात् जो उपचरित नहीं है, इसी से अनादि सम्बन्ध है, परन्तु असद्भूत (मिथ्या) है, ऐसा व्यवहारनयकर द्रव्यकर्म, नोकर्म का सम्बन्ध होता है, उससे रहित और अशुद्ध निश्चयनकर रागादि का सम्बन्ध है, उससे तथा मतिज्ञानादि विभावगुण के सम्बन्ध से रहित और नर-नारकादि चतुर्गतिरूप विभावपर्यायों से रहित ऐसा जो चिदानन्दचिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व है वही सत्य है। उसी को परमार्थरूप समयसार कहना चाहिए। वही सब प्रकार आराधने योग्य है। उससे जुदी जो परवस्तु है, वह सब त्याज्य है। ऐसी दृढ़ प्रतीति चंचलता रहित निर्मल अवगाढ़ परम श्रद्धा है, उसको सम्यक्त्व कहते हैं, उसका जो आचरण अर्थात् उस स्वरूप परिममन वह दर्शनाचार कहा जाता है और उसी निजस्वरूप में संशय-विमोह-विभ्रमरहित जो स्वसंवदेनज्ञानरूप ग्राहकबुद्धि वह सम्यग्ज्ञान हुआ, उसका जो आचरण अर्थात् उसरूप परिममन वह ज्ञानाचार है, उसी शुद्ध स्वरूप में शुभ-अशुभ समस्त संकल्प रहित जो नित्यानन्दमय निजरस का आस्वाद, निश्चल, अनुभव, वह सम्यक्चारित्र है, उसका जो आचरण, उसरूप परिणमन, वह चारित्राचार है, उसी परमानन्द स्वरूप में परद्रव्य की

इच्छा का निरोधकर सहज आनन्दरूप तपश्चरणस्वरूप परिणमन वह तपश्चरणाचार है और उसी शुद्धात्मस्वरूप में अपनी शक्ति को प्रकटकर आचरण परिणमन वह वीर्याचार है। यह निश्चय पंचाचार का लक्षण कहा। अब व्यवहार का लक्षण कहते हैं–निःशंकित को आदि लेकर अष्ट अंगरूप बाह्यदर्शनाचार, शब्द शुद्ध, अर्थ शुद्ध आदि अष्ट प्रकार बाह्य ज्ञानाचार, पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्तिरूप व्यवहार चारित्राचार, अनशनादि बारह तपरूप तपाचार और अपनी शक्ति प्रगटकर मुनिव्रत का आचरण वह व्यवहार वीर्याचार है। यह व्यवहार पंचाचार परम्पराय मोक्ष का कारण है, और निर्मल ज्ञान–दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मतत्त्व उसका यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण तथा परद्रव्य की इच्छा का निरोध और निजशक्ति का प्रगट करना ऐसा यह निश्चय पंचाचार साक्षात् मुक्ति का कारण है। ऐसे निश्चय व्यवहाररूप पंचाचारों को आप आचरें और दूसरों को आचरवावें ऐसे आचार्यों को मैं वंदता हूँ। पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, सप्त तत्त्व, नवपदार्थ हैं, उनमें निज शुद्ध जीवास्तिकाय, निजशुद्ध जीवद्रव्य, निजशुद्ध जीवतत्त्व, निज शुद्ध जीवपदार्थ, जो आप शुद्धात्मा है, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है, अन्य सब त्यागने योग्य हैं, ऐसा उपदेश करते हैं, तथा शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक्श्रद्धान–ज्ञान–आचरणरूप अभेद रत्नत्रय है, वही निश्चयमोक्षमार्ग है, ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं, ऐसे उपाध्यायों को मैं नमस्कार करता हूँ, और शुद्धज्ञान स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व की आराधनारूप वीतराग[१] निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं, उन साधुओं को मैं वंदता हूँ। वीतराग[१] निर्विकल्प समाधि को जो आचरते हैं, कहते हैं, साधते हैं, वे ही साधु हैं। अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ये ही पंचपरमेष्ठी वंदने योग्य हैं, ऐसा भावार्थ है।।७।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल १४, शुक्रवार,
दिनांक-११-०६-१९७६, गाथा-७, प्रवचन-६

सातवीं गाथा। परमात्मप्रकाश।

---

१. ये पाँचों परमेष्ठी भी जिस वीतरागनिर्विकल्पसमाधि को आचरते हैं, कहते हैं और साधते हैं; तथा जो उपादेयरूप निजशुद्धात्मतत्त्व की साधनेवाली है, ऐसी निर्विकल्प समाधि को ही उपादेय जानो। (यह अर्थ संस्कृत के अनुसार किया गया है।)

७) जे परमप्पु णियंति मुणि परम–समाहि धरेवि।
परमाणंदह कारणिण तिण्णि वि ते वि णवेवि।।७।।

अन्वयार्थ :- आगे भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक... निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय, दोनों का आराधक। है न? निश्चय को आराधता है, वहाँ व्यवहार है। उसे भी आराधने का उपचार आता है। है न वह वस्तु? निश्चयरत्नत्रय है, वहाँ व्यवहाररत्नत्रय पूर्ण केवलज्ञानी न हो, उन्हें होता है। केवलज्ञान हुआ, उन्हें व्यवहार नहीं होता। मिथ्यादृष्टि को व्यवहार नहीं होता।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि और केवली दोनों समान!

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली पूर्ण वीतराग हो गये, इसलिए व्यवहार नहीं और मिथ्यादृष्टि को निश्चय नहीं है, इसलिए व्यवहार नहीं है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। इसमें आयेगा। परम्परा व्यवहार। यह विवाद आया है न कल? व्यवहार को परम्परा मोक्ष का कारण कहा। परन्तु किसे? यह आयेगा, अभी ही आयेगा।

भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक... जिसने वर्तमान में निश्चय सम्यग्दर्शन, आनन्द के नाथ को अन्दर में पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु की (लीनता) अर्थात् शान्ति द्वारा जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है। वह सम्यक् निश्चय है, वह वीतरागी पर्याय है और आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान पूर्णानन्द प्रभु का स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन (हुआ है), वह निश्चय सम्यग्ज्ञान है। वह निश्चयरत्नत्रय का वह भाग है। और स्वरूप में सम्यग्दर्शन–ज्ञानसहित स्वरूप का आराधन करके अन्दर में स्थिर होना। आनन्द में स्थिरता, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान सम्यग्दर्शन–ज्ञान में प्रतीति और जानने में आया, फिर उसमें स्थिर होना। आनन्दस्वरूप भगवान में स्थिर होना, वह चारित्र है। वह निश्चयचारित्र। इसलिए उसे अभेदरत्नत्रय कहा। उसके साथ व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प होता है। देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प / राग, शास्त्र का ज्ञान रागवाला और पंच महाव्रत के परिणाम आदि राग, उसे व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं। परन्तु (जिसे) निश्चय हो उसे।

अभी विवाद यह है न? व्यवहाररत्नत्रय परम्परा से मोक्ष का कारण है। इसलिए

फिर निश्चय बिना का व्यवहार (मोक्ष का कारण है), यह बात है ही नहीं। ऐसा व्यवहार तो नौवें ग्रैवेयक (गया, वह पहले) अनन्त बार किया है। वह व्यवहार व्यवहाररूप से आराधनेयोग्य नहीं है। आहाहा! जिसे आत्मदर्शन निर्विकल्पस्वरूप भगवान आत्मा की जिसे वीतरागी पर्याय, वीतरागस्वरूप भगवान, जिनस्वरूपी प्रभु, उसकी श्रद्धा, वीतरागी पर्याय, निर्विकल्पदशा, ऐसी श्रद्धा जिसे प्रगट हुई है, वह निश्चय, उसे व्यवहार का विकल्प होता है। समझ में आया? यह अर्थ करने में विवाद, पक्ष में विवाद पूरा। आहाहा! क्या हो?

निश्चय से तो व्यवहाररत्नत्रय हेय है। परन्तु यहाँ साथ में लेकर दोनों का प्रमाणज्ञान कराया है। अर्थात्? निश्चय स्वभाव का अभेदरत्नत्रय, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। ऐसा कहेंगे। साक्षात् शब्द है। और उसमें व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, है तो विकल्प, परन्तु वह परम्परा मोक्ष का (कारण है)। अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि को वह हेय है परन्तु आये बिना रहता नहीं। इसलिए व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आराधनेयोग्य है, ऐसा व्यवहार से कहा है। समझ में आया? ऐसी बात है। यह पहले इसका अर्थ हुआ। **भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक...** यह इसकी व्याख्या है, इतने शब्द की। आहाहा! पहले भेद लिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले व्यवहार होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है नहीं, साथ में होता है। भाषा ली है न! वरना है क्या? द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा में नहीं? ४७। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' दो प्रकार का निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्ग, वह ध्यान में प्राप्त होता है। अर्थात् कि स्वभाव जो भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द की शक्तिवाला जो तत्त्व प्रभु, उसमें अन्तर्मुख होकर, ध्यान में लेकर जो सम्यग्दर्शन होता है, वह निश्चय है। साथ में राग बाकी रहता है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप दिया है। ४७ गाथा। ऐसी बात है, भाई! खींचतान करे तो कहीं तत्त्व तो है, वह रहेगा (बदलेगा नहीं)। आहाहा!

आगे कहेंगे कि त्रिकाल जो भूतार्थ है, भूतार्थ शब्द है न? वह यहाँ टीका में

भूतार्थ लिया है। अर्थ में सत्य लिया है। भूतार्थ ऐसा भगवान आत्मा। जो समयसार की ११वीं गाथा में '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' (कहा)। भगवान पूर्णस्वरूप आनन्द का नाथ सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु, ऐसा जो भूतार्थ अर्थात् सत्यार्थ अर्थात् सत्य वस्तु मौजूद है। आहाहा! उसका आश्रय लेकर श्रद्धा होती है, वह सम्यग्दर्शन। वह निश्चय और जो भूतार्थ को सत्य कहा है। त्रिकाल वस्तु है, वह सत्य है। पर्यायादि अभूतार्थ कहकर असत्य कहा है। आहाहा! '**ववहारोऽभूदत्थो**' कहा है न? पर्यायमात्र अभूतार्थ है। अभूतार्थ किस प्रकार? निश्चय का आराधन करने को अपना प्रयोजन—सम्यग्दर्शन की सिद्धि करने के लिये स्व का आश्रय लेना, उसमें पर्याय का आश्रय छोड़ना है; इसलिए गौण करके उसे अभूतार्थ कहा है; और त्रिकाली को मुख्य करके भूतार्थ को सत्य कहा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में भूतार्थ वस्तु त्रिकाल, अनन्त-अनन्त शक्ति के सामर्थ्य का दल, वही भूतार्थ और वह सत्य है। और उस सत्य का आश्रय, वह सम्यग्दर्शन है। पश्चात् पर्याय को अभूतार्थ कहा, पर्याय को अभूतार्थ कहा। विकल्प तो अभूतार्थ है। आहाहा! त्रिकाली मुख्य को निश्चय कहकर; पर्याय को गौण करके व्यवहार कहा है। अभाव करके व्यवहार कहा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। निश्चय और व्यवहार यह यहाँ साथ में लिया है। वहाँ जो मुख्य करके निश्चय और गौण करके व्यवहार (कहा), उसे यहाँ प्रमाणज्ञान कराने के लिये साथ में लिया है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ यह पहले शब्द का अर्थ होता है।

भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक... अर्थात् प्रमाणज्ञान से बात की है और जहाँ भूतार्थ, वह सत्य है; पर्याय, वह अभूतार्थ है, यह निश्चय की मुख्यता का आश्रय लेने के लिये पर्याय को गौण करके अभूतार्थ कहा है। पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अब इतना सब सीखना। आहाहा! अरे! जन्म-मरण में दुःखी चौरासी के अवतार (करके)। भवभ्रमण का चक्र सिर पर। अनन्त भव किये। भवसिन्धु—चौरासी के अवतार का महासमुद्र। आहाहा! उसे उल्लंघना है न! यहाँ उल्लंघना है न अब? भाई! चैतन्यसिन्धु भगवान 'कहे विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ...' एक आयेगा इसमें। शुद्ध-बुद्ध आता है न? शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव। एक का अर्थ रह गया है। उस ओर।

उस ओर देखो। शुद्ध ज्ञानस्वभाव है न? तीसरी लाईन है। उस ओर। है? वहाँ एक शब्द रह गया है। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव, ऐसा चाहिए। शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव। सब जगह आता है। पाठ में ऐसा है, देखो! शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव। है? अन्दर में है। आहाहा!

त्रिकाली शुद्ध ज्ञानस्वरूप और एक स्वरूप। यह तो धर्म बात है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! श्रीमद् में ऐसा कहा है न?

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम,
दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम॥

शुद्ध है। वह प्रभु पवित्र है। बुद्ध है—ज्ञानघन है। चैतन्यघन असंख्य प्रदेशी ले लिया है। और यहाँ तो शुद्ध बुद्ध एक स्वरूपी है, जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं। आहाहा! ऐसे स्वभाव को सत्य कहकर, उसका आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन हो, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। वह सत्यदर्शन है। और उसमें देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का राग आता है, वह है तो असत्य दर्शन, परन्तु व्यवहार से सत्य कहकर दोनों का ज्ञान कराया है। अभेदरत्नत्रय के साथ भेद, ऐसा प्रमाण का ज्ञान कराया है। आहाहा!

नयचक्र में तो आता है न कि प्रमाण पूज्य नहीं है। निश्चय पूज्य है। नयचक्र में आता है। क्यों? कि प्रमाण में पर्याय का निषेध नहीं आता और निश्चय में पर्याय का निषेध आता है। इसलिए वस्तु त्रिकाल है, वह पूज्य है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ दो को साथ में बताया है। इसलिए यह अर्थ करना है जरा। भेदाभेद शब्द पड़ा है न? यह साथ में प्रमाणज्ञान कराया है। समझ में आया? पाठ में तो दो है ही नहीं। गाथा में तो एक ही है। है? '**ये मुनयः परमसमाधि धृत्वा परमात्मानं पश्यन्ति**' बस! पाठ तो यह है। और ये शब्द भी उस संस्कृत का अर्थ किया है। क्या कहा, समझ में आया?

मूल पाठ है न, वह तो प्राकृत है। उसके शब्द यहाँ नहीं लिये। उसकी छाया है न नीचे? उसका यह लिया है। इस शब्दार्थ में। नहीं तो उसमें '**णियंति**' है। '**जे परमप्पु णियंति**' परन्तु छाया में '**परमात्मानं पश्यन्ति**' इसलिए संस्कृत छाया का शब्दार्थ किया है। अन्वयार्थ (किया है)। समझ में आया? यहाँ तो मात्र भेदाभेदरत्नत्रय की व्याख्या चलती है। भेद, ऐसा जो विकल्प है, परन्तु किसे? कि जिसे निर्विकल्प अभेद रत्नत्रय

प्रगट हुआ है उसे। उसे व्यवहार कहकर प्रमाण का ज्ञान कराने के लिये टीकाकार ने यहाँ दोनों को आराधक कहा है। समझ में आया? मूल गाथा में तो एक ही बात है। आहाहा! ऐसे जो आचार्य, उपाध्याय और साधु। आहाहा!

मुमुक्षु : कैसे आचार्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु। यह तो द्रव्यसंग्रह आदि में बहुत जगह आता है। भेदाभेदरत्नत्रय आराधक साधु को आहार-पानी देता है न? आहार-पानी। उस समय भेदाभेदरत्नत्रय लिया है। भाई! द्रव्यसंग्रह है न? उसमें पूरा पृष्ठ ही उतारा है। है इसमें कहीं। भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक को आहार-पानी देता है। आहार-पानी देता है, तब तो विकल्प है। लेता है इसलिए। और उसे भेदाभेदरत्नत्रय का आराधक कहा है। इसलिए अभेदपना वहाँ है, ऐसा। आहार-पानी लेता है, उसे अभेद तो है। आहाहा! वहाँ पृष्ठ उतारा है, हों! बहुत बोल उतारे हैं, द्रव्यसंग्रह में से। परमात्मप्रकाश में है।

यहाँ तो भेदाभेद आया न? पण्डितजी! भेदाभेद आया, इसलिए वह मुनि है, वह आहार लेता है, तब वह भेदाभेद रत्नत्रय का आराधक है। इसलिए कोई ऐसा कहे कि विकल्प के समय अभेदपना नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा की ज्ञान की पर्याय को अन्तर में झुकान से जो सत्य का आश्रय हुआ। आश्रय का अर्थ अन्दर ढला है न, इसलिए उसे निश्चय सम्यग्दर्शन आनन्द की पर्याय के अनुभवसहित जो दशा हुई, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन अभेद कहते हैं। ऐसे ज्ञान अन्दर में स्वसंवेदनज्ञान होने से आनन्द का साथ लेकर ज्ञान हुआ, उसे निश्चय सम्यग्ज्ञान अर्थात् निश्चय अभेदरत्नत्रय की अभेद निश्चय ज्ञान कहते हैं। आहाहा! और निश्चयस्वरूप जो आनन्दस्वरूप भगवान, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। आहाहा! शकरकन्द का कहा नहीं था? शकरकन्द होता है न? क्या कहते हैं? शकरकन्द। वह शकरकन्द होता है न, शकरकन्द? ऊपर की लाल छाल के अतिरिक्त वह शकरकन्द है। शकरकन्द अर्थात् शक्कर की मिठास का वह पिण्ड है। एक लाल छाल को लक्ष्य में न ले। आहाहा!

मुमुक्षु : इस प्रमाण?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रमाण आत्मा। शकरकन्द अर्थात् मिठास का / आनन्द का पिण्ड है। उसे पुण्य-पाप के विकल्प की लाल छाल लक्ष्य में न लो तो।

यहाँ तो भेद का ज्ञान कराया है। अभेद और भेद होता है न? निश्चय ही अकेला है, ऐसा नहीं। व्यवहार है न? 'जह जीणो मज्जन्तु जह' व्यवहार न छोड़ने का अर्थ? व्यवहार है। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहार आश्रय करनेयोग्य है या उसके आश्रय से धर्म होगा। ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह विरोध बहुत आता है, इसलिए अधिक स्पष्टीकरण होता है। रात्रि में कहा था न? आहाहा! भगवान! मार्ग तो यह है, भाई! किसी के घर का—कल्पना का नहीं। यह तो स्वभाव के घर का है। आहाहा!

मुमुक्षु : मत छोड़ो....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, ऐसा इसका अर्थ है। निश्चय है और व्यवहार भी है। परन्तु निश्चय है, वह आश्रय करनेयोग्य है; व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है। यह वस्तु ११ और १२ (समयसार)। ११-१२ गाथा। वस्तु चारों ओर मिलानवाली सन्धि है।

यहाँ **भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक जो आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** आहाहा! योगीन्द्रदेव कहते हैं, ऐसे को नमस्कार करता हूँ। स्वयं मुनि हैं, आचार्य हैं। तथापि ऐसे जो अभेदस्वरूप आनन्द के नाथ को आराधते हैं, बीच में विकल्प आया है, उसका प्रमाण ज्ञान कराने को आराधते हैं, ऐसा कहने में आया है। ऐसे **जो मुनि...** पाठ में तो एक ही बात आयेगी। टीकाकार ने अन्दर से दो (अर्थ) निकाले हैं।

परमसमाधि को धारण करके... आहाहा! जो कोई मुनि धर्मात्मा आचार्य, उपाध्याय और साधु। तीनों को मुनि लेकर बात की है यहाँ। **परमसमाधि को धारण करके सम्यग्ज्ञानकर...** आहाहा! अन्तर ज्ञायकस्वभाव तो परमसमाधि अर्थात् एकाग्रता है। विकल्प को भी एक ओर दूर करके। दूर करके, यह बात यहाँ नहीं। परन्तु भगवान निर्विकल्प चैतन्यदल प्रभु है, उसका समाधि द्वारा सम्यग्ज्ञान करके, ऐसा कहा है। अन्तर वीतरागी पर्याय द्वारा सम्यग्ज्ञान करके। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का है, भाई!

वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

क्या कहा ? **परमसमाधि को 'धृत्वा' धारण करके सम्यग्ज्ञान कर परमात्मा को देखते हैं।** है ? परमसमाधि धारण कर अन्दर में आनन्दस्वरूप शुद्ध निर्विकल्पदशा को धारण करके... आहाहा! और यह परमात्मा अर्थात् स्वयं स्वरूप भगवान, शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन जो अखण्ड प्रभु, उसे जो अनुभव करता है। पश्यन्ति का अर्थ अनुभव करता है। पाठ में नियन्ति है। (संस्कृत) छाया में पश्यन्ति है। अर्थ में उसे अनुभव करता है, ऐसा है। देखता है अर्थात् अनुभव करता है। आहाहा!

किसलिए 'परमानंदस्य कारणेन' रागादि विकल्प रहित परमसमाधि से उत्पन्न हुए... आहाहा! **परमसुख के रस का अनुभव करने के लिये...** आहाहा! रागादि विकल्परहित परमसमाधि। परम आनन्द। समाधि अर्थात् वे बाबा कहें समाधि, वह यह नहीं। लोगस्स में भी आता है, नहीं ? 'समाहिवरमुत्तं दिंतु'। वह समाधि आत्मा का आनन्द। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। आधि अर्थात् संकल्प-विकल्प, व्याधि अर्थात् शरीर की रोग दशा, उपाधि अर्थात् संयोगों का सम्बन्ध। इन तीन से रहित। उपाधि, व्याधि और आधिरहित, वह समाधि। आहाहा! अरे! ऐसी व्याख्या सब। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ के घर में जाना है, बापू! वह मार्ग कैसा है! आहाहा! और सर्वज्ञ प्राप्ति के लिये का पंथ है। समझ में आया ? अर्थात् कि मोक्ष की प्राप्ति। सर्वज्ञपना अर्थात् मोक्ष। उसकी प्राप्ति का यह पंथ है। आहाहा!

इस पंथ में कहते हैं कि **रागादि विकल्प रहित परमसमाधि से उत्पन्न हुए...** शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहाहा! उससे **उत्पन्न हुए परमसुख के रस का अनुभव...** परम अतीन्द्रिय आनन्द के रस का अनुभव। आहाहा! लो! वे रसगुल्ले नहीं आते तुम्हारे दूध के ? यह आनन्द के रस का रसगुल्ला आत्मा है। आहाहा! यह पर्याय की बात है, हों! पर्याय में **रागादि विकल्प रहित परमसमाधि से उत्पन्न...** शान्ति... शान्ति... शान्ति... तीन कषाय का (अभाव हुआ है)। यहाँ मुनि की बात है न ? तीन कषाय के अभाव की समाधि। आहाहा! उससे **उत्पन्न हुए परमसुख के रस का अनुभव...** परम आनन्द के रस का वेदन। आहाहा! **करने के लिये उन तीनों आचार्य, उपाध्याय,**

साधुओं को... अर्थात् मेरे परम आनन्द के रस के लिये मैं तीन को वन्दन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। तद् गुण लब्धये। आता है न? मैं मेरे निर्विकल्प आनन्द के अनुभव के लिये तीन को वन्दन करता हूँ। है? '**त्रीन् अपि नत्वा**' किसलिए? कि '**परमानन्दस्य कारणेन**' ऐसा। परमानन्दरूपी आनन्द के रस को लेने के लिये... आहाहा! मैं तीन—आचार्य, उपाध्याय, साधु को वन्दन करता हूँ। है तो विकल्प परन्तु अन्तर स्वरूप—सन्मुख का झुकाव है न, वह परमानन्द के रस का वेदन है। जैसे उस टीका में कहा था, वैसा शब्द है। आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य ने कहा, मुझे यह टीका करते हुए, मेरा भगवान तो शुद्ध चैतन्यघन है परन्तु पर्याय में अशुद्धता अनादि की है। मुनि हुए हैं आचार्य, उन्हें अभी अशुद्धता तो है न! वह अनादि की अशुद्धता है। वह अशुद्धता है, कलुषता है, मलिनता है। आहाहा! वह यह टीका करते हुए मेरी मलिनता का नाश होओ। इसका अर्थ? टीका के काल में मेरा जोर द्रव्य के ऊपर है। आहाहा! यह महिलायें पानी का हण्डा (बर्तन) नहीं उठातीं? दो-तीन उठाते हैं। और रास्ते में सखी मिले तो बातें करे, वह करे, परन्तु सब लक्ष्य वहाँ है। बातें करे, ऐसा कहे, कैसे हैं, अमुक करे। लक्ष्य वहाँ है। आहाहा! इसी प्रकार टीका के समय भी लक्ष्य का जोर द्रव्य के ऊपर है। आहाहा! इसी प्रकार यह नमस्कार करते समय भी... आहाहा! ऐसा आता है कहीं, भजन में आता है। 'नटवा नट नाचे...' ऐसा आता है। आनन्दघनजी में आता है।

'**परमानन्दस्य कारणेन**' आहाहा! मेरे परमानन्द के कारण से... आहाहा! मेरा प्रभु परमानन्द का नाथ प्रभु, उसके सेवन से, समाधि से उत्पन्न हुआ परमानन्द, ऐसे परमानन्द के कारण से मैं आचार्य, उपाध्याय, साधु को नमस्कार करता हूँ। अब कोई इसमें से ऐसा निकाले कि देखो! पर को नमस्कार करते हैं, इसलिए पर में आनन्द मिलता है। क्या अपेक्षा है? बापू!

मुमुक्षु : यह तो पर की ही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किस अपेक्षा से बात? (समयसार की) टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य स्वयं कहते हैं कि मैंने यह टीका की ही नहीं। मैं टीका में आया नहीं।

टीका का विकल्प है, वहाँ भी मैं आया नहीं। मैं तो मेरे स्वरूप में हूँ। आता है? आहाहा! इस प्रकार से बात करके यह बात चलती है। आहाहा! मेरे स्वरूप में रहकर, यह विकल्प उठा है। परन्तु मेरा लक्ष्य तो स्वरूप की प्राप्ति विशेष हो, वह मेरा लक्ष्य है। समझ में आया? अरे... अरे! वांचन में फेरफार करे तो आड़ा-टेढ़ा तो सब फेरफार हो जाता है। मार्ग की पद्धति है, तत्प्रमाण होना चाहिए।

एक ओर भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रमाण पूज्य नहीं है। क्योंकि (उसमें) पर्याय का निषेध नहीं आता। एक ओर भेदाभेद रत्नत्रय को पूज्य कहे। ऐई! समझ में आया? आराधक कहा न? किस अपेक्षा से? आहाहा! परमात्मा का विरह पड़ा, केवलज्ञान की शक्ति प्रगट करने की रही नहीं। यह सब झगड़े खड़े हुए। मार्ग तो यह है।

मूल योगीन्द्रदेव ने भेदाभेदरत्नत्रय नहीं लिया परन्तु इसमें आ जाता है। क्या? कि मैं यह मेरे परमान्द के कारण से नमस्कार करता हूँ। विकल्प तो है। परन्तु मेरा ध्येय विकल्प और पर के ऊपर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? मैं आत्मा अखण्ड आनन्द का नाथ, जैसे शकरकन्द है। वह शक्कर की अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड—दल है। मेरा नाथ परम आनन्द का दलवाला आत्मा है। आहाहा! उसमें से परमानन्द की प्राप्ति के कारण मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भाई! इसमें तो जरा गहराई देखकर अभ्यास चाहिए थोड़ा। ऐसे के ऐसे अद्धर से चल निकले, ऐसा चले—ऐसा यहाँ नहीं है। आहाहा! भेदाभेद क्या और प्रमाण क्या और निश्चय क्या तथा व्यवहार क्या?

मुमुक्षु : यह तो आ गया। भेद कहो या व्यवहार कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! अभेद अर्थात् क्या परन्तु वापस? स्व स्वभाव का आश्रय लेकर जो निर्मलदशा प्रगट हो, उसे अभेद कहा जाता है और पर के आश्रय में विकल्प उठे, उसे व्यवहार कहने में आता है। पराश्रितो व्यवहार, स्वाश्रितो निश्चय। देखो न! सिद्धान्त तो देखो! परन्तु व्यवहार होता है और यहाँ वन्दन करने का भी व्यवहार होता है। उसमें व्यवहार होता है, भेदाभेद रत्नत्रयवाला अभी। यहाँ वन्दन करनेवाले को विकल्प उठा है। आहाहा! परन्तु मेरा हेतु तो परमानन्द के कारण से है। आहाहा! मुझे

तो स्वभाव सन्मुख ढलकर विशेष परमानन्द हो, यह मेरा हेतु है। आहाहा! यह बात कहाँ है? दिगम्बर सन्तों के बिना यह बात कहाँ है, बापू!

'परमानन्दस्य कारणेन' आहाहा! **'तान् अपि'** अर्थात् उन्हें, **तीनों—आचार्य, उपाध्याय, साधुओं को भी मैं नमस्कार करके परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ।** लो! अब। सातवीं गाथा हुई न। सात तक हुई। आहाहा! पहली गाथा में भूतकाल के अनन्त सिद्धों को नमस्कार किया। दूसरी गाथा में भविष्य में अनन्त होंगे, उन्हें किया। तीसरी में भगवान अरिहन्त विराजते हैं, उन्हें नमस्कार किया। चौथी में आत्मा में निवास है, उन्हें नमस्कार किया। आहाहा! पाँचवीं गाथा में अरिहन्त के ज्ञान आदि को नमस्कार किया। ऐसा किया न? केवलज्ञानादि छठवीं में आया। निवास का पाँचवीं में। चौथी में महामुनि को। चौथी गाथा में महामुनि होकर मोक्ष पधारे उन्हें (नमस्कार) किया। पाँचवीं में अपना वास है, उन्हें किया। स्वरूप का वास है। लोकालोक को जानने पर भी स्वरूप में है। शिखर (लोकाग्र) पर होने पर भी... आहाहा! छठवीं गाथा में ज्ञान की पर्याय अरिहन्त को नमस्कार किया। सातवीं गाथा में तीन रह गये थे, उन्हें किया। अर्थात् सिद्ध, अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु—पाँचों आ गये। आहाहा!

अब नय उठाते हैं। देखो! उसरूप से सुधारा था न अनुपचरित का? उपचरित नहीं, अनुपचरित। यह आया, देखो! **अनुपचरित अर्थात् जो उपचरित नहीं है, इसी से अनादि सम्बन्ध है, परन्तु असद्भूत (मिथ्या) है,...** देखा! वहाँ संस्कृत में उपचरित था न? अनुपचरित चाहिए। अपने सुधारा है।

मुमुक्षु : पहली में तो अनुपचरित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो स्पष्ट है। इसमें तो अनुपचरित है।

इसी से अनादि सम्बन्ध है,... कौन? जड़कर्म। यह तो स्पष्ट है। असद्भूत है। जड़ कर्म आत्मा में नहीं। **ऐसा व्यवहारनयकर द्रव्यकर्म, नोकर्म का सम्बन्ध होता है,...** देखो! ऐसे व्यवहार से सम्बन्ध है। झूठे असत्य नय से। आहाहा! **उससे रहित...** उससे रहित परमात्मा... आहाहा! **और अशुद्ध निश्चयनयकर रागादि का सम्बन्ध है,...** देखो! वहाँ टालने की अपेक्षा से बात की थी। कर्मकलंक। यहाँ सम्बन्ध की

अपेक्षा से बात है। क्या कहा, समझ में आया? कर्म ईंधन को जलाने में कर्म और भावकर्म को जलाना, वह अशुद्धनिश्चय से; द्रव्यकर्म को अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से जलाने की बात की थी। यहाँ सम्बन्ध की बात करते हैं कि जड़कर्म का सम्बन्ध जीव को अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से है।

और अशुद्ध निश्चयनयकर रागादि का सम्बन्ध है,... पुण्य और पाप का आत्मा को पर्याय में सम्बन्ध है। वह अशुद्ध निश्चय (से है)। क्योंकि उसकी पर्याय में है। इससे अशुद्ध निश्चयनय से विकार को और भगवान आत्मा को सम्बन्ध है। आहाहा! भाषा तो सादी आती है। जरा फिर दिमाग तो देना पड़े न इसे! आहाहा! ऐई! बाबूभाई! कभी बहियाँ फिराने से निवृत्त कहाँ है? यह दो लड़के बड़े हुए हैं अब। तो भी अभी निवृत्ति नहीं मिली?

मुमुक्षु : अभी निवृत्त होकर आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी आठ दिन आये थे। इनकी माँ गुजर गयी। बड़ी माँ। वहाँ गये तो कहे, मेरी बड़ी माँ को मांगलिक सुनाओ। ऊपर आओ। फिर ऊपर गये थे। बाबूभाई कहे। नहीं तो ऊपर मंजिल पर चढ़ते नहीं परन्तु अब बाबूभाई कहे, मेरी बड़ी माँ को सुनना है। आहाहा! ऐसी बातें बाहर की है, बापू! यह अभ्यास चाहिए, भाई! अरे रे! जन्म-मरण एक भव में अनन्त भव के चक्र को नाश करना है। आहाहा! वरना अनन्त भवचक्र सिर पर खड़ा है। अनन्त भवसिन्धु चक्र, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व है, तब तक अनन्त भवचक्र की डांग सिर पर खड़ी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि कर्म का जीव को सम्बन्ध किस नय से कहना? कि उपचाररहित, नजदीक है, वह अनुपचार व्यवहारनय से कहा जाता है। आहाहा! असद्भूतव्यवहार से। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुपचरित का अर्थ अनादि का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह सम्बन्ध तो अनादि का है न! अनादि का है। अभी है कहो या अनादि का है कहो। आहाहा!

उससे रहित... आत्मा की श्रद्धा की बात करते हैं। **अशुद्ध निश्चयनयकर**

रागादि का सम्बन्ध है,... आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय यहाँ जो कहा भेदरत्नत्रय, इसका सम्बन्ध अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! **उससे तथा मतिज्ञानादि विभावगुण के सम्बन्ध से रहित...** वह मतिज्ञान विभाव गुण का सम्बन्ध भी अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! दो। **और नर-नारकादि चतुर्गतिरूप विभावपर्यायों से रहित...** वह भी अशुद्धनिश्चय से है। गति है न? नर-नारकादि चार गतियाँ। वह विभावपर्याय है, अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! तीनों को अशुद्ध में डाला है। पुण्य-पाप के भाव को, मतिज्ञान आदि विभाव को और यह नर-नारकादि व्यंजनपर्याय को। उदयभाव गति का, अशुद्धनिश्चय से। भाई! यह तो बहुत ध्यान रखे तो पकड़ में आये। यह तो... आहाहा!

मुमुक्षु : अशुद्ध निश्चयनय कहो, असद्भूतव्यवहारनय कहो परन्तु झूठी कैसे कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह झूठी है। कर्म झूठा है। अशुद्ध निश्चयनय झूठा नहीं। अशुद्ध निश्चय है, वह पर्याय में सत् है। और कर्म तो असद्भूत है। आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! आचार्यों ने काम किया है न! आहाहा!

मुमुक्षु : लोकोत्तर....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, बापू! क्या हो? केवलज्ञानी के पाट पर बैठकर उनका मार्ग कहना, भाई! करोड़पति की दुकान पर बैठकर घांची काम करे? उसका मुनिम दूसरी जाति का हो; इसी प्रकार परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ का कहा हुआ मार्ग, उसे कहनेवाली की बहुत जवाबदारी है। समझ में आया? एक काना मात्र भी अन्तर पड़ जाये तो पूरा तत्त्व बदल जाता है और वह किसके लिये? अपने लिये है या पर के लिये है? आहाहा! आहाहा! हित हेतु, ऐसा आया है। जिनादेश जाता, नहीं? उसमें अन्तिम आया है।

'जैनवाणी जैनवाणी सुन ही जे जीव, जे आगम रुचि धरे, जे प्रतीति मन में आनही, अवधार ही जे पुरुष समरथ पद अर्थ जानहि। जे हित हेतु बनारसी दे ही धर्म उपदेश।' हितहेतु। आहाहा! 'ते सब पाव ही परमसुख तज संसारक्लेश।' बनारसीदास का है। प्रणव मन्त्र। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' यह है इसमें। है न?

'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविकजीव संशय निवारे।' आहाहा! भगवान के श्रीमुख से ॐ ध्वनि खिरी। सन्त, गणधर—सन्तों के नायक, उन्होंने आगम रचे और 'भविक जीव संशय निवारे।' उस आगम को सुनकर मिथ्यात्व का नाश करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस कलश में नहीं आया था? कि कर्म के संग में मरणतुल्य हो गया है। कलश में आया है। कलश। 'कर्म के संग में...' नहीं आया? देखो!

जैसे ढँकी हुई निधि प्रगट की जाती है, उसी प्रकार भगवान निधि अन्दर है... आहाहा! पुण्य और पाप की आड़ में यह प्रभु ढँक गया है। आहाहा! **ढँकी हुई अग्नि प्रगट की जाती है, उसी प्रकार जीवद्रव्य प्रगट ही है।** आहाहा! जैसे निधि प्रगअ है, वैसे चैतन्यनिधि अन्दर प्रगट है। आहाहा! **परन्तु कर्मसंयोग से ढँका हुआ होने से...** कर्म के निमित्त के संग में विकारी परिणाम से... आहाहा! मरण को प्राप्त हो रहा था। आहाहा! अर्थात् कि है नहीं, ऐसा प्राप्त हो रहा था। आहाहा! उसकी वर्तमान पर्याय के माहात्म्य में और पुण्य-पाप के माहात्म्य में वह प्रभु है नहीं, ऐसा उसे हो गया था। आहाहा! २८वें कलश में है। आहाहा!

भगवान निधान अन्दर पड़ा है। वह आता है न श्वेताम्बर में? उस आबू में नहीं गये? 'वस्तुपाल—तेजपाल'। 'वस्तुपाल-तेजपाल' थे श्वेताम्बर। पैसा बहुत। फिर यात्रा करने निकले थे। वे पैसे बहुत थे, उन्हें गाड़ने गये। नळपुर में या उसमें गाड़ने गये, वहाँ चरु (कलश) निकला। करोड़ों रुपये का चरु निकला। पत्नी-स्त्री कहती है, तुम क्या गाड़ते हो? कदम-कदम पर तुम्हारे निधान और अब गाड़ना किसलिये तुम्हारे? बहुत खर्च किया है न आबू में? साढ़े तीन करोड़ का स्त्री के नाम का गोखला बनाया है। साढ़े तीन करोड़ का। 'वस्तुपाल-तेजपाल'। इसी प्रकार कहते हैं कि तुम्हारे पास यह लक्ष्मी है, यात्रा करने निकले। गाड़ने गये वहाँ चरु निकला। अब तुम्हारे गाड़कर क्या काम है? आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प में दब गया है। वह प्रगट आनन्द कानाथ अन्दर पड़ा है। आहाहा! उसे अब खोल। किससे? मरण को प्राप्त हो रहा है। अरे! 'है', वह 'नहीं' ऐसा हो गया था। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ अस्ति धाम

प्रभु है, वह 'नहीं' ऐसा हो गया था। परन्तु भ्रान्ति, परमगुरु श्री तीर्थंकर का उपदेश सुनने से मिटती है। संशय निवारे कहा न उसमें? जिनादेश। चार ओर का मिलान ऐसा है न! आहाहा! तीन लोक के नाथ की वाणी, उसका भाव जहाँ कान में पड़ता है... समझ में आया? यह संशय नाश हो जाता है। यह त्रिलोक के नाथ की वाणी का निमित्त है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसकी वाणी में वीतरागता उत्पन्न हो, वही बात भगवान की वाणी में आती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ दो बात की हैं कि कर्म का और नोकर्म का सम्बन्ध असद्भूतव्यवहारनय से अनुपचरित से है। और राग का सम्बन्ध, पुण्य-पाप के विकल्प का सम्बन्ध; यह भेदरत्नत्रय है, वह भी विकल्प है, उसका सम्बन्ध और मतिज्ञानादि विभावगुण, मतिज्ञानादि पर्याय है , उसका भी सम्बन्ध। यह कहीं कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। आहाहा! मतिज्ञानादि विभावगुण, यह पर्याय। इसका सम्बन्ध अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! और नर-नारकादि चतुर्गति की विभावपर्याय, वह भी अशुद्धनिश्चय से सम्बन्ध है। इनसे—तीनों से प्रभु रहित है। कर्म, नोकर्म से रहित, मतिज्ञानादि विभावपर्याय से रहित, चार गति की पर्याय से रहित।

ऐसा जो चिदानन्दचिद्रूप... ऐसा चिदानन्द चिद्रूप, ज्ञानानन्द चिद्रूप। आहाहा! ऐसी बात। **चिदानन्दचिद्रूप एक अखण्डस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व है, वही सत्य है।** यह भूतार्थ लिया। पाठ में भूतार्थ है। देखो! **'शुद्धात्मतत्त्वं तदेव भूतार्थं'** संस्कृत में है अन्दर में। भूतार्थ है। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठवीं लाईन। आठवीं लाईन। अन्यत्र है। होगा। समझ में आया? क्या कहा? इस भगवान आत्मा को कर्म और शरीर का (सम्बन्ध) अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है। उससे प्रभु रहित है। अशुद्ध निश्चय से पुण्य-पाप के भाव का सम्बन्ध, वह अशुद्धनिश्चय से कहा जाता है। उससे प्रभु रहित है। और मतिज्ञानादि विभाव से रहित है और चारगति की व्यंजनपर्याय—उदय जो गति। गतियोग, हों! शरीर नहीं। उससे भी रहित है। वह भी अशुद्धनिश्चयनय में जाता है।

अब शुद्धनय का विषय। आहाहा! है? **चिदानन्दचिद्रूप...** आहाहा! ज्ञानानन्द ज्ञानरूप। ज्ञानानन्द ज्ञानरूप, ऐसा लिया। भगवान आत्मा ज्ञान के आनन्दवाला प्रभु ज्ञानरूप

है। ज्ञान के आनन्दवाला प्रभु ज्ञानरूप है। आहाहा! यह दुनिया बाहर में आनन्द-सुख खोजती है न? विषय में और भोग में, पैसे में और धूल में। मूढ है, कहते हैं। आहाहा! अरे! प्रभु! तू ज्ञानानन्द चिद्रूप है न! आहाहा! तुझमें आनन्द तो ठसाठस भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा!

चिदानन्दचिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव... एक अखण्ड पर्याय बिना की चीज़ पूरी। आहाहा! मतिज्ञान के विभाव से रहित कही न? मतिज्ञान आदि चार ज्ञान की पर्याय को अशुद्धनिश्चय से सम्बन्ध कहा है। आहाहा! समझ में आया? जैसे राग का सम्बन्ध वस्तु को अशुद्ध निश्चय से है। उसी प्रकार मतिज्ञानादि पर्याय जो विभाव चार ज्ञान, हों! आहाहा! वह सम्बन्ध कायम नहीं रहता। वह तो अशुद्ध निश्चय का सम्बन्ध है। आहाहा! उससे प्रभु अन्दर रहित है। आहाहा! चार गति के भाव से भी प्रभु रहित है। सम्बन्ध है, वह चार गति का अशुद्ध निश्चय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसा जो चिदानन्दचिद्रूप एक अखण्डस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व (वस्तु) है, वही सत्य है। वह भूतार्थ है। यह ११वीं गाथा का। आहाहा! '**ववहारोऽभूदत्थो**' उसमें यह सब आ गया। राग, मति आदि की पर्याय और गति, यह सब अभूतार्थ है। वहाँ अभूतार्थ कहा है, वह गौण करके कहा है। समझ में आया? त्रिकाल को मुख्य करके निश्चय कहकर। यहाँ भी त्रिकाल और सत्य जो वस्तु है, भूतार्थ, वह सत्य है। यह राग का सम्बन्ध, कर्म का सम्बन्ध या मतिज्ञान का सम्बन्ध या गति का (सम्बन्ध), इस बिना की यह चीज़ है। आहाहा! और यह सत्य है। आहाहा! भूतार्थ है न? '**तदेव भूतार्थं परमार्थरूपसमय-सारशब्द**' आहाहा!

भाई! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा! नियमसार में कहा है न? ओहो! दिव्यध्वनि का सुनना सौभाग्य। सौभाग्य हो, उस जीव को मिलता है। और वह भी दिव्यध्वनि कैसी वहाँ लिखी है? परम आनन्द सन्धि। आनन्दसन्धि वाणी, हों! निमित्तरूप से। आहाहा! वाणी को आनन्द की देनेवाली आनन्दस्वरूप कहा है। वाचक शब्द हैं न, इसलिए। आनन्द को बतलानेवाली है न? चिदानन्द चिद्रूप प्रभु को बतलानेवाली वाणी को आनन्द की देनेवाली कहा है। आनन्दरूप कहा है। आहाहा! उपचार से है। आहाहा! ऐसी वाणी और उपदेश अब। उसमें और

ऐकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय तो कहीं रह गया। भरतभाई! ... यह करे न, भक्ति से धर्म होता है, यह सब उड़ गया इसमें तो।

यहाँ तो मतिज्ञानादि का सम्बन्ध है, सम्यग्ज्ञान, उसका भी सम्बन्ध जीव के त्रिकाल को अशुद्ध निश्चयनय से है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय है न? विभावगुण कहा है, उसे—मतिज्ञान को। इतना सम्बन्ध है न कर्म का, इतना थोड़ा। आहाहा! भगवान आत्मा चिदानन्द चिद्रूप, चिदानन्द चिद्रूप, उसे यह मतिज्ञान का सम्बन्ध भी अशुद्ध निश्चय से है। क्योंकि वह निकल जाता है और छूट जाता है। आहाहा! देखो तो यह वाणी! जैसा राग का सम्बन्ध, दया, दान के विकल्प का सम्बन्ध अशुद्ध निश्चय से है। आहाहा! मतिज्ञान को शुद्ध निश्चय में डाला। आहाहा! और गति। चारों ही। आहाहा!

ऐसे अशुद्ध निश्चय से रहित प्रभु, चिदानन्द चिद्रूप भगवान... आहाहा! एक अखण्ड स्वभाव ऐसा शुद्धात्मतत्त्व, यह सत् है। वह असत् कहा। आहाहा! समझ में आया? वह कायम रहनेवाला नहीं, इसलिए असत् कहा। आहाहा! **उसी को परमार्थरूप समयसार कहना चाहिए।** आहाहा! त्रिकाल। त्रिकाल भूतार्थ प्रभु, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के ज्ञानवाला ज्ञान कहते हैं। आहाहा! अकेला ज्ञान नहीं। ज्ञानमात्र आत्मा कहा है न? परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान, ज्ञान के आनन्दवाला ज्ञान। आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली प्रभु, वह सत्य है। उसे परमार्थ समयसार कहते हैं। यह पर्याय की बात नहीं। त्रिकाली को समयसार कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? विकाररहित, मतिज्ञानादि विभाव से रहित, चार गति से रहित परमसत्य, उसे सत्य कहते हैं, भूतार्थ कहते हैं, उसे समयसार कहते हैं। आहाहा!

वही सब प्रकार आराधने योग्य है। लो! वह सब प्रकार से प्रभु त्रिकाली आराधनेयोग्य है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१९७६ के वर्ष में यह प्रवचन नहीं उपलब्ध होने से १९६५ के वर्ष का प्रवचन लिया गया है।

वीर संवत् २४९१, भाद्र कृष्ण १४, शुक्रवार
दिनांक-२४-०९-१९६५, गाथा-७, प्रवचन-६ (७)

गाथा चलती है न? उसमें यह परमात्मप्रकाश है। आचार्य और उपाध्याय और साधु की स्थिति क्या है, ऐसा पहिचानकर प्रभाकर भट्ट उन्हें नमस्कार करता है। पहले अरिहन्त और सिद्ध का स्वरूप बतलाकर, पहिचान करके नमस्कार किया। अब सच्चे आचार्य, उपाध्याय, साधु कैसे होते हैं? उन्हें पहिचानकर नमस्कार करना, वह वास्तविक नमस्कार कहलाता है।

अब आचार्य की व्याख्या चलती है अपने तो। णमो लोए सव्व आईरियाणं की व्याख्या चलती है। देखो! यहाँ दर्शन से फिर से लेते हैं, देखो! पहले क्या लिया? देखो! कि यह आत्मा है वस्तु अनन्त गुणरूप, स्वरूपरूप, एक स्वभावरूप आत्मा। इसे कर्म का सम्बन्ध है, व्यवहार से असद्भूत व्यवहारनय से। वस्तु स्वभाव की दृष्टि से वह सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् व्यवहार भी बतलाया, कर्म का सम्बन्ध है, ऐसा बतलाया और वस्तु के स्वभावदृष्टि से उस सम्बन्धरहित है। पश्चात् आत्मा की पर्याय में राग का सम्बन्ध है। पुण्य और पाप, दया, दान, शुभाशुभभाव, उसका वर्तमान पर्याय में अशुद्ध निश्चयनय से सम्बन्ध है। वस्तु की अन्तर्दृष्टि से देखने पर वस्तु को उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। इसलिए दो दो का एक का ज्ञान कराया और एक को उपादेय बनाया। समझ में आया? फिर चार ज्ञान की पर्याय। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय है। तथापि वह विभावगुण है। इसलिए होने पर भी वह हेय है और एक शुद्ध द्रव्यस्वभाव अखण्ड... है न अन्तिम? वह विभावपर्याय रहित चिदानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव शुद्धात्म तत्त्व, वह अभूतार्थ है, सत्यार्थ है, सत्य यह है। वह है सही व्यवहार से सच्चा। परन्तु परमार्थ सच्चा शुद्धात्म ज्ञायकभाव अनन्त गुणरूप एक स्वभाव, ऐसा शुद्धात्मा वही उपादेय और अंगीकार करनेयोग्य है। ऐसी श्रद्धा निश्चय सम्यग्दर्शन कही जाती है।

चार गति कही। देखो! सर्वज्ञ ने देखा हुआ तत्त्व व्यवहार और निश्चय दोनों का साथ में ज्ञान कराकर, उपादेय क्या है, यह बताते हैं। चार गति है। एक समय में चार गति होती है। परन्तु उस गति का विभावभाव हेय है। है अवश्य, हेय है। अकेला

समयसार भूतार्थ ज्ञायक स्वभाव एकरूप स्वभाव, अनन्त गुण का एकरूप स्वभाव, वह शुद्धात्मा भूतार्थ। उसके सन्मुख, उसकी दृष्टि करके निश्चय सम्यक्त्व प्रगट करना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, समझ में आया?

वही सब प्रकार आराधनेयोग्य है। आत्मा है। **उससे भिन्न जो परवस्तु है, वह सब त्याज्य है।** चार बोल कहे ये। गति, मतिज्ञान आदि विभावगुण, रागादि अशुद्ध पर्याय और कर्म का सम्बन्ध, ये चारों हेय है। दृष्टि में से इन्हें छोड़नेयोग्य है। एक शुद्ध चैतन्य द्रव्य अनन्त गुण स्वभावरूप एक है। **ऐसी दृढ़ प्रतीति...** उसकी अन्तर में निश्चय प्रतीति, **चंचलता रहित...** अस्ति से दृढ़ प्रतीति (कहा), चंचलतारहित, दोषरहित **निर्मल अवगाढ़ परम श्रद्धा है, उसको सम्यक्त्व कहते हैं,...** देखो! आचार्य को ऐसा समकित होता है। नहीं तो वे आचार्य नहीं कहे जाते। कहो, समझ में आया इसमें?

उसको जो आचरण अर्थात् उस स्वरूप परिणमन वह दर्शनाचार... यह प्रतीति का परिणमन जो साथ में होना, उसका नाम दर्शनाचार आचार्य भगवन्तों को होता है। समझ में आया? **और उसी निजस्वरूप में...** भूतार्थ जो वस्तु एक स्वरूप है, इन चार को हेय करके एक स्वरूप स्वभाव भूतार्थ, परमार्थ समयसार है, उसके स्वरूप में **संशय-विमोह-विभ्रम-रहित...** उस स्वरूप में संशय नहीं। कुछ होगा, ऐसा अनध्यवसाय नहीं और विभ्रम अर्थात् विपरीतता नहीं। उसमें चार बोल रहित श्रद्धा कही थी। इसमें **संशय-विमोह-विभ्रम-रहित जो स्वसंवेदनज्ञानरूप ग्राहकबुद्धि...** भगवान आत्मा ज्ञान से अन्तर ज्ञान द्वारा वेदन में आये, ज्ञात हो, अनुभव में आये, ऐसी जो ज्ञान की ग्राहक सम्यग्ज्ञान बुद्धि, उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। इन आचार्य भगवन्त को ऐसा सम्यग्ज्ञान होता है।

उसका जो आचरण अर्थात् उसरूप परिणमन... इस सम्यग्ज्ञान का परिणमन ही पर्यायरूप परिणमन ही हो गया। इसका नाम आचार्य का ज्ञानाचार भाव कहने में आता है। कहो, सेठी! यह आचार्य ऐसे (होते हैं)। यह कभी निर्णय नहीं किया था। यह बराबर है, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! अपने कल यहाँ तक आया था, लो! समझ में आया? यह तो फिर से दो आचार थोड़े इकट्ठे लिये।

अब तीसरा आचार्य का आचार, तीसरा चारित्राचार कैसा होता है? **उसी शुद्ध स्वरूप में...** जो पहले कहा था, यह **'तत्रैव'** शब्द पड़ा है न? भाई! अन्दर। **'तत्रैव' 'तत्रैव'—'तत्र एव'।** जो शुद्ध द्रव्य ज्ञायकभाव अनन्त गुण स्वभावरूप एकरूप, ऐसा जो भगवान आत्मा **'तत्रैव'** अर्थात् **उसी शुद्ध स्वरूप में शुभ-अशुभ समस्त संकल्प-विकल्प रहित...** देखो! कहो, किसे होगा यह? आठवें में होगा यह? यहाँ तो अभी आचार्य की बात करते हैं कि आचार्य ऐसे होते हैं। समझ में आया? और यह आचार्य उपदेश करे तो ऐसा करेंगे। उपाध्याय उपदेश करेंगे न? तब उपदेश ऐसा करेंगे, उस समय की स्थिति का वर्णन है। समझ में आया?

शुद्ध स्वरूप में शुभ-अशुभ समस्त संकल्प रहित जो नित्यानन्दमय निजरस का आस्वाद,... नित्यानन्द अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा, उसका आनन्दमय निज रस, उसका आस्वाद, उसका स्वाद, उसका **निश्चल अनुभव, वह सम्यक्चारित्र है,...** इसका नाम सच्चा चारित्र। अमरचन्दभाई! आहाहा! यह तो बात भी अभी सुनी न हो कि चारित्र कैसा होता है? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं। जाओ! यह सेठिया जैसे भी समझे बिना जय नारायण करते हैं सबको। मोतीरामजी! बराबर है? गृहस्थ व्यक्ति सेठिया, दस-दस पुत्र। उसको बेचारे को ऐसा कि ओहो! सेठिया ने देखो मन्दिर बनवाया। और यह हमको मानते हैं तो हम कुछ होंगे तब मानते होंगे या नहीं?

मुमुक्षु : उसकी अपेक्षा तो अच्छे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छे किसके? कहते हैं, भगवान! ऊपर कहा था यह, हों! यह समयसार एकरूप चिदानन्द एक अखण्ड स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व। उसके अन्दर में, उसके ऊपर एकाग्र होकर निश्चय आस्वाद, आनन्द का आस्वाद का अनुभव, उसका आचरण अर्थात् परिणमन, वह चारित्राचार है। यहाँ तो आनन्द का परिणमन, उसे चारित्राचार कहा, भाई!

मुमुक्षु : सीधे सीधा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सीधी बात। और पंच महाव्रत व्यवहारनय नहीं परन्तु निश्चय। और चारित्र निश्चय अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवन में आत्मा के

आनन्द का उग्र आस्वाद लेना, उसे चारित्राचार कहने में आता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह आनन्द निश्चल अनुभव निज रस का निजानन्द का। शुभाशुभ विकल्परहित कहा है। शुभभाव का आनन्द, ऐसा नहीं कहा। यहाँ तो अभी अब छठवें गुणस्थान में शुभभाव होता है, उसमें उसे चारित्र होता है। कौन जाने क्या करते हैं?

मुमुक्षु : गृहस्थ से तो अच्छे है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ से अच्छे किसके? बिगड़ा हुआ दूध मोळी छाछ से भी गया-बीता है। समझ में आया? छाछ होती है न? मट्ठा। बिगड़ा हुआ दूध, बिगड़ा हुआ। बिगड़ा हुआ दूध तो मोळी छाछ से भी गया-बीता है। मोळा मट्ठा हो तो रोटी भी खायी जाती है। बिगड़े हुए दूध में (खायी जाती है)?

मुमुक्षु : रस अधिक अच्छा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार डालेगा, उगल डालेगा, सब निकाल डालेगा। समझ में आया? यह तो अच्छे ही हैं, ऐसा कहते हैं। मुझसे अच्छे हैं न! यह बड़े आचार्य, ऐसा मानता है अज्ञानी।

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! क्या? देखो न! व्याख्या। प्रभाकर भट्ट इस प्रकार पहिचानकर पंच परमेष्ठी को नमस्कार करता है। यह आठवीं गाथा में लेंगे। समझ में आया? कि इस प्रकार पहिचानकर प्रभाकर भट्ट नमस्कार करके योगीन्द्रदेव से पूछेगा, प्रभु! हमको अनन्त संसार (में) भटकते थे (वह) अब बन्द कैसे हो, ऐसा उपाय हमें बताओ। समझ में आया? लो! यह चारित्राचार। नित्यानन्दमय शुभाशुभ विकल्परहित निज रस का आस्वाद, निश्चल अनुभव का नाम सम्यक्चारित्र, उसका आचरण / परिणमन वह चारित्राचार है।

अब तप, तप। यह आचार्य का चौथा तपाचार। पहला दर्शनाचार, दूसरा ज्ञानाचार, तीसरा चारित्राचार, चौथा तपाचार। **उसी परमानन्दस्वरूप में...** देखो! यह परमानन्दस्वरूप जो भूतार्थ ज्ञायकभाव, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड—दल, उसमें... समझ में आया? **परद्रव्य की इच्छा का निरोधकर...** विकल्पमात्र का उत्पन्न होना अटककर। सहज आनन्दरूप स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनन्दरूप तपश्चरणस्वरूप। **सहज आनन्दरूप**

तपश्चरणस्वरूप... जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का सहज अनुभव होता है, उसे तपस्या कहा जाता है। कहो, मोतीरामजी! रेत के ग्रास नहीं, आनन्द के ग्रास हैं। देखो न! **सहज आनन्दरूप तपश्चरणस्वरूप...** अर्थात् यह तपस्या। शोभालालभाई!

मुमुक्षु : आनन्द की धारा बढ़ती जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। बढ़ती जाये। हमारे सेठ ठीक कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर में भरा है, वह बढ़ता जाये। अन्दर में आनन्द (उग्ररूप से वेदन में आये), तब उसे तपस्या कहा जाता है। बाकी लंघन है, लंघन... लंघन। लंघन कहते हैं न? क्या कहते हैं?

देखो! **सहज आनन्दरूप तपश्चरणस्वरूप...** समझ में आया? लो! **'सुखरसास्वादस्थिरानुभवनं च सम्यक्चारित्रं तत्राचरणं परिणमनं चारित्राचारः, तत्रैव परद्रव्येच्छानिरोधेन सहजानन्दैकरूपेण प्रतपनं तपश्चरणं'** उसका परिणमन, उसे तपश्चरण आचार—तपाचार उसे कहते हैं। आहाहा! यह आचार्य को ऐसे पाँच निश्चय आचार होते हैं। फिर व्यवहार कहेंगे। निश्चय सहित हो तो उसे व्यवहार कहते हैं। **उसी शुद्धात्मस्वरूप में... उसी...** अर्थात् **'तत्रैव'** जो भूतार्थ आत्मा एक समय में अखण्ड चिदानन्द स्वभाव, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान, उसका आचरण, उसका तप प्रतपन।

शुद्धात्मस्वरूप में अपनी शक्ति को प्रकटकर आचरण परिणमन वह वीर्याचार है। पुरुषार्थ, स्वभाव में उग्र पुरुषार्थ करके शुद्धात्मस्वरूप में वीर्य का स्फुरण होना, पुरुषार्थ का स्फुरण, इसका नाम वीर्याचार कहा जाता है। राग का विकल्प, वह सब व्यवहार में जाता है। निमित्त की बात यहाँ है नहीं। **उसी शुद्धात्मस्वरूप में...** अपनी शक्ति को प्रगट करके, लो! पुरुषार्थ से अनन्त आनन्द आदि शक्ति को प्रगट करके। अनन्त गुण की शुद्धता को पुरुषार्थ द्वारा प्रगट करके, आचरणरूप परिणमन होना, उसका नाम वीर्याचार है। **यह निश्चय पंचाचार का लक्षण कहा।** लो! यह सच्चे पंच आचार का स्वरूप कहा, लक्षण कहा। ऐसे पाँच निश्चय हो तो उसे आचार्य कहा जाता है। वरना आचार्य कहने में नहीं आता। समझ में आया?

अब व्यवहार का लक्षण कहते हैं... व्यवहार साथ में होता है। ऐसे आचार्य को

निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपाचार, वीर्याचार में साथ में व्यवहार का विकल्प, राग का विकल्प, व्यवहार कैसा होता है व्यवहार उसका, उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं। **निःशंकित को आदि लेकर अष्ट अंगरूप बाह्यदर्शनाचार,...** समकित के व्यवहार आचार वीतराग मार्ग में निःशंकता, अन्य धर्म की इच्छा का अभाव, आदि आठ आचार। निःशंक, निःकांक्ष, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य (और) प्रभावना ये आठ आचार होते हैं। निश्चय समकित तो कहा—अपने स्वरूप में अन्तर निश्चल चंचलतारहित परम दृढ़ प्रतीति, उसका परिणमन, वह निश्चय समकित। व्यवहार समकित, उसमें विकल्प ऐसा उसको होता है। भगवान सर्वज्ञ ने कहे हुए मार्ग में उसे शंका नहीं होती, अन्यमति आदि की इच्छा नहीं होती, ग्लानि नहीं होती, पूर्ण कब होगा, ऐसा द्वेष नहीं होता। समझ में आया? उलझन नहीं होती, मूंझवण को क्या कहते हैं? उलझन—घबराहट। कहाँ होगा? कैसा होगा? ऐसा नहीं होता। अमूढदृष्टि होती है। उपगूहन—अपने धर्म की वृद्धि करता हो और दोष को छिपाता हो। स्थितिकरण—स्वरूप में व्यवहार से स्थिर करता हो। वात्सल्य—धर्म के प्रति, धर्मी के प्रति प्रेम रखता हो और प्रभावना शुभभाव की हो। उसे समकित के आठ व्यवहार आचार कहे जाते हैं। कहो, समझ में आया?

देखो! यह सर्वज्ञ ने कहे हुए मार्ग में निःशंकता आदि व्यवहार होता है। अपने स्वरूप में निःशंक आदि का परिणमन, वह निश्चय है। बाहर में वीतराग सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग, इसमें निःशंक (होता है)। अन्यमति में कहा हुआ (मार्ग हो), उसमें बिल्कुल इच्छा नहीं होती। ऐसे आठ आचार व्यवहार से विकल्प हो, उसे व्यवहार समकित के आचार कहे जाते हैं। कहो, समझ में आया?

अब, व्यवहार ज्ञानाचार। निश्चय ज्ञानाचार तो अन्तर स्वरूप में स्वस्वरूप की ग्राह्य बुद्धि स्वसंवेदन बुद्धि, वह निश्चयज्ञान। उसके साथ व्यवहार ज्ञान का विकल्प ऐसा होता है। **शब्द शुद्ध, अर्थ शुद्ध, उभय शुद्ध...** ज्ञान का व्यवहार है न? काल में पढ़ना, विनय से पढ़ना, जिससे समझा हो, उसे गुप्त नहीं रखना, कोई धर्म पाता हो, उसे अन्तराय नहीं करना। ऐसे आठ प्रकार के बाह्य ज्ञानाचार। कहो, समझ में आया? उसके

आठ प्रकार के बाह्य आचार हैं वे ज्ञानाचार। देखो! '**कालविनयाद्यष्टभेदा**' अन्दर संस्कृत में है। संक्षिप्त किया है। काल में पढ़ना, विनय से पढ़ना, शुद्धि से पढ़ना, बहुमान से पढ़ना, कोई पढ़ता हो उसे अन्तराय करना नहीं, असातना करना नहीं—इत्यादि सम्यग्ज्ञान के आठ आचार, निश्चय ज्ञानाचार के काल में उसे ऐसा भाव होता है।

अब, व्यवहारचारित्र। निश्चयचारित्र तो कहा था कि अन्दर निजानन्द के आस्वाद का अनुभव, वह निश्चयचारित्र है। व्यवहारचारित्र, पंच महाव्रत, शुभराग। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। शुभराग है। **पंच समिति...** विकल्प। ईर्या, भाषा, ऐषणा (आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापन) आदि। **तीन गुप्तिरूप व्यवहार चारित्राचार...** तेरह कहे—पाँच (महाव्रत), पाँच (समिति)=दस और तीन (गुप्ति)=तेरह। व्यवहार तेरह प्रकार के चारित्र आचार का विकल्प, उसे व्यवहारचारित्र कहा जाता है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। उसे परम्परा मोक्ष का कारण कहेंगे। समझ में आया? यह व्यवहारचारित्र कहा।

(अब) व्यवहारतप। **अनशनादि बारह तपरूप तपाचार...** यह अनशन, ऊनोदर आदि बारह तप है न? उसका भाव होना, विकल्प उठना, उसे व्यवहार तपाचार कहते हैं। **अपनी शक्ति प्रगट कर मुनिव्रत का आचरण, वह व्यवहार वीर्याचार...** अट्ठाईस मूलगुण का पालन, शक्ति प्रमाण बराबर करके, व्यवहार मुनिव्रत का आचरण, यह व्यवहार वीर्याचार। लो! पाँच हो गये व्यवहार, पाँच हो गये निश्चय। **यह व्यवहार पंचाचार परम्पराय मोक्ष का कारण है,... 'पारंपर्येण साधक...'** संस्कृत में ऐसा शब्द है। निमित्त है न? निमित्त अर्थात् उसे छोड़कर स्थिर होगा। समझ में आया? अहो! स्वभाव के आश्रय से जो हुए पाँच आचार, वही निश्चय मोक्ष का साधक है। परन्तु यह व्यवहार को परम्परा साधक कहा जाता है। निमित्त है। व्यवहार से निमित्त अनुकूल गिनकर ऐसा ही भाव, उसे पाँच आचार का होता है, दूसरा अन्यमतियों ने कल्पित (व्यवहार) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि उसे होते नहीं, अर्थात् उसे व्यवहार को—निमित्त को परम्परा मोक्ष का साधक कहा गया है। कहो, समझ में आया?

अब, वे आचार्य कैसे होते हैं? देखो! विशिष्टता अब। दो बातें कीं। **निर्मल**

ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मतत्त्व उसका यथार्थ श्रद्धान,... आचार्य जैन के अर्थात् वास्तविक तत्त्व के। जैन के आचार्य अर्थात् वास्तविक आचार्य। कैसे होते हैं? कि **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मतत्त्व...** पूरा पदार्थ—निर्मल ज्ञान, दर्शन स्वभाववाला आत्मा। **उसका यथार्थ श्रद्धान,...** यह पहले कहा था, उसके पाँच लेंगे। यहाँ तो प्ररूपणा करेंगे। पालन करे और पालन करावे। यथार्थ सम्यग्दर्शन, **यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण तथा परद्रव्य की इच्छा का निरोध (तप) और निजशक्ति का प्रगट करना, ऐसा यह निश्चय पंचाचार साक्षात् मुक्ति का कारण है।** देखो! वह परम्परा कहा था न ऊपर? उसके साथ में लिया। साक्षात् तो वह मुक्ति का कारण है। वह तो बीच में निमित्त है, परम्परा आरोप देकर कहा जाता है। अरे! शास्त्रों को भी देखते नहीं कि आचार्य क्या कहते हैं, उनका हृदय क्या है?

ऐसे निश्चय व्यवहाररूप पंचाचारों को... व्यवहार नहीं चाहिए बीच में। है इसमें? प्रकाशित हो गया है? व्यवहार नहीं चाहिए। व्यवहार नहीं। निकाल दिया है। है न यहाँ? निकाल दिया है न? देखो न! '**वीतरागनिर्विकल्पसमाधिं स्वयमाचरन्त्यन्या-नाचारयन्तीति भवन्त्याचार्या...**' ऐसा है। व्यवहार की बात नहीं। व्यवहार बतलाया। वह निश्चय पंचाचारों को, ऐसा लेना। व्यवहार निकाल डालो बीच में शून्य। है? सेठी! कहाँ है? व्यवहार नहीं चाहिए। व्यवहार को रखना अन्दर। **ऐसे निश्चय पंचाचारों को आप आचरें और दूसरों को आचरवावें ऐसे आचार्यों को मैं वन्दता हूँ।** ऐसे पाँच को आचरण करे और आचरण करावे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हुआ? आचरण करावे उसमें, भाई! कि उसे कथनवाला आचार्य लिया है। दूसरे को कहे न? ऐसा मार्ग है, ऐसा कहे न? तब वह कौन से गुणस्थान में होता है? आठवें गुणस्थान में होता है? सातवें में होता है यह? पाँच आचार आचरण करे और आचरण करावे। आचरण करावे, इसका अर्थ कि कहे कि यह आचरण करो, ऐसा आचरण करो। यह छठे गुणस्थानवाले के निश्चय और व्यवहार का वर्णन यहाँ किया है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान! तेरे मार्ग की रीति क्या है? अरे! निर्विकल्प निरावरण निर्लेप भगवान

आत्मा की अन्तर निर्विकल्प दृष्टि हुए बिना मार्ग की शुरुआत कहाँ से होगी? आहाहा! उसके ज्ञान बिना सच्चा ज्ञान कहाँ से होगा? और उसमें रमणता बिना चारित्र का आनन्द कहाँ से होगा? और शुद्ध की इच्छा के आनन्द की वृद्धि बिना उस इच्छा का निरोध का आनन्द कैसे होगा? और अन्दर वीर्य का पूर्ण अनन्त शुद्ध गुण का सामर्थ्य रस के रूप में वीर्याचार, इसके बिना आचार्य की स्थिति कहाँ से होगी? ऐसे **पंचाचार को आप आचरें और दूसरों को आचरवावें...** आचरवावे अर्थात्? ध्यान में बैठा हो, उसे आचरवाते होंगे?

मुमुक्षु : उपदेश देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश देते हैं। यह तुम्हारे सब कितने ही इनकार करते हैं। यह भी पूर्व के हों, वे कहाँ जाये?

मुमुक्षु : व्यवहार निकाल डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। व्यवहार निकाल डालना। पाठ में व्यवहार है ही नहीं। व्यवहार का ज्ञान कराया। आचरण ऐसे आराधन पहले साधारण रीति से कहा। यहाँ निकलवा दिया। नहीं, टीका में नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। नहीं निश्चय पंचाचार। **आप आचरें...** देखो न! पाठ है। '**स्वयमाचरन्त्यन्यानाचारयन्तीति...**' दूसरे को आचरवावे इतनी बात है। समझ में आया? '**निर्विकल्पसमाधिं स्वयमाचरन्त्य...**' देखो! यह व्यवहार कहा जाता है। पहले कहा न? ज्ञान कराया है, ज्ञान कराया है। लो! ऐसे आचार्य को मैं वन्दन करता हूँ। प्रभाकर भट्ट कहता है कि ऐसे आचार्यों को मैं वन्दन करता हूँ। समझ में आया? देखो! यह आचार्य।

अब उपाध्याय। जैन के सच्चे उपाध्याय कौन? णमो लोए सव्व उवज्झायाणं। यह णमो लोए सव्व साहूणं है न? यह 'णमो लोए सव्व' पाँचों में आता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं—ऐसे पाँचों। अन्त में शब्द आता है, वह पाँचों में

ले लेना। समझ में आया? परन्तु कहाँ? यह ऐसे हों वे। सर्व उपाध्याय अर्थात् दूसरे सब उपाध्याय नाम धराते हों और स्थापनावाले और द्रव्य, वह नहीं।

उपाध्याय कैसे हैं? कि पंचास्तिकाय, देखो! पाँच अस्तिकाय को वे मानते हैं। पाँच अस्तिकाय। काल के अतिरिक्त पाँच अस्ति। जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय—ये पाँच। पाँच वस्तु को माने उपाध्याय। सच्चे उपाध्याय जैन के हों वे इस अनुसार मानते हैं। यह पाँच अस्तिकाय जो जगत में हैं, उन्हें न माने, वह समकिती नहीं परन्तु वह मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया?

पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ हैं, उनमें निज शुद्ध जीवास्तिकाय... यह उपादेय स्वयं प्ररूपित करे। समझ में आया? उपाध्याय का कथन ऊपर का वजन है न? उसमें आचरण के ऊपर का है। आचार्य अर्थात् आचरे, उपाध्याय अर्थात् उपदेश। उपाध्याय (उसमें) कथन की पद्धति (की) मुख्यता है। सच्चे-सत्य उपाध्याय किसे कहना? कि जो पाँच अस्तिकाय में... माने पाँच अस्तिकाय, परन्तु उसमें **आप शुद्धात्मा हैं, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है, अन्य सब त्यागनेयोग्य हैं, ऐसा उपदेश करते हैं,...** ऐसा उपदेश करते हैं। समझ में आया? यह आत्मा अन्दर देह से भिन्न शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है। यह एक ही अखण्डानन्द भगवान अन्तर में आदरनेयोग्य है, ऐसा जो उपाध्याय माने और प्ररूपित करे, (वह सच्चा उपाध्याय है)। समझ में आया?

उपाध्याय उसे कहते हैं, उपदेशक उसे कहते हैं, सच्चे उपदेशक उपाध्याय मुनि उसे कहते हैं कि जगत में पाँच अस्तिकाय के पदार्थ भगवान केवली ने देखे, ऐसे हैं, ऐसा माने। मानकर निज आत्मा शुद्ध भगवान आत्मा है, सच्चिदानन्दस्वरूप परमानन्द की मूर्ति आत्मा अन्दर है, वही अन्तर में आदरनेयोग्य है, ग्रहण करनेयोग्य है, अनुभव करनेयोग्य है। ऐसा जगत को कहते हैं। स्वयं अनुभव करते हैं, जगत को कहते हैं, उन्हें सच्चा उपाध्याय—उपदेशक कहा जाता है। कहो, अमरचन्दभाई! यह तो बात कुछ नहीं, ... यह आत्मा, करो विकल्प। परन्तु क्या विकल्प घटावे? विकल्प घटावे तब दूसरी चीज़ है न? राग है, राग का विषय है, विषय परद्रव्य है। यह पाँच अस्तिकाय

राग-विकल्प का विषय है। परन्तु उसमें से निर्विकल्प एक आत्मा (उपादेय करे)। ऐसा मानकर, जानकर। समझ में आया? आहाहा! निज शुद्ध जीवास्ति, वापस, हों! भगवान शुद्ध हो गये, उनका नहीं यहाँ।

यहाँ परमात्मा निज शुद्ध परमानन्द की मूर्ति भगवान आत्मा अन्तर में है। अतीन्द्रिय आनन्द का रस स्वभाव भरपूर भगवान आत्मा है। निज (आत्मा), उसकी इसे खबर नहीं। मैं कौन हूँ, उसकी इसे खबर नहीं होती। मैं तो यह एक बनिया हूँ, और यह व्यापारी हूँ और यह रागी हूँ और धूल हूँ और गतिवाला हूँ। कहते हैं कि, तुझे तेरे आत्मा की खबर नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

और जगत में छह द्रव्य हैं। देखो! अब काल मिलाया। पाँच अस्तिकाय में काल नहीं था और काल मिलाकर छह द्रव्य जगत में भगवान ने देखे हैं, (ऐसा सिद्ध किया)। छह वस्तुएँ हैं। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, (एक) अधर्मास्ति, एक आकाश (ऐसे) छह द्रव्य अनादि-अनन्त हैं। क्या कहा? समझ में आया? यह निज शुद्ध जीवास्तिकाय, निज शुद्ध जीवद्रव्य। पहले में पाँच अस्तिकाय में निज शुद्ध जीवास्तिकाय (था) और इसमें निज शुद्ध जीवद्रव्य (कहा है)। छह द्रव्य में छह द्रव्य है। मानना, व्यवहार से जानना। निश्चय में आत्मा भगवान निज शुद्ध जीवद्रव्य। समझ में आया? वही आदरणीय है। वही आदरणीय अन्दर अंगीकार कर। बाकी सब छोड़नेयोग्य है। दया, दान के विकल्प, गति-फति सब छोड़नेयोग्य है, वे आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसा उपाध्याय करे और प्ररूपित करे। समझ में आया?

सप्त तत्त्व... सात तत्त्व है न? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। यह सात तत्त्व हैं। परन्तु निज शुद्ध जीवतत्त्व आदरणीय है। देखो! संवर, निर्जरा और मोक्ष भी आदरणीय नहीं। सेठी! आहाहा! दया, दान के विकल्प तो शुभ हैं, वह आदरनेयोग्य नहीं, परन्तु संवर-निर्जरा-मोक्ष की निर्मल पर्याय है। द्रव्यस्वरूप जो शुद्ध अखण्डानन्द भगवान, पूर्ण पूर्ण परमात्मा निज स्वरूप, वही अन्तर अंगीकार करनेयोग्य है। ओहोहो! कहो, नेमिदासभाई! देखो! वापस दो-दो बातें करते जाते हैं इकट्ठी। वह है अवश्य। उसका ज्ञान हो उसे। आदरणीय एक ही होता है।

नौ पदार्थ हैं,... पुण्य-पाप मिलाये। नौ पदार्थ हैं—जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। परन्तु नौ पदार्थ में निज शुद्ध जीव पदार्थ, देखो! नौ पदार्थ में पुण्य आदरणीय नहीं और संवर-निर्जरा-मोक्ष भी आदरणीय नहीं। वह पर्याय है, हेय है। ओहोहो! ऐसा उपाध्याय प्ररूपित करते हैं। मोतीरामजी!

मुमुक्षु : प्रतिमा का कब प्ररूपित करेंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिमा का कब प्ररूपित करेंगे? प्रतिमा का आ गया बीच में। प्रतिमा हो, उसका विकल्प ज्ञान करावे। अरे! उसे आत्मा परमात्मस्वरूप अन्दर है, (उसकी) खबर नहीं होती। अनन्त काल का अनजाना मूढ़। मूर्खता से भटकता हुआ चौरासी के अवतार में गोते खा-खाकर मर गया। समझ में आया? यह राजा हुआ हो तो मूढ़ है और सेठिया हुआ हो तो मूढ़ है और देव हुआ हो तो मूढ़ है। शोभालालभाई! आहाहा!

यह भगवान आत्मा अन्तर में वस्तु है या नहीं, वस्तु? तो वस्तु में कोई स्वभाव शक्ति का सत्त्व है या नहीं? तो कितनी शक्ति का इसका फिर इसे विचार करके (अनुभव करना)। अनन्त शक्तियाँ हैं। एक, दो, तीन, ऐसा नहीं, अनन्त। वस्तु है तो उसे शक्ति होती है अर्थात् स्वभाव होता है, अर्थात् गुण होते हैं, अर्थात् सामर्थ्य होता है। ऐसे अनन्त गुण का एक तत्त्व, ऐसा एक स्वभाव भगवान, वही धर्मी जीव को अन्तर में आदरनेयोग्य है। आहाहा! ऐसा उपाध्याय प्ररूपणा करते हैं। दूसरी प्ररूपणा करे, वह उपाध्याय नहीं। अमरचन्दभाई! आहाहा! मन्त्रीजी! कैसी बात है? आहाहा! पुण्य से धर्म मनावे, पुण्य से लाभ मनावे, पुण्य को आदरणीय मनावे, वे उपाध्याय नहीं, वे उपदेशक नहीं, वे साधु नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग संसार है, उसे मोक्षमार्ग बतावे। समझ में आया? यह वे शोर मचाये, लो! इसे संसार (कहा)। परन्तु सुन न! जितना राग है, उतना बन्धन है। हो भले। होता है, जाननेयोग्य है न व्यवहार से आराधनेयोग्य ऐसा भी कहा जाता है। पंचाचार व्यवहार। परन्तु उसका फल तो पुण्यबन्ध है।

भगवान अन्तर आत्मा... कोई भी मनुष्य ऐसा विचार करे कि एक मैं हूँ या नहीं ? और फिर भगवान और केवली। परन्तु यह है या नहीं आत्मा ? तो है वह है, वह क्या है ? है वह कुछ है या नहीं उसमें ? परन्तु क्या ? जैसे गुड़ है। गुड़ है या नहीं ? है। तो क्या है ? तो यह मिठास है। मिठास का पिण्ड है, दल सफेद है, कोमल इत्यादि-इत्यादि। इसी प्रकार आत्मा है। तो है वह क्या है ? ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द है, शान्ति है, वीर्य है, ऐसे अनन्त-अनन्त शक्ति का पिण्ड आत्मा है। कभी भगवान का नाम भी सुना नहीं कि भगवान कैसे होते हैं ? और आत्मा कैसा होता है ? समझ में आया ? आहाहा !

देखो ! यह निज शुद्ध जीव पदार्थ नौ में एक ही आत्मा आदरणीय है। कितनी बात रख दी है ! नौ तत्त्व है सही। जीव और जड़ दो तथा यह पर्याय—अवस्था। शुभ-अशुभ, दो होकर आस्रव, बन्ध; संवर, निर्जरा, मोक्ष। तो भी होने पर भी, है अवश्य। एक जीव पदार्थ भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ एकरूप स्वभाव अन्तर वस्तु, वही आदरणीय है। कहो, समझ में आया ? आहाहा ! कैसी स्पष्ट बात है !

ऐसा मनुष्यपना मिला, उसमें यह कुछ नहीं करे और मरकर चला जायेगा। चौरासी के अवतार में अनन्त काल से गोते खाता है और खायेगा। उसमें आत्मा क्या चीज़ है, उसकी कीमत नहीं करे, तो दूसरे की कीमत जायेगी नहीं, दूसरे की कीमत टलेगी नहीं। इसकी कीमत हो तो दूसरे की कीमत रहेगी नहीं। आहाहा ! शुभभाव की कीमत नहीं रहेगी। अरे ! मोक्ष की पर्याय की कीमत नहीं। पूरा द्रव्य है, उसमें और कीमत इसकी कहाँ करना ? उसकी करना या इसकी करना ? ऐसा कहते हैं, लो ! आहाहा ! जिसमें से मोक्ष पर्याय अनन्त-अनन्त चली आती है, प्रवाह। ऐसा द्रव्य स्वभाव ! ऊपर कहा था न ? समझ में आया ? एक चिदानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव शुद्धातमतत्त्व वही सच्चा है, भूतार्थ है, वही परम सत्य है। आहाहा !

व्यक्त है वस्तु, वस्तु... वस्तु वह फिर व्यक्त और अव्यक्त कैसी ? वस्तु है, है, प्रगट है। वस्तु और अप्रगट होगी ? अप्रगट का अर्थ अभाव हो जाये। परन्तु कहाँ वह क्या वस्तु है ? किसे खबर है ? कुछ सुना नहीं, विचार में लिया नहीं। बड़ा महान पदार्थ

प्रभु! यह आत्मा अखण्डानन्द भगवान एक स्वभावी पदार्थ, अनन्त गुण तथापि एक स्वभावी द्रव्य लेना है न? चिदानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव, देखो न भाषा! द्रव्य एक अखण्ड स्वरूप। उसका ज्ञान अखण्ड, दर्शन अखण्ड, आनन्द अखण्ड, शान्ति अखण्ड। ऐसे अनन्त गुण का एकरूप भगवान, वही अन्तर्मुख में ग्रहण करनेयोग्य है, आदरनेयोग्य है, सेवनयोग्य है और आराधना योग्य है। यह भाई! कैसी (बात)? बाहर की होवे तो, भाई! लाओ, सेवा कर दें। दो घड़ी कोई पूजा कर डाले, भगवान के पास जाकर चलो सेवा (कर आयें)। यह नहीं। यह तो पुण्य भाव है। यह तो शुभभाव, पुण्यभाव है; यह धर्म नहीं। आहाहा! जादवजीभाई!

सच्चे उपाध्याय। उपाध्याय अर्थात् जिनके निकट ज्ञान करना हो और जो सत्य की बात करे, वे कैसे होते हैं? कि अन्तर में निश्चय पाँच आचार तो पालते हों। समझ में आया? और ऐसे तत्त्व का उन्हें सब ज्ञान हो। निश्चय में उनका आत्मा ही आदरणीय ऐसा अनुभव करते हों और प्ररूपणा में भी यही बात आती हो। आहाहा! समझ में आया? ऐसा लगे न, वह स्वयं इतना बड़ा परन्तु ऐसा मानो क्या कहते हैं यह? कहाँ है परन्तु यह? एक थे न? वकील थे। धोया हुआ मूला जैसा इतना बड़ा, महिमा करते हो तो गया कहाँ? भगवानजी वकील थे।

मुमुक्षु : नाम भगवान।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम 'भगवान' था उनका। ऐसी महिमा करते हो, ऐसा आत्मा... आत्मा। परन्तु धोये हुए मूला जैसा गया कहाँ? है सब, परन्तु तुझे भान नहीं। जहाँ है वहाँ नजर करना नहीं। नजर करना नहीं और और कहाँ है? परन्तु कहाँ है, किन्तु आँख उघाड़ तो खबर पड़े या उसके बिना? अन्तर के चैतन्य के नेत्र खोलकर अन्तर ज्योति अनन्त गुण की राशि भगवान विराजता है। स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप ही स्वयं है। आहाहा! समझ में आया?

यह सब है, ऐसा जानकर, हों! अकेला-अकेला आत्मा करे, ऐसा नहीं। उसका कारण कि '**पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु...**' उसका एक समय की ज्ञान की पर्याय में जानने की और श्रद्धा करने की उसकी सामर्थ्य है। परन्तु वह परलक्ष्यी

सामर्थ्य इतना नहीं। पूरा द्रव्य एक समय में अखण्ड ज्ञायक चिदानन्द एक स्वभाव, उसकी अन्तर में आदरणीय दृष्टि, अनुभव दृष्टि, स्थिरता दृष्टि, आचरण दृश्टि, आचरण भाव, उसे आचरते हुए सन्त जगत को यह आचरने का कहे, यह आचरने का कहे, उसका उपदेश दे। आहाहा! (वर्तमान में तो) पूरी पद्धति बदल गयी, मन्त्रीजी! पद्धति बदल गयी। यह करो, व्रत पालो, भक्ति करो, तप करो, अपवास करो, सोलह भथ्थु करो। हाँ? करने करने का।

यह भगवान आत्मा महान स्वरूप है अन्दर। उसकी अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और रमणता करना, यही करने का है, दूसरा करने का क्या था? बाकी तो जड़ की-शरीर की क्रिया होनेवाली हो वह होती है, राग की मन्दता भी उस काल में होती है। परन्तु वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। अबन्धस्वभावी दृष्टि में आये बिना अबन्ध परिणाम प्रगट नहीं होते। यह तो बन्धभाव है, हेय है। अभी तो शुभभाव ही हो पड़ा है सर्वत्र। धर्मध्यान वह, संवर-निर्जरा वह। ओहोहो!

ऐसे अर्थ करने लगे। अरे! भगवान, बापू! बहुत कठिन पड़ेगा। यह आत्मा को ऐसे सत्यमार्ग के सामने विरोध में ऐसा अवरोध करता है न! कठिन काम है। ओहोहो! कौन जाने कौन होगा अन्दर में? घर में कोई हीरा अच्छा हो तो चारों ओर से जाँचते हैं। कैसे होगा? प्रकाश... प्रकाश। हीरा की कीमत किसलिए की लोगों ने? कि एक तो टिकाऊ बहुत। टिकाऊ। टिके... टिके... बहुत न? टिके समझे? लम्बे काल रहे। टिके। और थोड़े मिले और प्रकाश करते हैं। उसकी इसे कीमत है। दूसरी कीमत किसकी है उसमें? तब यह टिके, ऐसा तत्त्व तो यह त्रिकाली तत्त्व ज्ञायक सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। और जिसका ज्ञानप्रकाश स्वभाव है, उसे जो किसी को ही अन्दर दुर्लभता से पा सकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तैरता है। यह पाँच हजार व्यक्ति कहाँ, लोग कहाँ थे वे? आत्मा को तैरता तब कहलाये। लो! ऐसा कि हाथ में हीरा हो तो दूसरा जाने तो सही कि यह हीरा है। तेरा क्या भला हुआ? हीरा उसमें पड़ा और मर जाये। हाय... हाय!

देखो न! अभी नहीं कहा भगवानभाई का? कहते हैं कि वह मारी तो ऐसे सब घुस गये थे। छर्रा-छर्रा। छूटे न गोली? छर्रा। उसकी दाह होती है। वह तो एक मिनिट में समाप्त हो जाये। उसमें भड़का उसका। जगजीवनभाई के बहुत परिचित थे, पहिचानवाले थे। नहीं? हाँ, मैंने कहा था। अभी नहीं थे अपने गत वर्ष तुम मिलने नहीं गये थे स्टेशन पर? स्टेशन पर मिलने गये थे। खबर है या नहीं? उसे सबको पहिचान सही न, बड़े लोगों के साथ बहुत पहिचान उसकी। हम गये थे। बलवन्तभाई निकले हैं। गत वर्ष थे न कुण्डला, तब? तो कहलवाया है जगजीवनभाई को कि मिलने आना। गये थे मिलने। वे भाई आये थे कुण्डलावाले। वे बलवन्तभाई आत्मा अन्दर है। अनन्त वीर्य का धीन भगवान, अनन्त ज्ञान और दर्शन का आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा है। उसे अन्दर में मिलने जाये एकाग्र होकर, उसका नाम धर्म कहा जाता है। आहाहा! कठिन बातें परन्तु, भाई!

मुमुक्षु : .... नकली वस्तु माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : नकली माने। वे सूरत के आते हैं न हीरा? कैसे कहलाते हैं? क्या कहलाते हैं? अर्टीफिशियल। अर्टीफिशियल को सच्चे में खतौनी कर डाले। आहाहा! चैतन्य हीरा भगवान! देह के परमाणु-मिट्टी से भिन्न। मरते हुए भी ऐसा कहते हैं या नहीं? यह देह छूट तो कहे, भाई! जीव गया। ऐसा कहते हैं कि शरीर गया साथ में? शरीर तो यह पड़ा रहा। जीव गया। परन्तु क्या जीव गया अन्दर? क्या था जीव में? अरूपी परन्तु है क्या वह? भगवान जाने कुछ होगा वा-बा, पवन-बवन। वह नहीं। श्वास तो जड़, मिट्टी, धूल है। अन्दर चिदानन्दमूर्ति ज्ञान का घन आनन्दकन्द सच्चिदानन्द अखण्ड स्वभावी वस्तु वह है। वह कभी इसने दृष्टि में, श्रद्धा में लिया नहीं। कहो, समझ में आया?

देखो! यह उपाध्याय इसमें से यह बताते हैं। पंचास्तिकाय में से शुद्ध जीवास्तिकाय; षट् द्रव्य में से निज शुद्ध जीवद्रव्य; सप्त तत्त्व में से निज शुद्ध जीवतत्त्व और नौ पदार्थों में से शुद्ध पदार्थ (बताते हैं)। **जो आप शुद्धात्मा है, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है, अन्य सब त्यागनेयोग्य हैं,...** देखो! श्रद्धा में सब छोड़नेयोग्य है। वह चार ज्ञान की

पर्याय प्रगट हो, वह भी छोड़नेयोग्य है। **ऐसा उपदेश करते हैं...** है ? ऐसा उपदेश करते हैं। अमरचन्दभाई ! आहाहा ! यह तो उपदेश ही उल्टे हो गये। आचार्य कहाँ रहे और उपाध्याय कहाँ रहे ? खोखा रहे नाम। आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... संग कहना किसे ?

यहाँ तो कहते हैं, उपाध्याय सच्चे सन्त, मुनि, उपदेशक जिन्हें भगवान के कहे हुए पदार्थों का ज्ञान और निज स्वभाव भगवान आत्मा का आदरणीय भाव, ऐसा जो कथन जगत के समक्ष करते हैं, उन्हें उपाध्याय और उन्हें साधु, सन्त कहा जाता है। वरना इससे उल्टा कहे, वे साधु-सन्त नहीं हैं। वे सब गड़बड़िया चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा ! समझ में आया ? देखो ! यह श्लोक। प्रभाकर भट्ट पहिचानकर वन्दन करने के बाद प्रश्न करेगा।

ऐसा उपदेश करते हैं, तथा... देखो ! दूसरी बात। वह उपाध्याय कैसा उपदेश करते हैं ? **तथा शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक्श्रद्धान...** यह शुद्ध... उन चार में से लिया था न ? भाई ! पंचास्तिकाय, द्रव्य, तत्त्व और पदार्थ उनमें से लिया था। अब शुद्ध स्वभाव का सम्यक्श्रद्धान, उस मोक्षमार्ग का वर्णन करते हैं। उपाध्याय कैसा मोक्षमार्ग वर्णन करते हैं ? कैसा मोक्षमार्ग कहते हैं ? निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान आत्मा शुद्ध है। वर्तमान पुण्य-पाप के मैल भाव हैं, उनके पीछे रहा हुआ पूरा तत्त्व, पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वे मैल हैं। उनके पीछे भगवान **शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेद रत्नत्रय है,...** यह अभेद रत्नत्रय, जिस रत्नत्रय से मोक्ष मिलता है।

वही निश्चयमोक्षमार्ग है, ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं,... देखो ! अमरचन्दभाई ! ऐसा उपदेश शिष्य को दे, उसे उपाध्याय कहा जाता है। वह श्रोता को उपदेश ऐसा करे कि यह भगवान शुद्धस्वरूप परमात्मा, जिसमें अन्तर्दृष्टि करके स्थिर होनेयोग्य है। ऐसा शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र जो अभेद रत्नत्रय, अभेद स्वभाव के साथ अभेद होते हैं न तीन ? ऐसा अभेद निश्चयरत्नत्रय वह निश्चयमोक्ष (मार्ग है)। देखो ! अभेदरत्नत्रय

कहो, या निश्चयमोक्षमार्ग कहो, भेदरत्नत्रय कहो या व्यवहार कहो। आहाहा! गजब बात, भाई! वाडा में बैठे, उन्होंने कितनों ने तो सुना भी न हो। कैसे आचार्य और कैसे उपाध्याय और कैसा उनका उपदेश होता है? ऐई! जमुभाई! अहो!

ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं, ऐसे उपाध्यायों को मैं नमस्कार करता हूँ,... प्रभाकर भट्ट कहता है, ऐसे उपाध्याय को मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी कोई कथनपद्धति सन्तों की कि जिसमें पूरे जैनदर्शन का व्यवहार भी समाहित हो जाता है और आदरणीय क्या, यह भी बताते हैं। आहाहा! परमात्मप्रकाश भी एक...

मुमुक्षु : परमात्मा का प्रकाश....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आत्मा परमात्मा का स्वरूप ही है अन्दर। यह जो द्रव्य स्वभाव जो परमात्मस्वरूप, परमस्वरूप भगवान आत्मा की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका आचरणरूप अभेद आचरण, यह रत्नत्रय, वही सच्चा मोक्ष का मार्ग है। ऐसा उपाध्याय कहते हैं, वे सच्चे हैं। इससे विरुद्ध कहें वे खोटे हैं। समझ में आया?

अरे! अपने को छोड़कर बात। यहाँ अपने को आदरकर फिर दूसरी बात। स्वयं भगवान पूर्णानन्द का नाथ अखण्ड ज्ञायकस्वभाव से भरपूर प्रभु, अनन्त-अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य, वही सत्य, वही भूतार्थ, वह सत्य का साहिबा, ऐसा भगवान निज स्वरूप ही एक श्रद्धा करनेयोग्य है, जाननेयोग्य है, आचरनेयोग्य है, रमनेयोग्य है, वेदन करनेयोग्य है। ऐसा अभेदरत्नत्रय का मार्ग उपाध्याय शिष्यों को कहते हैं। देखो! यह शिष्य भी उसे सुनते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसे वे शिष्य इनकार नहीं करते कि नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। तो वह शिष्य ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? उपाध्याय ऐसा निश्चय मोक्षमार्ग अभेद रत्नत्रय कहते हैं। शिष्यों को कहते हैं। शिष्यों को कहते हैं, इसका अर्थ कि वह विनय से सुनता है। ऐसा निश्चय... निश्चय... निश्चय... नहीं परन्तु व्यवहार लाओ, ऐसा नहीं। ऐ कमलचन्दजी! क्या हो? समझ में आया? वाडा में ऐसी बात तो नोंच डाला है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव का मार्ग, उसमें रहनेवालों ने भी फेरफार (कर डाला है)। वाडा में रहे हुए। आहाहा!

यह तो सिंह का मार्ग है। भेड़ में सिंह गया, भेड़ में सिंह गया। दूसरे सिंह ने चिल्लाहट मचायी तो दूसरे दुम दबाकर भागे, सिंह नहीं गया। ऐ... तू कैसे खड़ा रहा? कि मुझे कुछ त्रास नहीं हुआ। समझ न कि तू मेरी जाति का है! इसी प्रकार भगवान ने दिव्यध्वनि में गर्जना की, तू परमात्मा मेरी जाति का, मेरी नात का, मेरे स्वरूप से है, ऐसा तू अन्दर में है। सुननेवाला जगता है कि आहाहा! मैं यही हूँ। यह पुण्य-पाप और संयोग में रहता हूँ, वह मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो! उपदेश आया न, इसलिए आया। उपदेश आया—गर्जना। उपाध्याय की ऐसी गर्जना! अभेदरत्नत्रय मोक्षमार्ग। हे शिष्य! सुन। वह इनकार नहीं करता, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पात्र बिना वस्तु नहीं टिकती।

ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं,... कि नहीं... नहीं... नहीं... नहीं। साधारण लोगों को ऐसा नहीं कहना। अमुक को नहीं कहना। अरे! सुन न! साधारण अर्थात् कि भगवान आत्मा है। एक क्षण में फाट... फाट... (उग्र) पुरुषार्थ करके केवलज्ञान ले, ऐसा यह है। आहाहा! नहीं... नहीं, नहीं कर सकता, नहीं कर सकता। तू शोर मचाता है भिखारी की भाँति। समझ में आया? चैतन्य के सरोवर भगवान अनन्त गुण का सागर है। उसमें क्षण में केवलज्ञान पूर्ण पर्याय होने की सामर्थ्यवाला है। उसे ऐसा कहना कि, ऐसा नहीं... ऐसा नहीं... ऐसा नहीं। (उसमें) उसका अनादर होता है। समझ में आया? देखो न! यहाँ भी ब्रह्मदेव ने टीका भी कैसी की है! आचार्य ऐसे होते हैं, उन्हें पहिचानकर करते हैं, आता है न, प्रवचनसार में? मैं ज्ञान—दर्शनस्वरूपी आत्मा। मैं अरिहन्त को नमस्कार करता हूँ। अरिहन्त कैसे? कि ऐसे। यह शैली सब ली है। शैली सब आचार्यों की (ऐसी अलौकिक है)। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे उपाध्यायों को मैं नमस्कार करता हूँ और शुद्ध एक ज्ञानस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व की आराधनारूप... साधु की बात करते हैं। शुद्ध ज्ञान भगवान, शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव अन्तर। ऐसा शुद्धात्मतत्त्व, शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव। शुद्ध, बुद्ध है न शब्द में? बुद्ध का अर्थ ज्ञान किया। शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व। उसकी

आराधना में **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं,...** देखो! अन्तर में **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं, उन साधुओं को मैं वन्दता हूँ।** उसे साधु कहा जाता है।

मुमुक्षु : व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की बात भी नहीं की। अन्तर अखण्डानन्द प्रभु शुद्धात्मा कैसा? कि शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव। शुद्ध, बुद्ध एक स्वभाव। शुद्ध, बुद्ध। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव, बस। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव, ऐसा भगवान, वही आराधे। आराधनारूप, आराधनारूप। **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं, उन साधुओं को मैं वन्दता हूँ।** कहो, समझ में आया? **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो आचरते हैं,...** वे आचार्य, वे आचार्य। ऐसे निर्विकल्प समाधि को कहें, वे उपाध्याय और **साधते हैं, वे ही साधु हैं।** वे साधु। तीन के ले लिये तीन। आहाहा!

अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये ही पंच परमेष्ठी वन्दनेयोग्य हैं, ऐसा भावार्थ है। लो! यह पाँच परमेष्ठी इस प्रकार वन्दन करनेयोग्य है, यह भावार्थ किया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ०२, सोमवार
दिनांक-१४-०६-१९७६, गाथा-७ से ९, प्रवचन-८

परमात्मप्रकाश चलता है। योगीन्द्रदेव कृत अध्यात्मशास्त्र परमात्मप्रकाश है। उसमें पंच परमेष्ठी का अधिकार चलता है। अरिहन्त और सिद्ध का अधिकार आ गया। आचार्य, उपाध्याय, साधु का अधिकार चलता है। उसमें भी आचार्य तक आ गया है।

आचार्य कैसे होते हैं? कि अपना आनन्द, ज्ञानस्वरूप भगवान का वे आचरण करते हैं। यहाँ विकल्प और राग की बात नहीं ली। शुद्ध चैतन्यवस्तु जो आनन्दकन्द प्रभु है, उसका आचरण करते हैं, उसे आचार्य कहा जाता है। समझ में आया? यहाँ तक अपने आया है।

अब उपाध्याय कैसे होते हैं? उपाध्याय। पंचास्तिकाय का उपदेश उपाध्याय करते हैं। षट् द्रव्य का उपदेश करते हैं, सप्त तत्त्व का उपदेश करते हैं, नौ पदार्थ का। है? **उनमें निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** उपादेय है, ऐसा कहते हैं। पंचास्तिकाय तत्त्व है। काल के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय हैं। उसमें शुद्ध जीवास्तिकाय, वही आदरणीय है, ऐसा उपदेश उपाध्याय करते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान अरिहन्त, वे भी जीवास्तिकाय में आ गये। परन्तु वे आदरणीय हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहा। **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** है? देखो! **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : अरिहन्त प्रभु हमारे ही तो हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरिहन्त प्रभु परद्रव्य है।

यहाँ कहा न, पंचास्तिकाय में अरिहन्त, सिद्ध आ गये। परन्तु उनमें आदरणीय—उपादेय कौन? कि निज शुद्धात्मा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने अन्दर जो पवित्र आत्मा को देखा, निज सत्ता से शुद्ध चैतन्य ऐसा निज जीवास्तिकाय, वह उपादेय है। ज्ञान की वर्तमान पर्याय में निज शुद्धात्मा आदरणीय है। अथवा ग्रहण करनेयोग्य है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यह उपादेय है, इसका अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, ग्रहण करनेयोग्य। अन्दर है। ग्रहण करना। निज शुद्ध चैतन्यमूर्ति है उसे पर्याय में ग्रहण करना। उसका आदर करके, उसमें लीन होना। आहाहा!

मुमुक्षु : ग्रहण करना अर्थात् पकड़ना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ना। ज्ञायक त्रिकाल है, उसे ज्ञान से पकड़ना।

मुमुक्षु : हाथ से पकड़ना?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ कहाँ आत्मा है? वह तो मिट्टी-जड़ है। आहाहा!

वस्तु पंच अस्तिकाय है। काल अस्तिकाय नहीं। काल अस्ति है। काय नहीं। क्योंकि असंख्य हैं, भिन्न-भिन्न कालाणु हैं। तो कालाणु के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय हैं, उनमें निज शुद्ध जीवास्तिकाय, निज शुद्ध जीवास्तिकाय... आहाहा! शुद्ध निज। परमात्मा पंच परमेष्ठी जीवास्तिकाय में आते हैं, तथापि आदरणीय और ग्रहण करनेयोग्य (नहीं)। ज्ञान की पर्याय में आदरणीय हो तो वह निज शुद्धात्मा है। आहाहा! समझ में आया? है न? नीचे उपादेय का अर्थ यह किया है। **ग्रहण करनेयोग्य....** आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! उपाध्याय **ऐसा उपदेश करते हैं,...** ऐसा उपदेश नहीं करते कि राग से तुझे कल्याण होगा, व्यवहाररत्नत्रय साधते-साधते निश्चय साधन होगा। ऐसा उपदेश उपाध्याय नहीं करते। समझ में आया?

जैनशासन में यथार्थ उपाध्याय उसे कहा जाता है कि जो इन पंचास्तिकाय में एक निज शुद्ध जीवास्तिकाय। असंख्य प्रदेशी है न? और अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु आत्मा तो है। तो ऐसा शुद्ध जीवास्तिकाय ही आदरणीय है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई आदरणीय नहीं है। ऐसा उपदेश उपाध्याय करते हैं। आहाहा! कुछ खबर नहीं होती, क्या चीज़ है?

मुमुक्षु : उपाध्याय स्वयं आदरणीय नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उपाध्यायपना अपनी पर्याय है, वह भले साधक है, परन्तु आदरणीय तो उसे निज आत्मा ही है। समाधि उपादेय है, ऐसा कहेंगे। जो समाधि वीतराग पर्याय द्वारा निज द्रव्य को आदरणीय ग्रहण किया, वह तो आदरणीय है ही,

परन्तु निर्विकल्प समाधि जो मोक्षमार्ग है, उसे भी आदरणीय कहा जाता है। आहाहा! सूक्ष्म बातें ऐसी हैं, भाई! एक बात (हुई)।

षट्द्रव्य। भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। तो उपाध्याय छह द्रव्य का उपदेश करते हैं। परन्तु छह द्रव्य में निज शुद्ध जीवद्रव्य उपादेय है, ऐसा उपदेश करते हैं। आहाहा! अपना निज शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दमूर्ति प्रभु, वही ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसा उपदेश उपाध्याय करते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश करे कि तुम राग करो, भक्ति करो, पूजा करो, उससे तुम्हारा कल्याण होगा, यह उपदेश उपाध्याय का है ही नहीं। जैन के उपाध्याय का यह उपदेश ही नहीं। समझ में आया? देश की सेवा करो, तुम्हारा कल्याण होगा, यह उपदेश जैन का उपदेश नहीं। जैन के उपाध्याय का उपदेश नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सबको अच्छा लगे, ऐसा उपदेश देना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको भले न अच्छा लगे। आहाहा!

बुखार में कड़वी दवा पीते हैं। तो मीठी दवा देना? शक्कर देगा तो मर जायेगा। वास्तविक ऐसी चीज़ है। एक समय में निज शुद्ध प्रभु परमानन्द मूर्ति, वही षट्द्रव्य में आदरणीय है। और अन्तर वीतराग समाधि से वही आदरणीय और ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! फिर कहेंगे कि वीतराग समाधि भी आदरणीय है। वीतराग समाधि है न, वह भी.... वीतरागी निर्मल पर्याय है न? उसे भी आदरणीय कहते हैं।

निज शुद्ध जीवद्रव्य,... देखो न! आहाहा! **निज शुद्ध जीवतत्त्व,...** सात तत्त्व हैं न? सात तत्त्व। जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष—यह सात। तो सात में निज शुद्ध जीवतत्त्व उपादेय है। संवर, निर्जरा और मोक्ष भी उपादेय नहीं। पहली दृष्टि यह है। आहाहा! समझ में आया? सात तत्त्व में आस्रव में पुण्य-पाप इकट्ठे लिये हैं। नौ पदार्थ में अलग किये हैं। तो सात तत्त्व जो जीव है, अजीव है, आस्रव है, बन्ध है, संवर है, निर्जरा है और मोक्ष है। सात में निज शुद्ध जीवतत्त्व, वह आदरणीय है। पर्याय में। आदरणीय तो पर्याय में है न? आहाहा! समझ में आया? यह थोड़ी हिन्दी भाषा है। समझना। आहाहा!

अरे! वीतराग दिगम्बर सन्त, जिन्होंने अपने स्वरूप का आराधन किया और वही बात जगत को कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदाय में भी कहते हैं कि हम उपाध्याय उसे कहते हैं... आहाहा! कि जो सात तत्त्व की बात में निज शुद्ध जीवतत्त्व को आदरणीय बतावे। यह उपाध्याय। कहो, पण्डितजी! भगवान निज शुद्ध वस्तु पवित्र पिण्ड प्रभु आत्मा, वही पर्याय में ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! फिर कहेंगे कि वीतराग पर्याय साधती है, उसे भी उपादेय कहा जाता है। समझ में आया?

निज शुद्ध जीवपदार्थ,... नौ पदार्थ में... नौ पदार्थ समझते हो? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। यह नौ पदार्थ है। पहले सात तत्त्व कहे। उनमें आस्रव में पुण्य-पाप इकट्ठे लिये। यहाँ अलग किये। तो नौ पदार्थ में... आहाहा! एक शुद्ध जीव पदार्थ, निज शुद्ध जीव पदार्थ आदरणीय है। संस्कृत है। समझ में आया? त्रिकाली जीव शुद्ध चैतन्यघन भगवान, वह नौ पदार्थ में निज शुद्ध आत्मा वीतरागी पर्याय में ग्रहण करनेयोग्य है, वीतरागी पर्याय में आदर करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? वास्तविक तत्त्व की खबर न मिले और ऊपर से चल निकले कि धर्म करते हैं। धर्म कहाँ है?

यहाँ तो नौ पदार्थ में संवर, निर्जरा, मोक्ष आये। तथापि परमार्थ से तो निज शुद्ध आत्मपदार्थ ही आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया? लो! निज शुद्ध पदार्थ है न? **जो आप शुद्धात्मा है, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है,...** वस्तु है एक समय में पूर्ण शुद्ध जीवतत्त्व, तो वीतरागी पर्याय में वही ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! फिर कहेंगे कि वीतरागी पर्याय साधक है, उसे भी उपादेय कहा जाता है। साधक है न? समझ में आया? व्यवहार का विकल्प उपादेय है और साधनेवाला है, ऐसा नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, वह साधक भी नहीं और आदरणीय भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अन्य सब त्यागने योग्य हैं,... भाषा देखो! क्या कहा? पंचास्तिकाय में निज शुद्ध आत्मा ग्रहण करनेयोग्य है। इसके अतिरिक्त सब त्यागनेयोग्य है। अरिहन्त, सिद्ध आदि भी आत्मा को त्यागनेयोग्य है। पण्डितजी! पंच परमेष्ठी त्यागनेयोग्य है, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : स्पष्टीकरण करो, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : परवस्तु है न? परवस्तु है तो अन्तर में त्यागनेयोग्य है। एक निज शुद्ध आत्मा ही आदरणीय है। ऐसी बात है। है न?

अन्य सब त्यागने योग्य हैं,... अर्थात् पंचास्तिकाय में निज शुद्ध जीवास्तिकाय आदरणीय है, इसके अतिरिक्त सर्व त्यागनेयोग्य है। षट्द्रव्य में निज शुद्ध द्रव्य आदरणीय है, इसके अतिरिक्त सर्व त्यागनेयोग्य है। पंच परमेष्ठी भी लक्ष्य करनेयोग्य है नहीं। आहाहा! क्योंकि पंच परमेष्ठी पर लक्ष्य जायेगा तो विकल्प होगा, राग होगा। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : ७०० मील दूर से यहाँ आये हों तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूर से आये तो क्या हुआ? आये तो आत्मा में आत्मा है। समझ में आया? आहाहा!

सात तत्त्व में भी एक जीवतत्त्व ही उपादेय है। इसमें पंचास्तिकाय और षट् द्रव्य में तो दूसरे द्रव्य त्याग है। सात तत्त्व में निज शुद्ध चैतन्यतत्त्व ज्ञायकभाव, वह उपादेय है। इसके अतिरिक्त संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि त्यागनेयोग्य हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बाते हैं। ऐसा उपाध्याय का उपदेश वीतराग जैनशासन में इस प्रकार चलता है। उससे विरुद्ध हो, वह जैनशासन के उपाध्याय नहीं हैं। समझ में आया? आहाहा! व्यवहार है अवश्य, आता है, परन्तु आदरणीय है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार नौ (पदार्थ) में निज शुद्ध पदार्थ नौ में। नौ पदार्थ हैं, उनमें निज शुद्ध भगवान पदार्थ ज्ञायकभाव, वही ग्रहण करनेयोग्य है। पंचास्तिकाय में और जीव द्रव्य में परद्रव्य त्यागनेयोग्य है, ऐसा आया। पंच परमेष्ठी भी त्यागनेयोग्य आ गया। आहाहा! वाणी भी त्यागनेयोग्य है, ऐसा आ गया। पंच परमेष्ठी की वाणी जो है, भगवान की दिव्यध्वनि है, यह पंचास्तिकाय में है, पुद्गलास्तिकाय में, परन्तु त्यागनेयोग्य है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! जैनदर्शन की मूल वस्तु, वह भी दिगम्बर जैनदर्शन, इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं दर्शन है ही नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा, कहते हैं कि जीवद्रव्य में निज शुद्ध द्रव्य, षट् द्रव्य में। उसमें तो

दूसरे अरिहन्त आदि द्रव्य भी निकाल दिये। **अन्य सब त्यागने योग्य हैं,...** ऐसा कहा है न? अस्ति-नास्ति की। और निज शुद्ध जीवतत्त्व। सात तत्त्व में निज शुद्ध जीवतत्त्व अन्दर पर्याय में आदरणीय है। आहाहा! और सब संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि त्यागनेयोग्य है। समझ में आया? आहा! फिर नौ पदार्थ में जीव निज पदार्थ ही आदरणीय है। आहाहा! **आप शुद्धात्मा है, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है,...** आहाहा! दृष्टि का विषय ध्रुव, वही ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो वीतराग मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले महाविदेह में भगवान के पास गये थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। इस परमात्मप्रकाश में भी समयसार आदि कुन्दकुन्दाचार्य की झलक है। प्रस्तावना में लिखा है। प्रस्तावना में है। आहाहा! समाधिशतक आदि की इसमें झलक है।

अन्य सब त्यागने योग्य हैं,... आहाहा! उपादेय और त्यागनेयोग्य, दो बातें लीं। समझ में आया? जिसकी अभी खबर भी न हो कि यह निज क्या है और पर क्या है... आहाहा! **ऐसा उपदेश करते हैं,...** है? उपाध्याय, जैन के सच्चे उपाध्याय ऐसा उपदेश करते हैं। पंचास्तिकाय में निज शुद्ध जीवास्तिकाय आदरणीय है, ऐसा उपदेश करते हैं। और स्वयं भी ऐसा आचरण करते हैं। आहाहा!

तथा शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेद रत्नत्रय है, वही निश्चयमोक्षमार्ग है, ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं.... जैन के सच्चे उपाध्याय उन्हें कहते हैं कि शुद्ध आत्मस्वभाव भगवान की श्रद्धा। शुद्ध जीवास्तिकाय भगवान आत्मा की अन्दर श्रद्धा, स्वरूप सन्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा, शुद्ध आत्मा का सम्यग्ज्ञान। आहाहा! शास्त्रज्ञान और पर नहीं। यहाँ तो शुद्धात्मा का ज्ञान और शुद्धात्मस्वभाव का आचरण, वह शुद्ध भगवान पवित्र मूर्ति प्रभु, उसमें रमना, वह आचरण और वह चारित्र है। **अभेद रत्नत्रय है,...** देखो! इन तीन को अभेद रत्नत्रय कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत आदि के परिणाम, यह भेदरत्नत्रय विकल्प है। वह आदरणीय नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

अभेद रत्नत्रय है, वही निश्चयमोक्षमार्ग है,... देखो! वही सच्चा मोक्षमार्ग है।

शुद्ध जीवास्तिकाय प्रभु, पूर्ण आनन्द का नाथ परमात्मस्वरूप की श्रद्धा, स्वसन्मुख होकर उसकी प्रतीति, स्वसन्मुख होकर उसका स्वसंवेदन ज्ञान और शुद्धात्मा की अन्दर रमणता—आचरण, वही निश्चयमोक्षमार्ग है। **ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं,...** उपाध्याय शिष्यों को यह उपदेश देते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार करने का उपदेश नहीं देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार करने का उपदेश वे नहीं देते। जानने का कहते हैं। आहाहा! व्यवहार बीच में आता है, हों! परन्तु वह जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! इस वस्तु की श्रद्धा की खबर न हो। सम्यग्दर्शन कैसे हो और सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा..! उपाध्याय शिष्यों को ऐसा उपदेश करते हैं कि शुद्ध आत्मा परमानन्द की मूर्ति नित्यानन्द प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, वह निश्चयरत्नत्रय, अभेदरत्नत्रय करनेयोग्य है, ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं। **ऐसे उपाध्यायों को मैं नमस्कार करता हूँ।** 'योगीन्द्र' टीकाकार कहते हैं। ऐसे उपाध्याय... आहाहा! वे वन्दनीय है। मिथ्या उपदेश करे और उपाध्याय नाम धरावे, वे वन्दनीय नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उपाध्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उपाध्याय हों, वे न? सच्चे उपाध्याय तो ऐसे ही होते हैं। वैसे तो उपाध्याय नाम बहुत धराते हैं। और यह करो, यह करो, पुण्य करो और इससे तुम्हें कल्याण होगा, ऐसा उपदेश वह जैन उपदेश ही नहीं है। वह वीतरागमार्ग का उपदेश ही नहीं है।

मुमुक्षु : देश सेवा तो करनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : देश सेवा कर कौन सकता है तीन काल में? देश, वह परचीज़ है। उसकी सेवा कर सकता है? आत्मा पर जीव को जिला सकता है? पर की प्राण रक्षा आत्मा कर सकता है? पर के प्राण की रक्षा तो उससे होती है। दूसरा कर सकता है? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

जैन परमेश्वर का तत्त्व, मूल तत्त्व ऐसा गम्भीर और गूढ़ है कि उसे समझने के लिये बहुत प्रयत्न चाहिए। ऐसा का ऐसा ऊपर-ऊपर से मिल जाये, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहाहा! कितनी बात की, देखा! आहाहा! यह उपाध्याय की बात की। अब साधु कैसे होते है? णमो लोए सव्व साहूणं। वे जैन के साधु। दूसरे में तो होते ही नहीं।

मुमुक्षु : णमो लोए सव्व साधु।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सव्व साधु जैन के। यह वह सुशीलकुमार एक स्थानकवासी है। देखो! उसमें णमो लोए सव्व साहूणं कहा है। सर्व साधु कहा। परन्तु जैन के साधु, वे साधु हों। अन्य में तो तीन काल में साधु होते ही नहीं। आहाहा!

अब कहते हैं, **शुद्धज्ञान स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व...** एक अर्थ रह गया है। अन्दर एक अर्थ रह गया है। शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव, संस्कृत में ऐसा है। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव, ऐसा चाहिए। है? सुधारा है? संस्कृत में है। यह तो है। शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव। ऐसा। बुद्ध अर्थात् ज्ञान। शुद्ध भगवान आत्मा और बुद्ध अर्थात् ज्ञानस्वरूप पवित्र, वह एक स्वभावी वस्तु जो भगवान आत्मा की, ऐसे **शुद्धात्मतत्त्व की आराधना...** यह आराधना, वह निर्मल पर्याय है। आराधना किसकी? शुद्धात्मतत्त्व की। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु ध्रुव की आराधना। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं,... भाषा देखो! पहले उपादेय करते थे और अब कहते हैं, निर्विकल्प समाधि को साधते हैं। शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव ऐसा शुद्धात्मा भगवान, उसकी आराधनारूप उसकी सेवा, स्वसन्मुख की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की आराधना, **आराधनारूप वीतराग निर्विकल्प समाधि...** यह वीतरागी नीचे लिखा है। वह एकड़ा है न? '**समाधि को...** आचरते हैं। यह तो आचार्य-साधु की (बात), अरिहन्त-सिद्ध की बात इसमें नहीं है। अरिहन्त सिद्ध तो पूर्ण हो गये, उन्हें क्या? अभी अरिहन्त के लिये ऐसा कहा जाता है कि उन्हें चार कर्म हैं तो ध्यानाग्नि में उन्हें जलाते हैं, भस्म करते हैं, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। यह पहले आ गया न?

मुमुक्षु : भूतनैगमनय से?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं वर्तमान में। चार कर्म वर्तमान है न? अघाति। तो

उन्हें ध्यानाग्नि में जलाते हैं। यह पहले आ गया। कर्मकलंक का नाश। चार बाकी है न? क्षण-क्षण में नाश पाते हैं। सिद्ध को तो कुछ है नहीं।

यहाँ कहते हैं कि वीतराग निर्विकल्प समाधि, वह वीतरागी निश्चयमोक्षमार्ग। आहाहा! समाधि अर्थात् आनन्द की धारा का परिणमन। आहाहा!

मुमुक्षु : समाधि अर्थात् आनन्द की धारा का परिणमन? समाधि तो शरीर को सब छोड़ देने का नाम (समाधि नहीं)?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या छोड़े? अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी आराधना में अतीन्द्रिय आनन्द दशा प्रगट होती है। आहाहा! इसलिए तो ऐसा कहा कि वीतरागी निर्विकल्प समाधि, ऐसा कहा। राग बिना की, भेद बिना की आनन्द की समाधि आत्मा की। आहाहा! मार्ग सूक्ष्म, बापू! लोग बाहर में मानकर बैठे हैं, अनादि की भ्रमणा। आहाहा! **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो आचरते हैं, कहते हैं, वीतराग समाधि को कहे और साधते हैं, वे ही साधु हैं।** उन्हें साधु कहते हैं। पंच महाव्रत पालते हों और नग्न है, इसलिए साधु—ऐसा नहीं है। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प अभेद समाधि को आचरते हैं। आहाहा! जिनस्वरूपी भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप को वीतरागी धारा से आराधते हैं। आहाहा!

सम्यक् शुद्ध निश्चयमोक्षमार्ग से उस तत्त्व को आराधते हैं। समझ में आया? निर्विकल्प समाधि को आचरते हैं, लो न! आहा! वीतरागी निर्मल पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान को आचरते हैं, उसे कहते हैं और साधते हैं, वे साधु। अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, वह साधु, ऐसा यहाँ नहीं कहा।

मुमुक्षु : दूसरी जगह कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी जगह कहा हो तो विकल्प का ज्ञान कराया है। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! और वह भी दिगम्बर मार्ग। समझ में आया? यह वीतरागमार्ग है। अन्यत्र कहीं मार्ग है नहीं। आहाहा! देखो न शास्त्र! अकेले न्याय भरे हैं। साध्यते इति साधु। क्या साधे? कि निर्विकल्प समाधि को साधे। वीतरागीदशा को

साधे। उपादेय तो त्रिकाल है परन्तु साधे यह। वह भी उपादेय कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

जो निश्चयमोक्षमार्ग है, उसे यहाँ वीतरागी निर्विकल्प समाधि कहा गया है। तो वह वीतरागी निर्विकल्प समाधि का ध्येय तो पूर्ण शुद्ध है। उसमें ग्रहण करनेयोग्य तो त्रिकाली चीज़ है। परन्तु वर्तमान वीतरागी पर्याय भी साधनेयोग्य है। राग नहीं, विकल्प नहीं, व्यवहार नहीं। आहाहा! समझ में आया? अभी तो समझना कठिन पड़े। लोगों ने मार्ग ही कहीं का कहीं कर दिया। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है। वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो संवत् ४९ में भगवान के पास गये थे। भगवान महाविदेह में विराजते हैं। सीमन्धर भगवान (आदि) बीस तीर्थंकर महाविदेह में विराजते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में वहाँ गये थे। दो हजार वर्ष हुए। आठ दिन वहाँ भगवान के समवसरण में रहे थे और वहाँ से आकर समयसार शास्त्र बनाया। उस सबकी झलक इस शास्त्र में है। आहाहा! समझ में आया? इस प्रकार पाँचों का वर्णन आ गया। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्या, साधु।

अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ये ही पंच परमेष्ठी वन्दने योग्य हैं,... इस प्रकार जो स्वरूप है, वह वन्दनयोग्य है। आहाहा! **ऐसा भावार्थ है।** लो!

गाथा - ८

अथ प्रभाकरभट्टः पूर्वोक्तप्रकारेण पञ्चपरमेष्ठिनो नत्वा पुनरिदानीं श्रीयोगीन्द्रदेवान् विज्ञापयति -

८) भाविं पणविवि पंच-गुरु सिरि-जोइंदु-जिणाउ।
भट्टपहायरि विण्णविउ विमलु करेविणु भाउ।।८।।
भावेन प्रणम्य पञ्चगुरुन् श्रीयोगीन्दुजिनः।
भट्टप्रभाकरेण विज्ञापितः विमलं कृत्वा भावम्।।८।।

भाविं पणविवि पंचगुरु भावेन भावशुद्ध्या प्रणम्य। कान्। पञ्चगुरुन्। पश्चात्किं कृतम्। सिरिजोइंदुजिणाउ भट्टपहायरि विण्णविउ विमलु करेविणु भाउ श्रीयोगीन्द्रदेवनामा भगवान् प्रभाकरभट्टेन कर्तृभूतेन विज्ञापितः विमलं कृत्वा भावं परिणाममिति। अत्र प्रभाकरभट्टः शुद्धात्मतत्त्वपरिज्ञानार्थं श्रीयोगीन्द्रदेवं भक्तिप्रकर्षेण विज्ञापितवानित्यर्थः।।८।।

ऐसे परमेष्ठी को नमस्कार करने की मुख्यता से श्रीयोगीन्द्राचार्य ने परमात्मप्रकाश के प्रथम महाधिकार में प्रथमस्थल में सात दोहों से प्रभाकरभट्ट नामक अपने शिष्य को पंचपरमेष्ठी की भक्ति का उपदेश दिया।

इति पीठिका

अब प्रभाकरभट्ट पूर्वरीति से पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर और श्रीयोगीन्द्रदेव गुरु को नमस्कार कर श्रीगुरु से विनती करता है -

अब पंच गुरु को भावपूर्वक नमन कर योगीन्दु से।
कहते प्रभाकरभट्ट निर्मल भाव वर्णन के लिये।।८।।

अन्वयार्थ :- [भावेन] भावों की शुद्धताकर [पञ्चगुरुन्] पंचपरमेष्ठियों को [प्रणम्य] नमस्कार कर [भट्टप्रभाकरेण] प्रभाकरभट्ट [भावं विमलं कृत्वा] अपने परिणामों को निर्मल करके [श्रीयोगीन्द्रजिनः] श्रीयोगीन्द्रदेव से [विज्ञापितः] शुद्धात्मतत्त्व के जानने के लिये महाभक्तिकर विनती करते हैं।।८।।

गाथा - ८ पर प्रवचन

ऐसे परमेष्ठी को नमस्कार करने की मुख्यता से श्री योगीन्द्राचार्य... दिगम्बर

योगीन्द्राचार्य हुए हैं। उन्होंने यह परमात्मप्रकाश बनाया है। **श्री योगीन्द्राचार्य ने परमात्मप्रकाश के प्रथम महाधिकार में...** सात गाथा द्वारा पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया। सात गाथा द्वारा। आहाहा! **सात दोहों से प्रभाकर भट्ट नामक अपने शिष्य को पंच परमेष्ठी की भक्ति का उपदेश दिया।** अपने शिष्य को कहते हैं, इस प्रकार पंच परमेष्ठी को वन्दन करना। ऐसे पंच परमेष्ठी हैं, उन्हें वन्दन करना। आहाहा! लो, यह सात गाथा में तो अभी इति पीठिका हुई। आहाहा!

पहली गाथा में अनन्त सिद्ध हुए, उन्हें नमस्कार किया। दूसरी गाथा में भविष्य में अनन्त सिद्ध होंगे, उन्हें नमस्कार किया। तीसरी गाथा में वर्तमान भगवान विराजते हैं। सीमन्धर भगवान महाविदेह में तीर्थंकर (विराजते हैं), उन्हें नमस्कार किया। चौथी गाथा में महामुनि को नमस्कार किया। महामुनि होकर सिद्ध होंगे। पाँचवीं गाथा में उनके निवासस्थान को। आत्मा अपने स्वरूप में निवास करता है, ऐसा जानकर नमस्कार किया। छठवें में उसका ज्ञान अरिहन्त, अरिहन्त को नमस्कार किया छठवीं गाथा में। सातवीं गाथा में आचार्य, उपाध्याय और साधु को (नमस्कार किया)। आहाहा!

यह योगीन्द्रदेव दिगम्बर आचार्य थे। वनवास में रहते थे। लगभग ई.स. छठवीं शताब्दी कहते हैं। **अब प्रभाकर भट्ट पूर्व रीति से पंच परमेष्ठी को नमस्कार कर...** यह नमस्कार प्रभाकर भट्ट ने किया, ऐसा कहा। उन्होंने कहा न, यह पंच परमेष्ठी को तू इस प्रकार नमस्कार कर। आहाहा!

मुमुक्षु : छठवीं शताब्दी अर्थात् कितने वर्ष हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : १४०० वर्ष लगभग।

श्री योगीन्द्रदेव गुरु को नमस्कार कर श्रीगुरु से विनती करता है—अब प्रभाकर भट्ट शिष्य है। वह योगीन्द्रदेव गुरु को विनती करता है। प्रभु! हम अनन्त काल से चार गति में भटकते हैं। हमको ऐसा उपदेश दो कि हमारे संसार का अन्त आ जाये और हमको मोक्ष मिले। ऐसा हमको उपदेश दो। आठवीं गाथा है न?

८) **भाविं पणविवि पंच-गुरु सिरि-जोइंदु-जिणाउ।**
भट्टपहायरि विण्णविउ विमलु करेविणु भाउ।।८।।

गाथा - ९

तद्यथा –

९) गउ संसारि वसंताहँ सामिय कालु अणंतु।
पर मइँ किं पि ण पत्तु सुहु दुक्खु जि पत्तु महंतु।।९।।

गतः संसारे वसतां स्वामिन् कालः अनन्तः।
परं मया किमपि न प्राप्तं सुखं दुःखमेव प्राप्तं महत्।।९।।

गउ संसारि वसंताहं सामिय कालु अणंतु गतः संसारे वसतां तिष्ठतां हे स्वामिन्। कोऽसौ। कालः। कियान्। अनन्तः। पर मइं किं पि ण पत्तु सुहु दुक्खु जि पत्तु महंतु परं किंतु मया किमपि न प्राप्तं सुखं दुःखमेव प्राप्तं महदिति। इतो विस्तरः। तथाहि–स्वशुद्धात्मभावना–समुत्पन्नवीतरागपरमानन्दसमरसीभावरूपसुखामृतविपरीतनारकादिदुःखरूपेण क्षारनीरेण पूर्णे अजरामरपदविपरीतजातिजरामरणरूपेण मकरादिजलचरसमूहेन संकीर्णे अनाकुलत्वलक्षण–पारमार्थिकसुखविपरीतनानामानसादिदुःखरूपवडवानलशिखासंदीपिताभ्यन्तरे वीतराग–निर्विकल्पसमाधिविपरीतसंकल्पविकल्पजालरूपेण कल्लोलमालासमूहेन विराजिते संसारसागरे वसतां तिष्ठतां हे स्वामिन्ननन्तकालो गतः। कस्मात्। एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपञ्चेन्दियसंज्ञिपर्याप्त–मनुष्यत्वदेशकुलरूपेन्द्रियपटुत्वनिर्व्याध्यायुष्कवरबुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धान संयमविषय–सुखव्यावर्तनक्रोधादिकषायनिवर्तनेषु परंपरया दुर्लभेषु। कथंभूतेषु। लब्धेष्वपि तपोभावनाधर्मेषु १शुद्धात्मभावनाधर्मेषु शुद्धात्मभावनालक्षणस्य वीतरागनिर्विकल्पसमाधिदुर्लभत्वात्। तदपि कथम्। वीतरागनिर्विकल्पसमाधिबोधिप्रतिपक्षभूतानां मिथ्यात्वविषयकषायादिविभावपरिणामानां प्रबलत्वादिति। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणामप्राप्तप्रापणं बोधिस्तेषामेव निर्विघ्नेन भवान्तरप्रापणं समाधिरिति बोधिसमाधिलक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्। तथा चोक्तम् – 'इत्यतिंदुर्लभरूपां बोधिं लब्ध्वा यदि प्रमादी स्यात्। संसृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको नरः सुचिरम्।।' परं किंतु बोधिसमाध्यभावे पूर्वोक्तसंसारे भ्रमतापि मया शुद्धात्मसमाधिसमुत्पन्नवीतरागपरमानन्दसुखामृतं किमपि न प्राप्तं किंतु तद्विपरीतमाकु–लत्वोत्पादकं विविधशारीरमानसरूपं चतुर्गतिभ्रमणसंभवं दुःखमेव प्राप्तमिति। अत्र यस्य वीतरागपरमानन्दसुखस्यालाभे भ्रमितो जीवस्तदेवोपादेयमिति भावार्थ :।।९।।

वह विनती इस तरह है -

चिरकाल से रहते हुए संसार में मैंने कभी।
स्वामी न पाया सुक्ख केवल महा दुख पाए सभी।।९।।

अन्वयार्थ :- [हे स्वामिन्] हे स्वामी, [संसारे वसतां] इस संसार में रहते हुए हमारा [अनंतः कालः गतः] अनन्त काल बीत गया, [परं] लेकिन [मया] मैने [किमपि सुखं] कुछ भी सुख [न प्राप्तं] नहीं पाया, उल्टा [महत् दुखं एव प्राप्तं] महान् दुःख ही पाया है।

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है, उसरूप जो आनन्दामृत उससे विपरीत नरकादिदुःखरूप क्षार (खारो) जलसे पूर्ण (भरा हुआ), अजर अमर पद से उलटा जन्म जरा (बुढ़ापा) मरणरूपी जलचरों के समूह से भरा हुआ, अनाकुलता स्वरूप निश्चय सुख से विपरीत, अनेक प्रकार आधि व्याधि दुःखरूपी बड़वानलकी शिखाकर प्रज्वलित, वीतराग निर्विकल्प-समाधिकर रहित, महान संकल्प विकल्पों के जालरूपी कल्लोलों की मालाओंकर विराजमान, ऐसे संसाररूपी समुद्र में रहते हुए मुझे हे स्वामी, अनन्त काल बीत गया। इस संसार में एकेन्द्री से दोइन्द्री, तेइन्द्री, चौइन्द्री स्वरूप विकलत्रय पर्याय पाना दुर्लभ (कठिन) है, विकलत्रय से पंचेन्द्री, सैनी, छह पर्याप्तियों की संपूर्णता होना दुर्लभ है, उसमें भी मनुष्य होना अत्यन्त दुर्लभ, उसमें आर्यक्षेत्र दुर्लभ, उसमें से उत्तम कुल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण पाना कठिन है, उसमें भी सुन्दररूप, समस्त पाँचों इन्द्रियों की प्रवीणता, दीर्घ आयु, बल, शरीर नीरोग, जैनधर्म इनका उत्तरोत्तर मिलना कठिन है। कभी इतनी वस्तुओं की भी प्राप्ति हो जावे, तो श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ धर्म-श्रवण, धर्म का ग्रहण, धारण, श्रद्धान, संयम, विषय-सुखों से निवृत्ति, क्रोधादि कषायों का अभाव होना अत्यन्त दुर्लभ है और इन सबों से उत्कृष्ट शुद्धात्मभावनारूप वीतरागनिर्विकल्प समाधि का होना बहुत मुश्किल है, क्योंकि उस समाधि के शत्रु जो मिथ्यात्व, विषय, कषाय, आदि का विभाव परिणाम हैं, उनकी प्रबलता है। इसीलिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं होती और इनका पाना ही बोधी है, उस बोधि का जो निर्विषयपने से धारण वही समाधि है। इस तरह बोधि समाधि का लक्षण सब जगह जानना चाहिये। इस बोधि

समाधि का मुझमें अभाव है, इसीलिये संसार-समुद्र में भटकते हुए मैंने वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया, किन्तु उस सुख से विपरीत (उल्टा) आकुलता के उत्पन्न करनेवाला नाना प्रकार का शरीर का तथा मन का दुःख ही चारों गतियों में भ्रमण करते हुए पाया। इस संसारसागर में भ्रमण करते मनुष्य-देह आदि का पाना बहुत दुर्लभ है, परन्तु उसको पाकर कभी (आलसी) नहीं होना चाहिये। जो प्रमादी हो जाते हैं, वे संसाररूपी वन में अनन्त काल भटकते हैं। ऐसा ही दूसरे ग्रन्थों में भी कहा है - 'इत्यतिदुर्लभरूपां' इत्यादि। इसका अभिप्राय ऐसा है, कि यह महान दुर्लभ जो जैनशास्त्र का ज्ञान है, उसको पाके जो जीव प्रमादी हो जाता है, वह रंक पुरुष बहुत काल तक संसाररूपी भयानक वन में भटकता है। सारांश यह हुआ, कि वीतराग परमानन्द सुख के न मिलने से यह जीव संसाररूपी वन में भटक रहा है, इसलिए वीतराग परमानन्द सुख ही आदर करने योग्य है।।९।।

गाथा - ९ पर प्रवचन

आहाहा! टीका लो न सीधी। पृष्ठ फट गया है थोड़ा इसमें से। **हे स्वामी...** योगीन्द्रदेव आचार्य दिगम्बर सन्त। प्रभाकर भट्ट दिगम्बर मुनि हैं, वह वस्तु समझने के लिये प्रार्थना करता है। **हे स्वामी, इस संसार में रहते हुए हमारा अनन्त काल बीत गया,...** ओहोहो! चौरासी के अवतार करते-करते प्रभु अनन्त काल गया। चौरासी लाख योनि में, भवसिन्धु में एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। आहाहा! **हमारा अनन्त काल बीत गया, लेकिन मैंने कुछ भी सुख नहीं पाया,...** आहाहा! देखो! स्वर्ग में भी मैं अनन्त बार गया, परन्तु वहाँ सुख नहीं मिला। आत्मा का सुख कहीं नहीं मिला। आहाहा! समझ में आया?

छहढाला में कहा है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' मुनिव्रत धारण किये, अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति (पालन किये) परन्तु वह कहीं आत्मा का ज्ञान नहीं, सुख नहीं। वह तो विकल्प में है, दुःख है। आहाहा! उसमें दुःख है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो'। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न

पायो।' तो पंच महाव्रत के परिणाम में दुःख है, वह तो आस्रव है। आहाहा! समझ में आया? 'आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' तो शिष्य का यह प्रश्न है कि प्रभु! मैं नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु कहीं आत्मा का सुख नहीं मिला। आत्मा के आनन्द का स्वाद कहीं नहीं आया।

मुमुक्षु : सब भवों को याद करे तो सब भवों का याद होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : याद है नहीं यह? अनन्त काल भटका है, यह खबर नहीं? अनन्त काल भटका है। खबर नहीं, इसलिए नहीं था, ऐसा है? खबर है। आहाहा! मैं आत्मा अनादि काल से संसार में भटकता हूँ। यदि मेरी मुक्ति हुई हो तो संसार आया कहाँ से? अनादि काल में नरक के, निगोद के, चींटी, कौआ, कंथवा आवदि के अनन्त भव किये, प्रभु! ऐसे भव करते-करते अनन्त काल व्यतीत हो गया। अब भव का भय लगता है। अब भव न हो। तो प्रभु! ऐसा उपदेश दो कि हमको मोक्ष मिले। आत्मा का सुख मिले, ऐसा उपदेश दो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

स्वर्ग में नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। स्वर्ग के ऊपर ग्रैवेयक है न? इकतीस सागर की स्थिति। वहाँ अनन्त बार जीव गया, दिगम्बर साधु होकर। परन्तु मिथ्यादृष्टि। आत्मज्ञान नहीं, मात्र महाव्रत की क्रिया करके शुभ परिणाम से वहाँ गया। परन्तु वहाँ आत्मा का सुख मिला नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह बात जगत को सुनने को मिलती नहीं, इसलिए बेचारे ऐसे के ऐसे भटकते हैं। आहाहा!

कुछ भी सुख नहीं पाया, उल्टा महान दुःख ही पाया है। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गया तो दुःख मिला। नौवें ग्रैवेयक का साधन किया, वह दुःख था। आहाहा! पंच महाव्रत, पाँच समिति, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, वह राग था, दुःख था। उसे पालने कर नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' यह छहढाला में आता है। परन्तु इसे कहाँ खबर है? क्या है? परन्तु 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' प्रभु! मुझे कहीं सुख नहीं मिला। मैंने मुनिव्रत लिया और उसके फल रूप से स्वर्ग में गया, परन्तु कहीं मुझे आत्मा का सुख नहीं मिला। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मध्यान बहुत कठिन वस्तु है?

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो इसके नजदीक, परन्तु अभ्यास नहीं, इसलिए कठिन लगता है। आहाहा! सहजानन्द प्रभु, निज आनन्द का नाथ प्रभु आनन्दस्वरूप ही है। आहाहा! उस आनन्द का स्वाद नहीं लिया, इसका नाम सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है। यह कहते हैं, प्रभु! मुझे कभी सुख को प्राप्त नहीं हुआ। कभी सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनन्त बार मुनि का क्रियाकाण्ड किया, दिगम्बर मुनि होकर। समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक जाते हैं न? वह दिगम्बर मुनि ही जा सकते हैं। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालन कर शुक्ललेश्या से, शुक्ललेश्या, हों! शुक्लध्यान नहीं। शुक्लध्यान दूसरी चीज़, शुक्ललेश्या दूसरी चीज़। शुक्ललेश्या तो अभव्य को भी होती है। छह लेश्या है न? कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल। यह शुक्ललेश्या अभव्य को भी होती है। उससे नौवें ग्रैवेयक चला जाये। वह कुछ धर्म नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति आदि का भाव, वह शुभभाव है, वह आस्रव है, वह दुःख है और उसके फल में भी दुःख है। आहाहा!

प्रभु! **मैंने कुछ भी सुख नहीं पाया, उल्टा महान दुःख ही पाया है।** आहाहा! प्रभाकर भट्ट, योगीन्द्रदेव नग्न दिगम्बर मुनि से प्रार्थना करता है, प्रभु! हमको ऐसा बताओ कि मुझे आत्मा का सुख मिले। आहाहा! समझ में आया? यह शब्दार्थ किया।

भावार्थ - निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ... देखो! **जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है,...** आहाहा! भगवान आत्मा निज शुद्धात्मा। पर शुद्धात्मा वीतराग भी नहीं। निज शुद्ध पवित्र आत्मा भगवान पूर्ण आनन्द, उसकी भावना से। यह पर्याय है। निज शुद्धात्मा, वह त्रिकाल है। उसकी भावना, यह वर्तमान एकाग्रता है। आहाहा! उससे उत्पन्न हुआ। **जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? मैंने अनन्त काल जो दुःख पाये, वह क्या है? तो कहते हैं कि अपने निज शुद्धात्मा का जो आनन्द अनुभव **उत्पन्न हुआ जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है, उसरूप जो आनन्दामृत उससे विपरीत...** उस आनन्द के अमृतस्वरूप भगवान आत्मा में। आहाहा! **उससे विपरीत नरकादि दुःखरूप क्षार (खारा) जल से पूर्ण (भरा हुआ),...**

आहाहा! निज शुद्धात्मा से उत्पन्न हुआ परमानन्द अमृत से विपरीत यह चार गति का दु:ख है।

अरबोंपति है, यह सेठिया कहलाते हैं, ये भी बेचारे दु:खी हैं। देव भी दु:खी, राजा दु:खी, रंक दु:खी, नारकी दु:खी, स्वर्ग (देव) दु:खी। जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन और आत्मा का आनन्द नहीं, वे सब दु:खी हैं। दुनिया मूढ़ उसे कहती है कि यह सुखी है। पाँच-पचास लाख मिले हों और धूल मिली है, वहाँ सुखी (मानता है)। धूल भी सुख नहीं, सुन न! दुनिया तो गहल-पागल है। पैसे में सुख नहीं, स्त्री में सुख नहीं, पुत्र में सुख नहीं, इज्जत में सुख नहीं, मकान में सुख नहीं, अरे! पुण्य और पाप के भाव में भी सुख नहीं। और पुण्य-पाप के फलरूप गति में सुख नहीं। आहाहा! कभी सुनने को मिला नहीं।

शुद्धात्मा, निज शुद्धात्मा की एकाग्रता से **उत्पन्न हुआ जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है,...** अज्ञानी ने जो सुख माना, वह तो राग में सुख माना है। यह तो वीतरागी परमानन्द समरसी वीतरागी भाव। आहाहा! छहढाला में नहीं आया? 'राग आग दाह दहै सदा ताते समामृत सेईये।' आता है? राग चाहे तो दया, दान, पंच महाव्रत का राग, वह दाह-अग्नि है। आहाहा! वह 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये।' यह कहा वह। समरसीभाव है न, उसमें से आया। वह राग से भिन्न भगवान आत्मा की समता—वीतरागभाव का सेवन कर। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! लोगों ने तो बाहर के क्रियाकाण्ड में धर्म मानकर जिन्दगी गँवाते हैं। आहाहा! अन्तर में परम आनन्द का समरसीभाव जो आनन्दामृत—आनन्द अमृत, आनन्द का अमृतस्वरूप अनुभव। उससे उलटा, विपरीत नरकादि। नरकादि में चारों गति आयी। स्वर्ग में भी दु:खी है। है न? नरकादि है न? यह पाठ में है। '**नारकादिदु:खरूपेण क्षारनीरेण पूर्णे**' संस्कृत में है। आहाहा! स्वर्ग में भी दु:ख। कैसा?

दु:खरूप क्षार (खारा) जल से पूर्ण (भरा हुआ), अजर अमर पद से उल्टा... आहाहा! अजर-अमर ऐसा जो भगवान आत्मा, उससे उल्टा। **जन्म, जरा (बुढ़ापा) मरणरूपी जलचरों के समूह से भरा हुआ,...** संसारसमुद्र। आहाहा! जनम, जरा-

वृद्धावस्था, मरण ऐसे जलचर समूह से भरा हुआ संसार। आहाहा! **अनाकुलता स्वरूप निश्चय सुख से विपरीत, अनेक प्रकार आधि व्याधि दु:खरूपी वड़वानल की शिखाकर प्रज्वलित,...** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप से उल्टा। अनेक प्रकार आधि—संकल्प-विकल्प, व्याधि—शरीर की, **दु:खरूपी वड़वानल की...** आहाहा! वडवाग्नि होती है न पानी में? **शिखाकर प्रज्वलित, वीतराग निर्विकल्पसमाधिकर रहित,...** आहाहा! पुण्य का भाव भी वडवाग्नि की शिखाकर अग्नि से जले, ऐसा भाव है, कहते हैं। आहाहा!

वीतराग निर्विकल्पसमाधिकर रहित,... रागरहित भगवान आत्मा निविकल्प अभेद शान्ति से रहित **महान संकल्प विकल्पों के जलरूपी कल्लोलों की...** आहाहा! संकल्प और विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध ऐसा संकल्प-विकल्प का जाल, उसरूपी कल्लोंले पानी में जैसे उठें... आहाहा! **कल्लोलों की मालाओं कर...** एक के बाद एक... एक के बाद एक... संकल्प-विकल्प... संकल्प-विकल्प... आहाहा! **ऐसे संसाररूपी समुद्र में रहते हुए...** प्रभाकर भट्ट कहते हैं। ऐसे संसार में रहते हुए **मुझे हे स्वामी, अनन्त काल बीत गया।** आहाहा! संसार से भयभीत। योगीन्द्रदेव में आता है, योगसार में। भव से भयभीत होकर अब मैं डरता हूँ। आहाहा! चार गति के भव में सर्वत्र दु:ख है। स्वर्ग में राग का दु:ख है। आहाहा! वहाँ से डरकर जिसे आत्मा में आना है, वह प्रभाकर भट्ट पूछते हैं, प्रभु! मेरा तो अनन्त काल ऐसा गया। आहाहा!

इस संसार में **मुझे हे स्वामी, अनन्त काल बीत गया। इस संसार में एकेन्द्रिय...** पहले हुआ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, एकेन्द्रिय जीव। वहाँ दु:खी होकर रहा। **दो इन्द्रिय,...** ईयल, कीड़ा। **तेइन्द्री, चौइन्द्री स्वरूप विकलत्रय पर्याय पाना दुर्लभ (कठिन) है...** एकेन्द्रिय से दो इन्द्रिय, दो इन्द्रिय से तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय पर्याय प्राप्त होना दुर्लभ है। **विकलत्रय से पंचेन्द्रिय पाना कठिन है।** दो इन्द्रिय से, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय से निकलकर पंचेन्द्रिय प्राप्त होना, उससे भी **सैनी पाना...** प्राप्त होना दुर्लभ है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय। **छह पर्याप्तियों की सम्पूर्णता होना दुर्लभ है,...** आहाहा! आहार, शरीर, भाषा पर्याप्ति पूर्ण मिलना दुर्लभ है। विकलेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय आदि....

उसमें भी मनुष्य होना अत्यन्त दुर्लभ,... है। आहाहा! मनुष्यपना प्राप्त करना तो

अनन्त काल में दुर्लभ है। आहाहा! **उसमें आर्यक्षेत्र दुर्लभ,...** है। मनुष्य क्षेत्र में भी आर्यक्षेत्र मिलना दुर्लभ है। अनार्य क्षेत्र मिले तो देखो न! आये थे न समाचार? बलुभाई का। बलुभाई डॉक्टर है। वे परदेश में गये थे। अनजाना कुछ नाम है। होटल में एक रात्रि के एक हजार रुपये देने पड़े। अनार्य क्षेत्र है। नाम दिया था, नहीं? क्या कुछ नाम था? अनार्य क्षेत्र में गये थे वे। अपने हैं एक बलुभाई। मुम्बई में बड़ा दवाखाना सत्तर लाख में बेच दिया न? दवा बनाते थे। सत्तर लाख। यहाँ अपने साथ रहते थे।

यहाँ कहते हैं। यह वहाँ से पत्र आया था। ऐसा अनार्य क्षेत्र है महाराज! कि कच्ची बिल्ली खाते हैं। आहाहा! ऐसा अनार्य। और सौ रुपये की कीमत की चीज़ दो सौ। सौ का मुनाफा। इतना वहाँ धन्धा चलता है। परन्तु अनार्य-अनार्य देश। ऐसा अनार्य देश। एक रात रहने में साधारण रीति से होटल में पाँच सौ-सात सौ रुपये तो चाहिए ही। एक हजार देना पड़े, ऐसा लिखा है। एक रात्रि में एक हजार। अनार्य क्षेत्र। एक रोटी... कुछ लिखा था नहीं? एक रोटी बनवाने में कितने रुपये? पच्चीस। गेहूँ की एक रोटी— भाखरी चाहिए न, उसके बनाने के कितने रुपये कहे हैं? ऐसा देश है वह। वहाँ जा चढ़े थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि दुर्लभ में-दुर्लभ मनुष्यपना दुर्लभ है, उससे आर्यक्षेत्र दुर्लभ, उसमें भी उत्तम कुल दुर्लभ। आर्यक्षेत्र में भी उत्तम कुल न मिले तो ढेढ़, हरिजन, चण्डाल आदि हो। आहाहा! **उसमें से उत्तम कुल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण पाना कठिन है, उसमें भी सुन्दररूप,...** सुन्दर अर्थात् शरीर की आकृति अनुकूल इतना। **समस्त पाँचों इन्द्रियों की प्रवीणता,...** पाँचों ही इन्द्रियाँ अच्छी हों। **दीर्घ आयु...** वापस। उसमें भी दीर्घायु मिलना दुर्लभ। उसमें शरीर का **बल, शरीर निरोग...** यह एक के बाद एक चीज़ दुर्लभ है, कहते हैं।

जैनधर्म इनका उत्तरोत्तर मिलना कठिन है। जैनधर्म मिलना... आहाहा! **जैनधर्म इनका उत्तरोत्तर मिलना कठिन है। कभी इतनी वस्तुओं की भी प्राप्ति हो जावे, तो (भी) श्रेष्ठ बुद्धि,...** सच्ची बुद्धि **श्रेष्ठ धर्म-श्रवण,...** सच्चे धर्म का श्रवण मिलना महा दुर्लभ। आहाहा! जहाँ-तहाँ इससे धर्म होगा... इससे धर्म होगा... तुम पुण्य की क्रिया

करो, यात्रा करो, भक्ति करो, उससे धर्म होगा। यह सब अधर्म का उपदेश है। आहाहा! यह श्रेष्ठ धर्म का श्रवण मिलना मुश्किल है, कहते हैं। सच्चा धर्म क्या है, उसका सुनना मुश्किल है।

धर्म का ग्रहण... और फिर ग्रहण करना मुश्किल है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यवस्तु के श्रद्धा-ज्ञान को धर्म कहते हैं। उसका ग्रहण **धारण,...** वापस धार रखना दुर्लभ है। और उससे **श्रद्धान,...** दुर्लभ है। ओहो! सुना, ग्रहण किया, धारणा में आया। परन्तु वस्तु जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान, उसमें उसका सम्यग्दर्शन, वह महादुर्लभ है। समझ में आया? यह प्रभाकर भट्ट गुरु से प्रार्थना (करता है), प्रभु! ऐसे भव गये। यह धर्म श्रवण दुर्लभ हो गया। और उसमें **श्रद्धान,...** सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसकी लोगों को खबर नहीं है। यह लोग देव-गुरु-धर्म को मानना, यह दर्शन, (ऐसा मानते हैं)। अब यह श्रद्धा तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? राग है और राग को धर्म मानना, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा के आनन्द की अनुभूति का भान होना। आत्मा के अनुभव की अनुभूति में श्रद्धा होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : .... जैनकुल में पैदा हुआ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन के कुल में जन्म हुआ तो क्या? जैनकुल का भान नहीं, वह कुल ही नहीं। वे कहते थे। जयपुर में है न इन्द्रलालजी, वे कहते थे। दिगम्बर कुल में जन्मे, वे समकिती तो हैं ही। भेदज्ञान तो है ही। धूल में भी है नहीं। आहाहा! भाई! जैनकुल भी अनन्त बार मिला। लिखा नहीं? उसमें से श्रवण मिलना मुश्किल, अच्छी बुद्धि-क्षयोपशम होना मुश्किल, उसमें धर्म का श्रवण मिलना मुश्किल, ग्रहण करना और धारण करना मुश्किल, उसमें से श्रद्धान महामुश्किल। आहाहा!

पूर्णानन्द प्रभु का ज्ञान करके, जानकर उसमें प्रतीति-निर्विकल्प श्रद्धा (होना), पूर्णानन्द के ध्रुव के नाथ को जानने से जो पर्याय प्रगट हुई, उस ज्ञान में ज्ञेय पूरा ज्ञात हुआ। उसकी प्रतीति (होना) बहुत दुर्लभ। समझ में आया? और फिर संयम दुर्लभ।

ओहोहो! सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप में रमणता करना, वह तो महादुर्लभ है। वह संयम है। सम्-यम। सम्यग्दर्शनपूर्वक आत्मा की स्वरूप में रमणता। आहाहा! यह समाधि के हिलोरे जगे अन्दर। जैसे समुद्र में पानी का ज्वार आता है न? समुद्र में ज्वार आता है। वैसे मुनि को संयम में आनन्द का ज्वार आता है। उसे संयम कहते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार पर्याय में आवे, ऐसा संयम यह है। आहाहा!

प्रभाकर भट्ट कहता है, प्रभु! यह वस्तु बहुत दुर्लभ। और **विषय-सुखों से निवृत्ति...** पर में सुखबुद्धि का हट जाना और फिर आसक्ति का टलना। श्रद्धा में तो आया। पर में सुखबुद्धि हट गयी सम्यग्दर्शन में। पर में सुख है नहीं। विषय में नहीं, स्वर्ग में नहीं, स्त्री में नहीं, पैसे में नहीं। पर में सुखबुद्धि का अभाव, वह तो सम्यग्दर्शन में हो गया। फिर आसक्ति का अभाव होना, यह बात करते हैं। आहाहा! **क्रोधादि, कषायों का अभाव होना...** पश्चात् क्रोधादि कषाय का अभाव होना **अत्यन्त दुर्लभ है...** परम्परा शब्द रखा है। है? परम्परा, ऐसा शब्द है। है, है। '**परंपरया दुर्लभेषु**' संस्कृत में है। वह यहाँ मैंने सुधारा है। परम्परा बातें सब दुर्लभ है। एक के बाद एक आदि। आहाहा!

और इन सबों से उत्कृष्ट शुद्धात्मभावनारूप वीतराग निर्विकल्प समाधि का होना (तो) बहुत मुश्किल है,... निर्विल्प वीतरागी समाधि अन्दर प्रगट होना, यह बहुत दुर्लभ है। इसकी विशेष बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ०४, मंगलवार
दिनांक-१५-०६-१९७६, गाथा-९ से ११, प्रवचन-९

नौवीं गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश। प्रभाकर भट्ट, योगीन्द्रदेव से प्रार्थना करते हैं, प्रभु! यह एक के बाद एक आत्मा को मनुष्यपना मिलना, आर्यकुल मिलना इत्यादि... यहाँ तक आया है।

क्रोधादि कषायों का अभाव होना परम्परा अत्यन्त दुर्लभ है... परम्परा, यह शब्द अन्दर पड़ा रहा है। **कषायों का अभाव होना परम्परा अत्यन्त दुर्लभ है...** यहाँ चाहिए। परम्परा शब्द पड़ा रहा है। एक के बाद एक। यहाँ तक आया था न कि श्रेष्ठ बुद्धि, श्रवण मिलना दुर्लभ है, सत्य धर्म का श्रवण मिलना दुर्लभ, उसका ग्रहण होना दुर्लभ। सुनना, पश्चात् उसे पकड़ना कि यह क्या कहते हैं? यह ग्रहण (होना) दुर्लभ। पश्चात् धारण (होना) दुर्लभ। जो यह कहते हैं, उस बात को धार रखना, वह दुर्लभ। पश्चात् श्रद्धान दुर्लभ। यह तो अपूर्व बात है। धारण तक तो हुआ है, ऐसा कहेंगे। परन्तु श्रद्धान। स्व चैतन्य का आश्रय लेकर श्रद्धान होना दुर्लभ है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दुर्लभ हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुर्लभ का अर्थ अशक्य है? दुर्लभ अर्थात् एक के बाद एक पुरुषार्थ बहुत अपेक्षित है। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

श्रद्धान दुर्लभ, संयम दुर्लभ। फिर इन्द्रिय दमन करके स्वरूप में रहना दुर्लभ। **विषय-सुखों से निवृत्ति,...** दुर्लभ। **कषायों का अभाव होना परम्परा अत्यन्त दुर्लभ है...** यह परम्परा अत्यन्त दुर्लभ है। यहाँ तक आया था। **सबों से उत्कृष्ट...** इस सब बात में भी उत्कृष्ट। **शुद्धात्मभावनारूप वीतराग निर्विकल्प समाधि का होना बहुत मुश्किल है,...** यह श्रद्धान आदि साधारण लिया है। परन्तु सबमें से उत्कृष्ट शुद्धात्मभावना। भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप की भावना, ऐसी **वीतराग निर्विकल्प समाधि का होना बहुत मुश्किल है,...** प्रभाकर भट्ट गुरु से कहते हैं। आहाहा!

क्योंकि उस समाधि के शत्रु जो मिथ्यात्व,... निर्विकल्प समाधि जो मोक्ष का मार्ग, उसका शत्रु मिथ्यात्व, **विषय, कषाय, आधि का विभाव परिणाम हैं, उनकी प्रबलता है।** आहाहा! **इसलिए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं होती...** सम्यग्दर्शन—स्वरूप अनुभव करके प्रतीति करना और स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप में रमणता, उसकी प्राप्ति नहीं होती। **और इनका पाना ही बोधि है,...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का प्राप्त करना, इसका नाम बोधि। बोधि, समाधि के दो अर्थ करते हैं। अपनी शुद्ध चैतन्य स्वरूप वस्तु, उसकी श्रद्धा। ज्ञान में वह वस्तु लेकर अनुभव में प्रतीति और उसका ज्ञान और स्वरूप में रमणता, उसरूपी बोधि अत्यन्त दुर्लभ है। आहाहा!

उस बोधि का जो निर्विषयपने से धारण... है ? क्या है ? निर्विषय नहीं, निर्विघ्न चाहिए। निर्विघ्न किया है ? सुधार। आत्मा के सन्मुख होकर आत्मा का दर्शन होना, उसका ज्ञान होना और उसमें रमणता, उसरूपी बोधि, यह दुर्लभ है। और उस बोधि का निर्विघ्नरूप से धारण मृत्यु तक (होना) समाधि, उसे समाधि कहा जाता है। आहाहा! मृत्यु के अन्तिम समय तक इस बोधि को धारण करना, इसका नाम समाधि है। आहाहा! मृत्यु काल में आनन्द की दशा में रमणता करके देह छूटे, वह समाधि। समझ में आया ?

इस तरह बोधि समाधि का लक्षण सब जगह जानना चाहिए। देखा! बोधि का अर्थ यह कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति और समाधि का अर्थ यह (कि) मृत्यु तक उसका निर्वाह करना। मरण तक बोधि को धारण करना, वह समाधि। समझ में आया ? **इस बोधि समाधि का मुझमें अभाव है,...** लो! इतने तक तो बात की। प्रभाकर भट्ट कहते हैं। मैंने जिनसूत्र सुने, जाने, धारण किये, परन्तु परलक्ष्य से। परन्तु इस बोधि का अभाव है, प्रभु! आहाहा! मूल चीज़ जो स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (होना चाहिए), प्रभु! उस बोधि का अभाव है। शिष्य ऐसा प्रश्न करता है। आहाहा! है ?

बोधि समाधि का मुझमें अभाव है, इसीलिए संसार-समुद्र में भटकते हुए मैंने वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया,... आहाहा! कहा न यह ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' परन्तु वीतरागी आनन्द को प्राप्त नहीं किया। वीतरागी परमानन्द

सुख। आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में वीतरागी परमानन्द सुख की प्राप्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! **संसार-समुद्र में भटकते हुए मैंने वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया,...** आहाहा! अनन्त बार द्रव्यलिंग मुनिपना धारण किया, परन्तु वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया। उसमें आया है न यह? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' (छहढाला, चौथी ढाल)

किन्तु उस सुख से विपरीत... देखो! **आकुलता के उत्पन्न करनेवाला नाना प्रकार का शरीर का तथा मन का दुःख ही चारों गतियों में भ्रमण करते हुए पाया।** आहाहा! स्वर्ग में भी मन और शरीर का दुःख है, ऐसा कहते हैं। वहाँ सुख है नहीं। आहाहा! **इस संसार-सागर में भ्रमण करते मनुष्य-देह आदि का पाना बहुत दुर्लभ है, परन्तु उसको पाकर कभी प्रमादी (आलसी) नहीं होना चाहिए।** आहाहा! मनुष्यदेह आदि अर्थात् जैसे श्रवण होना, सुनना, जानना, यहाँ तक तो मिला, कहते हैं। परन्तु **कभी प्रमादी (आलसी) नहीं होना चाहिए।** उसमें रुकना नहीं। अन्तर आनन्द में जाना। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु में झुकना, उससे उसे वीतरागी परमानन्द की प्राप्ति होती है। समझ में आया? **प्रमादी (आलसी) नहीं होना चाहिए। जो प्रमादी हो जाते हैं, वे संसाररूपी वन में अनन्त काल भटकते हैं।** आहाहा! शास्त्र का सच्चा श्रवण हुआ—मिला, ग्रहण हुआ, धारण किया परन्तु वीतरागी परमानन्द के सुख की प्राप्ति नहीं हुई। आहाहा! अर्थात् कि स्व का आश्रय नहीं लिया। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रमादी अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आनन्द में न जाना और राग में अटक जाना। शास्त्र को जाना, धारण किया, उसमें अटक जाना, वह प्रमाद है। आहाहा! समझ में आया?

जो प्रमादी हो जाते हैं, वे संसाररूपी वन में अनन्त काल भटकते हैं। आहाहा! अन्तर में स्वाधीन स्वभाव में न आना, अनन्त आनन्दस्वरूप भगवान वह नहीं करके प्रमादी होते हैं, वे चार गति में भटकते हैं। दूसरा आधार दिया है। दूसरे ग्रन्थ में भी कहा है। 'ऐसा ही दूसरे ग्रन्थों में भी कहा है—'**इत्यादिदुर्लभरूपां**' **इत्यादि। इसका अभिप्राय**

ऐसा है कि यह महान दुर्लभ तो जैनशास्त्र का ज्ञान है,... देखा! यहाँ तक तो आया है। सच्चे जैनशास्त्र का ज्ञान, वह भी दुर्लभ, वह तो मिला। **उसको पाके जो जीव प्रमादी हो जाता है...** वह। आहाहा! अपने अब शास्त्र जानते हैं और अपने को ख्याल है कि मार्ग ऐसा है। ऐसा ज्ञान करके जो रुकता है और अन्तर स्वरूप का आश्रय नहीं लेता, वह वरांका शब्द पड़ा है पाठ में। है न? भाई! रंक प्राणी। आहाहा! वरांका-नर। **'संसृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको नरः सुचिरम्॥'** आहाहा! वरांका है। वरांका, गरीब, पुरुषार्थहीन। आहाहा! यह संस्कृत में है।

प्रमादी हो जाता है, वह रंक पुरुष... है न? अर्थ किया है न, देखो न! रंक, यह वरांका का अर्थ किया है। आहाहा! वह रंक-रांका प्राणी है। आहाहा! जिसे आत्मा आनन्द का नाथ अनन्त लक्ष्मी सम्पन्न प्रभु में उसका आश्रय नहीं लेता और मात्र जैनशास्त्र के जानपने में अटक कर रुक गये हैं, वे सब रंक पुरुष हैं, भिखारी हैं। बाहर में माँगते हैं, परन्तु अन्दर में है, वहाँ नहीं जाते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आनन्द और वीतराग स्वभाव से तो भरपूर भगवान है। आहाहा! वहाँ उसका आश्रय नहीं करता और मात्र जानपने में रुककर वहाँ रुक जाता है।

वह रंक पुरुष... आहाहा! **बहुत काल तक संसाररूपी भयानक वन में भटकता है।** आहाहा! परमात्मस्वरूप जो अपना है, उस ओर ढलते नहीं, मुड़ते नहीं, आश्रय नहीं लेते और मात्र जानपने में रुककर अटक गये हैं। आहाहा! देखो!

मुमुक्षु : ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ, यह ज्ञान ही नहीं। जानपना क्या? शास्त्र का ज्ञान तो अनन्त बार किया है। आत्मा आनन्द का नाथ वीतरागी सुख से भरपूर, आहाहा! उसकी शरण में जाता नहीं, उसका आश्रय लेता नहीं, वह प्राणी ऐसे जैनशास्त्र के जानपनेवाला भी बहुत काल संसार में भटकेगा। आहाहा! जैनशास्त्र का जानपना किया, ऐसा कहते हैं। उसमें देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी विकल्प से हुई, परन्तु स्वयं भगवान कौन है, (उसे जाना नहीं)। भूतार्थ सत्यार्थ भगवान का इसने आश्रय नहीं लिया। इसलिए इसे परम वीतरागी सुख नहीं मिला। समझ में आया? यह तो मुद्दे की रकम की बात है, भाई! आहाहा!

जो जैनशास्त्र का ज्ञान है, उसको पाके... ऐसा, देखा! **जीव प्रमादी हो जाता है,...** आहाहा! **वह रंक पुरुष बहुत काल तक संसाररूपी भयानक वन में भटकता है।** भव के अभावस्वभावरूप भगवान आत्मा, ऐसे वीतरागी आनन्द के सुख से भरपूर प्रभु, उसका आश्रय नहीं लेता। वह रंक प्राणी चार गति में भटकेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : बिना पैसेवाला भटकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बिना पैसेवाला, आत्मा की लक्ष्मी नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा की लक्ष्मी मिली नहीं तो रंक है। आहाहा! भिखारी है, भिखारी।

भगवान आत्मा अनन्त वीतरागी सुख का भण्डार, अनन्त वीतरागी आनन्द का भण्डार भगवान आत्मा है। आहाहा! उसका आदर नहीं करते। आहाहा! उसका— पर्याय का घोलन वहाँ द्रव्य पर नहीं जाता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो यह कहा, वह जैनशास्त्र का ज्ञान किया बाहर का, निश्चय बिना की व्यवहार श्रद्धा आदि हुई। शास्त्र के ज्ञान में यह आया। देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहार श्रद्धा (हुई), परन्तु वह कहीं वस्तु नहीं, और उससे कुछ निश्चय प्राप्त नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग गजब, भाई! आहाहा! जिसमें वीतरागी आनन्द प्राप्त होता है, वह वीतराग का मार्ग है। आहाहा! व्यवहार के देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा... यद्यपि उसे व्यवहार नहीं कहा जाता परन्तु बोला जाता है। बन्ध अधिकार में कहा है न? अभव्य भी ऐसा व्यवहार करता है। व्यवहार है भासरूप से। आहाहा! यहाँ तक प्राप्त हुआ, तथापि उसे छोड़कर वीतरागी आनन्द का नाथ भगवान, उस ओर उसका आश्रय नहीं करता, उसकी पर्याय में भगवान को समीप नहीं करता, उसकी पर्याय में राग और जानपने को समीप रखकर स्वभाव के समीप से दूर वर्तता है। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु की वर्तमान पर्याय को उसके समीप में न ले जाकर, उस पर्याय में मात्र यह जानपने में रुक गया है। आहाहा! जिसे जानपना नहीं, ग्रहण-धारण नहीं, उसकी तो बात क्या करना? ऐसा कहते हैं। परन्तु शास्त्र जाने, वाँचन किये, बातें करना आया... आहाहा! परन्तु वह रंक पुरुष अपनी निधि को सम्हालने अन्दर गया नहीं। आहाहा! वह रंक है। जिसे निजलक्ष्मी के निधान की प्रतीति की खबर

नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! वे कहे न, व्यवहार से परम्परा से होता है। यहाँ इनकार करते हैं, लो! किसे परम्परा कहा है? वह तो दूसरी बात है। जिसे निश्चय आत्मदर्शन हुआ है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान बोधि प्रगट हुई है, उसे जो व्यवहार है, वह परम्परा कारण व्यवहारनय से कहा है। क्योंकि व्यवहार है, वह तो परलक्ष्य में है और आत्मा में तो स्वआश्रय में जाना है। तो पर आश्रय का भाव स्वआश्रय में मदद करे? भविष्य में मदद करे, अभी नहीं, ऐसा होगा? परम्परा मुक्ति कही है न? अरे! प्रभु! भाई!

जो स्व के आश्रय से काम होता है, वह पर के आश्रय के भाव से वह काम होगा? वर्तमान नहीं और भविष्य में होगा? यह तो परम्परा मोक्ष... कल बहुत विरोध आया है। पृष्ठ आये हैं। ललितपुर के। अरे! भगवान! यह व्यवहार परम्परा की जो बात है, वह तो समकिती के लिये है। जिसने स्वआश्रय से ज्ञान-दर्शन प्रगट किये हैं, उसे व्यवहार अभी पराश्रय का राग है। उसे स्वआश्रय का उग्रपना करके छोड़ेगा, इससे उसे परम्परा कहने में आया है। परन्तु उसके द्वारा प्राप्त होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बड़ा विवाद उठा है। अरे! भगवान!

यहाँ तो कहते हैं, देखो! जैनशास्त्र का ज्ञान हुआ। जिनेश्वर की श्रद्धा भी हुई, ऐसा आता है, भाई! मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में। वह कहे कि परन्तु वह तो कपट से किया है। उसमें एक आता है। कपट नहीं। जैनगुरु की श्रद्धा, जैन की श्रद्धा बराबर है। परन्तु आत्मज्ञान नहीं है। समझ में आया? सातवें (अधिकार) में लिया है, सातवें। मोक्षमार्गप्रकाशक में। है, कहाँ है? पाँचवें में होगा नहीं? ऐसा कि ऐसी श्रद्धा तो की है उसने। कहीं है सही कि यह करता है, उसमें कपट नहीं है।

मुमुक्षु : तो नौवें ग्रैवेयक जाये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाये नहीं। वरना नौवें ग्रैवेयक जाता है, वह जैनधर्म की व्यवहार श्रद्धा है। समझ में आया? वरना नौवें ग्रैवेयक नहीं जाता। ऐसा है कहीं। है कहीं? सातवें में। नौवें ग्रैवेयक जाता है, उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है और कपटरहित वह आचरण करता है। नहीं तो नौवें ग्रैवेयक जाये नहीं, ऐसा है। उसमें है कहीं। सातवें (अधिकार) में है। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ है, उसका आश्रय किया नहीं।

समझ में आया? ऐसा कि उसे तो कुछ ऐसे... है? देखो, देखो अन्त में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह, यह। लाओ। यह द्रव्यलिंगी को कहा। आहाहा!थोड़ा कषाय।

साधन द्वारा इसलोक-परलोक के विषय भी नहीं चाहता। यह है। यह भी इसके अतिरिक्त दूसरा यहाँ है। 'द्रव्यलिंगी राज्य छोड़कर निर्ग्रन्थ होता है, अट्ठाईस मूलगुण को पालन करता है, उग्र से उग्र अनशनादि करता है, क्षुधादि बाह्य परीषह सहन करता है, शरीर के खण्ड-खण्ड होने पर व्यग्र होता नहीं। किसी से क्रोध नहीं करता। ऐसे साधन परलोक में... ऐसी दशा न हो तो ग्रैवेयक तक कैसे पहुँचे? तथापि उसे शास्त्र में मिथ्यादृष्टि कहा, उसका कारण कि उसे तत्त्व का श्रद्धान-ज्ञान सच्चा नहीं है।' समझ में आया? ऐसा है। वह तो ऐसा कि उसकी श्रद्धा है, ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा है उसे।

द्रव्यलिंगी मुनि अन्य देवादिक की सेवा नहीं करता। यह लेना है। देखा! यह लेना है। ***अन्य देवादिक की सेवा नहीं करता। हिंसा-विषय में नहीं प्रवर्तता। क्रोधादि नहीं करता। मन-वचन-काय रोके, उसे मिथ्यात्वादि चारों आस्रव होते हैं। वे कार्य वह कपट द्वारा भी नहीं करता।*** यह लेना है। ***'कपट से करे तो ग्रैवेयक तक कैसे पहुँचे? इसलिए अन्तरंग अभिप्राय में मिथ्यात्वादि का रागादिभाव होता है। वह नव अथवा आस्रवतत्त्व में उसे श्रद्धा नहीं है।'*** आहाहा! वह आस्रव में है। क्रिया बराबर करता है। अन्य देवादि को मानता नहीं। मानता है देव-गुरु को, ऐसा कहना है। यहाँ मुझे तो यह कहना है। देव-गुरु को मानता है परन्तु वह तो परलक्ष्यी वस्तु है। उससे स्वआश्रय प्रगट नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा करे परन्तु उसे स्वआश्रय अन्दर नहीं आया। शास्त्र का वांचन है तो करे तो सही न! ऐई! आहाहा!

यहाँ तो कहना था कि उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है। परन्तु स्व का आश्रय नहीं है, इसलिए सब मिथ्यात्व है। ऐंई! यह ऐसी बात है। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, उसमें अन्य कुदेवादि को मानता नहीं। कुदेवादि को माने तो नौवें ग्रैवेयक जा नहीं सकता। ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार भव्य-अभव्य गया। वह कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की मान्यता छोड़कर गया है और उसे देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता है। परन्तु उसका निश्चय स्वरूप है, उसका उसे भान नहीं। आहाहा! तो वह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी क्या करे? कहते हैं। यह व्यवहार है, वह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागी सुख का भण्डार भगवान, वह परसन्मुख के लक्ष्यवाला तो सब राग है, सब व्यवहार है। भले निश्चय न हो तो व्यवहार है अकेला। परन्तु उससे कुछ प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। जैनशास्त्र का ज्ञान है, **उसको पाकर...** ऐसा। अर्थात् यहाँ तक ले लिया। नौवें ग्रैवेयक गया। **जीव प्रमादी हो जाता है, वह रंक पुरुष बहुत काल तक संसाररूपी भयानक वन में भटकता है।** आहाहा! आनन्द के नाथ को देखा नहीं। प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा पूर्ण वीतरागी आनन्द से भरपूर भगवान, इस रंक ने उसे देखा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बोधि पाकर भी समाधि....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बोधि नहीं। पूर्ण समाधि न करे इतना। ऐसा। ठेठ तक न पहुँचावे। समाधि ली है न इसलिए। पाकर समाधि तीन की एकता से मृत्यु करना, इसे न पावे तो वह भी गड़बड़ है। आहाहा!

यहाँ तो **सारांश यह हुआ...** आहाहा! यहाँ रंक है और उसका अर्थ यह हुआ कि वीर्य-पुरुषार्थ से व्यवहार को बराबर किया। परन्तु वह तो वीर्य ही नहीं, नपुंसकता है। इसलिए उसे रंक कहा। समझ में आया? आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा व्यवहार, शास्त्र का ज्ञान, महाव्रतादि कपटरहित न हो तो नौवें ग्रैवेयक में नहीं जाता। आहाहा! परन्तु वह वीर्य व्यवहार को रचनेवाला, वह वीर्य नहीं। आहाहा! वह रंक है, जिसका वीर्य नपुंसक है। आहाहा! ऐसे रंक पुरुष... ओहोहो! तीन लोक के नाथ चैतन्य भगवान

को जिसने समीप में किया नहीं। आहाहा! जिसने पर्याय में वीतरागता परमानन्द की दशा स्व के आश्रय से प्रगट नहीं की, वह सब रंक है, कहते हैं। आहाहा!

सारांश यह हुआ कि वीतराग परमानन्द सुख के न मिलने से... देखा! आहाहा! वह व्यवहार में रहा परन्तु वह तो दु:ख और राग है। आहाहा! **वीतराग परमानन्द सुख के न मिलने से यह जीव संसाररूपी वन में भटक रहा है,...** आहाहा! आत्मा परम वीतराग आनन्द का भण्डार है। उसे जिसने प्राप्त किया नहीं, वह वीतराग सुख के अभाव में चार गति में भटकता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! यह लोगों को व्यवहार परम्परा वह बराबर है। उसे तुम मानो। आहाहा! सर्वत्र अध्यवसाय छुड़ाया है। वहाँ कहे, पर का आश्रय व्यवहार सब छुड़ाया है, ऐसा कहते हैं वहाँ तो। पर का आश्रय, वह तो छुड़ाया। पर को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, प्राण रक्षा कर सकता हूँ, यह तो झूठ है। यह अध्यवसाय तो छुड़ाया परन्तु इसके अतिरिक्त जितना पराश्रयभाव हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि, वह व्यवहार भी छुड़ाया है। आहाहा! निष्कम्प निश्चयभाव में स्थिर होने का कहा है यहाँ तो। (समयसार, कलश १७३) आहाहा! अरे रे! इसकी खबर नहीं होती। और शास्त्र के जानपने में रुककर अन्तर में जाने को अवकाश नहीं। आहाहा! वह संसारवन में भटकेगा। आहाहा!

इसलिए वीतराग परमानन्द सुख ही आदर करने योग्य है। लो, यह तात्पर्य। व्यवहार है, वह राग है, दु:ख है। आगे कहेंगे। व्यवहार अर्थात् कि राग। इसमें आगे कहेंगे। निश्चय वीतराग। आत्मा के आश्रय से वीतरागदशा सम्यग्दर्शन होता है, वह निश्चय। और पराश्रय जितना राग हो, वह व्यवहार। आहाहा! राग की दिशा तो परसन्मुख है और वीतराग की दशा की दिशा स्वसन्मुख है। वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की दशा स्व दिशा सन्मुख है और राग की दशा पर दिशा सन्मुख है। पण्डितजी! आहाहा! अब पर दिशा सन्मुख राग, उसे स्व दिशा सन्मुख मोड़ सकेगा? अरे! यह बात बैठना चाहिए न? चेतनजी! है? वस्तु ऐसी है, बापू! परलक्ष्यी राग, पर दिशा सन्मुख का झुका हुआ भाव, उसे स्व दिशा सन्मुख मोड़े। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **वीतराग परमानन्द सुख ही आदर करने योग्य है।** बाकी सब

बातें छोड़नेयोग्य है। आहाहा! वीतरागी परमानन्द प्रभु है, उसमें से वीतरागी परम आनन्द को प्रगट करने की अपेक्षा से आदरणीय है। आहाहा! व्यवहारभाव, वह आदरणीय नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार तो छोड़नेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़नेयोग्य है। उस छोड़नेयोग्य से आदरनेयोग्य हो? कहो, अब ऐसा।

परम्परा का अर्थ यह है कि स्व का आश्रय लिया है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसका जो व्यवहार है, वह यहाँ उग्र आश्रय लेगा, तब वह छूट जायेगा। परन्तु वह उग्र आश्रय लेगा ही, ऐसा। इस अपेक्षा से व्यवहार को परम्परा (कारण कहा), यह व्यवहारनय से कथन है। आहाहा! क्या हो? शास्त्रों का अर्थ करने में जहाँ गड़बड़ उठे। अनादि का ऐसा ही किया है न। यह नौवीं गाथा हुई।

गाथा - १०

अथ यस्यैव परमात्मस्वभावस्यालाभेऽनादिकाले भ्रमितो जीवस्तमेव पृच्छति-

१०) चउ-गइ-दुक्खहँ तत्ताहँ जो परमप्पउ कोइ।
चउ-गइ-दुक्ख-विणासयरु कहहु पसाएँ सो वि।।१०।।

चतुर्गतिदुःखैः तत्पानां यः परमात्मा कश्चित्।
चतुर्गतिदुःखविनाशकरः कथय प्रसादेन तमपि।।१०।।

चउगइदुक्खहं तत्ताहं जो परमप्पउ कोइ चतुर्गतिदुःखतत्पानां जीवानां यः कश्चिच्चिदानन्दैकस्वभावः परमात्मा। पुनरपि कथंभूतः। चउगइदुक्खविणासयरु आहारभयमैथुनपरिग्रह-संज्ञारूपादिसमस्तविभावरहितानां वीतरागनिर्विकल्पसमाधिबलेन परमात्मोत्थसहजानन्दैक-सुखामृतसंतुष्टानां जीवानां चतुर्गतिदुःखविनाशकः कहहु पसाएं सो वि हे भगवन् तमेव परमात्मानं महाप्रसादेन कथयति। अत्र योऽसौ परमसमाधिरतानां चतुर्गतिदुःखविनाशकः स एव सर्वप्रकारेणोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।१०।। एवं त्रिविधात्म प्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये प्रभाकरभट्ट विज्ञप्तिकथनमुख्यत्वेन दोहकसूत्रत्रयं गतम्।

आगे जिस परमात्म-स्वभावके अलाभ में यह जीव अनादि काल से भटक रहा था, उसी परमात्मस्वभाव का व्याख्यान प्रभाकरभट्ट सुनना चाहता है -

जो परम आतम चतुर्गति के दुःख से संतप्त के।
है चतुर्गति दुख विनाशक कहिये कृपाकर अब उसे।।१०।।

अन्वयार्थ :- [चतुर्गतिदुःखैः] देवगति, मनुष्यगति, नरकगति, तिर्यंचगतियों के दुःखों से [तप्तानां] तप्तायमान (दुःख) संसारी जीवों के [चतुर्गतिदुःखविनाशकरः] चार गतियों के दुःखों का विनाश करनेवाला [यः कश्चित्] जो कोई [परमात्मा] चिदानन्द परमात्मा है, [तमपि] उसको [प्रसादेन] कृपा करके [कथय] हे श्रीगुरु, तुम कहो।

भावार्थ :- वह चिदानन्द शुद्ध स्वभाव परमात्मा आहार, भय, मैथुन, परिग्रह के भेदरूप संज्ञाओं को आदि लेके समस्त विभावों से रहित, तथा वीतराग निर्विकल्पसमाधि के बल से निज स्वभावकर उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृतकर सन्तुष्ट हुआ है हृदय

जिनका, ऐसे निकट संसारी–जीवों के चतुर्गतिका भ्रमण दूर करनेवाला है, जन्म–जरा–मरणरूप दुःख का नाशक है, तथा वह परमात्मा निज स्वरूप परमसमाधि में लीन महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला है, वही सब तरह ध्यान करनेयोग्य है, सो ऐसे परमात्मा का स्वरूप आपके प्रसाद से सुनना चाहता हूँ। इसलिए कृपाकर आप कहो। इस प्रकार प्रभाकर भट्टने श्री योगीन्द्रदेव से विनती की।।१०।।

गाथा - १० पर प्रवचन

आगे जिस परमात्म–स्वभाव के अलाभ में... भगवान परमात्मस्वरूप आनन्द ज्ञाता–दृष्टा का स्वभाव, आनन्द का जिसका स्वभाव, उसके अलाभ को, उसके अलाभ से **यह जीव अनादि काल से भटक रहा था, उसी परमात्मस्वभाव का व्याख्यान प्रभाकर भट्ट सुनना चाहता है**– लो! यह व्याख्यान सुनना चाहता है। दसवीं।

१०) चउ–गइ–दुक्खहँ तत्ताहँ जो परमप्पउ कोइ।
चउ–गइ–दुक्ख–विणासयरु कहहु पसाएँ सो वि।।१०।।

अन्वयार्थ : देवगति, मनुष्यगति, नरकगति, तिर्यंचगतियों के दुःखों से... देखो! मनुष्यगति और देवगति को भी दुःख से तृप्त कहा। आहाहा! **'चतुर्गतिदुःखैः'** ऐसा नहीं कहा कि स्वर्ग में सुख है और नरक में दुःख है। आहाहा! चारों गतियों में दुःख है। आहाहा! **'चतुर्गतिदुःखैः' 'तप्तानां'** अर्थात् **तप्तायमान (दुःख) संसारी जीवों के...** आहाहा! **'चतुर्गतिदुःखविनाशकरः' चार गतियों के दुःखों का विनाश करनेवाला जो कोई चिदानन्द परमात्मा है, उसको कृपा करके हे श्रीगुरु, तुम कहो।** आहाहा! ऐसी जिज्ञासा है।

जो चार गति के दुःख से तप्तायमान संसारी, उन दुःखों का नाश करनेवाला कोई चिदानन्द परमात्मा है। आहाहा! चिदानन्द परमात्मा है। आहाहा! **उसको कृपा करके 'कथय' हे श्रीगुरु, तुम कहो।** आहाहा! हमको तो यह सुनना है, कहते हैं। व्यवहार... व्यवहार नहीं, यह हमको कहो—ऐसा कहता है। कितने ही तो और यह हुए हैं श्रीमद् में कि निश्चय नहीं, हमारे तो व्यवहार सुनना है। वहाँ मोरबी है न? उस जयन्ती को।

कान्तिभाई और जयन्तीभाई नहीं ? तीन भाई हैं। वे भाई कहते थे। रतिभाई। रतिभाई है न अपने ध्रांगध्रा के। विशाश्रीमाली। वे कहते थे कि मेरे साथ बात हुई तो कहे, हमारे तो व्यवहार सुनना है, निश्चय सुनना नहीं। कहो। यहाँ शिष्य कहता है, प्रभु! हमको तो चिदानन्द भगवान प्राप्त हो, वह हमको सुनना है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब आती है, यह किस अपेक्षा की बात ? उपदेश बोध (है)। सिद्धान्तबोध ही यथार्थ है। आहाहा!

भावार्थ :- वह चिदानन्द शुद्ध स्वभाव परमात्मा,... भगवान आत्मा अन्दर शुद्ध चिदानन्द प्रभु, **आहार, भय, मैथुन, परिग्रह के भेदरूप संज्ञाओं को आदि लेके समस्त विभावों से रहित,...** है। आहाहा! चिदानन्दस्वभाव भगवान आत्मा का, उसमें आहार, भय, मैथुन और परिग्रह-संज्ञा, इनसे रहित आत्मा है। यह आदि विभावरहित आत्मा है। ऐसा। आहाहा! उदयभाव ही जिसमें नहीं। परमस्वभाव परमस्वभाव सहजात्मस्वरूप, परमात्मस्वरूप, परमपारिणामिकस्वरूप, जिसमें उदयभाव ही नहीं। आहाहा!

वीतराग निर्विकल्पसमाधि के बल से... आहाहा! वीतराग निर्विकल्प समाधि के बल से अन्तर में **निज स्वभावकर उत्पन्न हुए...** अपने स्वभाव से अन्दर उत्पन्न हुआ। आहाहा! **परमानन्द सुखामृतकर सन्तुष्ट हुआ है हृदय जिनका,...** आहाहा! परमानन्द सुखामृत। भगवान आत्मा का आश्रय लेकर परमानन्द सुखामृत जिसे प्रगट हुआ है। आहाहा! **ऐसे निकट संसारी-जीवों के...** अब जिसे संसार का अन्त निकट है। आहाहा! **चतुर्गति का भ्रमण दूर करनेवाला है,...** आहाहा! आहाहा! **जन्म-जरा-मरणरूप दुःख का नाशक है, तथा वह परमात्मा निज स्वरूप परमसमाधि में लीन महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला है,...** आहाहा! ऐसा जो भगवान परमात्मस्वरूप स्वयं, हों! परमात्मा। **निज स्वरूप परमसमाधि में लीन...** परमात्मा निजस्वरूप परम आनन्द में लीन **महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला है,...** इस मोक्ष का देनेवाला तो यह है। व्यवहार-फ्यवहार कोई मोक्ष का देनेवाला नहीं है। आहाहा!

परमात्मा निज स्वरूप परमसमाधि में लीन महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला

है, वही सब तरह ध्यान करनेयोग्य है,... आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का स्वरूप, वही ध्यान करनेयोग्य है। आहाहा! **सो ऐसे परमात्मा का स्वरूप आपके प्रसाद से सुनना चाहता हूँ।** लो! ऐसा जो परमात्मा का स्वरूप **आपके प्रसाद से सुनना चाहता हूँ।** आहाहा! यह सुनना चाहता हूँ, ऐसा कहता है। व्यवहार-फ्यवहार नहीं। यह परमानन्द का नाथ कैसे प्राप्त हो, यह सुनना चाहता हूँ। आहाहा!

इसलिए कृपा कर आप कहो। इस प्रकार प्रभाकर भट्ट ने श्री योगीन्द्रदेव से विनती की। लो। विनती की। ऐसी विनती की। हमको व्यवहार पहले कहो, ऐसा उसने नहीं कहा। हमको तो चिदानन्द भगवान परमात्मा सुखामृत से भरपूर जिसका आश्रय, उसका वीतराग परमानन्द प्राप्त हो, यह बात हमको सुनाओ। निश्चय की बात सुनाओ, ऐसा कहता है। आहाहा! चार गति के दुःख को नाश करनेवाली आत्मा की समाधि, परमानन्द सुख के शान्ति से भरपूर, ऐसा जो आत्मा, उसकी बात मुझे कहो, प्रभु! आहाहा!

गाथा - ११

अथ प्रभाकरभट्टविज्ञापनानन्तरं श्रीयोगीन्द्रदेवास्त्रिविधात्मानं कथयन्ति -

११) पुणु पुणु पणविवि पंच-गुरु भावेँ चित्ति धरेवि।
भट्टपहायर णिसुणि तुहुँ अप्पा तिविहु कहेवि (विँ ?)।।११।।

पुनः पुनः प्रणम्य पञ्चगुरून् भावेन चित्ते धृत्वा।
भट्टप्रभाकर निश्रृणु त्वम् आत्मानं त्रिविधं कथयामि।।११।।

पुणु पुणु पणविवि पंचगुरु भावें चित्ति धरेवि पुनः पुनः प्रणम्य पञ्चगुरूनहम्। किं कृत्वा। भावेन भक्तिपरिणामेन मनसि धृत्वा पश्चात् भट्टपहायर णिसुणि तुहुं अप्पा तिविहु कहेवि हे प्रभाकरभट्ट ! निश्चयेन श्रृणु त्वं त्रिविधमात्मानं कथयाम्यहमिति। बहिरात्मान्तरात्मपरमात्मभेदेन त्रिविधात्मा भवति। अयं त्रिविधात्मा यथा त्वया पृष्टो हे प्रभाकरभट्ट तथा भेदाभेदरत्नत्रयभावनाप्रियाः परमात्मभावनोत्थवीतरागपरमानन्दसुधारसपिपासिता वीतराग-निर्विकल्पसमाधि-समुत्पन्नसुखामृतविपरीतनारकादिदुःखभयभीता भव्यवरपुण्डरीका भरत-सगर-राम-पाण्डव-श्रेणिकादयोऽपि वीतरागसर्वज्ञतीर्थंकरपरमदेवानां समवसरणे सपरिवारा भक्तिभरनमितोत्तमाङ्गाः सन्तः सर्वागमप्रश्नानन्तरं सर्वप्रकारोपादेयं शुद्धात्मानं पृच्छन्तीति। अत्र त्रिविधात्मस्वरूपमध्ये शुद्धात्मस्वरूपमुपादेयमिति भावार्थ :।।११।।

इस कथन की मुख्यता से तीन दोहे हुए। आगे प्रभाकरभट्ट की विनती सुनकर श्रीयोगीन्द्रदेव तीन प्रकार की आत्मा का स्वरूप कहते हैं -

मैं पंच गुरु को कर प्रणाम पुन: पुन: नित भाव से।
मन बसा कहता त्रिविध आतम भट्ट! तुम सुनना उसे।।११।।

अन्वयार्थ :- [पुनः पुनः] बारम्बार [पञ्चगुरुन्] पंचपरमेष्ठियों को [प्रणम्य] नमस्कारकर और [भावेन] निर्मल भावोंकर [चित्ते] मन में [धृत्वा] धारण करके ['अहं'] मैं [त्रिविधं] तीन प्रकार के [आत्मानं] आत्मा को [कथयामि] कहता हूँ, सो [हे प्रभाकर भट्ट] हे प्रभाकरभट्ट, [त्वं] तू [निशृणु] निश्चय से सुन।

भावार्थ :- बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा के भेदकर आत्मा तीन तरह का है, सो हे प्रभाकरभट्ट जैसे तूने मुझसे पूछा है, उसी तरह से भव्यों में महाश्रेष्ठ भरतचक्रवर्ती,

सगरचक्रवर्ती,रामचन्द्र, बलभद्र, पांडव तथा श्रेणिक आदि : बड़े बड़े राजा, जिनके भक्ति-भारकर नम्रीभूत मस्तक हो गये हैं, महा विनयवाले परिवारसहित समोसरण में आके, वीतराग सर्वज्ञ परमदेव से सर्व आगम का प्रश्नकर, उसके बाद सब तरह से ध्यान करने योग्य शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे। उसके उत्तर में भगवन् ने यही कहा, कि आत्म-ज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है। भरतादि बड़े बड़े श्रोताओं में से भरतचक्रवर्ती ने श्रीऋषभदेव भगवान से पूछा, सगरचक्रवर्ती ने श्री अजितनाथ से, रामचन्द्र बलभद्र ने देशभूषण, कुलभूषण केवली से तथा सकलभूषण केवली से, पांडवों ने श्रीनेमिनाथ भगवान् से और राजा श्रेणिक ने श्रीमहावीरस्वामी से पूछा। कैसे हैं ये श्रोता जिनको निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय की भावना प्रिय है? परमात्मा की भावना से उत्पन्न वीतराग परमानन्दरूप अमृतरस के प्यासे हैं, और वीतराग निर्विकल्पसमाधिकर उत्पन्न हुआ जो सुखरूपी अमृत उससे विपरीत जो नारकादि चारों गतियों के दुःख, उनसे भयभीत हैं। जिस तरह इन भव्य जीवों ने भगवन्त से पूछा और भगवन्त ने तीन प्रकार आत्मा का स्वरूप कहा, वैसे ही मैं जिनवाणी के अनुसार तुझे कहता हूँ। सारांश यह हुआ, कि तीन प्रकार आत्मा के स्वरूपों से शुद्धात्म स्वरूप जो निज परमात्मा वही ग्रहण करनेयोग्य है। जो मोक्ष का मूलकारण रत्नत्रय कहा है, वह मैंने निश्चयव्यवहार दोनों तरह से कहा है, उसमें अपने स्वरूप का श्रद्धान, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप का ही आचरण यह तो निश्चयरत्नत्रय है, इसी का दूसरा नाम अभेद भी है, और देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, नवतत्वों की श्रद्धा, आगम का ज्ञान तथा संयम भाव ये व्यवहाररत्नत्रय हैं, इसी का नाम भेदरत्नत्रय है। इनमें से भेदरत्नत्रय तो साधन हैं और अभेदरत्नत्रय साध्य हैं।।११।।

गाथा - ११ पर प्रवचन

इस कथन की मुख्यता से तीन दोहे हुए। है न? ८, ९ और १०। सात गाथा तक तो वन्दन था। ८, ९, १० ये तीन दोहे कहे। **आगे प्रभाकर भट्ट की विनती सुनकर श्री योगीन्द्रदेव तीन प्रकार की आत्मा का स्वरूप कहते हैं।** लो!

११) पुणु पुणु पणविवि पंच-गुरु भावें चित्ति धरेवि।
भट्टपहायर णिसुणि तुहुँ अप्पा तिविहु कहेवि (विँ ?)।।११।।

इसका शब्दार्थ। **अन्वयार्थ – बारम्बार पंच परमेष्ठियों को नमस्कार कर...** विशेष है। योगीन्द्रदेव ने सात गाथा में तो स्तुति की, परन्तु विशेष वापस याद करके **बारम्बार पंच परमेष्ठियों को नमस्कार कर और निर्मल भावोंकर...** पवित्र भावों से, **मन में धारण करके मैं तीन प्रकार के आत्मा को कहता हूँ,...** आहाहा! **सो हे प्रभाकर भट्ट, तू निश्चय से सुन। 'निशृणु'** आहाहा!

मुमुक्षु : यह पर्याय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रभाकर आत्मा ऐसा है, उसे सुनना है।

मुमुक्षु : यह तो तीन अवस्थायें कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तीन अवस्थायें, परन्तु वह आत्मा है, वह बहिरात्मा में ऐसा, अन्तरात्मा, परमात्मा यह बताकर उसे आत्मा बतलाना है। बहिरात्मा राग को अपना माननेवाला, जो इसमें नहीं उसे अपना माने, वह बहिरात्मा। उसकी शुरुआत की है, इन्होंने परमात्मप्रकाश में। और अपना जो स्वरूप है, उसे माने, वह अन्तरात्मा। और अपना स्वरूप जैसा है, वैसा पूर्ण प्रगट हो जाये, वह परमात्मा। ऐसा करके आत्मा की तीन अवस्थायें बतायीं। परमात्मस्वरूप पूर्ण तो स्वयं है। उसमें बहिर् को माने, वह बहिरात्मा। पूर्णानन्द का नाथ, उसे परमात्मस्वरूप है, उसे माने, उसे अनुभव करे, वह अन्तरात्मा और पूर्णानन्द जैसा स्वभाव है, वैसी पूर्ण दशा जिसकी प्रगट हुई है, वह परमात्मा। आहाहा! ऐसा करके परमात्मस्वरूप (का) ही वर्णन करते हैं। समझ में आया?

हे प्रभाकर भट्ट! सुन! लो, दूसरे में तो ऐसा कहते हैं कि सुनने से भी राग होता है। यह बात तो बराबर है, परन्तु सुनने के समय तो इसे ऐसा कहे न? समयसार में नहीं आया? **'वंदित्तु सव्व सिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते। वोच्छामि समयपाहुडमिणमो'** मैं समयप्राभृत को कहूँगा। **'वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं'** तो वोच्छामि कहने से, सुन—ऐसा तो कहा न उसमें? मैं कहता हूँ। आहाहा! व्यवहार तो बीच में आता है।

मुमुक्षु : वह तो कह सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कह सकते हैं, यह बात नहीं है। अन्दर कह सकने का

निमित्तपना होता है। ऐसी बातें हैं। '**वोच्छामि**' वहाँ है। वहाँ कहे, देखो! कह सकते हैं। वाणी को कर सकते हैं, ऐसा उसमें से निकालते हैं। ऐसा नहीं है, बापू! वह व्यवहार से कहते हैं, उसे तू ऐसा ही मान ले तो तू सुनने के योग्य नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सुनने के योग्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्य नहीं। जो हमें कहना है, व्यवहार से निश्चय को बतलाना है। उसके बदले (कहे), व्यवहार से तुमने कहा न, तो व्यवहार भी आदरणीय हुआ या नहीं? ऐसा पकड़ा, वह सुनने के योग्य नहीं। ऐई! पुरुषार्थसिद्धि उपाय में (आया है), अबुद्धस्य बोधनार्थं... देशना नास्ति... मौनपने से ऐसे लाभ होता है, ऐसा कथन करे तो वह पकड़े कि मौनपने से लाभ होता है तो तुम क्यों बोलते हो? सुन न! कहने का आशय है उसे तू पकड़ न। आता है न शास्त्र में। मौन से आत्मा को लाभ होता है। वाणी से नहीं। तब कहे, मौन से लाभ हो तो तुम प्ररूपणा करके क्यों बोलते हो? यह सुननेवाले को स्वच्छन्दता है, कहते हैं। जो आशय है, उस आशय को पकड़ता नहीं और यह पकड़ता है। आहाहा! '**छलं ण घेत्तव्वं**' (समयसार) पाँचवीं (गाथा में) आता है न? '**छलं ण घेत्तव्वं**'।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥

ऐसी आड़ी बात—स्वच्छन्दता नहीं करना। आहाहा!

बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा के भेदकर आत्मा तीन तरह का है,... आहाहा! **सो हे प्रभाकर भट्ट! जैसे तूने मुझसे पूछा है,...** जैसा तूने मुझसे पूछा। **उसी तरह से भव्यों में महाश्रेष्ठ...** आहाहा! योग्य प्राणियों में महाश्रेष्ठ **भरत चक्रवर्ती....** ने भगवान से पूछा था। ऋषभदेव भगवान से। दूसरे सब प्रश्न आगम के करने के पश्चात् योगफल में यह प्रश्न परमात्मा का किया था। आहाहा! समझ में आया? **भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती, रामचन्द्र, बलभद्र, पाण्डव तथा श्रेणिक आदि बड़े-बड़े राजा, जिनके भक्ति-भारकर नम्रीभूत मस्तक हो गये हैं,...** आहाहा! चक्रवर्ती ऐसे... आहाहा! विनय से भगवान को ऐसा प्रश्न करते हैं। आहाहा! **मस्तक हो गये हैं,...** वीतराग **भक्ति-**

भारकर नम्रीभूत मस्तक हो गये हैं,... ऐसा का ऐसा ऐसा करे, ऐसे नहीं, ऐसा कहते हैं। मस्तक झुक गया है। आहाहा!

महाविनयवाले परिवारसहित... आहाहा! भरत चक्रवर्ती आदि रामचन्द्र, बलभद्र, पाण्डव **महाविनयवाले परिवारसहित समवसरण में आके,...** परिवार सहित आये, ऐसा कहते हैं। स्त्री, पुत्र, परिवार लेकर सुनने आये। आहाहा! जिनके घर में छह खण्ड के राज, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव, ऐसा चक्रवर्ती भी भगवान के समवसरण में परिवार सहित सुनने आता है। आहाहा! इसे सुनने की निवृत्ति नहीं मिलती। वापस ऐसा कहा कि समवसरण में आते हैं। वह समवसरण उसके घर में नहीं जाता। आहाहा! वहाँ जाकर प्रभु को पूछते हैं। आहाहा!

जाकर वीतराग सर्वज्ञ परमदेव से... आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमदेव **सर्व आगम का प्रश्नकर...** भाषा तो देखो! आहाहा! सर्व आगम के प्रश्न। ऐसा कि दूसरे चारों ही अनुयोग के सब प्रश्न हो गये। **उसके बाद...** आहाहा! सर्व आगम अर्थात् चारों अनुयोग। **उसके बाद सब तरह से ध्यान करनेयोग्य...** आहाहा! चारों ओर से भगवान का ध्यान करनेयोग्य आत्मा... आहाहा! **शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे।** आहाहा! प्रभाकर भट्ट को कहते हैं कि भरत चक्रवर्ती भी ऋषभदेव भगवान के समवसरण में जाकर, आगम के प्रश्न होकर अन्त में शुद्धात्मा का प्रश्न करते थे। समझ में आया?

मुमुक्षु : पहले यह नहीं किया और अन्त में क्यों किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सार है इसलिए, ऐसा कहते हैं। पहले जानपने की बात की। परन्तु सार वस्तु जो है, उसका प्रश्न बाद में किया। आहाहा!

शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे। भाषा देखो! यह पूछते हैं शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते हैं। पूछनेवाला ऐसा कहता है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य में आता है न? पाँचवीं गाथा में। हमारे गुरु ने हमको कृपा करके शुद्धात्मा का उपदेश किया। अर्थात् दूसरा नहीं किया? दूसरा किया। (परन्तु) यह बतलाना है। हमारे गुरु ने... आहाहा! है? समयसार पाँचवीं गाथा। हमारे ऊपर कृपा करके हमको शुद्धात्मा का उपदेश—अनुग्रह किया। आहाहा! वह यहाँ पूछता है। आहाहा!

शुद्धात्मा का ही.... ऐसा शब्द है। **स्वरूप पूछते थे।** भगवान से यह प्रश्न भरत चक्रवर्ती इत्यादि-इत्यादि, नेमिनाथ भगवान से पाण्डव आदि (ने किया था)। **उसके उत्तर में भगवान ने यही कहा,...** उसके उत्तर में भगवान ने यह कहा। श्रेणिक राजा आदि लिये हैं। यह प्रश्न किया परन्तु इसका उत्तर सहज आता है। वास्तव में प्रश्न बड़े चक्रवर्ती आदि करे। परन्तु इन्होंने किया है, वह गौतम से उसे उत्तर मिला है। परन्तु इसमें इकट्ठा डाला।

कि आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है। भगवान ने उत्तर दिया। आहाहा! **आत्मज्ञान के समान...** आत्मज्ञान के समान। आहाहा! पर का नहीं, राग का नहीं, पर्याय का नहीं। आत्मज्ञान, वस्तु जो नित्यानन्द प्रभु आत्मा ध्रुव, उसका ज्ञान, आत्मज्ञान। आहाहा! **आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।** अब किस-किस ने पूछा, यह स्पष्टीकरण बाहर करेंगे। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१० नम्बर के प्रवचन में आवाज खराब होने से
१९६५ के वर्ष का प्रवचन लिया गया है।

वीर संवत् २४९१, आसोज शुक्ल ०४, मंगलवार
दिनांक-२८-०९-१९६५, गाथा-११-१२, प्रवचन-९ (१०)

ग्यारहवीं गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश, पहला भाग (अधिकार)।

यहाँ यह चलता है श्रेणिक राजा इत्यादि। भरत चक्रवर्ती से शुरु होकर भगवानों को, मुनियों को इन श्रोताओं ने यह प्रश्न किया कि भगवान! यह शुद्धात्मा यह क्या चीज़ है? शुद्धात्मा जिसे कहते हैं, प्रभु! वह क्या है? वे **शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे।** भगवान शुद्धात्मस्वरूप, कषाय अग्नि के अन्दर, जैसे बर्फ का शीतल स्वभाव है, अविकारी वीतराग आनन्द और शान्ति, ऐसा भरपूर भगवान शुद्धात्मा कौन है? भरत (आदि) चक्रवर्तियों ने और श्रेणिक राजा ने ऐसा प्रश्न भगवान से किया।

उसके उत्तर में भगवान कहते हैं, **उसके उत्तर में भगवन् ने यही कहा कि आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।** यह स्वयं न्याय से लिया है। क्योंकि आत्मा उपादेय है न? ऐसा अन्त में कहेंगे। अर्थात् यह भगवान के उत्तर में, मुनियों की आवाज में—प्ररूपणा में यह आया कि हे भाई! शुद्धात्मा ही (सार है)। शुद्धात्मा अर्थात् **आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।** देखो! भले कषाय हो, शरीर आदि हो, परन्तु जिस चीज़ में आनन्द और शान्ति पड़ी है, ऐसा भगवान आत्मा, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान होने पर पुण्य-पाप आदि उसमें नहीं है, ऐसा ज्ञान होता है, परन्तु वह सब आत्मज्ञान हुआ कहलाता है। समझ में आया? आत्मज्ञान। भगवान के चारों अनुयोगों में... देखो! आगम के प्रश्नोत्तर में यह सब आया था। उसमें यह भी आया था, उसमें से इन्होंने यह प्रश्न किया। भगवान **शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे।** शिष्य। भगवान उसका उत्तर देते थे कि **आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।**

भरतादि बड़े-बड़े श्रोताओं में से भरत चक्रवर्ती ने श्री ऋषभदेव भगवान से पूछा, सगर चक्रवर्ती ने श्री अजितनाथ से, पूछा रामचन्द्र बलभद्र ने देशभूषण-कुलभूषण केवली से तथा सकलभूषण केवली से,... पूछा। **पाण्डवों ने श्री नेमिनाथ भगवान से...** पूछा। **और राजा श्रेणिक ने श्री महावीरस्वामी से पूछा।** लो! यह प्रश्न किया, प्रभु! मैं कौन? यह शुद्धात्मा कौन है? समझ में आया?

अब, वे श्रोता कैसे हैं कि जिन्होंने ऐसा प्रश्न किया? वे श्रोता कैसे हैं? **कैसे हैं ये श्रोता जिनको निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय की भावना प्रिय है,...** जिन्हें यह भगवान आत्मा, पूर्ण शान्त आनन्दरस स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति ऐसा निश्चय रत्नत्रय जिसे प्रिय है। समझ में आया? भगवान आत्मा, देखो! निश्चयरत्नत्रय प्रिय है अर्थात् निश्चयरत्नत्रय है। समझ में आया? पूरा शीतल अविकारी शान्तस्वभाव का पिण्ड प्रभु की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ आनन्द, (यह) कहेंगे, उसे निश्चयरत्नत्रय की प्रियता है। स्वभाव शुद्ध पूर्ण, उसका आनन्द, उसका अनुभव हुआ है। ऐसे निश्चयरत्नत्रय की प्रियता है और... देखो! विशेष (कहते हैं)।

और व्यवहाररत्नत्रय की भावना प्रिय है,... और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का राग भी व्यवहार से प्रिय है। निश्चय से यह प्रिय है और व्यवहार से यह प्रिय है। समझ में आया? प्रिय ही है। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, जिसमें कषाय अग्नि को शान्त करने का, नाश करने का स्वभाव है, ऐसा भगवान केवलज्ञानमय कहेंगे अन्दर। **'णाणमउ'** बारह (गाथा में) कहेंगे। जो अकेला ज्ञानमय प्रभु है, अर्थात् कि उसमें विकार नहीं, अर्थात् ज्ञानमय है, आनन्दमय है, शान्तमय है, स्वच्छतामय है, यह सब इसमें आ जाता है। ऐसा जो भगवान आत्मा उसकी उसे भावना निश्चय से प्रिय है। व्यवहार से ऐसे विकल्प भी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के, ज्ञान के व्यवहार और व्यवहार दया-दान के, भक्ति के परिणाम भी होते हैं। तो उसे व्यवहार से प्रिय है, ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों... दोनों। एकाग्रता है न? राग में इतनी अस्थिरता है न? यहाँ वीतराग की स्थिरता है। निश्चयरत्नत्रय में वीतरागस्वरूप आत्मा की सन्मुखता की एकाग्रता है। राग में जरा परसन्मुख का विकल्प है, इतना अन्दर परिणमन है, इसलिए उसे इस अपेक्षा से एकाग्रता का आरोप दिया है।

परमात्मा की भावना से उत्पन्न... ओहो! भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु की अन्तर की एकाग्रता द्वारा **उत्पन्न वीतराग परमानन्दरूप अमृतरस के प्यासे हैं,...** अमृतरस के प्यासे

हैं, तृषा लगी है। आहाहा! समझ में आया? जैसे तृषा लगी हो न, पानी को कैसे माँगे? उसमें मौसम्बी का पानी और बर्फ का पानी आवे तो ऐसे गटक-गटक पीता है। ऐसा यह कहते हैं, प्रभु! ये श्रोता ऐसे हैं। आहाहा! जिन्हें वीतराग परमानन्द अमृतरस, भगवान आत्मा वीतरागरस से भरपूर तत्त्व प्रभु, ऐसे आत्मा के अमृत के रस के पिपासु हैं। समझ में आया? यह रागरस और तृष्णा और भोगरस के पिपासु नहीं। आहाहा! छह खण्ड के धनी, छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में दिखाई दे। नहीं, नहीं, यह नहीं, यह नहीं। यह भोग के रस के पिपासु नहीं; यह आत्मा के अविकारी आनन्द रस के, अमृत के पिपासु हैं। कहो, समझ में आया?

और वीतराग निर्विकल्पसमाधिकर उत्पन्न हुआ... रागरहित आत्मा की शुद्धता की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और लीनता द्वारा **उत्पन्न हुआ जो सुखरूपी अमृत...** यह वीतराग निर्विकल्प शान्ति से उत्पन्न हुआ **सुखरूपी अमृत उससे विपरीत...** मनुष्य, नारकी, देव, पशु। उनके दुःख **उनसे भयभीत हैं।** आहाहा! समझ में आया?

जीवित जानवर को अग्नि की भट्टी में डाले। राजकुमार... ऐसे राजकुमार हो पच्चीस वर्ष का युवक, उसे ऐसे जमशेदपुर की भट्ठी में जीवित, लकड़ी जीवित डाले ऐसे डाले, और उस अग्नि का जिसे अन्दर भय है। आहाहा! इसी प्रकार चार गति और कषाय की आकुलता का जिसे भय है। अरे! यह द्रव्य यहाँ से छूटकर जायेगा कहाँ? यह वस्तु आकुलता है, उसमें और ऐसे अवतार अनन्त किये। ऐसी आकुलता के दुःख से जिसे अन्तर में भय लगा है। जैसे अग्नि से ऐसे डरता है, उसी प्रकार ये आकुलता से डरे हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह विकल्प के जाल उठे, शुभ-अशुभ का जाल, ऐसा जो विकल्प का दुःख, वह चार गति के दुःख उसमें हैं। स्वर्ग में हो तो उस विकल्प के जाल में दुःख है। वह उससे भयभीत है। अरे! यह आत्मा, ऐसे आकुलता के दुःख अनन्त बार भोगे। अब उससे रहित मेरी चीज़ क्या है? उसे अन्तर पिपासा अमृत को पीने के लिये (और) दुःख से, आकुलता से (छूटने के लिये प्रश्न करता है)। दुःख अर्थात् प्रतिकूलता, ऐसा नहीं है। दुःख अर्थात् कि कषाय का विकारी भाव, उससे भय पाता है। यह कषाय

आत्मा की शान्ति का लुटेरा है। समझ में आया? देखो! छह खण्ड के राज में दिखता है। यह है कहाँ? कहते हैं। यह चार गति के दुःख के दुःख से डरे हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सामग्रियाँ ऐसी सब। शरीर, स्त्रियाँ, कुटुम्ब-परिवार के ओर की जो कषाय की ज्वाला सुलगती है, उससे भयभीत हैं। समझ में आया? डर गये हैं। तीर्थंकर जैसे भी चार गति के दुःख की आकुलता से डरे। उससे जो न डरे, वह तो महा सुभट कहलाता है। चौरासी के अवतार, अरे! कहाँ इसे सुख? कहीं इसे शान्ति की गन्ध नहीं मिलती। चारों ओर चौरासी के अवतार में दुःख, दुःख और दुःख है। उससे जो भयभीत है। समझ में आया?

जिस तरह इन भव्य जीवों ने भगवन्त से पूछा,... ऐसे जीवों ने प्रश्न पूछा, उसका उत्तर भगवान ने दिया, ऐसी दो भूमिका स्थापित की। आहाहा! एक ऐसे शौक के खातिर, सुनने के खातिर, समझकर कुछ ज्ञान करके दूसरों को कहना और अपने को कुछ आता है, इस खातिर वे नहीं पूछते थे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पूछने की पद्धति में भी अन्तर होता है। पूछे तो अपने को कुछ आता है, ऐसा दूसरे को बतावे, या पूछे तो कुछ उसका जवाब दूसरा मिले तो उसे धारणा होती है। दूसरे की अपेक्षा विशेषपना है, वह नहीं... वह नहीं। प्रभु! इस आत्मा को आकुलता से छूटने का (भाव है, इसलिए पूछता है कि) आत्मा—भगवान आत्मा कौन है? कहते हैं। समझ में आया?

दुनिया के पास उसे सरल मार्ग नहीं लेना कि यह अच्छा है, हों! पूछनेवाला है, प्रश्न पूछता है, धर्म की भारी जिज्ञासावाला लगता है। समझ में आया? और वाँचता है, पढ़ता है, कितना प्रयत्न करता है! ऐसे दुनिया को दिखाने के लिये नहीं। दुःख से उकता गया है, भय है। शरीर से नहीं (उकताया), हों! यहाँ। गति का भटकना, इस शान्तरस में से निकलकर इन विकल्पों में आना, वही दुःख है। समझ में आया? ऐसे दुःख से भयभीत हुए हैं। आहाहा!

ऐसे देखो तो छह खण्ड के राज, इन्द्राणी जैसी तो जहाँ घर में अप्सरायें और स्त्रियाँ। ऐसे मणिरत्न के महल (होते हैं)। अग्नि के भट्टी में जैसे बर्फ का शीतल पाँच

मण का गोला पड़ा हो अन्दर, उसी प्रकार यह कषाय की-विकल्प की अग्नि के पीछे भगवान शान्तरस है। उसमें जाने के लिये यह आकुलता से भयभीत है। आहाहा! समझ में आया?

विशाल काला नाग देखे और जैसे भागे, सुने वहाँ भागे। ऐसे देखे, ऐसा करके। समझ में आया? वे कहते हैं नहीं थे कल? बाबूभाई कहते थे। वह ... नाग बैठा था दरवाजे पर। यह वह टोटा है न? टोटा नहीं? यह कुँआ के टोटा भरे हैं न उसमें? मकान नहीं उसे? .... उसे एक रखते हैं न? एक व्यक्ति वह है और एक रात्रि में है। वह कहे, भाई आये थे न.... वह कहे, ऐसे शैय्या में अंधेरा था, वह यह बड़ा नाग बैठा हुआ देखा। मैं तो शैय्या (बिस्तर) लेकर भागा। ऐसा जहाँ सुना वहाँ। बत्ती (प्रकाश) की वहाँ ऐसे बैठा हुआ। जंगल है न वहाँ तो एकदम। जंगल में तो ऐसे बैठा था। भागे अन्दर। शैय्या-बैय्या गोटो लेकर भागा। आहाहा!

इसी प्रकार पुण्य-पाप के विकारी आकुलता के दुःख सर्प जैसे हैं। धर्मात्मा उसके दुःख से भागे हैं। आहाहा! समझ में आया? वह रस लेने खड़े नहीं रहे। आहाहा! समझ में आया? यह पूर्व के पुण्य के कारण सामग्री मिली हो और पाप के कारण प्रतिकूलता (मिली हो), अन्तर में दोनों की आकुलता के दुःख से भगे हैं। कहो, समझ में आया? जिसमें आकुलता में जिसे कहीं रस रहा नहीं और रस रहा है, ऐसा आत्मा, उसकी भावना प्रिय है, ऐसे श्रोता ने प्रश्न किया और भगवान ने उत्तर दिया है। आहाहा! कैसी भूमिका स्थापित करते हैं? समझ में आया? आहाहा!

जिस तरह इन भव्य जीवों ने भगवन्त से पूछा,... ऐसे भव्य जीवों ने ऐसा भगवान से प्रश्न किया, नाथ! पूर्ण केवलज्ञानी परमात्मा है, सन्त आदि या मुनि आदि हों, उनसे पूछे, प्रभु! यह परमात्मा मेरा निज स्वरूप भगवान अन्दर, वह क्या है? विशेष प्रगट समझने के लिये, विशेष उग्रता—पुरुषार्थ के लिये, यह प्रश्न ऐसे श्रोताओं ने पूछे थे। आहाहा! अपने आत्मा में विशेष महिमा आकर स्थिर होने के लिये यह प्रश्न थे। समझ में आया? **और भगवन्त ने तीन प्रकार आत्मा का स्वरूप कहा,...** आगे कहेंगे न? यह कहना है इसलिए।

भगवान ने आत्मा के तीन प्रकार के स्वरूप कहे, जब श्रोताओं ने ऐसा पूछा। ओहोहो! वह सभा, वे चक्रवर्ती, रानियाँ लेकर आया हो, वासुदेव, बलदेव भी हजारों रानियाँ लेकर आये हों, ऐसे बड़े आकाश के स्तम्भ जैसे पुण्यवाले दिखाई दें। यह कहते हैं कि उसे आकुलता के भाव से भयभीत हैं, हों! अन्दर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रस प्रभु! उसके हम पिपासु हैं। यह कहते नहीं, यहाँ तो आचार्य कहते हैं। वह इसका पिपासु है, ऐसा हम कहते हैं। ऐसे जीवों ने भगवान से पूछा, तो भगवान ने आत्मा के तीन प्रकार की बात की। समझ में आया?

भगवन्त ने तीन प्रकार आत्मा का स्वरूप कहा, वैसे ही मैं जिनवाणी के अनुसार तुझे कहता हूँ। देखो! सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी की पर्याय में ही यह तीन काल—तीन लोक ज्ञात हुए, उसमें आत्मा, बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा कैसा है, उसका ज्ञान भगवान के ज्ञान में था। भगवान ने इस आत्मा के तीन प्रकार का स्वरूप कहा। उसके अनुसार मैं भी तुझसे कहूँगा, कहते हैं। मेरे कल्पना की, घर की बात नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर, उन्होंने जो तीन काल, तीन लोक जाने, उसमें आत्मा की तीन अवस्थायें और आत्मद्रव्य, यह जाना और उन्होंने कहा ऐसी जिन—अनुसार, वाणी के अनुसार मैं तुझसे कहूँगा। समझ में आया?

अच्छा एक लड़का मर गया हो न, फिर जिसे नहीं कहते कि भाई! शोक का मुख है। ऐसा नहीं कहते? उसी प्रकार यह वैराग्य के जिसके मुख हैं, ऐसे भगवान को प्रश्न करते हैं। आहाहा! समझ में आया? बीस वर्ष का लड़का मर गया हो, दो वर्ष का विवाहित छोड़कर और इकलौता ही हो, अब आशा भी नयी न हो और उसे कोई लड़का भी न हो। वह शोक का मुख हो। शोक का अर्थात्? शोक... शोक... शोक... शोक...

यहाँ कहते हैं कि आकुलता के भाव में दुःख लगा है न! समझ में आया? जिसे वैराग्य मुख में-आत्मा में छा गया हो। उसको शोक का मुख है, इसका वैराग्य से (भरा हुआ) है। प्रभु! आहाहा! हमारे आत्मा का निज स्वरूप, प्रभु कैसा है? तब कहते हैं, भाई! भगवान ने कहा, तत्प्रमाण मैं तुझे कहूँगा।

वैसे ही मैं जिनवाणी के अनुसार तुझे कहता हूँ। सारांश यह हुआ कि तीन प्रकार आत्मा के स्वरूपों से शुद्धात्मस्वरूप जो निज परमात्मा वही ग्रहण करनेयोग्य है। उसमें टीका में अन्तिम शब्द है न? अन्तरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा कहूँगा, परन्तु उसमें यह आत्मा जो निज स्वरूप है, वही अन्तर्दृष्टि करके स्थिर होनेयोग्य, वही उपादेय और आदरणीय है। समझ में आया? **जो मोक्ष का मूलकारण रत्नत्रय कहा है,...** वह भेदाभेद रत्नत्रय की भावना प्रिय है, ऐसा कहा न? तब भगवान ने भी भेदाभेद रत्नत्रय कहा है न? इसलिए उसे प्रिय है। भगवान ने कहा, वह मैं भी कहता हूँ—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? प्रश्नकार के भेदाभेद रत्नत्रय की प्रियता जो वर्णन की, तब उसे भी भगवान ने, सन्तों ने भेदाभेद रत्नत्रय कहा था। तो कहते हैं, **वह मैंने निश्चयव्यवहार दोनों तरह से कहा है,...** मैं भी इस प्रकार से कहता हूँ। समझ में आया?

मैंने... 'ब्रह्मदेव' कहते हैं, यह 'योगीन्द्रदेव' आचार्य कहते हैं। निश्चय, व्यवहार। क्योंकि श्रोता को निश्चय और व्यवहार, अभेदभेद रत्नत्रय प्रिय है। उसने सुना और कहाँ से उसने यह सुना हुआ जाना? सन्तों ने—केवलियों ने कहा हुआ। तो मैं भी उस प्रकार से तुझे कहता हूँ, ऐसा कहते हैं। **निश्चयव्यवहार दोनों तरह से कहा है, उसमें अपने स्वरूप का श्रद्धान...** भगवान आत्मा एकदम ज्ञान और आनन्द का स्वरूप जिसका पूर्ण है, उसकी जिसे अन्तर श्रद्धा, स्व शुद्ध स्वरूप की अन्तर श्रद्धा, **स्वरूप का ज्ञान...** स्व-रूप। अपना ज्ञानमय चिदानन्द प्रभु का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान। ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, स्वरूप का ज्ञान, निज परमात्मा का ज्ञान, यह निश्चय। यह निश्चय ज्ञान, वह अभेद ज्ञान। पहले स्वरूप श्रद्धा और निश्चय समकित या अभेद श्रद्धान **और स्वरूप का ही आचरण...** भगवान आत्मा अपनी दृष्टि, ज्ञान को करके ऐसे शुद्ध स्वरूप में ऊपर अन्तर रमे। ऊपर अर्थात् क्या? कि पर्याय से द्रव्य में रमे। वस्तु जो पूर्ण स्वभाव का पिण्ड शान्तरस का गर्भ, अकेला शान्त बर्फ जैसे शीतल (होता है),उसी प्रकार यह शान्तरस का पिण्ड, इसके ऊपर रमे, इसका नाम चारित्र और इसका नाम निश्चय आचरण कहा जाता है अथवा उसे अभेदचारित्र कहा जाता है। क्योंकि वह पर्याय द्रव्य के साथ एक होती है। समझ में आया? आहाहा! अरे! **यह जो निश्चयरत्नत्रय है, इसी का दूसरा नाम अभेद भी है,...** ऊपर अभेद कहा था न?

भेदाभेद रत्नत्रय प्रिय है। इसलिए कहा कि, अभेद और भेद प्रिय है। इसका अर्थ ही अभेद अर्थात् निश्चय, भेद अर्थात् व्यवहार।

और देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा,... सच्चे सर्वज्ञ परमात्मा। योगीन्द्रदेव कहते हैं अथवा जिस-जिस प्रश्नकार के उत्तर देनेवाले सन्त कहते हैं, कि भगवान आत्मा निज स्वरूप से पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी अन्तर की श्रद्धा, अन्तर्मुख का ज्ञान और अन्तर्मुख का आचरण, उसे सच्चा रत्नत्रय जो कि सच्चे रत्नत्रय के कीमत में मोक्ष मिलता है। इस सच्चे रत्नत्रय की कीमत देने से मोक्ष का मणि-माणेक मिलता है। उसे निश्चय कहते हैं, उसे अभेद कहते हैं, उसे सच्चा रत्नत्रय कहते हैं। कहो, समझ में आया? उसके साथ देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का एक विकल्प होता है। सच्चे सर्वज्ञ परमात्मा, सच्चे पूर्ण स्वरूप को साधनेवाले सन्त और अहिंसा धर्म, शास्त्र की श्रद्धा, उसका जो शुभ विकल्प, वह व्यवहार श्रद्धा है, भेदवाली श्रद्धा है, वह उपचारिक श्रद्धा है।

नव तत्त्वों की श्रद्धा... जीव-अजीव आदि बराबर (जाने हैं)। जीव अनन्त हैं, अजीव अनन्त हैं, पुण्य परिणाम है, पाप परिणाम है, ऐसे नौ के नौ भिन्न-भिन्न, उनके कार्य और भिन्न-भिन्न जिनका स्वरूप है, इस प्रकार से नौ की श्रद्धा करना, वह विकल्पवाली श्रद्धा है। वह राग श्रद्धा, रागरूप श्रद्धा, वह व्यवहार श्रद्धा कही जाती है।

आगम का ज्ञान और शास्त्र का ज्ञान। स्व का ज्ञान वह निश्चयज्ञान। आगमज्ञान, वह व्यवहार का ऐसा विकल्प होता है। शास्त्र के पढ़ने का ज्ञान वह विकल्प है। जिसे निश्चय हो, उसे ऐसा व्यवहार होता है। ऐसा आगम का ज्ञान, बराबर आगम का जैसा कहना है, नव तत्त्व, छह द्रव्य आदि, उसका उसे ज्ञान (होता है)। वह व्यवहार ज्ञान कहने में आता है। जो विकल्प है, जो भेद है, जो उपचार है अथवा खोटा रत्न है। उपचार कहो या खोटा कहो, उसमें क्या है? समझ में आया?

खोटा कीमती नहीं होता। खोटे को कीमत का आरोप दे, वह निश्चय के साथ में है इसलिए। समझ में आया? **तथा संयमभाव...** पाँच इन्द्रियों के दमन का शुभ विकल्प। समझ में आया? अथवा छह काय जीव को न मारना, ऐसा विकल्प, ऐसा शुभ संयम व्यवहार होता है। यह व्यवहार आचरण कहो, भेदरूपी आचरण कहो, निमित्तरूप से आचरण कहो या उपचार आचरण कहो। **ये व्यवहाररत्नत्रय हैं,...** है,

वापस ऐसा सिद्ध करना है न? क्योंकि उसको कहा था न भेदाभेद रत्नत्रय की भावना प्रिय है। तब है, वह प्रिय है न? समझ में आया? भगवान ने ऐसा कहा था, आचार्य कहते हैं, हम भी ऐसा ही कहते हैं। **इसी का नाम भेदरत्नत्रय है।** विकल्परूप, रागरूप, उपचाररूप भेदरत्नत्रय है, जिसका फल वास्तव में तो पुण्य है परन्तु निश्चयरत्नत्रय का फल मोक्ष है, ऐसा उसका आरोप देकर कहते हैं तो उसका फल मोक्ष है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया या नहीं?

आत्मा वस्तु का स्वभाव, उसकी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह एक ही मोक्ष का सच्चा मार्ग है। परन्तु साथ में ऐसा व्यवहार है, वह वास्तव में (मोक्षमार्ग) नहीं है। परन्तु ऐसे मोक्षमार्ग को साथ ऐसा विकल्प अनुकूल व्यवहार से गिनकर वह भी मोक्ष का कारण है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। है बन्ध का कारण। उसे व्यवहारनय कहता है कि वह व्यवहार, मोक्ष का कारण है। ऐसे दो प्रकार के भाव, धर्म आराधक जीव को होते हैं। समझ में आया?

विकल्प है या नहीं? यहाँ निर्विकल्प के साथ है तो आरोप देते हैं। आरोप करके कहते हैं न? निश्चय सच्चा है, वह साथ में खोटा है। परन्तु सच्चे के निश्चय की अपेक्षा से वह भी व्यवहार से सच्चा है, ऐसा आरोप किया जाता है। कठिन पड़े ऐसा है। क्या है?

यहाँ तो दोनों को रत्नत्रय कहना है न? यहाँ (जिसे) निश्चयरत्नत्रय है, इसलिए उसे (राग को) व्यवहाररत्नत्रय कहा। निमित्तरूप कहो, भेदरूप कहो, व्यवहाररूप कहो। यहाँ यह है, इसका आरोप करके उसे भी रत्नत्रय कहा और दोनों मोक्षमार्ग है, ऐसा कहने में आया। दो का कथन किया, उसमें दो आये। वास्तविक तो एक ही मोक्षमार्ग है। यह आज थोड़ा व्यवहार को स्थान मिला (ऐसा कहते हैं)।

मुमुक्षु : आज निश्चित करने के लिये स्थान मिला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो दोनों साथ में वर्णन करना है, तब उसका स्वरूप क्या कहे? इसे रत्नत्रय कहा। यहाँ सच्चा रत्नत्रय है तो विकल्प को व्यवहार से रत्नत्रय कहा। यह निश्चय तो वह व्यवहार, यह सच्चा तो वह उपचार, यह वास्तविक तो वह

खोटा, यह शुद्ध उपादान तो वह निमित्त। कहो, समझ में आया? आहाहा! निश्चय की अपेक्षा से खोटा, व्यवहार की अपेक्षा से व्यवहार सच्चा है। है सही न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपचार का अर्थ ही खोटा है। बिल्ली को सिंह कहना। उसमें क्या कि यह सिंह रहा। चित्राम में लिखा होता है न सिंह। यह सिंह। है सिंह? खोटा सिंह है। उपचार से कहने में आता है।

भेदरत्नत्रय तो साधन हैं... व्यवहार से। यह व्यवहार से रत्नत्रय, भेदरत्नत्रय व्यवहार से साधन है। क्योंकि उसका विषय पर है। क्या कहा? देव-गुरु लिये न? देखो न! देव-गुरु महाधर्म, नव तत्त्व और आगम का ज्ञान और संयम इन्द्रिय का दमन आदि परलक्ष्य से पर को ऐसे न मारना आदि, ऐसा जो व्यवहाररत्नत्रय है, वह राग है, उसका विषय पर है। निश्चयरत्नत्रय है, वह निर्विकार है, उसका विषय आत्मा है। आहाहा!

वह तो इस निश्चय की अपेक्षा से खोटा। खोटे की अपेक्षा से खोटा सच्चा है। वस्तु नहीं? वस्तु नहीं? खोटा रुपया नहीं? खोटा रुपया है या नहीं? परन्तु रुपया कहलाये न उसे? क्या कहलाये? खोटा रुपया, परन्तु रुपया कहलाये न? ऐसा।

मुमुक्षु : साधन कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा व्यवहार से साधन कहा।

मुमुक्षु : तो खोटे की व्याख्या करना आवे तो सच्चा आया कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : असत्यार्थनय से, व्यवहारनय से उसे साधन कहा। असत्यार्थनय से, व्यवहारनय से, झूठे नय से उसे साधन कहा। कहो, समझ में आया?

और अभेदरत्नत्रय साध्य हैं। आहाहा! भगवान आत्मा... अरे! विश्राम का स्थान जिसने कभी देखा नहीं, जाना नहीं, जाने हुए का अनुभव करने का प्रयत्न किया नहीं। रुचा नहीं... रुचा नहीं। जहाँ आगे स्थिर होने से शान्ति मिले और उस शान्ति का महाधाम सत्ता आसन लगाने का (स्थान), ऐसी चीज़ क्या है, उसकी इसने अनन्त काल में कभी प्रीति भी की नहीं। समझ में आया?

गाथा - १२

अथ त्रिविधात्मानं ज्ञात्वा बहिरात्मानं विहाय स्वसंवेदनज्ञानेन परं परमात्मानं भावयत्वमिति प्रतिपादयति –

१२) अप्पा ति–विहु मुणेवि लहु मूढउ मेल्लहि भाउ।
मुणि सण्णाणेँ णाणमउ जो परमप्प–सहाउ।।१२।।

आत्मानं त्रिविधं मत्वा लघु मूढं मुञ्च भावम्।
मन्यस्व स्वज्ञानेन ज्ञानमयं यः परमात्मस्वभावः।।१२।।

अप्पा तिविहु मुणेवि लहु मूढउ मेल्लहि भाउ हे प्रभाकरभट्ट आत्मानं त्रिविधं मत्वा लघु शीघ्रं मूढं बहिरात्मस्वरूपं भावं परिणामं मुञ्च। मुणि सण्णाणें णाणमउ जो परमप्पसहाउ पश्चात् त्रिविधात्मपरिज्ञानानन्तरं मन्यस्व जानीहि। केन करणभूतेन। अन्तरात्मलक्षणवीतराग–निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन। कं जानीहि। यं परात्मस्वभावम्। किंविशिष्टम्। ज्ञानमयं केवलज्ञानेन निर्वृत्तमिति। अत्र योऽसौ स्वसंवेदनज्ञानेन परमात्मा ज्ञातः स एवोपादेय इति भावार्थः। स्वसंवेदनज्ञाने वीतरागविशेषणं किमर्थमिति पूर्वपक्षः, परिहारमाह–विषयानुभवरूप–स्वसंवेदनज्ञानं सरागमपि दृश्यते तन्निषेधार्थमित्यभिप्रायः।।१२।।

आगे तीन प्रकार आत्मा को जानकर बहिरात्मपना छोड़ स्वसंवेदन ज्ञानकर तू परमात्मा का ध्यान कर, इसे कहते हैं –

अब त्रिविध आतम जान तुम बहिरात्मा को छोड़ दो।
स्वज्ञान से बस ज्ञानमय परमात्मता को मान लो।।१२।।

अन्वयार्थ :– [आत्मानं त्रिविधं मत्वा] हे प्रभाकरभट्ट, तू आत्मा को तीन प्रकार का जानकर [मूढं भावम्] बहिरात्म स्वरूप भाव को [लघु] शीघ्र ही [मुञ्च] छोड़, और [यः] जो [परमात्मस्वभावः] परमात्मा का स्वभाव है, उसे [स्वज्ञानेन] स्वसंवेदनज्ञान से अन्तरात्मा होता हुआ [मन्यस्व] जान। वह स्वभाव [ज्ञाननयः] केवलज्ञानकर परिपूर्ण है।

भावार्थ :– जो वीतराग स्वसंवेदनकर परमात्मा जाना था, वही ध्यान करनेयोग्य है। यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया था, जो स्वसंवेदन अर्थात् अपनेकर अपने को अनुभवना इसमें वीतराग विशेषण क्यों कहा? क्योंकि जो स्वसंवेदन ज्ञान होवेगा, वह तो रागरहित

होवेगा ही। इसका समाधान श्रीगुरु ने किया – कि विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है, परन्तु रागभावकर दूषित है, इसलिये निजरस आस्वाद नहीं है, और वीतरागदशा में स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है, आकुलता रहित होता है। तथा स्वसंवेदनज्ञान प्रथम अवस्था में चौथे पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ के भी होता है, वहाँ पर सराग देखने में आता है, इसलिये रागसहित अवस्था के निषेध के लिये वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान ऐसा कहा है। रागभाव है, वह कषायरूप है, इस कारण जबतक मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबन्धीकषाय है, तबतक तो बहिरात्मा है, उसके तो स्वसंवेदन ज्ञान अर्थात् सम्यक्ज्ञान सर्वथा ही नहीं है, व्रत और चतुर्थ गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी के अभाव होने से सम्यग्ज्ञान तो हो गया, परन्तु कषाय की तीन चौकड़ी बाकी रहने से द्वितीया के चन्द्रमा के समान विशेष प्रकाश नहीं होता, और श्रावक के पाँचवें गुणस्थान में दो चौकड़ी का अभाव है, इसलिये रागभाव कुछ कम हुआ, वीतरागभाव बढ़ गया, इस कारण स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ, परन्तु दो चौकड़ी के रहने से मुनि के समान प्रकाश नहीं हुआ। मुनि के तीन चौकड़ी का अभाव है, इसलिये रागभाव तो निर्बल हो गया, तथा वीतरागभाव प्रबल हुआ, वहाँ पर स्वसंवेदनज्ञान का अधिक प्रकाश हुआ, परन्तु चौथी चौकड़ी बाकी है, इसलिये छट्ठे गुणस्थानवाले मुनिराज सरागसंयमी हैं। वीतरागसंयमी के जैसा प्रकाश नहीं है। सातवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी मन्द हो जाती है, वहाँ पर आहार-विहार क्रिया नहीं होती, ध्यान में आरूढ़ रहते हैं, सातवें से छठे गुणस्थान में आवें, तब वहाँ पर आहारादि क्रिया है, इसी प्रकार छट्ठा-सातवाँ करते रहते हैं, वहाँ पर अन्तर्मुहूर्तकाल है। आठवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी अत्यन्त मन्द हो जाती है, वहाँ रागभाव की अत्यन्त क्षीणता होती है, वीतरागभाव पुष्ट होता है, स्वसंवेदनज्ञान का विशेष प्रकाश होता है, श्रेणी माँडने से शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। श्रेणी के दो भेद हैं, एक क्षपक, दूसरी उपशम, क्षपकक्षेणीवाले तो उसी भव से केवलज्ञान पाकर मुक्त हो जाते हैं, और उपशमवाले आठवें, नवमे दशवें से ग्यारहवाँ स्पर्शकर पीछे पड़ जाते हैं, सो कुछ-एक भव भी धारण करते हैं, तथा क्षपकवाले आठवें से नवमें गुणस्थान में प्राप्त होते हैं, वहाँ कषायों का सर्वथा नाश होता है, एक संज्वलनलोभ रह जाता है, अन्य सबका अभाव होने से वीतरागभाव अति प्रबल हो जाता है, इसलिये स्वसंवेदनज्ञान का बहुत ज्यादा प्रकाश होता है, परन्तु एक संज्वलनलोभ बाकी रहने से

वहाँ सरागचरित्र ही कहा जाता है। दशवें गुणस्थान में सूक्ष्मलोभ भी नहीं रहता, तब मोह की अट्ठाईस प्रकृतियों के नष्ट हो जाने से वीतरागचारित्र की सिद्धि हो जाती है। दशवें से बारहवें में जाते हैं, ग्यारहवें गुणस्थान का स्पर्श नहीं करते, वहाँ निर्मोह वीतरागी के शुक्लध्यान का दूसरा पाया (भेद) प्रगट होता है, यथाख्यातचारित्र हो जाता है। बारहवें के अन्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय इन तीनों का विनाश कर डाला, मोह का नाश पहले ही हो चुका था, तब चारों घातिकर्मों के नष्ट हो जाने से तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान प्रगट होता है, वहाँ पर ही शुद्ध परमात्मा होता है, अर्थात् उसके ज्ञान का पूर्ण प्रकाश हो जाता है, निःकषाय है। वह चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक तो अन्तरात्मा है, उसके गुणस्थान प्रति चढ़ती हुई शुद्धता है, और पूर्ण शुद्धता परमात्मा के है, यह सारांश समझना।।१२।।

गाथा - १२ पर प्रवचन

आगे तीन प्रकार आत्मा को जानकर... अब बारहवीं गाथा। **बहिरात्मपना छोड़ स्वसंवेदन ज्ञानकर, तू परमात्मा का ध्यान कर, इसे कहते हैं—**

१२) अप्पा ति-विहु मुणेवि लहु मूढउ मेल्लहि भाउ।
मुणि सण्णाणें णाणमउ जो परमप्प-सहाउ।।१२।।

अन्वयार्थ :- हे प्रभाकर भट्ट! तू आत्मा को तीन प्रकार का जानकर... 'मूढं भावम् लघु मुञ्च' बहिरात्मस्वरूप भाव को शीघ्र ही छोड़,... यह पुण्य और पाप को अपना मानना, वह राग के विकल्पों को अपना मानना, वह बहिरात्मबुद्धि, मिथ्याबुद्धि, मूढबुद्धि है। शरीर, वाणी तो कहीं रह गये। खबर नहीं यहाँ से कहाँ जाना? कोई साथ में आवे, ऐसा है?

होगा कौन जाने किसे होता हो तो। कौवे आदि को श्राद्ध डाले, ऐसे को होता होगा? परभव में इस सब सामग्री का कुछ उपकार (होता है या नहीं?) इस भव में तो कुछ नहीं, पर वस्तु है, इसलिए कुछ उपकार नहीं होता। परन्तु इसके लिये मर गया, मरकर प्रयास करता है। लड़के लिये, स्त्री के लिये, शरीर के लिये, मकान के लिये,

इज्जत के लिये मरकर प्रयास करता है। खबर है कि हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं। जाना है बड़े काल में अन्यत्र। यहाँ तो थोड़ा काल (रहना है)। अब इस सामग्री की सम्हाल में इसे यह सामग्री एक समय भी साथ में आनेवाली नहीं है। बराबर होगा? एक समय साथ में आयेगी? परन्तु...

मुमुक्षु : काम में....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे? धूल में काम आती है? दुःख के लिये निमित्त होने में काम आती है। दुःख के लिये निमित्त होने में काम आती है।

मुमुक्षु : अल्प ही है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्प नहीं, सब, सब दुःख ही है। अल्प को और कहाँ? फिर महेन्द्रभाई जैसा लड़का हो तो उसके पिताजी कहे, थोड़ा दुःख है न इतना तो? थोड़ा तो सुख है न इसमें? कहो, आज्ञाकारी लड़के मिले ऐसे। पिताजी को यहाँ पचास हजार का मकान बना दे। रहो, निश्चिन्तता से रहो। अब तुम्हारे कुछ करने का नहीं है, जाओ। इतना तो सुख है या नहीं? नहीं? ले, यह इनकार करता है। ऐई! सेठी! सेठी भी इनकार करता है। वह दुःख ही है।

मुमुक्षु : सुख नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख नहीं और दुःख, दोनों में अन्तर होगा? आहाहा!

एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग भी जिसके समीप में उसके क्षेत्र में यह चीज़ आयी नहीं। आयी है? एक समयमात्र यह शरीर आत्मा की पर्याय में आया है? एक समय। और एक समयमात्र यहाँ से निकलते साथ में एक समयमात्र आयेगा? यह तो पर मिट्टी, धूल, परवस्तु और जगत के पदार्थ हैं। आहाहा! परन्तु इसके लिये आत्मा को खोकर भी उन्हें अच्छे रखूँ। आत्मा को गलाकर भी उन्हें जीवित, टिकते रखूँ। आत्मा को पिघलाकर भी उन्हें टिकते रखूँ। मिथ्याश्रद्धा से इसकी... ऐसे रहो, इसका ... ऐसा रहो और इसका ... ऐसा रहो। मर गया उसकी भावना में। मोहनभाई! अरे! क्या होगा यह वह? और एक समयमात्र जहाँ छूटा। खबर नहीं इसे कि यहाँ कितना रहना है? जितने वर्ष, कितनों को पचास के ऊपर निकले, उन्हें इतना रहना है? एक बात है।

दृष्टान्त। यह सेठ को तो ८० हो गये। शरीर को, हों! सेठ को अर्थात् आत्मा को नहीं। आहाहा! कहाँ का तू, कहाँ का यह पिंजर? यह शरीर ही जड़, मिट्टी, धूल के पदार्थ है। तू कहाँ है इसमें? इसकी सम्हाल करना, यह कहीं सम्हालने से रहे ऐसा है? आहाहा! साथ में तो आता नहीं, ममता छूटती नहीं। साथ में आता नहीं, ममता छूटती नहीं। छोड़े बिना रहना नहीं अब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। होता है, ऐसा मानता है कि इसे अच्छा रखूँ। इसके लिये दु:ख में रहता है। अच्छा रखने से रहता नहीं, इसलिए दु:ख मानता है। यह मूढ़ता है, ऐसा कहते हैं। अच्छे-बुरे की व्याख्या क्या? वे तो परपदार्थ हैं। तेरी कोई कल्पना से वह रहे ऐसा है? और कल्पना लाख रखे, छूटने के काल में छूटे बिना रहे, ऐसा है? अभी छूटा ही पड़ा हुआ है। कहाँ घुस गया है आत्मा में वह? आहाहा! परन्तु मूढ़ अपना आत्मा...

यहाँ बहिरात्मा की व्याख्या चलती है। बहिर जितनी वस्तु है, वह उसकी नहीं, उसमें रहती नहीं, वह रखने से रहती नहीं, तो भी उसे अपना मानकर, अपने आत्मा की शान्ति, स्वभाव, अनादर खोकर उसे रखने को मिथ्या प्रयास करता है। वह तीन काल में इसके होते नहीं और कभी हुए नहीं। ऐसी मान्यतावाले कहे, मेरे इन्हें रखूँ। यह बहिरात्मा मूढ़ कहलाता है। '**मूढउ**' यहाँ शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! समझ में आया?

किसी प्रकार से जगत में मुझे कोई अच्छा कहे और बुरे की छाप है, वह जाये। इसके लिये विकल्प से प्रयत्न करता है। इसका अर्थ ही (यह कि) वह पर को ही अपना मानता है। आहाहा! वह बहिरात्मा पर को ही अपना मानता है। क्योंकि पर जो है, वह मुझे ठीक कहे न तो मुझे ठीक है। इसलिए वह पर को ही अपना मानता है। दूसरे मुझे ठीक कहें... आहाहा! गजब! बस, प्रसन्न... प्रसन्न। और वह अच्छा व्यक्ति कहलाये। तो उसे अच्छा व्यक्ति कहा जाये।

मुमुक्षु : वह अच्छा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसे ठीक कहा न, इसलिए वह अच्छा।

बात तो यह है। अरे! तुझे दुनिया जो परपदार्थ, उसकी पर्याय वह तुझे ठीक कहे, तो तुझे अच्छा–ठीक लगे और वे अच्छा न कहे तो ठीक न लगे। उसने पर को ही अपना माना है। समझ में आया? बहिरात्मबुद्धि, मूढबुद्धि है। आहाहा! बराबर होगा?

कहते हैं, **बहिरात्मस्वरूप भाव को...** हों! भाव का। है न? पाठ है न? '**मूढं भावम्**' ऐसा है। परवस्तु नहीं, परवस्तु मेरी है, उसे रखूँ, उसकी रक्षा करूँ और मुझे प्रतिकूल हो तो उसे दूर करूँ, ऐसा जो पर को (अपना मानता है), उसका अर्थ कि मैं दूर करूँ और रखूँ, इसका अर्थ ही पर को अपना माना कहलाता है। पर को अपना माना है कि इसे दूर करूँ और इकट्ठा करूँ, ऐसा उसने माना है। समझ में आया? आहाहा!

अन्तरात्मा भगवान ज्ञानमय कहेंगे, देखो! यह पाठ में। '**स्वज्ञानेन ज्ञानमयं जान मन्यस्व...**' भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु में इस परचीज़ का तीनों काल अभाव है। तथापि उसे रखने को प्रयत्न करना और उसे ठीक पड़े, मेरा तो वह ठीक मुझे, ऐसा उसने पर को ही उसने माना है। और मेरी यह निन्दा करे न, उसके अस्तित्व को मैं उखाड़ डालूँ तो मुझे ठीक पड़े। इसका अर्थ ही यह है कि वह पर को ही अपना मानता है। समझ में आया?

यह बहिर् अर्थात् भगवान अन्तर्मुख चिदानन्दमूर्ति, ऐसा जिसे अपना ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान नहीं। स्वसंवेदनज्ञान, ज्ञानमय का स्वसंवेदनज्ञान। मैं तो ज्ञान आत्मा चैतन्य हूँ। पर्याय में विकास भले परमात्मा का न हो, परन्तु मैं स्वसंवेदन ज्ञान से, ज्ञानस्वरूप से वह मैं हूँ; दूसरी कोई चीज़ को फेरफार करना मैं चाहूँ तो मेरी कल्पना से उस चीज़ में फेरफार होता नहीं है। क्योंकि यह ज्ञान है, यह ज्ञान है। यह तो होता है, उससे जाननेवाला है। समझ में आया? होता है, उसे बदलनेवाला है—ऐसा नहीं है। बदल डाल तेरे भाव में से, बदल डाल तेरे भाव में से। क्या करना है तुझे? आहाहा! यह तीर्थंकरों ने बहिरात्मा का स्वरूप ऐसा वर्णन किया। ऐसा आचार्य कहते हैं कि मैं तेरे पास वर्णन करता हूँ। आहाहा! पाठ में क्या लिया?

'**लहु मूढउ मेल्लहि भाउ...**' शीघ्ररूप से मूढात्मा को मैल ऐसे भाव को। समझ में आया? बाहर की सुविधा से मुझे ठीक है और असुविधा से अठीक, उसने पर को

ही अपना माना है। उसकी बुद्धि, बहिर्बुद्धि, बाह्य बुद्धि है। समझ में आया? यह नाम शरीर का, उसकी प्रसिद्धि से मुझे प्रसिद्धि (है, ऐसा माननेवाले) वह बहिरात्मा मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। शरीर के नाम की कोई निन्दा आदि करे और उसे ऐसा हो कि यह मेरी निन्दा करता है, उसका अर्थ कि शरीर के नाम से जो करे वह मुझे करता है। अर्थात् वह शरीर को ही अपना माना। आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यह कचरा निकालना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कचरा निकालने के लिये तो यह बात चलती है। आहाहा! ऐसे तो ग्यारह अंग और नौ पूर्व सीख गया। पढ़-पढ़कर रट गया। समझ में आया? और मुझे आया, ऐसा भी उसने मान लिया। अपने को सब आता है अब। हम तो बहुत सीख गये हैं, बहुत वर्ष से सीख गये हैं।

उसे ख्याल में है सब। ख्याल में है कि इस वस्तु में फेरफार हो तो मुझे ठीक पड़े और इसमें न हो तो मुझे ठीक न पड़े, यह ख्याल में है। समझ में आया? छोड़ बहिरात्मबुद्धि और परमात्मस्वभाव, अपना परमस्वभाव, परमस्वरूप स्वभाव अकेला ज्ञानमय प्रभु ज्ञानमय (उसे ग्रहण कर), ज्ञान (कहने से) शास्त्र का ज्ञान नहीं, यह ज्ञान नहीं। यह आत्मा जो ज्ञानमय वस्तु है, उसका '**स्वज्ञानेन**' देखो! स्वज्ञान में स्वसंवेदन का विस्तार करेंगे। यह '**स्वज्ञानेन**' है न? इसका विस्तार करेंगे।

स्वसंवेदनज्ञान से अन्तरात्मा होता हुआ... देखो! चौथे से बारह तक की यह व्याख्या। '**स्वज्ञानेन**' वह मिथ्यात्व की व्याख्या बहिरात्मा की और यह चौथे से बारहवें तक। समझ में आया? इसमें से निकालेंगे यह। पाठ इतना है। '**अन्तरात्मलक्षणवीतराग-निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन।**' पाठ में '**स्वज्ञानेन**' है। टीका में '**अन्तरात्मलक्षणवीतराग-निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन।**' यह वस्तु। वे कहे, नये शास्त्र बनाये। भाई! शास्त्र बनाये नहीं। यह तो शास्त्र में है, इस बात का विस्तार किया। नये शास्त्र किसलिये बनाये? पहले थे वे रखने थे न! लो! और एक ऐसा कहता है। कौन बनावे? बापू! कार्य कौन करे? उसके परमाणु की पर्याय में से जो विस्तार आनेवाला हो, वह आता है, होता है। उसमें नये शास्त्र कहाँ? नयी वाणी (कहाँ)? वाणी तो जो है वह है। कौन वाणी करे

और कौन निकाल और कौन बोले? आहाहा! समझ में आया? वाणी मैं धीरे से कहूँ तो मैं कर सकता हूँ, जोर से करूँ तो कर सकता हूँ, उग्ररूप से जोर देकर करूँ और धीमे से (करूँ), सब कर सकता हूँ। यह मान्यता ही बहिरात्मा मूढ़ की है। आहाहा! भगवान के पास तो अकेला ज्ञान है। उसके पास इसका ऐसा करना, ऐसा उसके पास है? उसके द्रव्य-गुण में नहीं और पर्याय में भी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, वह **स्वसंवेदनज्ञान से अन्तरात्मा होता हुआ... 'मन्यस्व' जान**। क्या जान? **वह स्वभाव केवलज्ञानकर परिपूर्ण है।** अकेला ज्ञान शान्तरस, अकषायी ज्ञान वीतराग विकल्प रहित, बोलने की भाषा की तो गन्ध भी नहीं उसमें, परन्तु विकल्प करूँ, ऐसा नहीं करूँ, यह वस्तु में नहीं है। ऐसा अकेला ज्ञानमय अकषाय, विकाररहित, वीतरागस्वरूप, ज्ञानस्वरूप को प्राप्त कर, उसका साधन कर। बहिरात्मा को छोड़कर अन्तरात्मा द्वारा परमात्मा का साधन कर। समझ में आया? अरे! परन्तु इसमें किसका काम है? समझ में आया? कि यह दुनिया प्रसन्न हो या प्रसन्न न हो। अब दुनिया प्रसन्न-अप्रसन्न परद्रव्य है। इसकी पर्याय के साथ तुझे क्या सम्बन्ध है?

मुमुक्षु : दुनिया कभी प्रसन्न हो, ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु प्रसन्न हो तो उसकी पर्याय में। उसकी पर्याय में ऐसा परिणमन (होता है), उसमें तुझे क्या? तेरे परिणमन को क्या लाभ उसमें? और प्रतिकूलता के परिणमन की वाणी जगत में हो, उसमें तेरी पर्याय को नुकसान क्या? आहाहा! समझ में आया?

इसलिए कहा कि, '**स्वज्ञानेन**'।'**स्वज्ञानेन**' शब्द प्रयोग किया है, इसमें से इतना (निकाला कि) स्वसंवेदन अर्थात् आत्मा के ज्ञान द्वारा, केवलज्ञानकर परिपूर्ण उसे जान। पूरा आत्मा परिपूर्ण है, उसे जान और जानकर परमात्मा पूर्ण प्रगट करने का साधन अन्तरात्मपना प्रगट कर। आहाहा!

अनन्त काल में मुश्किल से मनुष्य हुआ। उसमें मुश्किल से इसे मनुष्यपने में संज्ञीपना मिला। उसमें कुछ इन्द्रियाँ (व्यवस्थित मिली)। उसमें से भागकर निकलने का काल इसे (मिला है), वहाँ चिपककर पड़ा उसमें ठीक से। समझ में आया? उसमें

से छूटकर निकलने का अवसर (आया)। उसमें से छूटना नहीं, उसे ही पकड़कर रखना है और उसे ही रखना है। ओहोहो! विपरीतता वह भी कुछ (कम नहीं है)। बहिरात्मबुद्धि—बाहर को रखना, छोड़ना, प्रसन्न-खुशी करना। कहते हैं कि भाई! यह मूढ़भाव छोड़ और ज्ञानमय भगवान जानने का देखने का स्वभाव तेरा है। बोलना भी कहाँ और विकल्प भी वहाँ कहाँ है? समझ में आया? ऐसी आत्मा की चीज़ को तू जान और वह तो अकेला ज्ञानमय भगवान है। समझ में आया? उसमें बोलने का, हिलने का, दूसरे को प्रसन्न (करने का), दूसरे से प्रसन्न होने का, कोई स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा!

जो वीतराग स्वसंवेदनकर परमात्मा जाना था, वही ध्यान करनेयोग्य है। क्या कहा? अन्तरात्मा की बात की। भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का (पुंज), ज्ञान जिसका रूप और स्वरूप है। शरीर जिसका रूप और स्वरूप, जिसमें तीन काल में नहीं है, वाणी का रूप और स्वरूप जिसमें नहीं है, पुण्य-पाप के विकल्पों के जवाब देने में यह विकल्प हो तो ऐसे दूँ, ऐसा विकल्प का स्वरूप और रूप जिसके स्वरूप में नहीं। वह तो कैसा है? वीतराग संवेदन परमात्मा है। वह ज्ञानमय भगवान, उसे रागरहित चैतन्य के भान द्वारा जाना था, वही ध्यान करने के योग्य है। उसमें बारम्बार एकाग्र होने योग्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया था, जो स्वसंवेदन अर्थात् अपनेकर अपने को अनुभवना... महाराज! आपने ऐसा कहा—अपनेकर अपने को—अपने से अपने को अनुभव करना। **इसमें वीतराग विशेषण क्यों कहा?** अपना जानना, इसमें वीतराग का विशेषण (लगाकर) वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान क्यों कहा? मात्र स्वसंवेदन कहना था। वीतराग स्वसंवेदन क्यों कहा? आत्मा भगवान ज्ञान की मूर्ति प्रभु, पुरुषाकार परमात्मा का स्वरूप स्वयं है, उसे अपने वीतरागी ज्ञान द्वारा जानना। आपने वीतराग शब्द बीच में क्यों डाला? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया है। **क्योंकि जो स्वसंवेदन ज्ञान होवेगा, वह रागरहित होवेगा ही।** शिष्य का प्रश्न है। इसका विशेष समाधान करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २४९१, आसोज शुक्ल ०५, बुधवार
दिनांक-२९-०९-१९६५, गाथा-१२, प्रवचन-१०

परमात्मप्रकाश, पहले भाग (अधिकार) की १२वीं गाथा। यहाँ शिष्य का प्रश्न है। ऐसा आचार्य ने कहा कि आत्मा का स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आत्मा वस्तुस्वरूप से शुद्ध चिदानन्द की ज्योति, उसका स्व अर्थात् अपना वेदन। अकषाय भाव का सम्यग्ज्ञान के प्रकाश के साथ वीतरागी वेदन (होना), उसे स्वसंवेदन कहा जाता है। उसे धर्म की शुरुआत चौथे गुणस्थान से कहा जाता है।

तब शिष्य ने प्रश्न किया कि **वीतराग विशेषण क्यों कहा ? क्योंकि जो स्वसंवेदन ज्ञान होवेगा, वह तो रागरहित होवेगा ही।** समझ में आया ? शिष्य को इतना तो आशंका का भाव आया कि यह स्वसंवेदन आत्मा जो है, वह अपना स्वरूप शुद्ध, उसे अपने से—स्व से सं—प्रत्यक्ष वेदन करे, वह तो वीतरागभाववाला ही होता है। ऐसा तो शिष्य ने प्रश्न किया है। तथापि **वीतराग विशेषण क्यों कहा ?** समझ में आया ?

इसका समाधान श्रीगुरु ने किया कि विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है,... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप होने पर भी विषयों के, कषायों के परिणामों का स्व में वेदन होता है, उसे भी स्वसंवेदन कहने में आता है, परन्तु वह विषयों का, भोग का, राग का वेदन वह रागवाला है। समझ में आया ? आत्मा वीतरागी विज्ञानघन है। वह अपना विषय, ध्येय छोड़कर पाँच इन्द्रियों के विषय शुभाशुभ चाहे जो हो, उस ओर के पुण्य-पाप का विकार, वह राग है और उस राग का वेदन, वह स्वसंवेदन कहा जाता है। अपना वेदन है राग का, परन्तु वीतरागी वेदन नहीं। समझ में आया ? क्या फरमाया ? लो!

आत्मा विषय का वेदन करे, वह कहीं जड़ का वेदन नहीं, पर का नहीं। आत्मा आनन्दमूर्तिस्वरूप स्वविषय को छोड़कर, परविषय में शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि में जो रागादि को करके वेदन करता है, वह स्वसंवेदन है। अपना वेदन अर्थात् विकार का वेदन है, वह कहीं जड़ का और पर का नहीं है। इसीलिए स्वसंवेदन में वीतरागता

कहने का यह कारण है कि, यह स्वसंवेदन जो रागवाला है, वह वेदन यहाँ लेना नहीं है। समझ में आया इसमें ?

आत्मा अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रस और अकषायस्वभाव, उसका वह प्रभु सागर—पूर्ण भरपूर है। उसका जो स्व, स्व अर्थात् अविकारी वीतरागीस्वभाव का। स्व-अपना, सं-प्रत्यक्ष, राग बिना आत्मा की शान्ति का, ज्ञान का वेदन हो, उसे यहाँ वीतरागी स्वसंवेदन कहने में आता है। समझ में आया ? वह चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन से स्वसंवेदन वीतरागी वेदन प्रगट होता है। इसलिए स्वसंवेदन को वीतरागी वेदन कहने का आशय कि विषय के भोग को परसन्मुख के वेदन में स्वयं वेदता है तो राग को—विकार को और अपना वेदन है। अपना अर्थात् स्वरूप की बात यहाँ नहीं है। परन्तु विकार को वेदता है, उसमें अकेला राग है। इसलिए उस राग का वेदन, वह स्वसंवेदन वीतरागी नहीं हो सकता। समझ में आया इसमें ? आहाहा !

ऐसा कहते हैं कि, अनन्त काल में इसमें कहीं पर को तो कभी वेदन किया नहीं। जड़ को, शरीर को, पैसे को, लड्डू, दाल, भात को वेदन किया नहीं। इसमें वेदन किया तो अपना ही भाव है। परन्तु वह अपना भाव वह राग और विकार और कषायवाला है। उसे इसने वेदन किया। उस रागवाली वेदना को पृथक् करने के लिये सम्यग्दृष्टि को वीतरागी स्वसंवेदन होता है, इसलिए स्वसंवेदन को वीतराग शब्द लागू करना पड़ा। ओहो ! कहो, सेठी ! यह तो पुराने व्यक्ति हैं, तो भी अभी इन्हें पूछना पड़ता है नया। समझ में आया ?

मुमुक्षु : राग के वेदन के समय...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का वेदन और राग का ही ज्ञान है, स्व का ज्ञान और स्व का वेदन नहीं। ठीक ! अनादि वस्तु तो भगवान पूर्णानन्द से भरपूर तत्त्व वस्तु पदार्थ आत्मा है। उसका स्व-ज्ञान और स्व का वेदन तो वीतरागी ज्ञान और वीतरागी वेदन होता है। परन्तु पुण्य-पाप के भाव का वेदन और उसका ज्ञान, वह तो राग का ज्ञान और राग का वेदन है। समझ में आया इसमें ? ऐई ! जमुभाई ! अब ऐसा सूक्ष्म। भीखाभाई ! आहाहा !

वस्तु है या नहीं ? एक गुड़ की इतनी बड़ी डली हो। समझ में आया ? तो गुड़

का स्वाद आवे, वह गुड़ की मिठास का आता है या नहीं? या गुड़ के ऊपर कोई धूल का दल बाहर आ गया जरा। यह नहीं डालते उसमें? गुड बाँधे न जरा (उसमें) काली धूल डाले, साबुन डाले और उसमें कोई साबुन का भाग और जरा धूल का भाग रह गया, उसका स्वाद वह कहीं गुड़ का स्वाद है? समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और अनाकुल आनन्द का स्वरूप, उसमें जितने विकार पुण्य-पाप के, राग-द्वेष के होते हैं, वह धूल और साबुन का कोई टुकड़ा रह जाये उसमें—गुड़ में, हों! थोड़ा-थोड़ा डाले न? वह स्वाद दूसरा हो जाये। इसी प्रकार चैतन्य का स्वाद स्व का ज्ञान और स्व का स्वाद, वह वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्वाद है। आहाहा! क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप ही है, वीतराग अर्थात् अकषायस्वभाव का घन आत्मा है। आहाहा! अकषायस्वभाव का पिण्ड आत्मा भगवान है। उस आत्मा का अन्दर ज्ञान और आत्मा का वेदन (हो), वह स्व ज्ञान और स्व का शान्ति का वेदन है। उसे वीतरागी वेदन कहा जाता है और यह विषय का वेदन राग का, भोग का, विकल्प का, मान, यह कीर्ति, इस ओर का राग, इस राग का वेदन यह है अपना वेदन, परन्तु वह स्वभाव का नहीं; विकार का वेदन है। समझ में आया? आहाहा! उसमें कोई लड्डू और दाल-भात और रुपये का वेदन नहीं। क्या होगा? मूलचन्दभाई! नहीं?

एक तो यह घी महँगा मिले पाँच सौ रुपये का, रुपये का पाँच सेर होगा? रुपये का पाँच सेर तो पहले था। पाँच रुपये का सेर। कहो, अब उसका स्वाद कैसा आता होगा? स्वाद घी का आता होगा? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से पूर्ण स्वरूप है। वह तो केवलज्ञान का, केवल—अकेले ज्ञान का और अकेले वीतरागी अविकारी स्वभाव का कन्द-पिण्ड वस्तु आत्मा है। अब वह स्वयं पर का विषय करे तो कुछ पर को वेदता नहीं। वेदन के समय राग करता है, द्वेष करता है, विकल्प (करता है), उसे उसकी पर्याय में, अवस्था में अनुभव करता है। परन्तु यह विकारी वेदन है, वह दुःखरूप है और वह संसार है, ऐसे रागवाले वेदन को भिन्न करने के लिये स्वसंवेदन को वीतरागी वेदन कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? ओहोहो!

विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है,...

देखा ? उसका जानपना तो होता है। इस राग का, द्वेष का, यह अमुक है। **परन्तु रागभावकर दूषित है,...** ज्ञान तो होता है न ? ज्ञान कहाँ चला जाये ? यह राग का ज्ञान, द्वेष का ज्ञान, पुण्य का ज्ञान, पाप का ज्ञान, भोग का, वासना का ज्ञान। **वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है, परन्तु रागभावकर दूषित हैं, इसलिए निजरस का स्वाद नहीं है,...** इससे भगवान आत्मा अकेला जैसे... यह कोल्हापुर का गुड़ नहीं होता ? क्या कहलाता है वह ? रवा... रवा बड़ा। उसमें आधे नम्बर का गुड़ आता है कुछ। बहुत ऊँचा कहते हैं। नहीं ? आधे नम्बर का न ? ऊँचा आता है। वह तुम गये थे न ? रत्नगिरी। वे सब साथ में घूमते थे न, उन्हें खबर है न ! सफेद वाचका जैसा ऐसा समझे न ? अधमण लिया था तो मोटर में चूहा खाने लगा। निकला नहीं उसमें से चूहा।

हाँ। वहाँ निकलकर पानी पी आवे। और वापस घुस जाये वहाँ गुड़ खाने। फिर फतेहपुर में निकाला। ऐसा ऊँचा सफेद (गुड़)। उसका स्वाद होगा न जीव को ? उसका ज्ञान है कि यह गुड़ है। यहाँ ज्ञान है परन्तु रागवाला ज्ञान है। समझ में आया ? ज्ञान में तो जो आवे उस वस्तु का ख्याल आवे या नहीं ? यह ज्ञान है, वह जानता है कि यह गुड़ है और उसमें राग होता है। उस राग का स्वाद लेता है, गुड़ का नहीं। ज्ञान वस्तु का है, स्वाद राग का है।

मुमुक्षु : गुड़....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका ? राग का गुड़ ऐसा कहाँ कहा ? गुड़ का ज्ञान कहा। यहाँ क्या कहा ?

उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है,... यह गुड़ है, यह दूधपाक है, यह स्त्री का माँस-शरीर है, ऐसा ज्ञान में आता है परन्तु उस ज्ञान में इकट्ठा राग है, विकार है, वह विकार दोषी का ज्ञान वह विकार का आस्वादन है। वह भले स्व का—अपने विकार का हो तो भी वह विकारवाला है। वह ज्ञान, ज्ञान नहीं कहलाता। जिसमें स्वज्ञान मिले नहीं और रागरहित हो नहीं, उसे ज्ञान नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कहो, नेमिदासभाई ! आहाहा ! कैसे होंगे यह पोरबन्दर के भैंस के घी कुरिया ? मीठा तो लगता होगा या नहीं ? कि नहीं। उस वस्तु का (ज्ञान होता है)। परन्तु यह क्या लिखा है ? इसमें देखो न ! यह वस्तु का ज्ञान है, ऐसा कहते हैं, देखो !

मुमुक्षु : जीव का ज्ञान है परन्तु मजा उसका है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मजा राग का है, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐई! धरमचन्दभाई! आहाहा! है न? भाई ने बहुत सरस लिखा है। है न पुस्तक हाथ में कितनों को? तुम्हारे है? तुम्हारे कहाँ से आया?

मुमुक्षु : पुस्तक हाथ में है परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह क्या कहते हैं, इतना ख्याल में तो... नहीं ख्याल उसकी अपेक्षा ख्याल में आवे, इतना अलग तो पड़े न? ऐई! क्या कहा? क्या कहा?

शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया कि प्रभु! आप स्वसंवेदन को वीतरागभाव, वीतराग विशेषण क्यों लगाया? वीतराग स्वसंवेदन क्यों कहा आपने? क्योंकि जो कोई वेदन हो, वह तो आत्मा का ही वेदन है। समझ में आया? यह राग (होता है, वह) कहीं पर का वेदन नहीं। चाहे जिस चीज़ के काल में खड़ा हो, भले उस चीज़ का ज्ञान यहाँ होता हो अपने सम्बन्धी, इस ज्ञान में वह ज्ञात हो, यह गुड़ है, यह स्त्री है, यह दूधपाक है, यह पूड़ी है, यह इज्जत कहते हैं, मेरी महिमा करते हैं। समझ में आया? इसके ज्ञान में आवे, परन्तु स्वाद उन महिमा के शब्दों का नहीं, स्वाद उस पूड़ी और दाल-भात का नहीं, स्वाद राग का है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? भगवानजीभाई! आहाहा!

कहते हैं, यह समझते वाँचते नहीं, उसके प्रयोग में तो यह बात कहाँ से हो? परन्तु यह क्या कहते हैं, इस प्रकार से समझते नहीं। चौथे गुणस्थान में शुभभाव और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा (हो), वह समकित, जाओ। और शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान। यहाँ तो कहते हैं कि पर विषय का ज्ञान, देव-गुरु और शास्त्र, ऐसा ज्ञान होता है। भाई! ऐई! परन्तु उसकी श्रद्धा करता है, तब राग है, वह राग का वेदन है, वह स्वसंवेदन वीतरागी वेदन नहीं।

हाँ, ऐसा कहते हैं। वस्तु ली है या नहीं?

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र भी आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु पर में ऐसे देव-गुरु-शास्त्र यह है, ऐसा ज्ञान में आता है।

परन्तु उसके प्रति वह श्रद्धा करता है, वह राग है। उस राग का वेदन है, आत्मा के स्व का वीतरागी वेदन नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो परसम्बन्धी का राग है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर आया वहाँ। गौशाला का मैं स्वामी हूँ वहाँ। और यह काका-काकी गाँव में कहलवाते हैं, हम बड़े सेठिया हैं। इन शब्दों का स्वाद तुझको नहीं है। समझ में आया? परन्तु यह बात ज्ञान में नहीं आती? ऐ... काका! ऐ... काका! करते-करते तुम्हारे घर में आवे। बेचारे घर में आवें, हों! अन्दर घुसे, अन्दर। वह पहले खड़े रहे दरवाजे के पास। इसलिए उनकी अनुकूलता देखे तो फिर अन्दर मुहल्ला में जाये। ऐ... काका! ऐ... काका! फिर ऐसा कहे, आओ, आओ। यह सब ज्ञान आता है या नहीं? ख्याल में आता है या नहीं? परन्तु ख्याल नहीं, वह राग है, उस राग का स्वाद है, उसकी महिमा का नहीं। नेमिदासभाई! बात उतारी है घर में ठीक न? आहाहा!

कहते हैं, भाई! वस्तु दो। एक स्वयं और एक दूसरी अनन्त वस्तुयें। देखो! अब अनन्त वस्तुओं में स्व स्वरूप का ज्ञान न करके परवस्तु की ओर के झुकाववाला ज्ञान, वह ज्ञान तो करता है कि यह शरीर है, यह वाणी है, यह देव है, यह प्रतिमा है, यह भगवान है, यह समवसरण है, यह है... यह है, यह पुत्र है, यह ज्ञान आता है, परन्तु उसके साथ राग आता है, परन्तु पर के लक्ष्य से राग हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु : राग में तो खो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : खो गया। यह क्या कहते हैं तुम्हारे काका?

मुमुक्षु : उसमें से मुझे वापस खींचकर निकालना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें नहीं खो गया, मुफ्त का मानता है—ऐसा कहते हैं। ऐई! देवानुप्रिया! यह लड़के कहते हैं कि यह काका ऐसा क्यों बोलते हैं? खो कहाँ गया? यह रहे। नहीं? आहाहा!

कहते हैं, भाई! वस्तुएँ दो। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर भगवान आत्मा पदार्थ, अनन्त गुण का पिण्ड चैतन्यरस का कन्द तथा एक ओर पूरी दुनिया।

फिर देव-गुरु-शास्त्र हो या स्त्री, कुटुम्ब, व्यापार, धन्धा कोई भी वस्तु सामने हो। यहाँ ऐसा कहना है कि भगवान आत्मा अपना स्वस्वभाव, उसका ज्ञान करके जो वेदन करे, वह रागरहित ज्ञान और रागरहित वेदन होता है। यह चौथे गुणस्थान की भूमिका है। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म की प्रथम भूमिका यह है कि जो भगवान आत्मा वस्तु अतीन्द्रिय शान्त अनाकुल आनन्द का पिण्ड, रवो पूरा, उसका ज्ञान, उसका लक्ष्य, उसका ध्येय करने से जो उसका ज्ञान होता है, उसमें अनन्तानुबन्धी का राग और मिथ्यात्व का अभाव होकर ही वह ज्ञान होता है। इतना विकाररहित वीतरागी ज्ञान (होता है), उसे यहाँ स्वसंवेदन ज्ञान, धर्म का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, मोक्ष के कारणरूप ज्ञान उसे कहा जाता है। समझ में आया?

यह वीतरागपना विशेषण इसलिए दिया कि जीव अपने स्वभाव का ज्ञान छोड़कर अपनी अरागी परिणति को छोड़कर; छोड़कर अर्थात् उत्पन्न नहीं करके, ऐसे भगवान आत्मा पर के लक्ष्य से कोई भी ज्ञेय हो, उसे जानने का कार्य उस समय में है, इसलिए करता है, जानता है। जानते हुए उसे राग, द्वेष, वासना, रति, अरति आदि का विकार का उसे वेदन है। वह वास्तविक स्वसंवेदन नहीं कहलाता। ऐसा वेदन तो अनादि से निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक बहिरात्मा गया, उसे ऐसा वेदन है। वह कहीं अपूर्व वेदन नहीं है, वह अपूर्व ज्ञान नहीं है। समझ में आया?

जो **कि विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है, परन्तु रागभावकर दूषित हैं, इसलिए निजरस का आस्वाद नहीं है,...** आहाहा! अरे! ऐसे मार्ग की सत्यता, प्रभु! इसे कान में पड़े नहीं, यह विचारने को कब प्रयत्न करे? और पर से हटकर उसका वेदन कब करे? उसे अध्धर से ही ऐसा का ऐसा मनवा ले (कि) यह माना, वह समकित। भाई! समकित की दूज उगी, उसे पूर्णिमा—केवलज्ञान होनेवाला है। ऐसी दूज बोधि-बीज है। इसलिए कहते हैं, **निजरस का आस्वाद नहीं है,...** अज्ञानी को पर के ज्ञान के काल में राग का वेदन है। उसे निज स्वभाव का आस्वाद और निज स्वभाव का ज्ञान नहीं है।

और वीतरागदशा में स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है,... देखो! परन्तु वीतराग

(अर्थात् कि) रागरहित जितने अंश में दशा हो, **स्वरूप का यथार्थ ज्ञान...** स्वरूप का यथार्थ ज्ञान अपना। **होता है, आकुलता रहित होता है।** समझ में आया? पश्चात् स्वरूप का, स्वरूप का ज्ञान हुआ, तब उसे वस्तु के पर स्वरूप का भी अन्दर ज्ञान यथार्थ हो गया। स्वस्वरूप ज्ञानानन्दस्वरूप का ज्ञान होने पर, रागरहित ज्ञान हुआ, इसलिए यह रागादि बाकी जो परवस्तु है, वह मुझमें नहीं, ऐसा ज्ञान भी उसके स्वरूप का भी यथार्थ (ज्ञान) उसमें आ गया। स्व-परप्रकाशक ज्ञान का सामर्थ्य इतना खिल गया। समझ में आया?

वीतरागदशा में... वीतरागदशा अर्थात् चौथे से लेकर, हों! **स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है, आकुलता रहित होता है। तथा स्वसंवेदनज्ञान प्रथम...** अब यह, अब यह। स्वसंवेदनज्ञान पहली दशा में, पहली दशा में—शुरुआत में, **चौथे पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ के भी होता है,...** समझ में आया? यह स्वसंवेदनज्ञान पहली दशा में शुरुआत में समकिती और पाँचवें गुणस्थान में गृहस्थ को भी होता है। देखो! मुनिपने के अतिरिक्त दो यह लिये। कोई कहे कि, मुनि को ही ऐसा होता है, (तो ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : यह तो मुनि को इनकार करते हैं। आठवें गुणस्थान....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आठवें में... अरे! भगवान! क्या करता है? पूरा वीतरागमार्ग उथल-पुथल कर दिया है। अरे! इसकी पद्धति की प्रणालिका की प्ररूपणा बदल डाली। वस्तु तो उसकी बदल गयी है अन्दर। समझ में आया?

यह आत्मा चौथे, पाँचवें गुणस्थान में (हो), **ऐसा स्वसंवेदन गृहस्थ के भी होता है,...** यह चक्रवर्ती का राज हो, बलदेव का राज हो, इन्द्रपद का पद हो, उसमें भी जिसे जो चौथा, पाँचवाँ (गुणस्थान) हो, उसे भी यह स्वसंवेदनज्ञान होता है। **वहाँ पर सराग देखने में आता है,...** अब क्या कहते हैं? चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) भी अभी राग देखने में आता है। चौथे में तीन कषाय, पाँचवें में दो कषाय—राग (होता है)। उस राग का निषेध करने को वहाँ वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान कहा जाता है।

फिर से। **स्वसंवेदनज्ञान प्रथम अवस्था में चौथे-पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ**

के भी होता है, वहाँ पर सराग,... वहाँ पर, हों! वहाँ भी। बहिरात्मा के वेदन में तो राग है ही, वह तो मात्र राग का वेदन है, परन्तु चौथे-पाँचवें में भी राग है, अभी दिखता है। **देखने में आता है,...** देखने में आता है। समझ में आया? **इसलिए रागसहित अवस्था के निषेध के लिये...** यह चौथे, पाँचवें में भी राग दिखता है, तथापि उस राग के निषेध के लिये वीतरागी स्वसंवेदन कहा गया है। समझ में आया?

एक तो विषय के आस्वाद का राग ज्ञान, वह वीतरागी नहीं, रागवाला है, इसलिए उसका निषेध करने के लिये वीतराग विशेषण कहा और दूसरा चौथे, पाँचवें में अभी राग दिखता है। वह राग दिखता है, वह स्वसंवेदन नहीं, उसका ज्ञान है; परन्तु उससे रहित जितना स्व का ज्ञान होकर रागरहित वेदन (होता है), उसे स्वसंवेदन वीतराग वेदन कहने में आता है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? शब्द भी कैसे! देखो न! **स्वसंवेदनज्ञान वहाँ पर सराग देखने में आता है,...** राग है, राग का ज्ञान भी है। परन्तु उस राग का निषेध करने के लिये स्व का ज्ञान (होकर), रागरहित जितना वेदन हुआ, उसे वीतरागी स्वसंवेदन कहा जाता है। आहाहा! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ नहीं, बड़ा बादशाह है। चैतन्य का बादशाह स्वयं। मूढ़ कैसे कहा जाये इसे? मान बैठे, उसे क्या करना? समझ में आया?

चैतन्य का सूर्य जगमगाता हजार किरणें सूर्य उदित हो। यह तो अनन्त किरणों से खिला हुआ चैतन्य अन्दर स्थित है। ऐसा भगवान आत्मा चौथे, पाँचवें गुणस्थान में भी स्व का ज्ञान करके रागरहित जितनी दशा हुई है, वह वीतरागी स्वसंवेदन बताने को, उसे राग होता है, उसका निषेध करने को, वीतराग स्वसंवेदन कहा जाता है। समझ में आया?

दो प्रकार कहे। वीतराग विशेषण क्यों कहा? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया, इसके दो उत्तर दिये। एक तो पर का ज्ञान करके रागवाला वेदन (होता है), उसका निषेध करने के लिये यह कहा है। दूसरा, अपने स्वसंवेदन में भी अभी राग बाकी है। उस स्वसंवेदन काल के समय राग दिखता है। उस राग के निषेध के लिये स्वसंवेदन का

ज्ञान जितना रागरहित हुआ, वह वीतरागी ज्ञान है, ऐसा बतलाने के लिये 'वीतराग' विशेषण कहा गया है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ?

यह तो शशीभाई कहते थे, बाल के बीच-बीच में की बात चलती थी न अभी तक। परसों आये थे। परन्तु यह तो कहे, बाल-बाल में (तेल डाला जाता है)। बहुत दिमागवाला व्यक्ति है, हों! शशीभाई परसों आये थे, बहुत प्रसन्न होकर। ओहोहो! वह सवेरे तीज का व्याख्यान सुना न! यह तो बाल के बीच में तेल डालते हैं, ऐसा लोग कहते हैं। परन्तु वह तो बाल-बाल में (तेल डाला जाता है)। परन्तु जिसे बाल हो, उसे खबर पड़े या नहीं ? बाल बिना का सिर होता है। खबर है या नहीं ? उसे क्या कहा जाता है ? गंजा। है न यह एक मनसुखभाई का पुत्र, नहीं ? मनसुखभाई का बड़ा पुत्र गंजा। मनसुखभाई का पुत्र। मनसुख ताराचन्द, नहीं ? डॉक्टर। गुजर गये न ? उनके तीसरे नम्बर के लड़के को पहले से बाल नहीं, जन्म से नहीं, बाल ही नहीं। यहाँ एक बार आया था। दरवाजे के पास खड़ा था। भावनगर विवाह में आया था। मनसुख ताराचन्द, करोड़पति। तीसरे नम्बर का पुत्र। विवाह हो गया। पैसे है या नहीं ? वह है न!

इसी प्रकार आत्मा की अनन्त लक्ष्मी अन्दर पड़ी है, उसकी लगन लगे, उसे परमात्मा मिले बिना रहते नहीं। समझ में आया ? उसे राग-बाग होता नहीं। वह नहीं। राग बिना का ज्ञान बताने को वीतराग विशेषण कहा है। पाठ में तो '**अन्तरात्मलक्षण-वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन**' इतने शब्द हैं। यह उसका यह है न ? अन्तिम लाईन। आहाहा! पहले के गृहस्थ भी ऐसे थे। समझ में आया ? यह पण्डित है। (अभी तो) बहुत बदल गया।

ओहो! भगवान आत्मा पूरा पूर्णानन्द का नाथ! पूर्ण... पूर्ण अनन्त-अनन्त सुख का सागर प्रभु आत्मा है। अकेला गुड़ का रवा जहाँ चीरो वहाँ गुड़ ही निकले। उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और शान्तरस का (पिण्ड है)। जहाँ नजर डालो वहाँ उसकी शान्ति और ज्ञान ही उसका होता है। समझ में आया ? चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) राग देखने में आता है। समझ में आया ? इस राग के निषेध के लिये **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान, ऐसा कहा है।** कहो, बराबर है ?

रागभाव है, वह कषायरूप है, इस कारण जबतक मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबन्धी कषाय है, तबतक तो बहिरात्मा है,... यहाँ तक तो अकेले राग और विकार का ही ज्ञान और विकार का वेदन है। समझ में आया? अथवा परपदार्थ का ज्ञान और विकार का वेदन है। उसे तो आत्मा का ज्ञान और आत्मा का वेदन जरा भी नहीं। समझ में आया? **उसके तो स्वसंवेदन ज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान सर्वथा ही नहीं है,...** किसे? जिसकी दृष्टि अकेले परपदार्थ की मान्यता पर है, उसे कषाय अनन्तानुबन्धी सहित है, उसे तो सम्यग्ज्ञान का एक भी अंश नहीं। ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा परन्तु सम्यग्ज्ञान नहीं। समझ में आया? ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा (परन्तु वह) सम्यग्ज्ञान नहीं, वह सम्यग्ज्ञान का लक्षण नहीं।

और चतुर्थ गुणस्थान में (अविरति) सम्यग्दृष्टि के... अब उन दो में चौथे गुणस्थान की बात लेते हैं। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि अविरति को **मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी के अभाव होने से सम्यग्ज्ञान तो हो गया,...** आत्मा का सम्यग्ज्ञान सच्चा ज्ञान हो गया। स्व-विषय ज्ञान में बनाकर और आत्मा कौन है, उसका ज्ञान हुआ। **परन्तु कषाय की तीन चौकड़ी बाकी रहने से...** कषाय की तीन चौकड़ी अभी राग में बाकी है। राग तीन प्रकार का बाकी है—अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन। **बाकी रहने से द्वितीया के चन्द्रमा के समान विशेष प्रकाश नहीं होता...** इसका अर्थ यह कि उसे द्वितीया के चन्द्रमा जैसा प्रकाश है, परन्तु उससे विशेष नहीं है। शब्द तो ऐसे हैं जानो। **द्वितीया के चन्द्रमा के समान विशेष प्रकाश नहीं...** अर्थात् कि दूज का चन्द्र बहुत प्रकाशवाला नहीं, ऐसा उसका प्रकाश है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दूज तुरन्त अस्त हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अस्त-फस्त की बात नहीं है। दूज अस्त होकर तीज उगती है, तीज अस्त होकर चौथ उगती है। उगती है, वह यहाँ लेने की बात है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि अविरति होने पर भी उसे आत्मा का सच्चा ज्ञान अन्तर्मुख का होता है। उसे इतने अंश में वीतराग ज्ञान कहा जाता है परन्तु

उसे तीन (प्रकार का) राग (बाकी) है, इसलिए दूज के चन्द्रमा का जो प्रकाश है, उतना प्रकाश है। इससे अधिक प्रकाश वीतरागी विज्ञान का प्रकाश, वीतरागी की जो प्रकाश की शान्त पूर्ण विशेष चाहिए, वह नहीं है। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं कि, पहले गुणस्थान में तो कुछ सच्चा ज्ञान भी नहीं और कुछ वीतरागी अंश भी नहीं। वह तो अत्यन्त राग और कषाय का वेदन और पर का ज्ञान है। अब चौथे (गुणस्थान) में स्व का ज्ञान और अन्दर द्वितीया के चन्द्रमा जितना वीतरागी प्रकाश है। राग बिना के ज्ञान का (वेदन है)। पूर्ण वीतरागी आत्मा जो है, ऐसे आत्मा का राग के अंश बिना अनन्तानुबन्धी के अभाववाला, इतने राग बिना का ज्ञान और इतना उसका वीतरागी वेदन होता है। परन्तु दूज के चन्द्रमा का प्रकाश जैसे थोड़ा है, ऐसा उसे प्रकाश वीतरागी विज्ञान का थोड़ा है। विशेष पाँचवें, छठवें में चाहिए, ऐसा यहाँ नहीं है। समझ में आया? आहाहा! **और श्रावक के...** यह श्रावक। लो! भगवानजीभाई! यह श्रावक कहलाये अब। यह सब अभी तक श्रावक थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं वह।

श्रावक को अर्थात् कि पाँचवें गुणस्थानवाले को। क्यों पाँचवें गुणस्थान में क्या आया विशेष? कि **दो चौकड़ी का अभाव है,...** दूसरा अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय का भी पाँचवें गुणस्थान में, दर्शन प्रतिमा, पहली प्रतिमावाले को, उसका अभाव है। समझ में आया? क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार। अनन्तानुबन्धी, प्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय (संज्वलन) कषाय। **तीन चौकड़ी बाकी...** क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार। अप्रत्याख्यानावरणीय की बाकी चौथे में, प्रत्याख्यानावरणीय की बाकी, संज्वलन की बाकी है। पाँचवें गुणस्थान में दो (कषाय चौकड़ी) बाकी है। प्रत्याख्यान और संज्वलन के दो भाग बाकी हैं। दोनों। क्रोध, मान, माया, लोभ चारों के। दो के चार-चार। यह कहेंगे चौकड़ी और क्या वापस? मुफ्त में चला जाये नहीं।

श्रावक को पाँचवें गुणस्थान में दो चौकड़ी का अभाव है। अर्थात्? आत्मा का अन्तर स्वसंवेदनज्ञान का प्रकाश दो प्रकार के कषाय के अभाववाला वीतरागी प्रकाश

उसे हुआ है। चौथे गुणस्थानवाले की अपेक्षा उसका वीतरागभाव बढ़ गया है। चौथे गुणस्थानवाले की अपेक्षा पाँचवें गुणस्थान का वीतरागभाव (बढ़ गया है)। उसके एक कषाय, मिथ्यात्व का अभाव था, इसके दो कषाय का अभाव है। इतना वीतरागभाव बढ़ गया है। परन्तु दो चौकड़ी का अभाव है। **इसलिए रागभाव कुछ कम हुआ,...** समझ में आया? चौथेवाले की अपेक्षा उसका राग कुछ कम हुआ है। **वीतरागभाव बढ़ गया,...** देखो! वीतरागभाव चौथे (गुणस्थान में) तो है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रत्याख्यानावरणी... तुमको भी कहाँ कुछ खबर नहीं होती और क्या कहना तुमको? चार प्रकार के कषाय हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ और चार प्रकार हैं—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय, संज्वलन। कभी मजदूरी के कारण किया कब है यह निवृत्ति से? सच्ची बात है या नहीं? भाई! यह तुम्हारे भतीजे को पूछना है।

यह कषाय है। उसमें चौथे गुणस्थान में (क्रोध, मान, माया, लोभ की एक चौकड़ी का अभाव होता है)। पहले गुणस्थान में मिथ्याश्रद्धा—मिथ्यात्व और चार कषायें हैं। चार अर्थात्? अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय और संज्वलन। तथा एक-एक के वापस चार—क्रोध, मान, माया और लोभ। ऐसे सोलह प्रकार होते हैं। तब चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी की एक चौकड़ी गयी। अर्थात् उसके चार क्रोध, मान, माया, लोभ गये। इतना वीतरागभाव प्रगट हुआ। पाँचवें में अप्रत्याख्यानावरणीय की दूसरी चौकड़ी गयी। इसलिए दूसरे प्रकार के क्रोध, मान, माया, लोभ का अभाव हुआ, उतना वीतरागभाव पाँचवें गुणस्थान में बढ़ गया। आहाहा! समझ में आया इसमें?

रागभाव कुछ कम हुआ,... किससे कम हुआ? चौथे गुणस्थान से। सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अकेला जो पर विषय का ज्ञान और राग था, वह अकेला था, वह छूट गया। मिथ्यात्व छूटकर स्व का ज्ञान सम्यक् में हुआ, अनन्तानुबन्धी छूटकर स्वरूप के आचरण की स्थिरता हुई, इतना रागरहित भाव हुआ। पाँचवें गुणस्थान

में उससे अधिक वीतरागभाव बढ़ा, रागभाव घटा। देखो! यह पाँचवें गुणस्थान की पदवी! आहाहा! यह तो... ऐई! मोतीरामजी!

मुमुक्षु : प्रतिमा आयी कितने में?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिमा आयी पाँचवें में। परन्तु पाँचवें में वीतरागभाव बढ़े और वह विकल्प रहे, वह दो कषाय का विकल्प है। समझ में आया? जितना दो कषाय टलकर वीतरागभाव बढ़ा, उसे पाँचवाँ गुणस्थान कहा जाता है। आहाहा!

वीतरागमार्ग की... श्रीमद् कहते हैं न? कथनी घिस गयी। वीतरागभाव जो है, वह धर्म है। शुरुआत से वीतरागभाव वह धर्म, यह कथनी घिस गयी, ऐसा उन्होंने लिखा है। भाव तो नहीं परन्तु कथनी—प्ररूपणा घिस गयी है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ प्रभु, महा पदार्थ महा प्रभु का विषय करके ध्येय में लेकर एक कषाय और मिथ्यात्व का नाश हुआ, उतना तो वीतरागी अंश रहा, हुआ। तीन भले रह गये। पाँचवें (गुणस्थान में) दो कषाय गयी, उतना वीतरागभाव बढ़ गया, रागभाव घट गया। (चौथे में) वह तीन था, यह दो रह गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : बाहर में कुछ प्राप्ति है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में क्या दिखे? बाहर में पशु हो, मगरमच्छ हो। अन्दर में पाँचवाँ गुणस्थान होता है। बाहर में बड़ा राजा हो और मिथ्यादृष्टि हो, साधु हो और ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा हुआ हो और मिथ्यादृष्टि हो। बाहर की नहीं, अन्तर की वस्तु है। समझ में आया?

इस कारण स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ,... अपने को पकड़ने का ज्ञान भी वीतरागी विशेष हुआ न? ज्ञान तो था, परन्तु रागरहित हुआ, वह पकड़ने का विशेष (हुआ)। **स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ,...** ऐसा कहा, भाई! समझ में आया? वह राग इतना घटा है न, उतना स्व विषय को पकड़ने में बढ़ा है ऐसे। पकड़ने में बढ़ा है, ऐसे अन्दर। कहो, समझ में आया? इस अपेक्षा से, हों! उस स्व की लब्धि का उघाड़ इतना बढ़ा। रागरहित हुआ, वहाँ इतना पकड़ने में उसे प्रबलपना हुआ।

परन्तु दो चौकड़ी के रहने से मुनि के समान प्रकाश नहीं हुआ। मुनि को जो

प्रकाश चाहिए, वीतरागी स्वसंवेदन प्रकाश की बात है, हों! तीन कषाय के अभाव से ही मुनि को वीतरागी पर्याय से आत्मा का जो वेदन है, ऐसा वेदन श्रावक को नहीं। **मुनि के तीन चौकड़ी का अभाव है, इसलिए रागभाव तो निर्बल हो गया,...** मुनि हैं, उन्हें तीन चौकड़ी का अभाव है और राग तो बलरहित हो गया। परन्तु है सही। **वीतरागभाव प्रबल हुआ,...** उसको **स्वसंवेदन भी प्रबल हुआ...** कहा था न? इसे वीतरागभाव भी प्रबल, विशेष हो गया।

नहीं, फिर प्रबल हुआ कहा है न? वीतराग (भाव) बढ़ गया और स्वसंवेदन प्रबल हुआ, वह भी कहा था। पाँचवें में। **स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ, परन्तु दो चौकड़ी के रहने से मुनि के समान प्रकाश नहीं हुआ...** ऐसा यहाँ वापस वीतरागभाव प्रबल हुआ। छठवें में तीन कषाय का नाश करके स्वभाव का आश्रय इतना लिया है, इतना वीतरागभाव बढ़ गया है। समझ में आया? ऐसी बातें तो कभी सुनने को मिलती होगी। नहीं? छह काय की दया पालो, व्रत पालो, यह करो, वह करो। लो! परन्तु अब उसमें क्या करने का है? जो क्रिया वास्तविक क्या है, उसका भान ही नहीं होता और यह करो और यह करो। वह तो कर्ताबुद्धि—बहिरात्मबुद्धि है अनादि से। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा को वीतरागी प्रकाश पूरा प्रगट हुआ, तो चौथे से उसमें का वीतरागी विज्ञान प्रगट हुए बिना चौथा कैसे कहलाये? पाँचवें में वीतराग विज्ञान बढ़ गया, छठवें में वीतरागभाव प्रबल हुआ। ओहो! तीन कषाय का अभाव स्वरूप को पकड़ने को वीतरागता एकदम प्रबल हुई। **वहाँ पर स्वसंवेदनज्ञान का अधिक प्रकाश हुआ,...** देखो! **वीतरागभाव प्रबल हुआ...** उसमें **वीतरागभाव बढ़ गया...** कहा था। चौथे से पाँचवें में। यहाँ **स्वसंवेदनज्ञान का अधिक प्रकाश हुआ,...** वीतरागभाव प्रबल हुआ। **परन्तु चौथी चौकड़ी बाकी है,...** संज्वलन चौथा कषाय है न? चौकड़ी अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ। एक-एक को वापस चार-चार।

इसलिए छट्ठे गुणस्थानवाले मुनिराज सरागसंयमी हैं। देखो! वह राग बाकी है न? इस अपेक्षा से उसे सरागसंयमी कहा है। बाकी तो तीन कषाय का अभाव वीतराग परिणति अन्दर है। आहाहा! यहाँ तो छठवें की बात अभी लेते हैं न? **वीतरागसंयमी के**

जैसा प्रकाश नहीं है। देखो! जैसा रागरहित प्रकाश है, उतना छठवें में नहीं है। क्योंकि अभी राग बाकी है। समझ में आया? छठवें गुणस्थान में मुनि को पंच महाव्रत आदि के विकल्प, राग बाकी है; इसलिए उसे सरागसंयमी कहा जाता है। वह वीतराग संयमी जैसा प्रकाश नहीं है। ऐसा प्रकाश नहीं परन्तु वीतरागी प्रकाश बिल्कुल नहीं, ऐसा नहीं है। जैसा रागरहित अन्दर चैतन्य को प्रकाश, प्रकाश को वीतरागता से पकड़े आगे गुणस्थान में, ऐसा प्रकाश छठवें गुणस्थान में नहीं है। वापस इसका अर्थ (ऐसा करे) कि, वे वीतरागी जैसे हैं, ऐसा इसे नहीं है, इसलिए बिल्कुल वीतरागी ही नहीं (ऐसा नहीं)। तब तो चौथे से यहाँ बात ली है। वह गृहस्थ का है।

परन्तु यह कहेंगे न! अन्तरआत्मलक्षण वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान। इसका अर्थ कि चौथे से बारह (गुणस्थान)। यह तो इसमें पाठ है। व्याख्यान में चौथे से बारह, इस शब्द में से निकलकर स्पष्टीकरण किया है। यों ही नहीं किया है। समझ में आया?

वीतरागसंयमी के जैसा प्रकाश नहीं है। मुनि छठवें गुणस्थानवाले, हों! अन्दर स्व-विषय का ज्ञान है और तीन कषाय के अभाववाला वीतरागी प्रकाश प्रगट हुआ है। परन्तु जैसा ऊपर के गुणस्थान में वीतरागी प्रकाश संयमी को है, वैसा यहाँ नहीं। **सातवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी मन्द हो जाती है,...** मन्द, अब कहते हैं। उसमें छठवें में अभी पूरी थी। सातवें में मन्द हो जाती है। सातवें गुणस्थान में संज्वलन, जो चौथी कषाय, उसके चार भाग होते हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ हैं, वे मन्द हो जाते हैं। **वहाँ पर आहार-विहार क्रिया नहीं होती,...** सातवें गुणस्थान में आहार-विहार का विकल्प नहीं, ऐसा कहते हैं। क्रिया तो जड़ की नहीं परन्तु उसे विकल्प नहीं। छठवें में हो, वह सातवें में नहीं होता। ओहोहो! **ध्यान में आरूढ़ रहते हैं,...** इतनी तो अन्दर एकाग्रता हो गई है कि उसे आहार-पानी का विकल्प नहीं होता।

सातवें से छठे गुणस्थान में आवे, तब वहाँ पर आहारादि क्रिया है,... सातवें से छठवें में आवे, तब उसे आहार के विकल्प का राग होता है। वह सातवें में मन्द था, वह यहाँ तीव्र है। समझ में आया? मन्द कहा था न वहाँ? मन्द है। यहाँ छठवें में तीव्र है। इतना आहार का, पानी का, विहार का-चलने का विकल्प है। **इसी प्रकार छठा-सातवाँ**

करते रहते हैं,... इसी प्रकार छठवें-सातवें में करते रहते हैं, लो! मुनि उसे कहते हैं। छठवाँ-सातवाँ... छठवाँ-सातवाँ... छठवाँ-सातवाँ हजारों बार झूला करते हैं। छठवें में हों तब तीन कषाय के अभाव का और चौथे कषाय के उदय का। सातवें में हो तब तीन कषाय के अभाव के साथ संज्वलन के मन्दता का, इतना मन्दता का राग घटकर वीतरागता बढ़ गयी है। सातवें में कषाय की मन्दता है, इसलिए वीतरागता बढ़ गयी है। इसलिए वहाँ आहार और पानी लेने का विकल्प उसे नहीं है। नीचे उतरे तो और वापस राग तीव्र होता है, तब तीन कषाय का अभाव है परन्तु कषाय की तीव्रता, संज्वलन की तीव्रता है, संज्वलन की तीव्रता है, है उसकी मन्दता सातवें में थी, उसकी तीव्रता है। समझ में आया? गजब बात की है, भाई! **वहाँ पर अन्तर्मुहूर्तकाल है।** लो! समझ में आया? सातवें गुणस्थान में भी अन्तर्मुहूर्त ही काल रहते हैं। थोड़े काल रहते हैं, हों! यह छठवें-सातवें में होकर....

यह मुहूर्त के अन्दर। मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी का मुहूर्त। उसके अन्दर। उसके बहुत भंग, बहुत भंग हैं। यहाँ तो अन्तर्मुहूर्त शब्द रखा है। मुहूर्त दो घड़ी का एक कहलाता है न? दो घड़ी का मुहूर्त। उसके अन्दर, अन्दर में बहुत भाग फिर छोटा... छोटा... छोटा... यहाँ तो सातवें गुणस्थान की बात लेनी है।

आठवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी अत्यन्त मन्द हो जाती है,... सातवें में मन्द थी, आठवें गुणस्थान में अत्यन्त मन्द हो जाती है। **वहाँ रागभाव की अत्यन्त क्षीणता होती है,...** रागभाव आठवें में बहुत क्षीण हो जाता है। **वीतरागभाव पुष्ट होता है,...** लो! आठवें में वीतरागभाव पुष्ट होता है। वीतरागभाव पुष्ट होता है, वीतरागभाव ही अकेला आया, ऐसा नहीं। समझ में आया? आठवें में वीतरागता है और नीचे अकेली सरागता है, ऐसा नहीं। वीतराग तब आठवें में आवे। नीचे तो सब सराग ही है। यहाँ तो कहते हैं कि वीतरागभाव जितना सातवें में था, उससे आठवें में अधिक पुष्टता को प्राप्त होता है। बस, इतनी बात है। संज्वलन का अत्यन्त मन्द भाव हुआ था... स्वभाव सन्मुख वीतरागी ज्ञान को... है तो वह ध्यान में। आठवें वाला तो ध्यान में होता है। परन्तु वीतरागभाव वहाँ विशेष पुष्ट हुआ है। शुद्ध की स्थिति की धारा बढ़ी है। उसे श्रेणी कहा जाता है।

स्वसंवेदनज्ञान का विशेष प्रकाश होता है,... लो! स्वसंवेदन अर्थात् अपने को पकड़ने के वेदने का विशेष प्रकाश। यहाँ बारह अंग का और ग्यारह अंग का ज्ञान विशेष उघड़ गया है, ऐसी यहाँ बात नहीं लेना है। **स्वसंवेदनज्ञान का विशेष प्रकाश होता है,...** ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा को अन्दर पकड़ने की एकाग्रता हुई है, उसमें बहुत निर्मलता बढ़ गयी है। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो चौथे से लेकर बारह तक ले जायेंगे। अन्तरात्मा की व्याख्या करते हैं न यह? कहो, इसीलिए तो कहते हैं, '**अन्तरात्मलक्षण-वीतरागनिर्विकल्प-स्वसंवेदनज्ञानेन।**' अन्तरात्मा की व्याख्या की है। चौथे में वीतरागी निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान, पाँचवें में वीतरागी निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान करते-करते बारहवें तक पूरा होता है। फिर उसका फल है केवलज्ञान।

श्रेणी माँडने से शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। लो! इस आठवें से शुद्धता की वृद्धि हुई, इसलिए शुक्लध्यान—आत्मा का उज्ज्वल ध्यान (होता है)। राग बहुत घट गया, इसलिए निर्मल पर्याय द्रव्य में एकाकार हुई। **श्रेणी के दो भेद हैं,...** इस शुद्धता की श्रेणी के दो प्रकार। **एक क्षपक, दूसरी उपशम,...** एक क्षय करता हुआ स्थिरता पावे, एक उपशम करता हुआ स्थिरता पावे। **क्षपकश्रेणीवाले तो उसी भव में केवलज्ञान पाकर मुक्त हो जाते हैं,...** लो! आठवें से जो क्षपक है, स्वरूप की स्थिरता बिल्कुल क्षायिकभाव से शुरु हुई है, वह तो उसी भव में केवलज्ञान होकर मुक्त हो जाते हैं। समझ में आया?

और उपशमवाले आठवें, नवमें, दसवें से ग्यारहवाँ स्पर्शकर... उपशमवाला जो आठवें में जाये, उपशमश्रेणी स्थिर होकर, किसी को क्षायिक समकित भी हो और किसी को उपशम हो। समझ में आया? वह **आठवें, नवमें, दसवें से ग्यारहवाँ स्पर्शकर...** वह ग्यारहवें में जाये। **पीछे पड़ जाते हैं,...** उपशमवाले की अवधि इतनी। वापस गिर जाये। **सो कुछ एक भव भी धारण करते हैं, तथा...** सो कुछेक भव। सो कुछ अर्थात् कितने ही। सो कुछ अर्थात् कितने ही भव धारण करे, ऐसा। कौन? उपशमवाला।

तथा क्षपकवाले आठवें से नवमें गुणस्थान में प्राप्त होते हैं,... क्षपक शुद्धता की उग्रता बढ़ी है, वह तो आठवें से नौवें में और वहाँ से (पूर्णता पाता है)। **वहाँ कषायों**

का सर्वथा नाश होता है,... गुणस्थान में प्राप्त होते हैं, वहाँ कषायों का सर्वथा नाश होता है, एक संज्वलनलोभ रह जाता है, अन्य सबका अभाव होने से वीतरागभाव अति प्रबल हो जाता है,... नवमें, नवमीं भूमिका—गुणस्थान। **इसलिए स्वसंवेदनज्ञान का बहुत ज्यादा प्रकाश होता है,...** स्वसंवेदन ज्ञान का बहुत अधिक प्रकाश होता है। वह वीतरागता बढ़ी, उतना प्रकाश बढ़ा, ऐसा। **परन्तु एक संज्वलनलोभ बाकी रहने से वहाँ सरागचारित्र ही कहा जाता है।** देखो! उसको सरागसंयमी कहा, यहाँ सरागचारित्र कहने में आता है। रागसहित है न थोड़ा। **दसवें गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ भी नहीं रहता,...** सूक्ष्म लोभ रहता है परन्तु अन्त में नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। **तब मोह की अट्ठाईस प्रकृतियों के नष्ट हो जाने से वीतरागचारित्र की सिद्धि हो जाती है।** दसवें में थोड़ा लोभ रहता है।

दसवें से बारहवें में जाते हैं, ग्यारहवें गुणस्थान का स्पर्श नहीं करते,... कौन? क्षपकवाले। **वहाँ निर्मोह वीतरागी के शुक्लध्यान का दूसरा पाया (भेद) प्रगट होता है, यथाख्यातचारित्र हो जाता है। बारहवें के अन्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय इन तीनों का विनाश कर डाला,...** विनाश कर डाला। देखा? विनाश हो जाता है। **मोह का नाश पहले ही हो चुका था,...** मोह का नाश तो पहले हुआ था। **तब चारों घातिकर्मों के नष्ट हो जाने से तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान प्रगट होता है,...** वर्तमान वह वस्तु नहीं, इसलिए बहुत संक्षिप्त करके वर्णन किया है। चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें का स्पष्टीकरण अधिक है। **वहाँ पर ही शुद्ध परमात्मा होता है,...** वहाँ पूर्ण परमात्मा तेरहवें गुणस्थान में होते हैं। **अर्थात् उसके ज्ञान का पूर्ण प्रकाश हो जाता है, निःकषाय है।**

अब यह अन्तिम शब्द था न? कि '**अन्तरात्मलक्षणवीतरागनिर्विकल्प-स्वसंवेदनज्ञानेन**' अथवा पाठ क्या था? देखो! '**मुणि सण्णाणेँ णाणमउ जो परमप्प-सहाउ**' '**सण्णाणेँ**' शब्द पड़ा है न? '**सण्णाणेँ**' का अर्थ '**स्वज्ञानेन**' किया है, हों! '**स्वज्ञानेन**' किया है। संस्कृत। वह '**सण्णाणेँ**' शब्द है न? उसका '**स्वज्ञानेन**' ऐसा (पाठ) किया है। उसकी यह व्याख्या है, यह '**सण्णाणेँ**' शब्द की यह सब व्याख्या है। उसकी टीका यह है '**अन्तरात्मलक्षणवीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन जानीहि**' '**मन्यस्व**' है न? यह। उसकी यह व्याख्या की इतनी सब, लो!

चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक तो अन्तरात्मा है,... यह सब बारहवें तक अन्तरात्मा की व्याख्या की है। स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान। **उसके गुणस्थान प्रति चढ़ती हुई शुद्धता है,...** पाँचवें में शुद्धता बढ़ी, छठवें गुणस्थान, गुणस्थान बढ़ती जाती है। **और पूर्ण शुद्धता परमात्मा के है,...** लो! केवली को पूरा हुआ। **यह सारांश समझना।** अन्तरात्मा की व्याख्या बहुत सरस हुई। चौथे से बारहवें तक पाठ में '**सण्णाणें मन्यस्व**' '**सण्णाणें मन्यस्व**' अन्तरात्मा की यह सब व्याख्या टीका में संक्षिप्त करके, इसका ही विस्तार यह किया हुआ है। घर का कुछ नहीं है, हों! ऐसा कहते हैं, घर का डाला है। पाठ में है, '**मुणि सण्णाणें णाणमउ**' है न! और ज्ञानमय का अर्थ ही पाठ में किया '**ज्ञानमयं केवलज्ञानेन निर्वृत्तमिति**' अकेला आत्मा। उसका वेदन शुरु होकर चौथे और बारहवें में अन्तरात्मा का पूरा हुआ। अन्तरात्मा की अपेक्षा से पूरा, पूर्ण प्रकाश तेरहवें में पूरा हुआ है। ऐसी स्थिति को अन्तरात्मा कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३

अथ त्रिविधात्मसंज्ञा बहिरात्मलक्षणं च कथयति -

१३) मूढु वियक्खणु बंभु परु अप्पा ति-विहु हवेइ।
देहु जि अप्पा जो मुणइ सो जणु मूढु हवेइ।।१३।।

मूढो विचक्षणो ब्रह्म परः आत्मा त्रिविधो भवति।
देहमेव आत्मानं यो मनुते स जनो मूढो भवति।।१३।।

मूढु वियक्खणु बंभु परु अप्पा तिविहु हवेइ मूढो मिथ्यात्वरागादिपरिणतो बहिरात्मा, विचक्षणो वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानपरिणतोऽन्तरात्मा, ब्रह्म शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा। शुद्धबुद्धस्वभावलक्षणं कथ्यतेशुद्धो रागादिरहितो बुद्धोऽनन्तज्ञानादिचतुष्टयसहित इति शुद्धबुद्धस्वभावलक्षणं सर्वत्र ज्ञातव्यम्। स च कथंभूतः ब्रह्म। परमो भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्म-रहितः। एवमात्मा त्रिविधो भवति। देहु जि अप्पा जो मुणइ सो जणु मूढु हवेइ वीतरागनिर्विकल्प-समाधिसंजातसदानन्दैकसुखामृतस्वभावमलभमानः सन् देहमेवात्मानं यो मनुते जानाति स जनो लोको मूढात्मा भवति इति। अत्र बहिरात्मा हेयस्तदपेक्षया यद्यप्यन्तरात्मोपादेयस्तथापि सर्वप्रकारोपादेयभूतपरमात्मापेक्षया स हेय इति तात्पर्यार्थः।।१३।।

तीन प्रकार के आत्मा के भेद हैं, उनमें से प्रथम बहिरात्मा का लक्षण कहते हैं-

बहिरात्म अन्तर परम आतम त्रिविध कहते आतमा।
यह देह ही है आतमा जो मानता बहिरात्मा।।१३।।

अन्वयार्थ :- [मूढः] मिथ्यात्व रागादिरूप परिणत हुआ बहिरात्मा, [विचक्षणः] वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानरूप परिणमन करता हुआ अतरात्मा [ब्रह्मा परः] और शुद्ध-बुद्ध स्वभाव परमात्मा अर्थात् रागादि रहित, अनन्त ज्ञानादि सहित, भावद्रव्य कर्म नोकर्म रहित आत्मा इस प्रकार [आत्मा] आत्मा [त्रिविधो भवति] तीन तरह का है, अर्थात् बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ये तीन भेद हैं। इनमें से [यः] जो देहमेव देह को ही [आत्मानं] आत्मा [मनुते] मानता है, [स जनः] वह प्राणी [मूढः] बहिरात्मा [भवति] है, अर्थात् बहिर्मुख मिथ्यादृष्टि है।

भावार्थ :- जो देह को आत्मा समझता है, वह वीतराग निर्विकल्प समाधि से

उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृत को नहीं पाता हुआ मूर्ख है, अज्ञानी है। इन तीन प्रकार के आत्माओं में से बहिरात्मा तो त्याज्य ही है–आदर योग्य नहीं है। इसकी अपेक्षा यद्यपि अन्तरात्मा अर्थात् सम्यग्दृष्टि वह उपादेय है, तो भी सब तरह से उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) जो परमात्मा उसकी अपेक्षा वह अन्तरात्मा हेय ही है, शुद्ध परमात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है, ऐसा जानना।।१३।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ०६, गुरुवार
दिनांक-१७-०६-१९७६, गाथा-१३ से १६, प्रवचन-११

परमात्मप्रकाश। **जो देह को आत्मा समझता है,...** अर्थात् कि **वह वीतराग निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृत को नहीं पाता हुआ,...** आहाहा! जो कोई पुण्य और पाप के भाव आदि या देह, उन्हें जो अपना स्वरूप जानता है, उसे जो वस्तु जो वीतराग निर्विकल्प समाधि, जो आत्मा का स्वभाव है, उससे **उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृत को नहीं पाता...** आहाहा! '**विचक्षणः**' की व्याख्या ही यह की है न? '**विचक्षणः**' की व्याख्या ही यह की है। पहले विचिक्षण कहा था। **वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानरूप परिणमन करता हुआ अन्तरात्मा...** आहाहा! चौथे गुणस्थान में रागरहित अभेद समाधि से उत्पन्न हुआ परमानन्द सुखामृत, उसे प्राप्त करता है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में अन्तर आत्मा में अन्तर स्वरूप जो है, उसमें से उसे रागरहित शान्ति से उत्पन्न सुखामृत, परमानन्द सुखामृत उसकी दशा में होता है, उसे अन्तरात्मा कहते हैं। आहाहा! और जो कोई आत्मा राग को (अपना स्वरूप) समझता है, राग, पुण्य, व्यवहार विकल्पादि... आहाहा! उसे **वीतरागी निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृत को नहीं पाता हुआ मूर्ख है,...** कहते हैं। आहाहा! आत्मा का आनन्द जो सुखामृत स्वरूप, उसे प्राप्त नहीं करके और रागादि को अपना मानता है, वह मूर्ख है अर्थात् बहिरात्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें क्या मूर्खता हुई?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का स्वभाव है, वह तो प्राप्त हुआ नहीं और राग को

अपना माना, यह मूर्खता है। आहाहा! राग का विकल्प है, वह भी वास्तव में देह—पर है। आहाहा! उसके ऊपर जिसकी दृष्टि है और उसे लाभदायक मानता है अथवा वह मैं हूँ, ऐसा मानता है, उसे वीतरागी शान्ति से उत्पन्न होते सुखामृत के आनन्द का अभाव है और रागादि मैं हूँ, ऐसे भाव का जिसे सद्भाव है। आहाहा! समझ में आया?

अज्ञानी है। आहाहा! सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान वीतरागी स्वभाव और वीतरागी आनन्द से भरी पड़ी वस्तु... आहाहा! उसका जिसे आश्रय नहीं, उसे वीतरागी परमानन्द की प्राप्ति नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पूरा जगत मूर्ख हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द यह लिया है न, देखो न! '**मूढः**' पहला शब्द डाला है। '**मूढः**' वह बहिरात्मा। ऐसा शब्द है न गाथा में? '**विचक्षणः**' वह अन्तरात्मा और '**ब्रह्मा**' वह परमात्मा। तीन की व्याख्या ही यह है। आहाहा! '**मूढः**' वह बहिरात्मा। उसे यहाँ मूर्ख शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! जिसे आत्मा प्राप्त नहीं। अर्थात् कि आत्मा परम वीतराग शान्ति से उत्पन्न होता अमृत, सुखामृत भाव, उसकी जिसे प्राप्ति नहीं और राग की प्राप्ति में व्यवहार के विकल्प में मेरा, ऐसा (मानकर) पड़ा है। आहाहा! कितने ही कहते हैं कि वीतरागी समाधि चौथे में नहीं होती, आठवें में होती है। इस काल में शुद्धोपयोग नहीं होता। ऐसा कहते हैं। अरे! प्रभु! क्या कहता है तू? आहाहा! साधारण समाज मानेगी, इससे कहीं सत्य नहीं हो जायेगा। आहाहा!

इन तीन प्रकार के आत्माओं में से... यह बहिरात्मा मूढ़ कहा, अन्तरात्मा **वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानरूप परिणमन करता हुआ अन्तरात्मा...** अन्तरात्मा और ब्रह्म—**और शुद्ध-बुद्ध स्वभाव परमात्मा...** वर्तमान दशा में प्राप्त। आहाहा! **इन तीन प्रकार के आत्माओं में से बहिरात्मा तो त्याज्य ही है-** राग और देह आदि मेरे हैं अथवा इस व्यवहार राग से मुझे लाभ होगा, इसका अर्थ इस राग को ही अपना माना है। वह बहिरात्मा त्याज्य है। **आदर योग्य नहीं है।** आहाहा!

इसकी अपेक्षा यद्यपि अन्तरात्मा अर्थात् सम्यग्दृष्टि वह उपादेय है,... बहिरात्मा की अपेक्षा से बहिरात्मपना त्याज्य है, उसकी अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा उपादेय

है। **तो भी सब तरह से उपादेय...** आहाहा! वह तो परमात्मा। पूर्ण स्वरूप प्राप्त अथवा पूर्ण स्वरूप शक्ति का जो आत्मा, वह अन्तरात्मा भी इस अपेक्षा से हेय है। **जो परमात्मा उसकी अपेक्षा वह अन्तरात्मा हेय ही है।** गजब बात है न! समझ में आया? **शुद्ध परमात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है,...** आहाहा! शुद्ध परमात्मस्वरूप शक्तिरूप स्वभाव, वही ध्यान करनेयोग्य है। अन्तरात्मा की दशा भी ध्यान करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहुत मार्ग ऐसा, बापू! परमात्मा प्राप्त है, उसका भी ध्यान करना और स्वयं शुद्ध-बुद्ध परमात्मा है, उसका ध्यान करना। आहाहा!

गाथा - १४

अथ परमसमाधिस्थितः सन् देहविभिन्नं ज्ञानमयं परमात्मानं योऽसौ जानाति सोऽन्तरात्मा भवतीति निरूपयति –

१४) देह–विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।
परम–समाहि–परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ।।१४।।

देहविभिन्न ज्ञानमयं यः परमात्मानं पश्यति।
परमसमाधिपरिस्थितिः पण्डितः स एव भवति।।१४।।

देहविभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन देहादभिन्नं निश्चयनयेन भिन्नं ज्ञानमयं केवलज्ञानेन निर्वृत्तं परमात्मानं योऽसौ जानाति परमसमाहिपरिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ वीतरागनिर्विकल्पसहजानन्दैकशुद्धात्मानुभूतिलक्षणपरमसमाधिस्थितः सन् पण्डितोऽन्तरात्मा विवेकी स एव भवति। 'कः पण्डितो विवेकी' इति वचनात्, इति अन्तरात्मा हेयरूपो, योऽसौ परमात्मा भणितः स एव साक्षादुपादेय इति भावार्थः ।।१४।।

आगे परसमाधि में स्थित, देह से भिन्न ज्ञानमयी (उपयोगमयी) आत्मा को जो जानता है, वह अन्तरात्मा है, ऐसा कहते हैं –

है देह से जो पृथक् ज्ञानमयी कहा परमातमा।
उत्कट समाधि परिस्थित अनुभवे अन्तर आतमा।।१४।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो पुरुष [परमात्मानं] परमात्मा को [देहविभिन्नं] शरीर से जुदा [ज्ञानमयं] केवलज्ञानकर पूर्ण [पश्यति] जानता है, [स एव] वही [परमसमाधि–परिस्थितिः] परमसमाधि में तिष्ठता हुआ [पण्डितः] अन्तरात्मा अर्थात् विवेकी भवति है।

भावार्थ :– यद्यपि अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनय से अर्थात् इस जीव के परवस्तु का संबंध अनादिकाल का मिथ्यारूप होने से व्यवहारनयकर देहमयी है, तो भी निश्चयनयकर सर्वथा देहादिक से भिन्न है, और केवलज्ञानमयी है, ऐसा निज शुद्धात्मा को वीतरागनिर्विकल्प सहजानन्द शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप परमसमाधि में स्थित होता हुआ जानता है, वही विवेकी अन्तरात्मा कहलाता है। वह परमात्मा ही सर्वथा आराधने योग्य है, ऐसा जानना।।१४।।

गाथा - १४ पर प्रवचन

अब १४। **परमसमाधि में स्थित, देह से भिन्न ज्ञानमयी (उपयोगमयी) आत्मा को जो जानता है, वह अन्तरात्मा है,...** इसकी व्याख्या है। १४।

१४) देह-विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।
परम-समाहि-परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ।।१४।।

अन्तरात्मा की व्याख्या करते हैं। **जो पुरुष परमात्मा को...** अर्थात् आत्मा को **शरीर से जुदा...** परमात्म शब्द से आत्मा यहाँ है। परमात्मा वस्तु त्रिकाल आनन्दमय। वह **केवलज्ञानकर पूर्ण जानता है,... 'ज्ञानमयं'** केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञानमय भगवान आत्मा है। आहाहा! आत्मा अर्थात् अकेला केवलज्ञानमय। केवलज्ञान पर्याय की यहाँ बात नहीं है। परमात्मा को जो केवल (ज्ञान प्रगट हुआ), वह यहाँ बात नहीं है। केवलज्ञानमय। अकेली ज्ञानमय वस्तु। जिसमें पुण्य-पाप तो नहीं, परन्तु जिसमें अल्पज्ञपना नहीं। ऐसा केवलज्ञानमय भगवान आत्मा... आहाहा! है न? **'ज्ञानमयं'** का अर्थ **केवलज्ञानकर पूर्ण...** अपने स्वभाव ज्ञान से पूर्ण। आहाहा! **जानता है,...** देखो! ऐसा आत्मा अन्दर जानता है। एक ज्ञानमय पूर्ण स्वरूप हूँ, ऐसा जो सम्यग्दृष्टि जानता है।

वही परमसमाधि में तिष्ठता हुआ... भाषा देखो! यह अन्तरात्मा की व्याख्या चलती है। आहाहा! **परमसमाधि में तिष्ठता हुआ...** परम शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहाहा! चौथे गुणस्थान में भी अनन्तानुबन्धी (कषाय गयी), उतनी समाधि और शान्ति है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **परमसमाधि में तिष्ठता हुआ...** शान्ति... शान्ति... है। यह अन्तरात्मा की व्याख्या चलती है। चौथे से ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। वे कहे, नहीं। निर्विकल्प परमसमाधि आठवें (गुणस्थान) से होती है। नीचे तो रागवाला समकित होता है। यहाँ तो अन्तरात्मा कहा। चौथे से बारहवें गुणस्थान तक अन्तरात्मा है और अन्तरात्मा की व्याख्या है। आहाहा!

वस्तु स्वयं भगवान आत्मा एक ज्ञानमय, आनन्दमय, शान्तिमय, स्वच्छतामय, प्रभुतामय ऐसा पूरा पूर्ण तत्त्व, उसे समाधि में तिष्ठता है, वह समाधि में शान्त है।

आहाहा! ऐसे स्वभाव का आश्रय लेकर और जो शान्ति प्रगट हुई है। आहाहा! उसमें रहा है, वह अन्तरात्मा है। वह पण्डित है। भले जानपना विशेष न हो। वह पण्डित है, वह **विवेकी है...** आहाहा! है? **'पण्डितः' अन्तरात्मा अर्थात् विवेकी है...** आहाहा! जिसने राग से भगवान को भिन्न करके अनुभव किया है, वह पण्डित और वह विवेकी है। आहाहा! भले विशेष शास्त्र का ज्ञान न हो परन्तु जिसने परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा राग से भिन्न करके परमशान्ति से अनुभव किया है, आहाहा! वह विवेकी है। जिसने राग से भिन्न करके अपने स्वरूप को अनुभव किया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। उसे पण्डित कहते हैं, उसे विवेकी कहते हैं, उसे अन्तरात्मा कहते हैं। आहाहा! वह शान्ति में स्थित है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ :- यद्यपि अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से अर्थात् इस जीव के परवस्तु का सम्बन्ध अनादिकाल का मिथ्यारूप होने से व्यवहारनयकर देहमयी है,... देह का, राग का सम्बन्ध अनादि का है। यह नय पहले आ गया है अपने। **अनुपचरित-सद्भूतव्यवहारनय से...** कर्म-कर्म। कर्म, देह आदि का सम्बन्ध जो है, वह नजदीक है, इसलिए अनुपचरित, परन्तु असद्भूत है। वस्तु में—आत्मा में नहीं। ऐसा जो वयवहार पर का निमित्त, वह **व्यवहारनय से अर्थात् इस जीव के परवस्तु का सम्बन्ध अनादिकाल का मिथ्यारूप होने से...** असद्भूत है न? **व्यवहारनयकर देहमयी है,...** आहाहा! देहमयी आत्मा है, रागमयी आत्मा है, ऐसा अनुपचार व्यवहारनय से कहने में आता है। वस्तु ऐसी है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या बहिर। बहिरात्मा कहना है न! असद्भूत है न? देहादि का सम्बन्ध असद्भूत है, मिथ्या सम्बन्ध है। यहाँ तो राग को इकट्ठा डाल दिया है। नहीं तो राग का सम्बन्ध अशुद्ध निश्चय से आया था। आहाहा! परन्तु यहाँ तो सब इसमें डाल दिया है। आहाहा! वास्तव में तो अध्यात्मदृष्टि से राग का सम्बन्ध असद्भूत है। उसका भी सम्बन्ध असद्भूत व्यवहार है। आहाहा! ऐसा यहाँ इकट्ठा डाल दिया। जैसा देह का सम्बन्ध है अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से, वैसा सब फिर रागादि सम्बन्ध

अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहने में आया है। आहाहा! राग का सम्बन्ध भगवान आत्मा में कहाँ है? आहाहा! राग का सम्बन्ध राग में है। भगवान उससे भिन्न अन्दर है। आहाहा! अन्तरात्मा की व्याख्या बतलानी है न?

तो भी निश्चयनयकर सर्वथा देहादिक से भिन्न है,... देखा! भले वह असद्भूतनय से देहादि का सम्बन्ध कहा जाता है, परन्तु निश्चय से—यथार्थ दृष्टि से देखें, वास्तविक स्वरूप के स्वभाव की दृष्टि से देखें तो **सर्वथा देहादिक से भिन्न है,...** रागादि देह से सर्वथा भिन्न है। देखो! सर्वथा शब्द प्रयोग किया है। कथंचित् भिन्न है, ऐसा नहीं। समझ में आया? श्लोक है। 'अमोघ वर्ष, प्रश्नोत्तर रत्नमाला (गाथा)-५', नीचे कहा है। यह श्लोक है न अन्दर? '**कः पण्डितो विवेकी इति वचनात्**' इसका लिखा है। 'अमोघ वर्ष' है कोई।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। 'अमोघ वर्ष, प्रश्नोत्तर रत्नमाला, गाथा-५' लिखी है। आहाहा!

कहते हैं कि असद्भूतनय से कर्म का और देह का सम्बन्ध भले कहने में आवे। परमार्थ से तो भगवान आत्मा सर्वथा देहादि से भिन्न है। उसमें रागादि से भी सर्वथा भिन्न है, (ऐसा) आ जाता है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग है न, उससे प्रभु सर्वथा भिन्न है। आहाहा!

और केवलज्ञानमयी है,... आहाहा! भगवान तो यह ज्ञानस्वरूप, प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप ज्ञानस्वरूपी आत्मा है। आहाहा! उसमें राग और शरीर और दया-दान के विकल्प सब, उनसे सम्बन्ध रहित है। आहाहा! **निश्चयनयकर सर्वथा देहादिक से भिन्न है,...** असद्भूतनय से सम्बन्ध कहने में आता है। आहाहा! मिथ्यानय से देह और राग का सम्बन्ध कहने में आता है। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानमयी अकेला ज्ञानमयी केवल ज्ञान। एक ज्ञान, ऐसा। केवल ज्ञान अर्थात् एक ज्ञान। आहाहा! उसमें मति आदि के भेद, वे तो पर्याय में हैं। वस्तु तो एक ज्ञानमयी, आनन्दमयी, वीतरागमयी, सहज प्रभुतामय वस्तु है। आहाहा! उनसे भिन्न है। आहाहा!

निश्चयनयकर सर्वथा देहादिक से भिन्न है,... कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न, ऐसा कहो तो स्याद्वाद हो। मार्ग अनेकान्त है न? सर्वथा भिन्न है, सर्वथा पर का सम्बन्ध नहीं है, ऐसा है। आहाहा! इसलिए उसे मिथ्या कहा न? सम्बन्ध है, वह मिथ्यासम्बन्ध है। आहाहा! सोने की खान में पत्थर का सम्बन्ध है, वह झूठा है। सोना तो सोनेरूप ही है। उस समय सोना तो सोने के शक्ति-स्वभाव से रहा हुआ है। उसी प्रकार भगवान आतमा देह और कर्म के सम्बन्ध से-संयोग से है, ऐसा असद्भूतनय से, मिथ्याबुद्धि से कहो। आहाहा! परन्तु वास्तविक स्वरूप से तो ज्ञानमय, केवलज्ञानमय एकरूप ज्ञानमय, ऐसा कहना है। केवलज्ञान अर्थात् वह पर्याय नहीं। एक ज्ञानमय। आहाहा! अब ऐसी बात सुनने को मिले नहीं, उसे मोक्षमार्ग कैसे हो जाये?

मुमुक्षु : सुनने को मिले तब तो हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : करे तो हो जाये, उसमें क्या है? तब आवे ऐसा कहलाये न! (समयसार) चौथी गाथा में नहीं कहा? '**सुदपरिचिदाणुभूदा**' राग आदि की बात तो तूने अनन्त बार सुनी, परिचय किया, अनुभव में आयी। परन्तु राग से भिन्न, यह बात सुनी नहीं। समझ में आया? (समयसार की) चौथी गाथा में आता है।'**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा। एयत्तस्सुवलंभो**' भगवान एकत्वरूप से.. है। राग से भिन्न '**णवरि ण सुलहो विहत्तस्स**' राग से भिन्न, यह सुलभ बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

और केवलज्ञानमयी है, ऐसा निज शुद्धात्मा को... देखो! अपने आत्मा की बात है। **निज शुद्धात्मा को वीतरागनिर्विकल्प सहजानन्द शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप परमसमाधि में स्थित होता हुआ जानता है,...** देखो! अन्तरात्मा की यह व्याख्या। चौथे से बारह। भले चौथे से शुद्धि... शुद्धि... शुद्धि बढ़ती है परन्तु है तो अन्तरात्मा में वह। आहाहा! **निज शुद्धात्मा को वीतरागनिर्विकल्प...** रागरहित अभेद **सहजानन्द शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप...** आहाहा! अरे! परमात्मप्रकाश है।

सहजानन्द शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप परमसमाधि शान्ति में स्थित होता हुआ... शान्ति में स्थित होता हुआ जानता है,... ऐसा कहते हैं। आहाहा! इतना शान्तभाव प्रगट

हुआ है, उसमें रहा हुआ आत्मा को जानता है। आहाहा! समझ में आया? **वही विवेकी अन्तरात्मा कहलाता है।** आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में वीतराग समाधि आता है न? वह तो चारित्र की दशासहित की बात ली है। यह तो मूल से बात उठायी है। सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा अकेला ज्ञानमय हूँ, ऐसी अनुभूति में, शान्ति में रहा हुआ आत्मा को, ऐसा है—ऐसा जानता है। आहाहा! ऐसा कहकर धारणा में बात आयी कि यह आत्मा ऐसा है। तो कहते हैं कि उसमें स्थित रहकर जानता है, ऐसा नहीं। आहाहा! क्या कहा यह? आत्मा वीतराग केवलज्ञानमय है, ऐसा जिसने ज्ञान में धारणा में किया और इससे धारणा में रहकर यह ज्ञानमय आत्मा है, ऐसा जाने, ऐसा नहीं। परन्तु समाधि अर्थात् शान्ति में स्थिर होकर उसे जाने। आहाहा!

मुमुक्षु : .... उपाय बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से। आहाहा! यह शब्द प्रयोग किया है, यह ... समझ में आया? **अनुभूतिरूप परमसमाधि में स्थित होता हुआ जानता है,...** और वह ख्याल में-धारणा में बात आयी कि शुद्धात्मा ऐसा है। परन्तु वह धारणा में रहकर जाना, वह जाना नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जानना किसे कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : जो अन्दर शान्ति में स्थिर होकर उसे जाने। आहाहा! यह गजब बात है न! उसका जो स्वरूप है, उस ओर ढलकर शान्ति प्रगट हुई है, ऐसा कहते हैं। समाधि अर्थात् आनन्ददशा की शान्ति प्रगट हुई है। उसमें रहकर यह आत्मा ऐसा है, यह एक ज्ञानमय। उसे जाने, वह जानना कहा जाता है। ऐसी बात! साधारण समाज को बेचारे को मिले नहीं, इसलिए मान ले कि यह हमने किया, वह धर्म है। आहाहा! अरेरे!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर लिखा है या नहीं? लिखा है या नहीं? आहाहा!

निज शुद्धात्मा को वीतरागनिर्विकल्प सहजानन्द शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप परमसमाधि... वर्तमान पर्याय। **निज शुद्धात्मा...** त्रिकाली। उसे **वीतरागनिर्विकल्प**

सहजानन्द शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप परमसमाधि में स्थित होता हुआ जानता है,... आहाहा! अकषायभाव में स्थिर रहकर। आहाहा! कषायभाव से तो भिन्न कहा, परन्तु उसे जानने में, अकषायभाव में, शान्ति भाव में आकर उसे जाने, वह अन्तरात्मा विवेकी पण्डित कहा जाता है। आहाहा! भले वह बहुत पढ़ा न हो, वाँचना न आता हो, दूसरे को समझाना न आता हो। आहाहा! समझ में आया? अर्थात्? कि जो आत्मा अकेला ज्ञानमय है, उसे उसमें रहकर जाने, कहते हैं। राग में रहकर जाने अथवा यह ज्ञानमय है, ऐसी ज्ञान की धारणा में रहकर जाने, वह जानना नहीं कहलाता। आहाहा!

समाधि में स्थित होता हुआ जानता है,... गजब बात करते हैं न! क्योंकि राग में रहकर तो इसने ग्यारह अंग जाने हैं। समझ में आया? चौदह पूर्व जाने हैं। आहाहा! इसमें आत्मा ज्ञात नहीं हुआ। आत्मा तो राग के भावरहित अभेद समाधि की, शान्ति की स्थिति में रहकर... आहाहा! वह आत्मा को जानता है, उसे विवेकी पण्डित अन्तरात्मा कहते हैं। आहाहा! **वही विवेकी अन्तरात्मा कहलाता है। वह परमात्मा ही सर्वथा आराधनेयोग्य है,... वह परमात्मा ही...** त्रिकाली **सर्वथा आराधनेयोग्य है,...** आहाहा!

अब प्रगट परमात्मा की बात करते हैं। बहिरात्मा की व्याख्या ली, अन्तरात्मा की ली। अब परमात्मा की। तीन की व्याख्या है न? पहली बहिरात्मा की, यह अन्तरात्मा की, अब परमात्मा की। प्रगट परमात्मा, हों! बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। तीनों की वस्तु है त्रिकाली, वह तो परमात्मस्वरूप ही है। परन्तु उसका आश्रय लिया है और शान्ति में आया, इसलिए उसे अन्तरात्मा कहा और शान्ति में नहीं आया और राग को अपना मानता है, उसे बहिरात्मा कहा और जिसकी दशा पूर्ण प्रगट हो गयी है, उसे परमात्मा कहते हैं। आहाहा! क्या शैली!

परमात्मा ही सर्वथा आराधनेयोग्य है,... देखा! साक्षात् का अर्थ यह किया है। **'योऽसौ परमात्मा भणितः स एव साक्षादुपादेय'** पाठ में है। इसका अर्थ सर्वथा किया। आहाहा! साक्षात् उपादेय। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, वही आराधनेयोग्य और वही उपादेय है। आहाहा! अर्थ के साथ। टीका में ... आता है। आहाहा!

गाथा - १५

अथ समस्तपरद्रव्यं मुक्त्वा केवलज्ञानमयकर्मरहितशुद्धात्मा येन लब्धः स परमात्मा भवतीति कथयति -

१५) अप्पा लद्धउ णाणमउ कम्म-विमुक्कँ जेण।
मेल्लिवि सयलु वि दव्वु परु सो परु मुणहि मणेण।।१५।।

आत्मा लब्धो ज्ञानमयः कर्मविमुक्तेन येन।
मुक्त्वा समलमपि द्रव्यं परं तं परं मन्यस्व मनसा।।१५।।

अप्पा लद्धउ णाणमउ कम्मविमुक्कें जेण आत्मा लब्धः प्राप्तः। किंविशिष्टः। ज्ञानमयः केवलज्ञानेन निर्वृत्तः। कथंभूतेन सता। ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभावकर्मरहितेन येन। किं कृत्वात्मा लब्धः। मेल्लिवि सयलु वि दव्वु परु सो परु मुणहि मणेण। मुक्त्वा परित्यज्य। किम्। परं द्रव्यं देहरागादिकम्। सकलं कतिसंख्योपेतं समस्तमपि। तमित्थंभूतमात्मानं परं परमात्मानमिति मन्यस्व जानीहि हे प्रभाकरभट्ट। केन कृत्वा। मायामिथ्यानिदानशल्यत्रयस्वरूपादिसमस्त-विभावपरिणामरहितेन मनसेति। अत्रोक्तलक्षणपरमात्मा उपादेयो ज्ञानावरणादिसमस्तविभावरूपं परद्रव्यं तु हेयमिति भावार्थः।।१५।। एवंत्रिविधात्मप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये संक्षेपेण त्रिवाधात्मसूचनमुख्यतया सूत्रपञ्चकं गतम्। तदनन्तरं मुक्तिगतकेवलज्ञानादिव्यक्तिरूप-सिद्धजीवव्याख्यानमुख्यत्वेन दोहकसूत्रदशकं प्रारभ्यते। तद्यथा।

आगे सब परद्रव्यों को छोड़कर कर्मरहित होकर जिसने अपना स्वरूप केवलज्ञानमय पा लिया है, वही परमात्मा है, ऐसा कहते हैं -

हो सर्व कर्म-विमुक्त जो बस ज्ञानमय निज आतमा।
पा सर्व पर-त्यागी हुये तू मान वे परमात्मा।।१५।।

अन्वयार्थ :- [येन] जिसने [कर्मविमुक्तेन] ज्ञानावरणादि कर्मों का नाश करके [सकलमपि परं द्रव्यं] और सब देहादिक परद्रव्यों को [मुक्त्वा] छोड़ करके [ज्ञानमयः] केवलज्ञानमयी [आत्मा] आत्मा [लब्धः] पाया है, [तं] उसको [मनसा] शुद्ध मन से [परं] परमात्मा [मन्यस्व] जानो।

भावार्थ :- जिसने देहादिक समस्त परद्रव्य को छोड़कर ज्ञानावरणादि,

द्रव्यकर्म, रागादिक भावकर्म, शरीरादि नोकर्म इन तीनों से रहित केवलज्ञानमयी अपने आत्मा का लाभ कर लिया है, ऐसे आत्मा को हे प्रभाकरभट्ट, तू माया, मिथ्या, निदानरूप शल्य वगैरह समस्त विभाव (विकार) परिणामों से रहित निर्मल चित्त से परमात्मा जान, तथा केवलज्ञानादि गुणोंवाला परमात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है और ज्ञानावरणादिरूप सब परवस्तु त्यागनेयोग्य है, ऐसा समझना चाहिए।।१५।

गाथा – १५ पर प्रवचन

अब १५वीं गाथा। **आगे सब परद्रव्यों को छोड़कर कर्मरहित होकर...** वर्तमान में। **जिसने अपना स्वरूप केवलज्ञानमय पा लिया है,...** पर्याय में। **वही परमात्मा है, ऐसा कहते हैं।** वह परमात्मा है। समझ में आया? बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। बहिरात्मा, रागादि सम्बन्ध है, उसे सम्बन्ध है—ऐसा माननेवाला, मिथ्या सम्बन्ध का माननेवाला। आत्मा ज्ञानमय है, उसे नहीं अनुभव करनेवाला, वह मूर्ख बहिरात्मा। आहाहा! अन्तरात्मा वस्तु त्रिकाली शुद्ध चैतन्यमूर्ति को अभेद शान्ति की उत्पत्ति के सुखामृत में रहकर उसे—त्रिकाली को जानता है, उसे अन्तरात्मा कहते हैं। और जिसे वर्तमान दशा में कर्मरहित होकर पूर्णदशा प्राप्त हो गयी है, उसे परमात्मा कहते हैं। यह कहते हैं।

१५) अप्पा लद्धउ णाणमउ कम्म–विमुक्कँ जेण।
मेल्लिवि सयलु वि दव्वु परु सो परु मुणहि मणेण।।१५।।

मन डाला जरा। मन साथ में है न! शुद्ध मन किया। **जिसने ज्ञानावरणादि कर्मों का नाश करके...** यह असद्भूतव्यवहारनय से वचन है। कर्मों का नाश। और राग का नाश, यह अशुद्धनिश्चयनय का वचन है। यह आ गया है अपने। कर्म का नाश किया, ऐसा जो कहना, वह असद्भूतव्यवहारनय का वचन है और राग का नाश किया, यह अशुद्धनिश्चयनय का वचन है। आहाहा!

ज्ञानावरणादि कर्मों का नाश करके... 'सकलमपि परं द्रव्यं' सब देहादिक

परद्रव्यों को छोड़ करके... ऐसा कहा कि ज्ञानावरणादि का नाश हुआ, परन्तु दूसरे द्रव्य आदि सब छोड़ा। आहाहा! '**ज्ञानमयः**' बस, शब्द यही प्रयोग करते हैं। **केवलज्ञानमयी आत्मा पाया है,...** आहाहा! त्रिकाली ज्ञानमय है, वह पर्याय में अकेला ज्ञानमय पाया है। आहाहा! **उसको शुद्ध मन से परमात्मा जानो।** उसे शुद्ध ज्ञान की परिणति में उसे परमात्मा जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग, बापू! बहुत अलौकिक है। लोगों ने बाहर की कल्पना में मानकर वस्तु को पूरा बिगाड़ दिया। आहाहा! **निर्मल चित्त से परमात्मा जान,...** पाठ ऐसा है। निर्मल चित्त अर्थात् ज्ञान, मूल तो। आहाहा! **जिसने देहादिक समस्त परद्रव्य को छोड़कर...** और एक ओर कहना कि परद्रव्य को छोड़ना-ग्रहण करना आत्मा में है ही नहीं।

परन्तु कथन करना—समझाना किस प्रकार? परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। परन्तु उसे निमित्त था, इसलिए यह छोड़ा—ऐसा असद्भूतनय से कहा जाता है। आहाहा! और सब छोड़कर अन्दर रागादि भी छोड़कर आया उसमें। देहादि शब्द है न? देह, राग आदि **परद्रव्यों को छोड़कर...** केवलज्ञानमय आत्मा प्राप्त किया है। पर्याय में केवलज्ञानमय प्राप्त हुआ। जैसा ज्ञानमय एकरूप परमात्मा था, वैसा ज्ञानमय एकरूप पर्याय में प्राप्त हो गया। आहाहा! ऐसा उपदेश अब।

वे और ऐसा कहे कि अध्यात्म के कीटाणु पके हैं। देखो! यहाँ शब्द है। कीटाणु। सूक्ष्म जीव होते हैं न? इसे खा जाये न? इसी प्रकार अध्यात्म की यह बात निकली है, वह तत्त्व को खा जाती है। हमारे सब व्यवहार का नाश कर देती है। कीटाणु। जिसे जो बैठा हो... क्या करे? सुख का कामी है, परन्तु सुख को प्राप्त करने की कौन सी दशा है, इसकी खबर नहीं। 'सुख इच्छन्ति सर्व नरा।' परन्तु सुख के कारण को नहीं जानते। आता है न? ... दुःख को चाहते नहीं परन्तु दुःख के कारण को छोड़ते नहीं। समझ में आया? आहाहा! सुख को तो सर्व प्राणी चाहते हैं। 'सुख इच्छन्ति सर्व नरा, न इच्छन्ति सुख कारणम्।' परन्तु परमानन्द सुख का कारण क्या है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! दुःख न इच्छन्ति—दुःख को चाहते नहीं परन्तु दुःख के कारण को छोड़ते नहीं। आहाहा! यह आत्मा के आनन्द की ओर ढलना चाहिए, ऐसा कहते हैं।

यह सर्राफ का व्यापार करना, ऐसा कहते हैं, वह पैसे का किया है। आहाहा! पूर्णानन्द प्रभु चीज़ जहाँ पड़ी है, उसकी ओर ढलकर समाधि—शान्ति प्रगट करके उसे जानना। आहाहा! क्या कला और क्या रीति! आहाहा!

जिसने देहादिक समस्त परद्रव्य को छोड़कर ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादिक भावकर्म,... देखो! दोनों लिया बाद में। पुण्य-पाप आदि विकारी भाव, **शरीरादि नोकर्म इन तीनों से रहित...** आहाहा! द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से—तीनों से रहित **केवलज्ञानमयी अपने आत्मा का लाभ कर लिया है,...** देखो! **केवलज्ञानमयी अपने आत्मा का लाभ कर लिया है,...** वस्तु तो ज्ञानमयी थी, परन्तु पर्याय में केवलज्ञानमय का लाभ हो गया। उसे परमात्मा कहा जाता है। आहाहा! यह तीन दशाओं का वर्णन। बहिरात्मा का, अन्तरात्मा का, केवलज्ञान का। आहाहा! तीनों पर्याय का वर्णन है। बहिरात्मा भी पर्याय है, अन्तरात्मा भी पर्याय है और परमात्मा भी पर्याय है। **केवलज्ञानमयी अपने आत्मा का लाभ कर लिया है,...** आहाहा! यह लाभ सवाया। लिखते हैं न यह बनिये, नहीं?

मुमुक्षु : शुभ और लाभ।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ-लाभ। दिवाली के दिन लिखते हैं। वह लाभ नहीं, बापू! आहाहा! जिसने केवलज्ञानमयी आत्मा का लाभ प्राप्त किया है, वह लाभ है। बाकी धूल में भी कहीं (लाभ नहीं है)। आहाहा!

ऐसे आत्मा को हे प्रभाकर भट्ट,... है न? '**परु मुणहि मणेण**' ऐसा है न? '**मुणहि**' तू जान, ऐसा कहा है न? उसका लिया है। **हे प्रभाकर भट्ट! तू माया, मिथ्या, निदानरूप शल्य वगैरह समस्त विभाव (विकार) परिणामों से रहित...** आहाहा! माया, मिथ्याभाव और निदान, तीन शल्य से रहित **समस्त विभाव (विकार) परिणामों से रहित निर्मल चित्त से...** पाठ में था न? '**मनसा**' निर्मल ज्ञान की परिणति से परमात्मा जान। आहाहा!

तथा केवलज्ञानादि गुणोंवाला परमात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है... लो! **और ज्ञानावरणादिरूप सब परवस्तु त्यागनेयोग्य है,...** परमात्मा साध्य है न? इसलिए साध्य

है, वह ध्यान करनेयोग्य है, ऐसा लिया। वस्तु तो ध्यान करनेयोग्य त्रिकाली है, परन्तु पर्याय में प्रगट हुए, उन्हें भी ध्यान करनेयोग्य कहा जाता है। आहाहा! **और ज्ञानावरणादिरूप सब परवस्तु त्यागनेयोग्य है,...** आहाहा! चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प हो, वह त्यागनेयोग्य है, ऐसा यहाँ तो कहा है। आहाहा!

हाँ। यह क्या है अन्दर? रागादि में क्या आया? **ज्ञानावरणादिरूप सब परवस्तु त्यागनेयोग्य है,...** उसमें तो पहले आ गया था अन्दर। रागादि भावकर्म से तीनों आया था। आहाहा! भाई! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! जो मोक्ष का लाभ हो, अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ हो और वह अतीन्द्रिय आनन्द सादि-अनन्त रहे, सादि-अनन्त रहे, उसका उपाय कोई दूसरा ही होगा न! आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा रागरहित हुआ, कर्मरहित हुआ, ऐसे परमात्मा को, प्रभाकर भट्ट! उसका तू ध्यान कर। समझ में आया? आहाहा!

और ज्ञानावरणादिरूप सब परवस्तु त्यागनेयोग्य है, ऐसा समझना चाहिए। लो! १४ है न? १५-१५ नहीं? अभी यह है न! अन्दर है। देखो! आहाहा! '**हेयमिति भावार्थः**' है न? '**अत्रोक्तलक्षणपरमात्मा उपादेयो ज्ञानावरणादिसमस्तविभावरूपं**' देखो! समस्त। '**परद्रव्यं तु हेयमिति भावार्थः**' इसकी बात है। आहाहा!

गाथा - १६

लक्ष्यमलक्ष्येण धृत्वा हरिहरादिविशिष्टपुरुषा यं ध्यायन्ति तं परमात्मानं जानीहीति प्रतिपादयति -

१६) तिहुयण-वंदिउ सिद्धि-गउ हरि-हर झायहिं जो जि।
लक्खु अलक्खें धरिवि थिरु मुणि परमप्पउ सो जि।।१६।।

त्रिभुवनवन्दितं सिद्धिगतं हरिहरा ध्यायन्ति यमेव।
लक्ष्यमलक्ष्येण धृत्वा स्थिरं मन्यस्व परमात्मानं तमेव।।१६।।

तिहुयणवंदिउ सिद्धिगउ हरिहर झायहिं जो जि त्रिभुवनवन्दितं सिद्धिगतं यं केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपं परमात्मानं हरिहरहिरण्यगर्भादयो ध्यायन्ति। किं कृत्वा पूर्वम्। लक्खु अलक्खें धरिवि थिरु लक्ष्यं संकल्परूपं चित्तम्। अलक्ष्येण वीतरागनिर्विकल्पनित्यानन्दैक-स्वभावपरमात्मरूपेण धृत्वा। कथंभूतम्। स्थिरं परीषहोपसर्गैरक्षुभितं मुणि परमप्पउ सो जि तमित्थंभूतं परमात्मानं हे प्रभाकरभट्ट मन्यस्व जानीहि भावयेत्यर्थः। अत्र केवलज्ञानादिव्य-क्तिरूपमुक्तिगतपरमात्मसदृशो रागादिरहितः स्वशुद्धात्मा साक्षादुपादेय इति भावार्थ :।।१६।। संकल्पविकल्पस्वरूपं कथयते। तद्यथा-बहिर्द्रव्यविषये पुत्रकलत्रादिचेतनाचेतनरूपे ममेदमिति स्वरूपः संकल्पः, अहं सुखी दुःखीत्यादिचित्तगतो हर्ष- विषादादिपरिणामो विकल्प इति। एवं संकल्पविकल्पलक्षणं सर्वत्र ज्ञातव्यम्।

इस प्रकार जिसमें तीन तरह के आतमा का कथन है, ऐसे प्रथम महाधिकार में त्रिविध आत्मा के कथन की मुख्यता से तीसरे स्थल में पाँच दोहा-सूत्र कहे। अब मुक्ति को प्राप्त हुए केवलज्ञानादिरूप सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यता कर दस दोहा-सूत्र कहते हैं।

इसमें पाँच दोहों में जो हरिहरादिक बड़े पुरुष अपना मन स्थिरकर जिस परमात्मा का ध्यान करते हैं, उसी का तू भी ध्यान कर, यह कहते हैं -

नित हरी हर ध्याते जिसे त्रैलोक्य वंदित सिद्धिगत।
परमातमा का मन विरागी बना थिर हो ध्यान धर।।१६।।

अन्वयार्थ :- [हरिहराः] इन्द्र, नारायण और रुद्र वगैरेः बड़े बड़े पुरुष [त्रिभुवनवंदितं] तीनलोककर वंदनीक (त्रैलोक्यनाथ) [सिद्धिगतं] और केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप सिद्धपने को प्राप्त [यं एव] जिस परमात्मा को ही [ध्यायन्ति] ध्यावते हैं, [लक्ष्यं] अपने मन को [अलक्ष्ये] वीतराग निर्विकल्प नित्यानंद स्वभाव परमात्मा में [स्थिरं धृत्वा] स्थिर करके [तमेव] उसी को हे प्रभाकरभट्ट, तू [परमात्मानं] परमात्मा मन्यस्व जानकर चिंतवन कर।

भावार्थ :- केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान रागादि रहित अपने शुद्धात्मा को पहचान, वही साक्षात् उपादेय है, अन्य सब संकल्प-विकल्प त्यागने योग्य हैं। अब संकल्प-विकल्प का स्वरूप कहते हैं, कि जो बाह्यवस्तु पुत्र, स्त्री, कुटुंब, बांधव आदि सचेतन पदार्थ, तथा चांदी, सोना, रत्न, मणि के आभूषण आदि अचेतन पदार्थ हैं, इन सबको अपने समझे, कि ये मेरे हैं, ऐसे ममत्व परिणाम को संकल्प जानना। तथा मैं सुखी, मैं दुःखी इत्यादि हर्ष-विषादरूप परिणाम होना वह विकल्प है। इस प्रकार संकल्प-विकल्प का स्वरूप जानना चाहिए।।१६।।

गाथा - १६ पर प्रवचन

इस प्रकार जिसमें तीन तरह के आत्मा का कथन है, ऐसे प्रथम महाधिकार में त्रिविध आत्मा के कथन की मुख्यता से तीसरे स्थल में पाँच दोहा-सूत्र कहे। पाँच कहे। **अब मुक्ति को प्राप्त हुए केवलज्ञानादिरूप सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यता कर दस दोहा-सूत्र कहते हैं।** सिद्ध परमात्मा वर्तमान प्राप्त है। आहाहा! **केवलज्ञानादिरूप सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यता कर दस दोहा-सूत्र कहते हैं।** लो! दस दोहा कहते हैं, लो! १६-१६

१६) तिहुयण-वंदिउ सिद्धि-गउ हरि-हर झायहिं जो जि।
लक्खु अलक्खें धरिवि थिरु मुणि परमप्पउ सो जि।।१६।।

अन्वयार्थ :- इसमें पाँच दोहों में जो हरिहरादिक बड़े पुरुष अपना मन स्थिरकर जिस परमात्मा का ध्यान करते हैं, उसी का तू भी ध्यान कर,... हरिहरादि। **इन्द्र,**

नारायण,... वासुदेव। **रौद्र...** शंकरादि। **बड़े-बड़े पुरुष... 'त्रिभुवनवन्दितं'** आहाहा! यह वह है न यहाँ। नहीं? ढाल-ढाल। ... यह किया है न? क्या कहलाये पीपणीयुं? .... के सामने। नहीं? ... बाबा ने किया न? अभी शंकर का नया देवल किया। ... को नहीं था। त्रिलोकीनाथ ऐसा लिखे। देहरी बनायी है। पहले नहीं था। अब देहरी बनायी है। दूसरा एक बाबा आया लगता है। इस ओर है। ... है न .... उसमें शंकर का नाम दिया—त्रिलोकनाथ। त्रिलोकीनाथ, ऐसा करके। शंकर सुख का देनेवाला भगवान आत्मा वह त्रिलोकीनाथ है। आहाहा! आनन्द का दाता।

धीर-उदार। नहीं आया? धीर है, भगवान उदार है। अनन्त आनन्द निकालो उसमें से तो भी कम हो, ऐसा नहीं है। ओहो! अनाकुल। तीन शब्द हैं। धीर-उदार-अनाकुल। शान्तरस के तीन विशेषण हैं, ऐसा कहा न? आभूषण। आहाहा! आनन्द धीर है, शाश्वत् है। आहाहा! और अनाकुल है, उदार है। उदार। आहाहा! स्थिर का अर्थ उत्कृष्ट किया है। परन्तु... उदार का अर्थ ऐसा है। धीर है अर्थात् वस्तु प्रगट हुई है। शान्त... शान्त... शान्त... और कायम रहनेवाली है और वह उदार है। आहाहा! निर्मलानन्द का प्रवाह बहा ही करेगा। और अनाकुल है। आनन्दमय है। आहाहा! समझ में आया? यह परमात्मा की हुई पर्याय की व्याख्या की। आहाहा! स्वरूप तो ऐसा है परन्तु जिसने प्राप्त किया... आहाहा! ऐन्लार्ज किया। ऐन्लार्ज समझते हो? ऐन्लार्ज नहीं कहते? छोटी वस्तु को बड़ी बनावे। इसी प्रकार भगवान आत्मा शक्तिरूप से तो भगवान परमात्मा ही है। उसे पर्याय में बड़ा किया। आहाहा! समझे?

इन्द्र, नारायण, और रुद्र बगैरे बड़े-बड़े पुरुष... 'त्रिभुवनवन्दितं' तीन लोककर वन्दनीक... त्रिलोकनाथ आया न यह? इसलिए वह याद आया, वहाँ त्रिलोकनाथ लिखा है। त्रिलोकनाथ। अरे! भगवान! **'त्रिभुवनवन्दितं' तीन लोककर वन्दनीक...** आहाहा! **और केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप सिद्धपने को प्राप्त...** है न? केवलज्ञानादि व्यक्ति—प्रगटरूप। प्रगट होनेरूप की बात है न? **केवलज्ञानादिक व्यक्तिरूप सिद्धपने को प्राप्त जिस परमात्मा को ही ध्यावते हैं,...** जो परमात्मा को इस प्रकार से ध्यान करते हैं। **अपने मन को वीतराग निर्विकल्प नित्यानन्द स्वभाव परमात्मा में स्थिर करके...**

आहाहा! ऐसा पूर्णानन्द परमात्म परमात्मा का ध्यान ... आहाहा! **वीतराग निर्विकल्प नित्यानन्द स्वभाव परमात्मा में स्थिर करके...** अन्तर्दर्शी। आहाहा! **'स्थिरं धृत्वा तमेव' हे प्रभाकर भट्ट! तू परमात्मा जानकर चिन्तवन कर।** ऐसे को परमात्मा जान और उसको जानकर उसका ध्यान कर, ऐसा कहते हैं। **'मन्यस्व'।**

भावार्थ :- सारांश यह है—**केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान रागादि रहित अपने शुद्धात्मा को पहचान,...** देखा! **केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान...** प्रगट हुए वीतराग समान **रागादि रहित अपने शुद्धात्मा को पहचान, वही साक्षात् उपादेय है,...** है न? **रागादि रहित (अपने शुद्धात्मा को पहचान), वही साक्षात् उपादेय है,...** स्व शुद्धात्मा। वह परमात्मा तो कहा, परन्तु निश्चय से तो स्व शुद्धात्मा। जिसके गर्भ में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, शान्ति पड़ी है, ऐसा भगवान आत्मा अपना जो शुद्धात्मा, उसे शान्ति में रहकर उसका ध्यान कर। आहाहा!

ध्यान करना है। एक वह भाई नहीं? राजकोटवाला रतिलाल मनजी, रतिलाल मनजी। वहाँ आया था न पहले? वहाँ जामनगर आया था। रामविजयजी ने छंछेड़कर भेजे थे १५-२० व्यक्तियों को। उन लोगों का अकल्याण होता है। व्रत, दया, दान को तुम धर्म नहीं कहते है। क्या कहा? .... अपने चर्चा करते हैं। तब और वह लेकर आया। इस बार अभी और दूसरा लेकर आया, मुम्बई। बौद्ध। कुछ ठिकाने बिना का व्यक्ति। बौद्ध के गुरु हैं न, इन्होंने शिक्षण शिविर निकाला है। जैसे हम लगाते हैं, वैसे यह अब सब लगाने लगे। उसमें भाग लिया है। पैसे उगाहने लगे। स्वयं पैसेवाला है। २०-२५ लाख है। ऐसा कहे, ध्यान करता हूँ। परन्तु किसका ध्यान? बौद्ध ने कहा होगा कि ध्यान करना। उन लोगों में है न कुछ। पूर्वभव को याद करने के लिये बहुत प्रयोग है। पूर्वभव को। आहाहा! फिर यहाँ आये। एकान्त में आऊँ। फिर एकान्त में नहीं आया। बाहर... भाई के मकान में। रमणीकभाई के मकान में। कुछ भान नहीं होता। ध्यान, वह किसका? परन्तु अभी चीज़ क्या है? ध्यान में ध्येय करने की चीज़ क्या है, उसके ज्ञान बिना ध्यान किसका? बौद्ध में ध्यान कहाँ है? वह तो त्रिकाली को मानता नहीं। बौद्ध तो गृहीत मिथ्यादृष्टि था। कठिन बात है। उसे मोक्ष सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : सब भोले लोग....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वह बेचारा और चीमनचकु... क्या करना?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान रागादि रहित अपने शुद्धात्मा को पहचान, वही साक्षात् उपादेय है,...** आहाहा! वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... 'वस्तु वहोरजो रे... हाथे।' ... विवाह में कहते हैं। वह यह वस्तु वहोरजो। यह आत्मा के व्यापार को हाट में वहाँ... आहाहा! विवाह में गाते हैं। नहीं? वस्तु वहोरजो ऐसा कुछ है। मुझे यह याद आ गया। ... ने हाटे। ऐसा कुछ है। इसी प्रकार आत्मा के व्यापार में वस्तु यह है, उसे वहोरी लेना। त्रिकाल आनन्द का नाथ भगवान है। 'हाटडी मांडी रे मारा नाथनी।' आता है कहीं। वह हाटडी यह है। आहाहा! परमानन्द स्वभाव श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति द्वारा तेरा ध्यान कर। आहाहा! तू परमात्मस्वरूप ही है, प्रभु! यह परमात्मदशा में हो, वह परमात्मस्वरूप न हो तो होगा कहाँ से? बाहर से हो, ऐसा है? आहाहा!

अन्य सब संकल्प-विकल्प त्यागने योग्य है। आहाहा! भगवान अस्ति सत् स्वरूप, पूर्ण सत् स्वरूप, वही आराधनेयोग्य है। आहाहा! वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति की दशा में रहकर इसे जाननेयोग्य है। आहाहा! बाकी संकल्प-विकल्प व्यवहार आदि के छोड़नेयोग्य हैं। वह सब व्यवहार है। आहाहा!

अब संकल्प-विकल्प का स्वरूप कहते हैं, कि जो बाह्य वस्तु पुत्र,... यह पुत्र मेरा, स्त्री मेरी, परिवार मेरा, बाँधव मेरे। धूल भी नहीं। लड़का छोटा हो तो, आहाहा! क्या हुआ मानो! २० वर्ष का जवान हो, उसे लड़का हो तो उसे क्या मानो... आहाहा! हाथ की अँगुली से लेकर हिलावे, ऐसे... आहाहा! दुलार करे। किसे संकल्प-विकल्प कहना, इसकी व्याख्या करेंगे। विशेष....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ०७, शुक्रवार
दिनांक-१८-०६-१९७६, गाथा-१६ से २१, प्रवचन-१२

१६ वीं गाथा का सारांश। सारांश यह है कि **केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान....** जैसा केवलज्ञानी प्रगट परमात्मा है, वैसा ही यह आत्मा परमात्मा समान है, ऐसा ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान की पर्याय प्रगट है। यहाँ केवलज्ञानरूप ज्ञानमय (आत्मा है)। ज्ञान, वह आत्मा, यह एक व्यवहार हो गया। सद्भूत अनुपचार व्यवहार, वह विकल्प है। ज्ञानमय। जैसा परमात्मा का केवलज्ञानमय स्वरूप है, वैसा ही इस आत्मा का ज्ञानमय... है? **केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान रागादि रहित....** राग से रहित **अपने शुद्धात्मा को पहचान,...** अपना आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसे जानकर **वही साक्षात् उपादेय है।** अपना शुद्ध ध्रुव आत्मा, वही आत्मा को उपादेय है। दृष्टि में वह आदरनेयोग्य है।

मुमुक्षु : हमारा आत्मा केवलज्ञानादि स्वरूप है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। कहा न, अकेला ज्ञानमय है। इनकी पर्याय प्रगट हुई है, यहाँ (प्रगट) नहीं, परन्तु है केवलज्ञानमय। केवल अर्थात् अकेला ज्ञान, ऐसा। यह पर्याय व्यक्तरूप हुई है। यहाँ शक्तिरूप से है। आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, केवल वीर्य, यह अनन्त चतुष्टय स्वभाव, वह आत्मा है। उसका ज्ञान करके, उसे साक्षात् उपादेय (कर)। आहाहा!

अन्य सब संकल्प-विकल्प त्यागने योग्य हैं। अब संकल्प-विकल्प का स्वरूप कहते हैं,.... यह द्रव्यसंग्रह में अर्थ है, वही यह है। किसी-किसी जगह श्रीमद् ने संकल्प-विकल्प का अर्थ ... किया है। संकल्प का अर्थ निर्धारित अध्यवसाय, विकल्प का अनिर्धारित, ऐसा अर्थ किया है। यह ठीक है। अपने यहाँ आया है। १०वें कलश में। समयसार में १०वें कलश में। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म, वे मेरे—ऐसा संकल्प और ज्ञेय के भेद से ज्ञान का भेद मालूम पड़ना, ज्ञान का भेद भिन्न-भिन्न ज्ञेय भेद से ज्ञान का भेद मालूम पड़ना, उसे विकल्प कहते हैं। १०वें कलश में है।

मुमुक्षु : दूसरा अर्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। १०वाँ कलश है न? '**विलीनङ्कल्पविकल्पजालं**' इसका अर्थ किया है। **द्रव्यकर्म,...**—जड़, **भावकर्म,...**— पुण्य-पाप के विकल्प और **नोकर्म...**—वाणी, शरीर **आदि पुद्गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना, इसे संकल्प कहते हैं....** यह मिथ्यात्व का संकल्प लिया है। **और ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद मालूम होना...** ज्ञेय भिन्न-भिन्न है, वैसा ज्ञान भिन्न-भिन्न मालूम पड़ता है, **उसे विकल्प कहते हैं।** आहाहा! यहाँ यह अर्थ किया है। संकल्प। **बाह्यवस्तु...** यह द्रव्यसंग्रह में है। **बाह्यवस्तु...** अपने अतिरिक्त बाह्यवस्तु, **पुत्र...** यह पुत्र मेरा है, यह ममत्व, वह संकल्प है। **स्त्री,...** मेरी है। यह स्त्री मेरी है—ऐसा ममत्व, वह संकल्प है। **कुटुम्ब...** मेरा। यह मेरा कुटुम्ब है। आहाहा! **बांधव...** मेरे। यह हमारे भाई हैं। आहाहा! यह संकल्प है। **आदि सचेतन पदार्थ,....** बाह्य, हों! जीववाले पदार्थ। **तथा चाँदी, सोना, रत्न, मणि के आभूषण आदि अचेतन पदार्थ हैं, इन सबको अपने समझे, कि ये मेरे हैं, ऐसे ममत्व परिणाम को संकल्प जानना।** समझ में आया? बाह्य पदार्थ सचेतन और अचेतन, उन्हें अपने जानना-मानना, वह संकल्प है।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व ... इसमें भी संकल्प का मिथ्यात्व आया न? १० (कलश) में। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म, वे मेरे, उसे संकल्प कहते हैं, वह मिथ्यात्व है। समयसार में १०वें (कलश में) कहा न? और अपने... विकल्प की व्याख्या इसमें यह है। वहाँ ऐसा है कि ज्ञेयभेद से ज्ञान में भिन्न-भिन्न (भेद) भासित होना, वह अनन्तानुबन्धी का विकल्प है। संकल्प, मिथ्यात्व है। विकल्प, वह अनन्तानुबन्धी का अस्थिरता का विकल्प है। अरे! ऐसी बातें!

मैं सुखी,... उसमें बाह्य में था। बाह्य पदार्थ सचेत या अचेत। वे मेरे, ऐसा जो संकल्प। और **मैं सुखी,...** मैं सुखी हूँ, मैं दु:खी हूँ। **इत्यादि हर्ष-विषादरूप परिणाम...** हर्ष और खेदरूपी भाव, उसे यहाँ विकल्प कहा है। समझ में आया? अपेक्षा से वहाँ ऐसा कहा... मूल तो यह हुआ, परपदार्थ है, वे मेरे—यह संकल्प मिथ्यात्व और ज्ञेयभेद

से ज्ञान में भेद मालूम पड़ना अर्थात् उसमें यहाँ ऐसा लिया मैं सुखी, दुःखी हूँ, ऐसी जो कल्पना, उसे विकल्प कहते हैं। समझ में आया? श्रीमद् में जरा दूसरा अर्थ है थोड़ा। श्रीमद् में है। 'निर्धारित संकल्प, किसी भी अध्यवसाय का निर्धार, उसे संकल्प (कहते हैं)। 'अपूर्ण का निर्धार, वह विकल्प।' ऐसा अर्थ किया है जरा। ... है। द्रव्यसंग्रह की... यह टीका इसके आधार से है न! यहाँ कहना है कि प्रभु! शुद्ध ज्ञानघन स्वरूप आत्मा है, उसका ज्ञान करके उसे आदरना और ध्यान करना और संकल्प-विकल्प छोड़ देना। यह बात है। आहाहा! यह अमरचन्दजी का आया है न? तप में भी सेवा करना, तप छोड़ देना। ऐसी रचना। अमरचन्दजी का है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि स्वयं तप में हो, परन्तु जब सेवा करने का प्रसंग आवे, तब तप छोड़कर सेवा करना, ऐसा महावीर भगवान का मूल कथन है। कौन सेवा करे? क्या लोगों को... ऐसा बड़ा पूरा चित्रण किया है। अमरपाठ या ऐसा कुछ है न?

यहाँ तो कहते हैं कि पर की सेवा कर सके, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! लोगों को ऐसा लगता है कि आहाहा! करो, भाई! अपने को सुख-दुःख हो, उसे छोड़ देना। परन्तु दूसरे को सुख देना। आहाहा! दूसरे की प्राणरक्षा जीव कर सकता है?

मुमुक्षु : व्यवहार से कर सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से कर सकता है अर्थात् क्या? कर नहीं सकता। प्राणरक्षण अर्थात् दया और प्राणसंहार अर्थात् हिंसा। आत्मा पर की प्राणरक्षा और पर का प्राणसंहार नहीं कर सकता। क्योंकि परपदार्थ स्वतन्त्र है। उसमें क्या करे? करे क्या? निश्चय से तो ज्ञायकस्वरूप ज्ञान करे क्या? राग करे, वह भी वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! पर का करे, यह तो प्रश्न है ही नहीं। ज्ञानस्वरूप भगवान, उसे राग का कर्ता ठहराना, यह भी भ्रम है। ज्ञान, ज्ञान करे। ज्ञान, राग करे? समझ में आया? हाँ, राग होता है, उसे जाने। वह तो ज्ञान करता है। राग होता अवश्य है। राग को स्पर्श किये बिना अपने में रहकर राग को जाने। आहाहा! ऐसी चीज़ है। लोगों ने बाह्य में ऐसे धर्म

को घुसा डाला है न? दूसरे को ऐसा करना, दूसरे का यह करना।

मुमुक्षु : दूसरे का क्या कर सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? बापू! तुझे खबर नहीं, भाई!

यह भगवान ज्ञानस्वरूप है, यह राग को करे, यह कहाँ से आया अन्दर? निर्मल शुद्ध स्वभाव, वह विकार को कैसे करे? आहाहा! उसका परिणमन जरा विकार का हो तो उसे जाने कि यह है, इतना। आहाहा! करनेयोग्य है, ऐसा करके राग करे, ऐसा स्वरूप में कहाँ है? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें! जगत के साथ मिलान करना भारी कठिन।

यहाँ तो यह बात ली है। बाह्य चीज़ सचेतन और बाह्य चीज अचेतन चाँदी, सोना आदि, वे मेरे हैं, उसे यहाँ संकल्प कहा और मैं सुखी, दुःखी हूँ, हर्ष-शोक करना, उसे विकल्प कहते हैं। समझ में आया? वास्तव में मैं सुखी-दुःखी हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व है। और परवस्तु मेरी, यह मान्यता भी मिथ्यात्व है। अर्थात् संकल्प-विकल्प के अर्थ में मिथ्यात्व का इस प्रकार का आता है। आहाहा! समझ में आया? और वहाँ १०वें कलश में कहा, द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म मेरे, यह वास्तव में बाहर (की) चीज़ हुई। है राग भाव अन्दर परन्तु वह बाह्य है। बाह्य है न वह तो? इसकी चीज़ कहाँ है? और यह ज्ञेय भिन्न-भिन्न भासित होने पर मेरा ज्ञान भी भिन्न-भिन्न (भेदरूप) हुआ, ऐसा विकल्प, वह अनन्तानुबन्धी का विकल्प है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा सूक्ष्म!

इस प्रकार संकल्प-विकल्प का स्वरूप जानना चाहिए। वहाँ द्रव्यसंग्रह में यह (आया), सर्वत्र यह (अर्थ) करना। संकल्प-विकल्प का अर्थ सर्वत्र यह जानना, ऐसा लिखा है। सर्वत्र। जहाँ-जहाँ संकल्प-विकल्प का अर्थ ऐसा करना। उसमें ऐसा है, यहाँ... देखो! इसमें है, लो। यह इसमें है। सर्वत्र ज्ञातव्यं। संकल्प-विकल्प का अर्थ सर्वत्र ज्ञातव्यं। मूल तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द स्वरूव वह मैं। इसके अतिरिक्त परवस्तु वह मैं, यह मिथ्यात्व और संकल्प-विकल्प का भाव है। आहाहा! समझ में आया? यह १६ गाथा हुई।

गाथा - १७

अथ नित्यनिरञ्जनज्ञानमयपरमानन्दस्वभावशान्तशिवस्वरूपं दर्शयन्नाह -

१७) णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
जो एहउ सो संतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ।।१७।।

नित्यो निरञ्जनो ज्ञानमयः परमानन्दस्वभावः।
य ईद्दशः स शान्तः शिवः तस्य मन्यस्व भावम्।।१७।।

णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंदसहाउ द्रव्यार्थिकनयेन नित्योऽविनश्वरः, रागादि-कर्ममलरूपाञ्जनरहितत्वान्निरञ्जनः, केवलज्ञानेन निर्वृत्तत्वात् ज्ञानमयः, शुद्धात्मभावनोत्थ-वीतरागानन्दपरिणतत्वात्परमानन्दस्वभावः जो एहउ सो संतु सिउ य इत्थंभूतः स शान्तः शिवो भवति हे प्रभाकरभट्ट तासु मुणिज्जहि भाउ तस्य वीतरागत्वात् शान्तस्य परमानन्दसुखमयत्वात् शिवस्वरूपस्य त्वं जानीहि भावय। कं भावय। शुद्धबुद्धैकस्वभावमित्यभिप्रायः।।१७।।

आगे नित्य निरंजन ज्ञानमयी परमानंदस्वभाव शांत और शिवस्वरूप का वर्णन करते हैं -

जो नित्य अंजन रहित ज्ञानानन्द परम स्वभावमय।
हैं ही उसे ही शान्त शिवमय मान और स्वभावमय।।१७।।

अन्वयार्थ :- [नित्यः] द्रव्यार्थिकनयकर अविनाशी [निरञ्जनः] रागादिक उपाधि से रहित अथवा कर्ममलरूपी अंजन से रहित [ज्ञानमयः] केवलज्ञान से परिपूर्ण और [परमानंदस्वभावः] शुद्धात्म भावना कर उत्पन्न हुए वीतराग परमानंदकर परिणत है, [यः ईद्दशः] जो ऐसा है, [सः] वही [शान्तः शिवः] शांतरूप और शिवस्वरूप है, [तस्य] उसी परमात्मा का [भावं] शुद्ध-बुद्ध स्वभाव [जानाहि] हे प्रभाकरभट्ट, तू जान अर्थात् ध्यान कर।।१७।।

गाथा - १७ पर प्रवचन

नित्य निरंजन ज्ञानमयी परमानन्दस्वभाव शान्त और शिवस्वरूप का वर्णन करते हैं। प्रगट दशा जो परमात्मा की है, उसका वर्णन करते हैं। परन्तु ऐसा मैं स्वभाव

से—दृष्टि से, दृष्टि की अपेक्षा से द्रव्यार्थिकनय से ऐसा ही मैं हूँ। भगवान पर्याय में प्रगट है, ऐसा मैं ही अन्दर हूँ। आहाहा! १७वाँ।

१७) णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
जो एहउ सो संतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ।।१७।।

यहाँ दूसरा कोई शिवस्वरूप अनादि का पृथक् है, जगत का कर्ता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं।

अन्वयार्थ :- द्रव्यार्थिकनयकर अविनाशी.... कौन? परमात्मा चित्स्वरूप वह। **द्रव्यार्थिकनयकर अविनाशी रागादिक उपाधि से रहित अथवा कर्ममलरूपी अंजन से रहित....** '**निरंजनः**' है न? '**ज्ञानमयः**' **केवलज्ञान से परिपूर्ण और शुद्धात्मभावनाकर उत्पन्न हुए वीतराग परमानन्दकर परिणत हैं,...** ओहो! वर्तमान लिया है न? परमात्मा शुद्ध दशा। **केवलज्ञान से परिपूर्ण...** परमात्मा और **शुद्धात्मभावनाकर उत्पन्न हुए वीतराग परमानन्दकर परिणत हैं,...** आहाहा! **जो ऐसा है, वही शान्तरूप और शिवस्वरूप है, उसी परमात्मा का शुद्ध बुद्ध स्वभाव हे प्रभाकर भट्ट! तू जान...** कोई इसका कर्ता शिव है, यह नहीं। ऐसा शिव का स्वरूप है। परमात्मा सिद्ध हो गये। शान्त शिव।

उसी परमात्मा का... 'भावं जानाहि' शुद्ध बुद्ध स्वभाव... शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव ... है न संस्कृत में? शुद्ध-बुद्ध इस टीका में बहुत जगह आता है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहें कर विचार तो पाम।' आहाहा! '**जानाहि**' — इसे तू जान और उसका तू ध्यान करे। आहाहा! भगवान परमात्मस्वरूप प्राप्त है, उसे जान और उसका ध्यान कर। दृष्टि द्रव्यार्थिकनय से तू ही ऐसा है। आहाहा! पर्याय में वस्तु की महत्ता भासित होना, यह सम्यग्दर्शन है। यह क्या कहा? पर्याय में अपनी महत्ता, पूर्णता, वस्तु की पूर्णता भासित होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, पाचनशक्ति है। सम्यग्दर्शन में पाचनशक्ति है।

जैसे अग्नि में अनाज पकाने की शक्ति है, प्रकाशशक्ति है और लकड़ी को जलाने की दाहकशक्ति है। पाचक, प्रकाशक और दाहक अग्नि है। जयसेनाचार्य की टीका में है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र (शक्ति

है)। सम्यग्दर्शन में पाचकशक्ति है। पूर्ण स्वरूप की प्रतीति—पाचन करता है। समझ में आया? अर्थात् कि द्रव्यस्वभाव पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण है। पर्याय में उसे समयग्दर्शन पाचक करता है, उसे पचाता है। है पर्याय, परन्तु पूर्ण को पचाती है। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान प्रकाशक है। जैसे अग्नि में प्रकाश है। वह द्रव्य को प्रकाशित करे, पर्याय को प्रकाशित करे। और चारित्र का स्वभाव दाहक है। जैसे अग्नि लकड़ी को (ईंधन को) जला डालती है। इसी प्रकार स्वरूप की रमणता अशुद्धता को जलाकर राख कर डालती है अर्थात् अशुद्धता का नाश होता है। आहाहा! ऐसी उसमें त्रिकाली शक्ति पड़ी है। उसे प्रगट करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? ऐसी बातें, इसलिए लोगों को (कठिन लगती है)। कितना खिचड़ा भरा है इसमें, पर का यह करना और पर का यह करना। भगवान ने स्वाध्याय को तप कहा है। स्वाध्याय—वांचन करना और मनन कना। अरे!

यहाँ तो कहते हैं, पठन-पाठन करना, वह सब विकल्प—शुभराग है। अन्तर के आनन्द के नाथ को सम्हालकर इसमें स्थिर होना, यह वास्तविक ध्यान और तप है। यह स्वाध्याय है। स्व-अध्याय। स्व का... किया। आहाहा! उसमें कहा है न कि स्वाध्याय तप है। आते हैं न बारह प्रकार के (तप)। स्वाध्याय तप। वह .... तप नहीं। यह तो उपचार से बात है।

मुमुक्षु : स्वाध्याय परमं तप।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम तप, परन्तु कौन सा स्वाध्याय? यह अन्तर के आनन्द के नाथ को स्व में-अन्तर ध्यान में ले, वह तप है। यह स्वाध्याय तो विकल्प है। ऐसी बात है। यह १७वीं गाथा हुई।

गाथा - १८

पुनश्च किंविशिष्टो भवति -

१८) जो णिय-भाउ ण परिहरइ जो पर-भाउ ण लेइ।
जाणइ सयलु वि णिच्चु पर सो सिउ संतु हवेइ।।१८।।

यो निजभावं न परिहरति यः परभावं न लाति।
जानाति सकलमपि नित्यं परं स शिवः शान्तो भवति।।१८।।

यः कर्ता निजभावमनन्तज्ञानादिस्वभावं न परिहरति यश्च परभावं कामक्रोधादिरूप-मात्मरूपतया न गृह्णाति। पुनरपि कथंभूतः। जानाति सर्वमपि जगत्त्रयकालत्रयवर्तिवस्तुस्वभावं न केवलं जानाति द्रव्यार्थिकनयेन नित्य एव अथवा नित्यं सर्वकालमेव जानाति परं नियमेन। स इत्थंभूतः शिवो भवति शान्तश्च भवतीति। किं च अयमेव जीवः मुक्तावस्थायां व्यक्तिरूपेण शान्तः शिवसंज्ञां लभते संसारावस्थायां तु शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शक्तिरूपेणेति। तथा चोक्तम् –'परमार्थनयाय सदा शिवाय नमोऽस्तु'। पुनश्चोक्तम्–'शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयम्। प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः।।' अन्यः कोऽप्येको जगत्कर्ता व्यापी सदा मुक्तः शान्तः शिवोऽस्तीत्येवं न। अत्रायमेव शान्तशिवसंज्ञः शुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः।।१८।।

आगे फिर उसी परमात्मा का कथन करते हैं -

निज भाव को ना छोड़ता परभाव ना लेता कभी।
पर जानता सम्पूर्ण को शिव शान्त शाश्वत है वही।।१८।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो [निज भावं] अनंतज्ञानादिरूप अपने भावों को [न परिहरति] कभी नहीं छोड़ता [यः] और जो [परभावं] कामक्रोधादिरूप परभावों को [न लाति] कभी ग्रहण नहीं करता है, [सकलमपि] तीन लोक तीन काल की सब चीजों को [परं] केवल [नित्यं] हमेशा [जानाति] जानता है, [सः] वही [शिवः] शिवस्वरूप तथा [शांतः] शांतस्वरूप [भवति] है।

भावार्थ :- संसार अवस्था में शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव शक्तिरूप से परमात्मा हैं, व्यक्तिरूप से नहीं है। ऐसा कथन अन्य ग्रंथों में भी कहा है-'शिवमित्यादि'

अर्थात् परमकल्याणरूप, निर्वाणरूप, महाशांत अविनश्वर ऐसे मुक्ति-पद को जिसने पा लिया है, वही शिव है, अन्य कोई, एक जगत्कर्ता सर्वव्यापी सदा मुक्त शांत नैयायिकों का तथा वैशेषिक आदि का माना हुआ नहीं है। यह शुद्धात्मा ही शांत है, शिव है, उपादेय है।।१८।।

गाथा - १८ पर प्रवचन

आगे उसी परमात्मा का कथन करते हैं—सादी भाषा है।

१८) जो णिय-भाउ ण परिहरइ जो पर-भाउ ण लेइ।
जाणइ सयलु वि णिच्चु पर सो सिउ संतु हवेइ।।१८।।

यह आता है, समयसार में। अपना भाव छोड़ता नहीं और पर को ग्रहण करता नहीं। यह (आता है)।

अन्वयार्थ :- जो अनन्तज्ञानादिरूप अपने भावों को कभी नहीं छोड़ता.... आहाहा! स्वरूप जो अनन्त ज्ञान, आनन्दस्वभाव परमात्मा अपना, उसे कभी छोड़ता नहीं। आहाहा! ... आता है न? सर्वविशुद्ध में। अपने भाव को छोड़ता नहीं और परभाव को ग्रहता नहीं। स्वरूप है। स्वरूप आनन्दकन्द प्रभु, उसे छोड़ता नहीं और रागादि को ग्रहता नहीं। **कभी नहीं छोड़ता और जो कामक्रोधादिरूप परभावों को कभी ग्रहण नहीं करता है,...** आहाहा! **तीन लोक तीन काल की सब चीज़ों को केवल हमेशा जानता है,...** परमात्मा लेना है न? प्रगट दशा। **वही शिवस्वरूप तथा शान्तस्वरूप है।** लो! उसमें था न? शान्त शिव था न उसमें? १७ में। यहाँ यह है। यह शिव और शान्त है। दूसरा शिव कोई जगत का कर्ता है, ऐसा नहीं है। अनादि से कहते हैं न?

भावार्थ :- संसार अवस्था में शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव शक्तिरूप से परमात्मा है। आहाहा! अभव्य और एकेन्द्रिय और निगोद के सब जीव शक्तिरूप से परमात्मा ही हैं। स्वभाव अपेक्षा से परमात्मा है। द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से परमात्मा ही है। आहाहा! परम स्वरूप है, वह परमात्मा है। **व्यक्तिरूप से नहीं है।** अनन्त शक्तिरूप है, प्रगट नहीं। **ऐसा कथन अन्य ग्रन्थों में भी कहा है—'शिवमित्यादि' अर्थात्**

परमकल्याणरूप, निर्वाणरूप,... मोक्ष, महाशान्त अविनश्वर ऐसे मुक्ति-पद को जिसने पा लिया है,.... देखो! आहाहा! शिवमलयमरु... नहीं आता? णमोत्थुणं में आता है। सामायिक के पाठ में आता है। शिवमलयमरुमणंत... वह शिवस्वरूप है। शिव अर्थात् उपद्रवरहित शान्त... शान्त। अकेली उपशमधारा । अकषायपरिणति। अकेला अकषाय का परिणमन है। आहाहा!

ऐसे मुक्ति-पद को जिसने पा लिया है,... परमकल्याणरूप, निर्वाणरूप, महाशान्त अविनश्वर ऐसे मुक्ति-पद को... यह मुक्ति-पद है, वह कोई नाशवान नहीं है। मुक्ति हुई, वह हुई। **वही शिव है, अन्य कोई, एक जगत्कर्ता सर्वव्यापी सदा मुक्त शान्त....** नहीं। यह सिद्ध करना है। **अन्य कोई, एक जगत्कर्ता सर्व व्यापी सदा मुक्त शान्त नैयायिकों का तथा वैशेषिक आदि का माना हुआ नहीं है।** आहाहा! भगवान के पास जानेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। चुन्नीलाल है न? .... भगवत् के पास जाने की तैयारी हो गयी। थोड़ी स्थिति ऐसी हो गयी शरीर की। कौन भगवान? सर्वव्यापक। ऐसा। अरे!

यहाँ कहते हैं .... आत्मा सर्वव्यापक जगत का कर्ता कोई है नहीं। सदा मुक्त, सदा अनादि का मुक्त, ऐसा कोई है नहीं। शिवरूप **नैयायिकों का तथा वैशेषिक आदि का माना हुआ नहीं है। यह शुद्धात्मा ही शान्त है,...** प्रगटरूप से परमात्मा शान्त हैं। शक्तिरूप से आत्मा शान्त है। **शिव है, उपादेय है।** अब वे श्लोक आये।

गाथा - १९-२१

अथ पूर्वोक्तं निरञ्जनस्वरूपं सूत्रत्रयेण व्यक्तीकरोति -

१९) जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि णाउ णिरंजणु तासु।।१९।।

२०) जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणु।।२०।।

२१) अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु अत्थि ण हरिसु विसाउ।
अत्थि ण एक्कु वि दोसु जसु सो जि णिरंजणु भाउ।।२१।। तियलं।

यस्य न वर्णो न गन्धो रसः यस्य न शब्दो न स्पर्शः।
यस्य न जन्म मरणं नापि नाम निरञ्जनस्तस्य।।१९।।

यस्य न क्रोधो न मोहो मदः यस्य न माया न मानः।
यस्य न स्थानं न ध्यानं जीव तमेव निरञ्जनं जानीहि।।२०।।

अस्ति न पुण्यं न पापं यस्य अस्ति न हर्षो विषादः।
अस्ति न एकोऽपि दोषो यस्य स एव निरञ्जनो भावः।।२१।। त्रिकलम्।

यस्य मुक्तात्मनः शुक्लकृष्णरक्तपीतनीलरूपपञ्जप्रकारवर्णो नास्ति, सुरभिदुरभि-रूपोद्विप्रकारो गन्धो नास्ति, कटुकतीक्ष्णमधुराम्लकषायरूपः पञ्चप्रकारो रसो नास्ति, भाषात्मकाभाषात्मकादिभेदभिन्नः शब्दो नास्ति, शीतोष्णस्निग्धरूक्षगुरुलघुमृदुकठिनरूपो-ऽष्टप्रकारः स्पर्शो नास्ति, पुनश्च यस्य जन्म मरणमपि नैवास्ति तस्य चिदानन्दैकस्वभावपरमात्मनो निरञ्जनसंज्ञां लभते।। पुनश्च किंरूपः स निरञ्जनः। यस्य न विद्यते। किं किं न विद्यते। क्रोधो मोहो विज्ञानाद्यष्टविधमदभेदो यस्यैव मायामानकषायो यस्यैव नाभिहृदयललाटादिध्यानस्थानानि चित्तनिरोधलक्षणध्यानमपि यस्य न तमित्थंभूतं स्वशुद्धात्मानं हे जीव निरञ्जनं जानीहि। ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपसमस्तविभावपरिणामान् त्यक्त्वा स्वशुद्धात्मा-नुभूतिलक्षणनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वानुभवेत्यर्थः।। पुनरपि किंस्वभावः स निरञ्जनः। यस्यास्ति न। किं किं नास्ति। द्रव्यभावरूपं पुण्यं पापं च।। पुनरपि किं नास्ति। रागरूपो हर्षो द्वेषरूपो

विषादश्च। पुनश्च। नास्ति क्षुधाद्यष्टादशदोषेषु मध्ये चैकोऽपि दोषः। स एव शुद्धात्मा निरञ्जन इति हे प्रभाकरभट्ट त्वं जानीहि। *स्वशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणवीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वानु-भवेत्यर्थः। किं च। एवंभूतसूत्रत्रयव्याख्यातलक्षणो निरञ्जनो ज्ञातव्यो न चान्यः कोऽपि निरञ्जनोऽस्ति परकल्पितः। अत्र सूत्रत्रयेऽपि विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावो योऽसौ निरञ्जनो व्याख्यातः स एवोपादेय इति भावार्थ :।।१९-२१।।

आगे पहले कहे हुए निरंजनस्वरूप को तीन दोहा-सूत्रों से प्रगट करते हैं –

जिसके नहीं है वर्ण रस ना गन्ध ना स्पर्श ना।
ना शब्द जानो निरंजन जिसके जनम ना मरण ना।।१९।।

जिसके न क्रोध न मोह मद ना मान माया है नहीं।
स्थान भी ना ध्यान ना जानो निरंजन है वही।।२०।।

जिसके नहीं है पुण्य ना ही पाप हर्ष विषाद ना।
वह ही निरंजन भाव जिसमें दोष होते रंच ना।।२१।।

अन्वयार्थ :- [यस्य] जिस भगवान् के [वर्णः] सफेद, काला, लाल, पीला, नीलास्वरूप पाँच प्रकार वर्ण [न] नहीं है, [गंधः रसः] सुगंधदुर्गन्धरूप दो प्रकार की गंध [न] नहीं है, मधुर, आम्ल (खट्टा), तिक्त, कटु, कषाय (क्षार) रूप पाँच रस नहीं हैं [यस्य] जिसके [शब्दः न] भाषा अभाषारूप शब्द नहीं है अर्थात् सचित्त-अचित्त-मिश्ररूप कोई शब्द नहीं है, सात स्वर नहीं हैं, [स्पर्शः न] शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, गुरु, लघु, मृदु, कठिनरूप आठ तरहका स्पर्श नहीं है, [यस्य] और जिसके [जन्म न] जन्म, जरा नहीं है, [मरणं नापि] तथा मरण भी नहीं है [तस्य] उसी चिदानंद शुद्धस्वभाव परमात्मा की [निरंजनं नाम] निरंजन संज्ञा है, अर्थात् ऐसे परमात्मा को ही निरंजनदेव कहते हैं। फिर वह निरंजनदेव कैसा है – [यस्य] जिस सिद्ध परमेष्ठी के [क्रोधः न] गुस्सा नहीं है, [मोहः मदः न] मोह तथा कुल जाति आदि आठ तरह का अभिमान नहीं है, [यस्य माया न मानः न] जिसके माया व मान कषाय नहीं है, और [यस्य] जिसके [स्थानं न] ध्यान के स्थान नाभि, हृदय, मस्तक आदि नहीं है [ध्यानं न] चित्त के

---

* स्वशुद्ध आत्मा को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर अनुभव यह अर्थ है।

रोकनेरूप ध्यान नहीं है अर्थात् जब चित्त ही नहीं है तो रोकना किसका हो, [स एव] ऐसे निजशुद्धात्मा को हे जीव, तू जान। सारांश यह हुआ कि अपनी प्रतिसिद्धता (बड़ाई) महिमा, अपूर्व वस्तु का मिलना और देखे-सुने भोग इनकी इच्छारूप सब विभाव परिणामों को छोड़कर अपने शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप निर्विकल्पसमाधि में ठहरकर उस शुद्धात्मा का अनुभव कर। पुनः वह निरंजन कैसा है – [यस्य] जिसके [पुण्यं न पापं न अस्ति] द्रव्यभावरूप पुण्य नहीं, तथा पाप नहीं है, [हर्षः विषादः न] रागद्वेषरूप खुशी व रंज नहीं हैं, [यस्य] और जिसके [एकः अपि दोषः] क्षुधा (भूख) आदि दोषों में से एक भी दोष नहीं है [स एव] वही शुद्धात्मा [निरंजनः] निरंजन है, ऐसा तू [भावय] जान।

भावार्थ :- ऐसे निज शुद्धात्मा के परिज्ञानरूप वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में स्थित होकर तू अनुभव कर। इस प्रकार तीन दोहों में जिसका स्वरूप कहा गया है, उसे ही निरंजन जानो, अन्य कोई भी परिकल्पित निरंजन नहीं है। इन तीनों दोहों में जो निर्मल ज्ञानदर्शनस्वभाववाला निरंजन कहा गया है, वही उपादेय है।।१९-२१।।

गाथा - १९-२१ पर प्रवचन

---

१९) जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि णाउ णिरंजणु तासु।।१९।।

२०) जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणु।।२०।।

२१) अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु अत्थि ण हरिसु विसाउ।
अत्थि ण एक्कु वि दोसु जसु सो जि णिरंजणु भाउ।।२१।। तियलं।

निरंजनस्वरूप को तीन दोहा-सूत्रों से प्रगट करते हैं- जिस भगवान के सफेद, काला, लाल, पीला, नीलास्वरूप पाँच प्रकार वर्ण नहीं है,... भगवान को किसी प्रकार का वर्ण नहीं है। रंग-रंग। रंग के पाँच प्रकार। एक अर्जिका यहाँ आयी थी। उससे किसी ने पूछा कि आत्मा कैसा ? पहला लाल और बाद में हो सफेद। पहले आत्मा

लाल दिखता है, फिर आगे बढ़ जाये तो सफेद दिखता है। अर्जिका कहे। कुछ खबर नहीं होती। सीधे बाहर में वस्त्र बदले, इसलिए हो गये त्यागी। रोटियाँ तो शुरु हो जाये।

मुमुक्षु : त्यागी तो है ही अनादि का।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्यागी ही है आत्मा का। आत्मा का त्यागी ही है। आहाहा!

यहाँ कहा न? उपादान ... है कब? ऐसा त्रिकाली आत्मा, वह उपादेय है, तब उसे मिथ्यात्वादि का त्याग होता है। समझ में आया? बाह्य त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है ही कहाँ? आहाहा! कहा न? अपना जो स्वभाव है नित्य, ध्रुव, उसको इसने कभी छोड़ा नहीं और रागादि भाव है, उन्हें कभी इसने ग्रहण नहीं किया। परवस्तु तो ग्रही नहीं, परन्तु रागादि भी जिसने ग्रहण नहीं किये। ऐसा चैतन्यबिम्ब प्रभु, वही व्यक्ति का विषय और वही उपादेय है। और परमात्मपद से प्रगट पर्याय है, उसे भी उपादेय कहकर कहा गया है। आहाहा! आत्मा सफेद-श्वेत नहीं है, ऐसा कहते हैं। सफेद है न? सफेद-श्वेत नहीं। सफेद तो रंग है। काला नहीं, लाल नहीं। आँख बन्द करे और अन्दर दिखे न लाल? वह तो जड़ की अवस्था है। आँख के नीचे ऐसे दवाब करे, तब ऐसा दिखे न? लाल, पीले, वह जड़ है। पीला नहीं, हरा नहीं। पाँच प्रकार का वर्ण नहीं।

गन्ध, रस, सुगन्ध, दुर्गन्धरूप दो प्रकार की गन्ध नहीं है,... सुगन्ध-दुर्गन्ध। आत्मा का ध्यान करे, तब सुगन्ध आवे। गन्ध ... उसमें है नहीं। वह तो जड़ की अपेक्षा है। आहाहा! आनन्द की गन्ध है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे। वहाँ गन्ध नहीं तथा रस नहीं। यह तो अपने आ गया, नहीं? ४९ (गाथा)। **मधुर...** मीठा रस आत्मा में नहीं। मीठा-मीठा शक्कर का रस आत्मा में नहीं। **आम्ल (खट्टा),...** खट्टा (रस) आत्मा में नहीं। **तिक्त,...** कड़वा रस आत्मा में नहीं। **कटु,...** चरपरा। चरपरा और कड़वा। आहाहा! और **कषायला (क्षार) रूप पाँच रस नहीं हैं...** आहाहा! भगवान तो अरूपी है। यह तो आ गया है ४९में। आहाहा! वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तो जड़ के हैं। वर्ण, गन्ध आदि गुण जड़ के और उसकी रूप आदि जो पर्याय (होती है), वह तो जड़ की पर्याय है। सफेद, काली तो पर्याय है। वर्ण, वह गुण है और सफेद आदि तो पर्याय है। वह गुण और पर्याय दोनों आत्मा में नहीं। आहाहा! आत्मा में आनन्दगुण और उसकी पर्याय का वेदन, वह है उसमें। आहाहा!

जिसके भाषा अभाषारूप शब्द नहीं है,... अपने आ गया है ४९ में। शब्द की पर्याय आत्मा में नहीं। भाषा अन्दर होती है किसमें ? जड़ में। आहाहा ! **भाषा अभाषारूप शब्द...** भाषारूप है न यह ? ... अभाषा है। आवाज आवे, वह अभाषा है। वह सब पर्याय जड़ की है। आत्मा में नहीं है। वह शब्द की पर्याय जड़ की है।

मुमुक्षु : जड़ की है, आत्मा के निमित्त से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा से बिल्कुल नहीं होती। जड़ से होती है। आहाहा !

मुमुक्षु : जड़ को कहाँ खबर है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं, इसलिए उसका परिणमना नहीं ? वस्तु टिकी रहकर बदलना उसका स्वभाव है या नहीं ? भाषारूप से परिणमता है। उसे जानने की आवश्यकता है ? तो परिणमे ऐसा है ? तो जाननेवाला... सिद्ध होगा। सभी द्रव्य बदलते हैं अपनी जड़ की शक्ति से बदलते हैं। आहाहा ! देखो न ! यह परमाणु की पर्याय नहीं थी, वह बदली है। आहार रक्तरूप हुई है।

मुमुक्षु : खाया अनाज और परिणमा रक्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परिणमी पर्याय। यह परिणमी परमाणु की पर्याय। परमाणु कायम रहकर रक्त (रूप हुए) । ... एक व्यक्ति ने कहा था, स्त्री है वह बालकों को बड़ा करने का कारखाना है। गर्भ में हो तब ... इसी प्रकार यह ... अनाज को रक्त कर डाले, ऐसा यह कारखाना है। आहाहा ! शब्द नहीं।

अर्थात् सचित्त अचित्त मिश्ररूप कोई शब्द नहीं है,... आहाहा ! शब्द तो सचेत नहीं परन्तु जीव बोलता है, इतनी अपेक्षा से सचित कहा जाता है। जैसे यह सचेत शरीर कहा जाता है न जीव हो (तब) ? सचेत शरीर, ऐसा कहा जाता है न ? वह तो जीव है, इतनी अपेक्षा से। शरीर तो जड़ ही है। इसी प्रकार भाषा तो जड़ ही है। परन्तु निमित्त से... व्यवहार से... सचेत शरीर नहीं कहते ? वनस्पति का सचेत शरीर है। इसका अर्थ (यह कि) शरीर तो जड़ है परन्तु अन्दर आत्मा है, उसकी अपेक्षा लेकर शरीर को सचेत कहा जाता है। इसी प्रकार भाषा को कहते हैं।

सचित्त अचित्त मिश्ररूप कोई शब्द नहीं है, सात स्वर नहीं है,... आहाहा ! सात

प्रकार के स्वर नहीं। शब्द नहीं न? स्वर-स्वर व्यंजन, आवाज, वह आत्मा में नहीं है। शार्दुलविक्रीडित छन्द बोले, लो! बसंततिलका। यह सब स्वर जड़ के हैं। आत्मा में कहाँ है? स्पर्श नहीं। शीतल, गर्म, स्पर्श आत्मा में नहीं हैं। यह सब पर्याय ली है। **शीत, उष्ण, स्निग्ध,...** चिकनी। **रूक्ष,...** रूखी। **गुरु, लघु, मृदु, कठिनरूप आठ तरह का स्पर्श (आत्मा में) नहीं है,...** शीतल तो आत्मा है या नहीं? शीतल स्वभाव। वह तो शीतल अपना आनन्दस्वभाव उसे है। शीतल, वह कहीं आत्मा में नहीं है।

और जिसके जन्म, जरा नहीं है,... भगवान जन्मे कैसे और आत्मा मरे कैसे? आहाहा! **उसी चिदानन्द शुद्धस्वभाव परमात्मा की...** आहाहा! चिदानन्द, ज्ञानानन्द ऐसे शुद्ध स्वभाव परमात्मा की **निरंजन संज्ञा है,...** अंजन नहीं। यह सब मल (नहीं है), निरंजन है। **अर्थात् ऐसे परमात्मा को ही निरंजनदेव कहते हैं।** ऐसे परमात्मा को निरंजनदेव कहते हैं। आहाहा! **फिर वह निरंजनदेव कैसा है ?—जिस सिद्ध परमेष्ठी के गुस्सा नहीं है,....** देखा! सिद्ध परमेष्ठी लिये। जिनकी प्रगट दशा है। **गुस्सा नहीं है, मोह...** नहीं है। कुल नहीं, जाति नहीं। **कुल जाति आदि तरह का अभिमान नहीं है,...** मद है न? मद। जाति का मद, कुल का मद,... का मद, ईश्वर का मद उन्हें नहीं है।

जिसके माया व मान कषाय नहीं है, और जिसके ध्यान के स्थान नाभि, हृदय, मस्तक आदि नहीं है... लो। ध्यान का स्थान नाभि, हृदय, मस्तक इत्यादि नहीं। **चित्त के रोकनेरूप ध्यान नहीं है,...** कहाँ है? परमात्मा को ध्यान कहाँ है? सर्वज्ञ हुए, उन्हें ध्यान नहीं है। **अर्थात् जब चित्त ही नहीं है तो रोकना किसका हो,...** आहाहा! **ऐसे निजशुद्धात्मा को हे जीव, तू जान।** है तो सिद्ध परमेष्ठी ऐसे। ऐसा तू है। आहाहा! **निजशुद्धात्मा को हे जीव, तू जान।** निज शुद्धात्मा को, हे जीव! तू ऐसा जान। आहाहा! नियमसार में लिया है न? प्रायशिचत्त की व्याख्या में आत्मा प्रायश्चित्तस्वरूप है, ऐसा लिया है। प्राय... ज्ञानस्वरूप है। प्रायश्चित्त स्वरूप ही आत्मा है। प्रायश्चित्त की पर्याय प्रगट होती है, वह तो पर्याय में। परन्तु वस्तु प्रायश्चित्तस्वरूप ही है। ऐसा कहकर जो दशा प्रगट होती है, वह स्वरूप से ही वह तो त्रिकाल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वस्तु को प्रायश्चित्त कहा। क्योंकि प्रायश्चित्त की निर्मल पर्याय प्रगट होती है न? निर्मल पर्याय है, वैसा ही त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा! समझ में आया?

नियम नहीं लिया? नियमसार। मोक्ष का मार्ग जो है, वह कार्यनियमसार है। मोक्ष का मार्ग। परन्तु नियम जो पर्याय में है। फिर वह त्रिकाली कारणनियम है। जैसी पर्याय पूर्ण हुई, वैसा ही उसका पूर्ण स्वरूप कारणनियम त्रिकाल है। त्रिकाली को कारणनियम कहा। त्रिकाली को कारणआत्मा, कारणपरमात्मा कहा। आहाहा! चेतना .... त्रिकाली चेतना, ज्ञानचेतना त्रिकाली है। वहाँ पर्याय में ज्ञानचेतना एकाग्र होती है पर्याय। ज्ञानचेतना त्रिकाल है। अरे! नियमसार में लिया है।

ऐसा आत्मा है—ऐसा तू बराबर जान, निर्णय कर—ऐसा कहते हैं। है? **ऐसे निजशुद्धात्मा को...** निज—अपने आत्मा को, **हे जीव! तू जान।** आहाहा! **सारांश यह हुआ कि अपनी प्रतिसिद्धता (बड़ाई) महिमा,...** छोड़ दे। मैं बड़ा हूँ... बड़ा हूँ... अपनी बढ़ाई करने का भाव है, वह अभिमान है। आहाहा! **बड़ाई (महिमा), अपूर्व वस्तु का मिलना,....** आहाहा! कभी मिला नहीं, वह मिलने पर प्रसन्न... प्रसन्न हो जाता है। छोड़ दे यह सब अब, ऐसा तो अनन्त बार मिला है।

और देखे-सुने भोग.... देखे हुए, सुने हुए भोग। **इनकी इच्छारूप सब विभाव परिणामों छोड़कर अपने शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप निर्विकल्पसमाधि में ठहरकर...** यह आत्मा को जाने किस प्रकार? कहते हैं। ऐसा आत्मा है, उसे जान, किस प्रकार? आहाहा! **महिमा, अपूर्व वस्तु का मिलना, देखे-सुने भोग इनकी इच्छारूप सब विभाव परिणामों को छोड़कर अपने शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप...** शुद्धात्मा त्रिकाली, इसका वर्तमान अनुभूतिस्वरूप **निर्विकल्पसमाधि में ठहरकर उस शुद्धात्मा का अनुभव कर।** ऐसी बात है। जान! लिया था न?

मुमुक्षु : ....सारांश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सो जि णिरंजणु जाणु।' है न, २० में है। १९ में भी है। **'णाउ णिरंजणु तासु' 'णिरंजणु जाणु' 'णिरंजणु भाउ'** है न? प्रत्येक गाथा का अन्तिम पद है। आहाहा!

अंजन अर्थात्.... आदि का मैल उसमें नहीं है, बढ़ाई, शक्ति आदि नहीं। पर को छोड़ दे। भगवान पूर्णानन्द के नाथ को अन्तर्मुख की निर्विकल्प समाधि में आकर उसे

अनुभव कर। आहाहा! भारी जवाब, भाई! **अपने शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप...** है न? आहाहा! अनुभूति अर्थात् अनुभव। 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावै विश्राम। रस स्वादत सुख उपजे, अनुभव ताको नाम।' आहाहा! **शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप निर्विकल्प समाधि में...** शिष्य को गुरु कहते हैं। शिष्य कहीं मुनि नहीं अथवा केवली नहीं या आठवें गुणस्थान में चढ़ा नहीं। कहते हैं न? निर्विकल्पसमाधि आठवेंवाला (होता है)। यह तो नीचे की बात है। यह तो अपने आ गया न! विचिक्षण की व्याख्या आ गयी। निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति है, उसे विचिक्षण अर्थात् अन्तरात्मा कहा जाता है। चौथे गुणस्थान से अन्तरात्मा, निर्विकल्प समाधि से प्राप्त है, उसे अन्तरात्मा कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया था न ... नहीं आया था? विचक्षण अन्तरात्मा है। अन्तरात्मा चौथे से बारहवें और उसे निर्विकल्पसमाधि... यहाँ यह कहते हैं। आहाहा!

अन्तर भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसकी अनुभूति से निर्विकल्प समाधि में रहकर ध्यान कर। उसे पहिचान, ऐसा कहते हैं। अनुभव कर। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब बातें अनेक प्रकार की आवें। भगवान शुद्ध आत्मा वस्तु द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल परमात्मस्वरूप ही है। शक्तिरूप। उसका अनुभूतिस्वरूप ध्यान करके... आहाहा! उसके सन्मुख की दृष्टि करके विकल्प बिना शान्ति में **ठहरकर...** समाधि अर्थात् शान्त... शान्त... शान्त...। यह कषायभाव है, इतना असर होता है। आकुलता है, अशान्ति है। वह अशान्तपना छोड़कर शान्ति... शान्ति... शान्ति... ऐसे शान्तभाव में **ठहरकर...** समाधि का अर्थ किया। **उस शुद्धात्मा का अनुभव कर।** लो! यह गृहस्थाश्रम में शिष्य को भी ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शिष्य तो मुनि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले मुनि हो। परन्तु मुनि कहे, मैं जानता नहीं, इसकी अपेक्षा... है। मैंने यह कभी किया नहीं। तुम मुझे सुनाओ, ऐसा वहाँ से लिया है न! पहले से यह लिया है। आहाहा! मैंने मेरे आनन्द के नाथ को कभी देखा नहीं, जाना नहीं, अनुभव नहीं किया तो यह बात करो न मुझे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कभी मैंने मेरा आत्मा, आनन्द के स्वभाव को जाना नहीं। आहाहा!

इसका प्रश्न करते हैं। लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो सब निश्चय है। परन्तु निश्चय चौथे में निश्चय की बात आती है। चौथे गुणस्थान में भी पूर्णानन्दस्वरूप ज्ञान और आनन्द से भरपूर पदार्थ, उसके सन्मुख होकर, निर्विकल्प समाधि द्वारा उसमें स्थिर होकर, उसे अनुभव कर। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धात्मा का अनुभव कर... शुद्धात्मा का अनुभव अर्थात्? कहीं त्रिकाल का वेदन नहीं है। परन्तु शुद्धात्मा-सन्मुख हुआ, उसे शुद्धात्मा का अनुभव कहने में आता है। है तो पर्याय का अनुभव। आहाहा! इस ओर राग और द्वेष का जो अनुभव था, पर दिशा सन्मुख ढलने से पुण्य और पाप का जो अनुभव था, वह विकारी अनुभव था। इस ओर ढलने पर निर्विकल्प समाधि में स्थिर होकर अनुभव कर। यह वस्तु तो वस्तु है। वस्तु के सन्मुख होकर शान्ति प्रगट हुई, उसे निर्विकल्प आत्मा का ध्यान और अनुभव किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें! जादवजीभाई! कभी कलकत्ता में कहीं थी नहीं।

शुद्ध चैतन्यघन वस्तु पड़ी है या नहीं? उसे अन्तर में स्वभावसन्मुख होकर विकल्परहित शान्ति में स्थिर होकर उसे अनुभव कर। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? यहाँ ऐसा नहीं कहा कि आओ... स्थिर, राग पहले आवे व्यवहार और उसके बाद अनुभूति का ... करे, ऐसा कुछ कहा नहीं। वहाँ तो छोड़कर, ऐसा कहा। है न? विभाव परिणाम को छोड़कर। व्यवहार राग की मन्दता के भाव हैं, उन्हें छोड़कर। उन्हें रखकर यह निर्विकल्प अनुभव होता है?

मुमुक्षु : छोड़ने का उपाय बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस ओर मुड़ा इसलिए वह छूट जाता है। उपदेश में तो क्या आवे? .... ऐसा है? ... परन्तु वसतु की ओर के अनुभव में स्थिर होने से राग छूट जाता है, उसे 'छोड़ा' ऐसा कहा जाता है।

पुनः वह निरंजन कैसा है जिसे द्रव्यभावरूप पुण्य नहीं,... आहाहा! आत्मा में द्रव्यपुण्य और भावपुण्य दोनों नहीं हैं। भाव जो व्यवहार कहा, वह आत्मा में नहीं है, ऐसा कहते हैं। भावपुण्य राग-शुभराग, वह आत्मा में नहीं है। उसे छोड़कर, इसका ध्यान कर, ऐसा कहा है। आहाहा! **द्रव्यभावरूप पुण्य नहीं, तथा पाप नहीं है,...** आहाहा! **राग-द्वेषरूप खुशी...** राग से खुशी और द्वेष से रंज—खेद होना, यह इसमें नहीं है। राग से प्रसन्न होना और द्वेष से रंजक, ऐसा खेद होना, वह भी इसमें नहीं है। आहाहा!

और जिसके क्षुधा आदि दोषों.... अठारह दोष है न? **क्षुधा आदि दोषों में से एक भी दोष नहीं है....** आहाहा! क्षुधा-तृषा आदि वस्तु में कहाँ है? परमात्मा भी क्षुधा-तृषा रहित पर्याय में हो गये हैं। क्योंकि वस्तु में नहीं तो पर्याय में (रहित) हो गये हैं। आहाहा! वे कहे, भगवान को भी आहार है, शरीर को रोग है, दवा करते हैं। बहुत अन्तर कर दिया है। लोगों को... जैसा बनो। ... गँवावे। परमात्मा को मनुष्य जैसा बना दिया। उन्हें रोग हो, उसकी दवा ले और खाये। आहाहा! जिसके स्वरूप में ही क्षुधा-तृषा नहीं, उसकी परिणति जहाँ प्रगट हुई, उसे क्षुधा-तृषा कहाँ से हुई? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **वही शुद्धात्मा निरंजन है, ऐसा तू जान। ऐसे निज शुद्धात्मा के...** वापस लिया, देखा! **ऐसे निज शुद्धात्मा के परिज्ञानरूप...** उसका ज्ञानरूप। सर्वथा प्रकार से, उसका ज्ञानरूप **वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर....** आहाहा! **तू अनुभव कर।**

इस प्रकार तीन दोहों में जिसका स्वरूप कहा गया है, उसे ही निरंजन जानो,.... उसे निरंजन जान, ऐसा कहते हैं। तीनों में अन्त में निरंजन है न? **अन्य कोई भी परिकल्पित निरंजन नहीं है।** दूसरा कोई कल्पना करके निरंजन भगवान नहीं है। **इन तीन दोहों में जो निर्मल ज्ञान दर्शनस्वभाववाला निरंजन कहा गया है,...** निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव निरंजन, **वही उपादेय है।** लो! भावार्थ कहा। आगमार्थ, मतार्थ और यह भावार्थ। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव, ऐसा जो निरंजन भगवान आत्मा, वही धर्मी को उपादेय है, आदरणीय है, ग्रहण करनेयोग्य है। बाकी सब छोड़नेयोग्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २२

अथ धारणाध्येययन्त्रमन्त्रमण्डलमुद्रादिकं व्यवहारध्यानविषयं मन्त्रवादशास्त्रकथितं यत्तन्निर्दोषपरमात्माराधनाध्याने निषेधयन्ति –

२२) जाणु ण धारणु धेउ ण वि जासु ण जंतु ण मंतु।
जासु ण मंडलु मुद्द ण वि सो मुणि देउँ अणंतु।।२२।।

यस्य न धारणा ध्येयं नापि यस्य न यन्त्रं न मन्त्रः।
यस्य न मण्डलं मुद्रा नापि तं मन्यस्व देवमनन्तम्।।२२।।

यस्य परमात्मनो नास्ति न विद्यते। किं किम्। कुम्भकरेचकपूरकसंज्ञावायुधारणादिकं प्रतिमादिकं ध्येयमिति। पुनरपि किं किं तस्य। अक्षररचनाविन्यासरूपस्तम्भनमोहनादिविषयं यन्त्रस्वरूपं विविधाक्षरोच्चारणरूपं मन्त्रस्वरूपं च अपमण्डलवायुमण्डलपृथ्वीमण्डलादिकं गारुडमुद्राज्ञानमुद्रादिकं च यस्य नास्ति तं परमात्मानं देवमाराध्यं द्रव्यार्थिकनयेनानन्तम–विनश्वरमनन्तज्ञानादिगुणस्वभावं च मन्यस्व जानीहि। अतीन्द्रियसुखास्वादविपरीतस्य जिह्वेन्द्रिय–विषयस्य निर्मोहशुद्धात्मस्वभावप्रतिकूलस्य मोहस्य वीतरागसहजानन्दपरमसमरसीभावसुख–रसानुभवप्रतिपक्षस्य नवप्रकाराब्रह्मव्रतस्य वीतरागनिर्विकल्पसमाधिघातकस्य मनोगतसंकल्प–विकल्पजालस्य च विजयं कृत्वा हे प्रभाकरभट्ट शुद्धात्मानमनुभवेत्यर्थः। तथा चोक्तम् – 'अक्खाण रसणी कम्माण मोहणी तह वयाण बंभं च। गुत्तिसु य मणगुत्ती चउरो दुक्खेहिं सिज्झंति।।'।।२२।।

आगे धारणा, ध्येय, यंत्र, मंत्र, मंडल, मुद्रा आदिक व्यवहारध्यान के विषय मंत्रवाद शास्त्र में कहे गए हैं, उन सबका निर्दोष परमात्मा की आराधनारूप ध्यान में निषेध किया है।

जिसके नहीं है धारणा ना ध्येय यन्त्र न मन्त्र ना।
मण्डल नहीं मुद्रा नहीं हैं अन्त बिन जिन जानना।।२२।।

अन्वयार्थ :– [यस्य] जिस परमात्मा के [धारणा न] कुंभक, पूरक, रेचक नामवाली वायुधारणादिक नहीं है, [ध्येयं नापि] प्रतिमा आदि ध्यान करने योग्य पदार्थ भी नहीं है, [यस्य] जिसके [यन्त्रः न] अक्षरों की रचनारूप स्तंभन मोहनादि विषयक

यंत्र नहीं है, [मन्त्रः न] अनेक तरह के अक्षरों के बोलनेरूप मंत्र नहीं है, [यस्य] और जिसके [मण्डलं न] जलमंडल, वायुमंडल, अग्निमंडल, पृथ्वीमंडलादिक पवन के भेद नहीं हैं, [मुद्रा न] गारुडमुद्रा, ज्ञानमुद्रा आदि मुद्रा नहीं हैं, [तं] उसे [अनन्तम्] द्रव्यार्थिकनय से अविनाशी तथा अनंत ज्ञानादिगुणरूप [देवम् मन्यस्व] परमात्मदेव जानो।

भावार्थ :- अतीन्द्रिय आत्मीक-सुख के आस्वाद से विपरीत जिह्वाइंद्री के विषय (रस) को जीत के निर्मोह शुद्ध स्वभाव से विपरीत मोहभाव को छोड़कर और वीतराग सहज आनंद परम समरसीभाव सुखरूपी रस के अनुभव का शत्रु जो नौ तरह का कुशील उसको तथा निर्विकल्पसमाधि के घातक मन के संकल्प-विकल्पों को त्यागकर हे प्रभाकर भट्ट, तू शुद्धात्मा का अनुभव कर। ऐसा ही दूसरी जगह भी कहा है - ''अक्खाणेति'' इसका आशय इस तरह है, कि इन्द्रियों में जीभ प्रबल होती है, ज्ञानावरणादि आठ कर्मों में मोह कर्म बलवान होता है, पाँच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रबल है और तीन गुप्तियों में से मनोगुप्ति पालना कठिन है। ये चार बातें मुश्किल से सिद्ध होती हैं।।२२।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ९, रविवार
दिनांक-२०-०६-१९७६, गाथा-२२-२३, प्रवचन-१३

---

२२ गाथा। परमात्मप्रकाश।

**२२) जाणु ण धारणु धेउ ण वि जासु ण जंतु ण मंतु।
जासु ण मंडलु मुद्द ण वि सो मुणि देउँ अणंतु।।२२।।**

आहाहा! **आगे धारणा, ध्येय, यन्त्र, मन्त्र, मण्डल, मुद्रा आदिक व्यवहारध्यान के विषय मन्त्रवाद शास्त्र में कहे गये हैं, उन सबका निर्दोष परमात्मा की आराधनारूप ध्यान में निषेध किया है।** आहाहा!

अन्वयार्थ :- जिस परमात्मा के... भगवान परमस्वरूप जो अनन्त आनन्द, ऐसी जो दिव्य शक्तिरूप स्वरूप, वह **कुम्भक, पूरक, रेचक नामवाली वायुधारणादिक,...** इनसे भी प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! देखो! **धारणादिक नहीं है,...** कोई धारणा या

कुम्भक, रेचक से प्राप्त हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है, कहते हैं। आहाहा! इसमें यह सिद्ध करना है कि जो परमात्मस्वरूप ध्रुव नित्य है, उसका आश्रय करने से ही आत्मधर्म प्राप्त कर सकता है। उसे कोई व्यवहार के विकल्प हो तो ध्यान हो, ऐसा इनकार करते हैं। यहाँ सूक्ष्म बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ इनकार करते हैं, दूसरी जगह....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यत्र भी इनकार ही किया है। दूसरी जगह व्यवहार है, ऐसा बतलाया है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : उसे साधन कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधन व्यवहार से, उपचार से कहा है। है नहीं, उसे निमित्त का सहचर देखकर (साधन कहा है)। आता है... ? यह सातवें अध्याय में आता है, टोडरमलजी (कृत) मोक्षमार्गप्रकाशक (में आता है)। ... ऐसा लिया है कि सर्वत्र यह लक्षण जानना। है न वहाँ ? आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन, वह तो स्व चैतन्यमूर्ति परमदेव अनन्त आनन्द का नाथ भगवान, उसके ध्येय और आश्रय से प्रगट होता है। उसे सच्चा समकित कहा जाता है। परन्तु साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प होता है। सहचर देखकर उपचार से उसे समकित का आरोप दिया, व्यवहार से। है नहीं।

मुमुक्षु : है नहीं और उपचार करके कहना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ है, उसका उपचार करना है। माल तुलता है, साथ में बोरी तुलती है। कोथळा समझते हो ? बोरी। चावल की बोरी होती है न ? चार मण और ढाई सेर (ऐसा बोले)। तो चार मण तो चावल है, और ढाई सेर बोरी है। साथ में कहने में आता है। परन्तु वह बोरी कहीं चावल नहीं है। चावल ढाई सेर घटे तो वह बोरी कहीं पकाने में काम आवे ?

मुमुक्षु : परन्तु चावल बोरी में तो रहते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। चावल चावल में रहते हैं। बोरी में नहीं और बोरी के कारण नहीं। ऐसी यह बातें! अभी तो लोगों को निमित्त से होता है... निमित्त से होता है।

अरे! प्रभु! यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! यह धारणा कोई अन्दर रखे कि ऐसा है और ऐसा है और ऐसा है। उससे भी यह प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। दूसरे प्रकार से कहें तो व्यवहाररत्नत्रय की धारणा जो विकल्प में होती है, उससे यह प्राप्त हो, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! वह निरालम्बी चीज़ ऐसी है कि उसके ध्यान में दूसरे की कोई अपेक्षा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। कहा न?

द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणादि जं मुणी णियमा**' यह क्या कहते हैं? देखो न! दो प्रकार का मोक्षमार्ग कथनरूप है न इसलिए (दो प्रकार कहे), ध्यान में प्राप्त होते हैं। अर्थात्? आत्मा सीधा स्वभाव का आश्रय लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन करता है। उसमें राग बाकी रहा उसे, ध्यान में भी राग बाकी रहा, उसे उपचार-व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! ऐसी गजब चीज़, भाई! अभी तो यहाँ निमित्त से होता है और ऐसा है और वैसा है, झगड़े। इस व्यवहार का निमित्त है। इससे नहीं होता, ऐसा कहते हैं। निमित्त है न अन्दर। वह बाह्य निमित्त है। आहाहा! देखो!

कुम्भक, पूरक, रेचक नामावली वायुधारणादिक नहीं है,... इसमें कुछ नहीं। आहाहा! **प्रतिमा आदि ध्यान करनेयोग्य पदार्थ भी नहीं है,...** प्रतिमा सर्वज्ञ परमात्मा लक्ष्य में ले और फिर आत्मा की प्राप्ति हो, ऐसा है नहीं। है? **प्रतिमा आदि...** देव-गुर कोई **ध्येय (ध्यान करनेयोग्य) पदार्थ भी नहीं है,...** आहाहा! यह ध्येय अन्दर है ही नहीं। ध्यान तो पूर्णानन्द का नाथ अनन्त... पाठ है न? देखो न! '**मुणि देउँ अणंतु**' है? आहाहा! '**मन्यस्व देवमनन्तम्।**' अनन्त जिसका स्वभाव ऐसा भगवान आत्मा, उसे मान और जान, बस यह। आहाहा! निश्चय की बात सूक्ष्म है। **प्रतिमा आदि ध्यान करनेयोग्य पदार्थ भी नहीं है,...** अहिरन्त का ज्ञान लक्ष्य में ले। अरिहन्त ऐसे... ऐसे। वह भी जहाँ अन्तर आत्मा को पकड़ने में कोई साधन है नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम।

जिसके अक्षरों की रचनारूप स्तम्भन मोहनादि विषयक यन्त्र नहीं है,... ॐ ऐसे अन्दर रचे न? वह कोई वस्तु है नहीं। आहाहा! ऐसे ॐ और मन्त्र और भगवान का स्मरण, इससे आत्मा प्राप्त हो, ऐसा आत्मा है ही नहीं। मूल तो '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यह बात सिद्ध करनी है। (समयसार) ११वीं गाथा। त्रिकाल भगवान अनन्त

ज्ञानमय प्रभु, परमात्मस्वरूप, नित्यस्वरूप, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। व्यवहार के आश्रय से और व्यवहार हो तो होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

अक्षरों की रचनारूप स्तम्भन मोहनादि विषयक यन्त्र नहीं है,... आहाहा! **अनेक तरह के अक्षरों के बोलनेरूप मन्त्र नहीं है,...** ॐ और अरि अ, सि, आ, उ, सा। आते हैं न सब? ऐसे मन्त्रों-फन्त्रों का विकल्प भी वहाँ नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। परमात्मप्रकाश है न? निश्चय परमात्मस्वरूप जो है, उसे अनुभव करने के लिये इस किसी चीज़ की उसे आवश्यकता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

और जिसके जलमण्डल, वायुमण्डल,.... ज्ञानार्णव में आता है। अन्दर विचार करे कि समुद्र ऐसा है, वायु ऐसी है। उसमें आत्मा विराजता है। ऐसी जो ज्ञानमुद्रा इत्यादि मुद्रा भी नहीं। **उसे...** अब कहते हैं। **उसे...** अर्थात् कौन? भगवान आत्मा को **'अनन्तम्'** अनन्त की व्याख्या की अब। **द्रव्यार्थिकनय से अविनाशी...** आहाहा! वस्तुरूप से देखने पर द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसे देखने पर वह अविनाशी चीज़ ऐसी की ऐसी अनादि-अनन्त पड़ी है। आहाहा! पाठ में **'मुणि देउँ अणंतु'** ऐसा आया न? उसे तू अनन्त जान। अनन्त को देवरूप से जान, ऐसा आया न? **'मुणि देउँ अणंतु'** अनन्त देव, उसे जान। यह अनन्त देव को जान की व्याख्या है। आहाहा!

द्रव्यार्थिकनय से अविनाशी तथा अनन्त ज्ञानादिगुणरूप.... वस्तु भगवान आत्मा वस्तुदृष्टि से देखे, जिस नय को द्रव्य का प्रयोजन है, उस द्रव्य की दृष्टि से देखें तो वह अनन्त अविनाशी तत्त्व ऐसा का ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : यह भाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव। वर्तमान भाव ऐसा पूर्ण है। आहाहा! अनन्त अर्थात् नाश न हो, यह तो अपेक्षित बात है। वस्तु वर्तमान अविनाशी वस्तु है। आहाहा!

अनन्त ज्ञानादिगुणरूप.... भाव। उसे **जानो।** है न? **'देवम् मन्यस्व' परमात्मदेव जानो।** आहाहा! **'देवम्'** अर्थात् परमात्मदेव, **'मन्यस्व'** अर्थात् जानो। आहाहा! वस्तुरूप से अविनाशी ध्रुव स्वरूप, वह अनन्त अर्थात् नाश न हो ऐसी चीज़ है, उसे देवरूप से

अन्तर में जान। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसे परमात्मस्वरूप में ध्यान में ध्येय उसे बना। आहाहा! ऐसा कहते हैं। परमात्मप्रकाश है न यह तो! **'देवम् मन्यस्व अनन्तम्'** जिसे धारणा ध्येय तन्त्र, मन्त्र नहीं, ऐसा जो भगवान आत्मा **'अनन्तम् देवम् मन्यस्व'** ध्रुव ऐसा देव आत्मा उसे जान। आहाहा!

अविनाशी भगवान परमानन्दमूर्ति प्रभु, वह देव दिव्य शक्तिवान है। वह देव है—परमात्मा है। उसे तू जान। उस पर दृष्टि दे। आहाहा! कठिन बात है। यह सब व्यवहारवाले कहते न, व्यवहार हो तो होता है और व्यवहार हो तो होता है। यहाँ तो इनकार किया है कि व्यवहार का तो निषेध हो जाता है। तब वह प्राप्त होता है। आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है। किसी लौकिक के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : यह ग्रन्थ बड़े-बड़े ऊँचे ग्रन्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँचा अर्थात् जैसा है, वैसा है। जो चीज़ है, ऐसे शब्द हैं। परमात्मा, यह शब्द है। तो आत्मा परमात्मास्वरूप है, वह शब्द को बतलाता है। परन्तु जिसे जानने में शब्द का भी अवलम्बन नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'अनन्तम् देवम् मन्यस्व' आहाहा! **अतीन्द्रिय आत्मीक-सुख के आस्वाद से विपरीत....** अतीन्द्रिय आत्मिकसुख का स्वाद जो अन्दर आना। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुखस्वरूप ही है। अनन्त देव है। वह अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप... आहाहा! उसके सुख के आस्वाद से विपरीत **जिव्हा इन्द्रिय के विषय...** आहाहा! **(रस) को जितने निर्मोह शुद्ध स्वभाव से विपरीत मोहभाव को छोड़कर....** आहाहा! परसन्मुख के विषय के रस को छोड़ और **निर्मोह शुद्ध स्वभाव से विपरीत मोहभाव को छोड़कर और वीतराग सहज आनन्द परम समरसीभाव सुखरूपी रस के अनुभव का शत्रु....** आहाहा! अस्ति-नास्ति करते हैं। **वीतराग सहज आनन्द परम समरसीभाव....** ओहोहो! ऐसा सुखरूपी रस उसके **अनुभव का शत्रु जो नौ तरह का कुशील उसको तथा निर्विकल्पसमाधि के घातक मन के संकल्प-विकल्पों को त्यागकर....** देखो! आहाहा!

व्यवहार के विकल्प हैं, वे निर्विकल्प समाधि को घातक हैं, ऐसा कहते हैं।

समझ में आया ? यह कहता है कि व्यवहार साधक और निश्चय साध्य। किस अपेक्षा से ? बापू! भाई! वीतराग मार्ग, वीतरागस्वभाव को प्राप्त करने में कोई पर की अपेक्षा है ही नहीं। ऐसा ही उसका स्वरूप है। आहाहा! बहुत सरस बात है! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द सुखरूप, उसका जो स्वाद जो अतीन्द्रिय आनन्द, उससे विपरीत वह संकल्प-विकल्प है। आहाहा! व्यवहार के जितने देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प-राग, पंच महाव्रत का राग... आहाहा! शास्त्र पठन का राग, ऐसे भाव से रहित भगवान है। अन्दर भगवान अनन्त अतीन्द्रिय सुख के सागर से भरपूर देव, उसके अतीन्द्रिय स्वाद से विरुद्ध यह सब विकल्प हैं, कहते हैं। आहाहा! इन विकल्पों से प्राप्त हो, ऐसा नहीं है— ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शत्रु है....

पूज्य गुरुदेवश्री : बैरी है, शत्रु है। आहाहा! इसका सब झगड़ा अभी। ऐ... सोनगढ़वाले व्यवहार का लोप करते हैं। निमित्त से होता है, ऐसा नहीं मानते। स्याद्वाद चाहिए, कथंचित् निमित्त से होता है और कथंचित् (उपादान से होता है)। यहाँ तो कहते हैं, निमित्त से नहीं परन्तु व्यवहार से नहीं होता, सुन! व्यवहार, वह अन्तर का निमित्त है। ऐसी बात है, बापू! आहाहा!

ऐसा कहते हैं कि **निर्विकल्पसमाधि के घातक मन के संकल्प-विकल्पों को त्यागकर....** आहाहा! यह व्यवहार का विकल्प कि ऐसा आत्मा है और ऐसा ऐसे है और ऐसा वैसे है, ऐसा जो व्यवहार का विकल्प है, वह निर्विकल्प समाधि का घात करनेवाला है। वर्तमान पर्याय, हों! आहाहा! निर्विकल्पस्वरूप तो भगवान त्रिकाल है परन्तु उसके आश्रय से हुई निर्विकल्प समाधि, उसके यह शुभ विकल्प घातक हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! देवचन्दजी! ऐसी बात है। इसके ख्याल के ज्ञान पर तो बात ले।

हे प्रभाकर भट्ट! तू शुद्धात्मा का अनुभव कर। देखा! यह व्यवहार के विकल्प को लक्ष्य में से छोड़ दे। शुद्धात्म अनन्तदेव... जिसके स्वरूप के भाव की मर्यादा नहीं, ऐसा जिसका स्वभाव आनन्ददल, ऐसा अनन्त देव, उसे जान। आहाहा! विकल्प-बिकल्प को छोड़ दे। विकल्प से निश्चय होगा, यह बात छोड़ दे। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ही ऐसी है, देखो न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंच परमेष्ठी को माननेवाला, वह तो स्वयं विकल्प है। यह तो भगवान स्वयं पंच परमेष्ठीस्वरूप ही आत्मा त्रिकाल है। आहाहा! भाषा नहीं रखी?

'**अनन्तम् देवम् मन्यस्व**' आहाहा! भगवान परमात्मस्वरूप ही प्रभु है। वह अनन्त परमात्मस्वरूप, उसे जान। आहाहा! यह तो (समयसार) ११वीं गाथा का विस्तार किया है। ११वीं में कहा, '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' व्यवहार-फ्यवहार से वह नहीं मिलेगा। आहाहा! तब १२वीं गाथा में कहा है कि व्यवहार का उपदेश करना। इसलिए उसमें से यह अर्थ निकालते हैं। जो नीचे की भूमिका है, उसे व्यवहार का उपदेश देना। ऐसा है ही नहीं वहाँ भी। अरे! भगवान! समझ में आया? सबको यह उठाते हैं। साहूजी ने दिल्ली में उठाया था। बारहवीं गाथा में ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : व्यवहार देसिदा?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लिया यह? टीका में क्या कहा है? व्यवहार उस समय जो पर्याय की अल्पता है, अशुद्धता है, उसे उस काल में उस प्रकार में उस समय को जानना प्रयोजनवान है। आदरणीय तो यह एक ही वस्तु है। त्रिकाल वस्तु परमदेव भगवान। समझ में आया? परन्तु व्यवहार है या नहीं उसे? कहते हैं। क्योंकि अपूर्ण दशा है, अभी अशुद्धता है, शुद्धता के अंश बढ़ते हैं, अशुद्धता के अंश घटते हैं। उन सबका उस-उस काल में जानना, यह व्यवहारनय को प्रयोजनवान कहा है। जानने के लिये प्रयोजन कहा है। आदर करने के लिये प्रयोजनवान है, (ऐसा नहीं कहा)। आहाहा! परन्तु ऐसी गजब बातें! शशीभाई! वहाँ तो ऐसा कहा है। भाई! तुझे महँगा लगे परन्तु बापू! ऐ प्रभु! तुझे तू महँगा लगे! आहाहा! वह चीज़-वस्तु पड़ी है। आहाहा! परन्तु यह बात लोगों को ऐसी लगे। पण्डितों को... आयेगा। आहाहा!

संकल्प-विकल्प जो है। आहाहा! संकल्प-विकल्प की व्याख्या हो गयी थी। पहले हो गयी है। अथवा अपने इसमें भी कहा था। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म को

अपना मानना, वह संकल्प है—मिथ्यात्व है। आहाहा! भावकर्म अन्दर जो व्यवहार का विकल्प उठे, उसे पुद्गल का परिणाम कहकर वह तो निषेध किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : संकल्प करना परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : संकल्प करना मिथ्यात्व है। नहीं कहा १०वें कलश में। नीचे लिखा है। १०वाँ कलश है न? **द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म...** भावकर्म में राग का विकल्प—व्यवहार आया। **आदि पुद्गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना...** यह शुभभाव भी वास्तव में पुद्गलद्रव्य है। यह तो अपने दोपहर में चलता है न! उसमें **अपनी कल्पना करना, उसे संकल्प कहते हैं...** यह मिथ्यात्व है। आहाहा! **और ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद मालूम होना, उसे विकल्प कहते हैं।** यह अनन्तानुबन्धी का अस्थिरता का विकल्प है। **ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है।** इससे रहित। आहाहा!

निर्विकल्पसमाधि के... आहाहा! यह वर्तमान प्रगट पर्याय की बात है, हों! भगवान अनन्त अविनाशी स्वभावस्वरूप देवशक्ति—स्वयं देव है। आहाहा! ऐसे देव को प्राप्त करने में ऐसे संकल्प-विकल्प घातक हैं। आहाहा! ऐसी बात है। जयन्तीभाई! लोगों को लगे, दूसरा क्या हो? भाई! विद्यमान चीज़ है, उसे समझने के लिये पर की क्या अपेक्षा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! विद्यमान प्रभु प्रगट है अन्दर। एक समय की पर्याय बिना का जो पदार्थ विद्यमान है, उसे जानने के लिये पर की—अविद्यमान की अपेक्षा कैसे हो सकती है? आहाहा! ऐसा स्वरूप है।

भगवान! तेरी महत्ता इतनी है, ऐसा कहते हैं। तेरी महत्ता इतनी है कि हीन अवस्था के आश्रय से तू प्राप्त न हो, ऐसा तू है। आहाहा! व्यवहार के विकल्प से भी तू प्राप्त न हो, ऐसी तेरी महत्ता है। इस महत्ता को तूने हीन कर दिया, भाई! कि यह राग की मन्दता व्यवहार हो तो प्राप्त हो, बापू! मर जायेगा तू, हों! तू महत्ता को मार डालता है। निर्विकल्प का घातक कहा न? आहाहा! ऐसा है यह, जयन्तीभाई! वाडावालों को तो बहुत कठिन लगे। आहाहा! 'वाडा बांधी बैठा रे अपना पंथ करने को।' यह तो परमात्मा का पंथ है। आहाहा! बहुत सरस बात!

तू विद्यमान चीज़ अनन्तदेव है न, प्रभु! पाठ में ऐसा कहा न? '**मुणि देउँ अणंतु**'

आहाहा! अविनाशी स्वभाव '**शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है**' शुद्ध चेतनासिन्धु। एक पर्याय भी नहीं यहाँ तो। शुद्ध चेतनासिन्धु '**मुणि देउँ अणंतु**' उसे तू जान। यह जानने में विघ्न करनेवाले विकल्प हैं, वे घातक हैं; इसलिए उन्हें छोड़ दे। आहाहा! देवचन्दजी! वस्तु तो ऐसी है। आहाहा!

निर्विकल्पसमाधि के घातक.... आहाहा! भगवान जो अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु, विद्यमान वस्तु, विद्यमान वस्तु सत् साहेब। आहाहा! सत्स्वरूप प्रभु विराजमान है, उसे प्राप्त करने के लिये निर्विकल्प समाधि का कारण है। निर्विकल्प समाधि से वह प्राप्त होता है। उस **निर्विकल्पसमाधि के घातक....** यह विकल्प शुभादि जो हों, देव-गुरु की भक्ति आदि राग, (वह घातक है)। आहाहा! प्रभु! तू विद्यमान चीज़ है न, सत् है न, सत् है न! परम सत् साहेब। उसे प्राप्त करने के लिये राग की उसे अपेक्षा नहीं होती। आहाहा! ऐसा कहते हैं। है? आहाहा! यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! प्रवीणभाई! आहाहा!

भाषा कैसी की है! '**अनन्तम् देवम् मन्यस्व**' आहाहा! अविनाशी वस्तु... वस्तु... वस्तु... 'वस्तु व्होरजो रे दोशीडाने हाटे।' वहाँ वस्तु अन्दर पड़ी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निर्विकल्प शान्ति द्वारा प्राप्त हो, उसे जान। बीच में विकल्प आवे, वे घातक हैं, उन्हें छोड़ दे। आहाहा! कठिन बातें। लो, यह बहुत आया तुम्हारे भावनगर, रविवार को आवे तो ऐसा आता है। मनसुखभाई! ऐसा है। आहाहा!

भाई! तू सत्स्वरूप है, प्रभु! सत् को असत् के आश्रय से प्राप्त किया जाये, यह कैसे हो सकता है? भाई! आहाहा! यह विकल्प आदि हैं, वे तो असत्स्वरूप हैं, त्रिकाली की अपेक्षा से। उनकी अपेक्षा से भले हों। आहाहा! और वास्तव में देव-गुरु-शास्त्र (की भक्ति) या पंच महाव्रत वह वास्तव में पुद्गल के परिणाम हैं। अपनी जाति के परिणाम कहाँ हैं वे? आहाहा! ऐसे विकल्पों को अन्तर सत् साहेब प्रभु प्राप्त करने में निर्विकल्प शान्ति के वे घातक हैं। आहाहा! उन्हें छोड़ और अनन्तदेव को जान। जानना, वह निर्विकल्प समाधि है। उससे '**मन्यस्व**' जाना। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें, इसलिए सम्प्रदाय को कठिन लगे, हों! बेचारों को। सोनगढ़िया ऐसा करे।

अरे! बापू! रहने दे, भाई! विपरीत मान्यता के फल, बापू! कठोर पड़ेंगे, भाई! सहन करना कठिन पड़ेंगे। समझ में आया? आहाहा!

सन्तों ने अमृत के समुद्र बहाये हैं। आहाहा! भगवान! तू कोई महा चीज़ है या नहीं? ऐसा कहते हैं। आहाहा! परम पदार्थ महा अनन्त जिसका नाश, ऐसी ध्रुव चीज़ है। आहाहा! उसे तू देवरूप से जान। आहाहा! जान, यह पर्याय निर्विकल्प समाधि है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय को यहाँ जान में डाला। यह राग और विकल्प से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं है। आहाहा! भाई! तुझे कहाँ जाना है? आहाहा! झगड़ा-झगड़ा छोड़, प्रभु! सब। दुनिया चाहे जो कहे। आहाहा! नियमसार में कहा है न? दुनिया निन्दा करे। यह तो व्यवहार का नाश करते हैं, व्यवहार का लोप करते हैं। बापू! भाई! व्यवहार का लोप किये बिना निर्विकल्प समाधि प्रगट नहीं होगी। आहाहा! घातक है। साधक नहीं, घातक है। ले! आहाहा!

तीन लोक का नाथ महा परमात्मस्वरूप, साक्षात् स्वरूप, जिनस्वरूप। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! पूर्ण अविकारी वीतरागस्वभाव का परमात्मा भाववाला, यह अनन्त है। नाश बिना की चीज़ है, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसे देव को तू 'मुण...' आहाहा! उसे जान। 'उसे जान' का अर्थ ही यह कि विकल्प से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें! बापू! दुःखी हुआ है, भाई! अनन्त काल के दुःखी, दुःखी, दुःखी है। हैरान हो गया है। इस आनन्द के नाथ को पहुँचने के लिये प्रभु, रागरहित निर्विकल्प शान्ति—श्रद्धा-ज्ञान काम करेंगे। समझ में आया? आहाहा!

यह तीन लोक के नाथ की वाणी है। सन्त इस वाणी को... सर्वज्ञ के स्वभाव की बातें सन्त कर गये। आहाहा! भाषा प्रयोग की है। '**अनन्तम् देवम् मन्यस्व**' इस शब्द में... आहाहा! प्रभु! तू अविनाशी पदार्थ है न! ध्रुव वस्तु का अस्तित्व ऐसा अनन्त, ऐसे देव को जान, मान। आहाहा! उसे जानने-मानने के लिये व्यवहार के विकल्प घात करनेवाले हैं, उन्हें छोड़। जिसे तूने साधक किया था, उसे यहाँ बाधक है, ऐसा करके छोड़। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जिसे परम आनन्द प्रगट करना है, और जो परमानन्द प्रगट होकर अनन्त काल रहे, ऐसी जिसे मोक्षदशा प्रगट करनी है। भाई!

उसके उपाय तो अलौकिक और अचिन्त्य ही होते हैं। आहाहा! यह संकल्प-विकल्प की व्याख्या हुई। आहाहा!

जिसमें संकल्प-विकल्प को पुद्गल के परिणाम कहे। व्यवहाररत्नत्रय को तो पुद्गल के परिणाम कहे। उन्हें तो पुण्य कहा और दूसरे प्रकार से उन्हें पाप भी कहा। आहाहा! 'पाप को पाप सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को भी पाप कहे' योगसार में है। योगसार में आता है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र आदि की भक्ति, वह पुण्य के विकल्प हैं... आहाहा! अब यह लोग कहते हैं कि भक्ति से प्राप्त होता है। भगवान की-देव की भक्ति करो। प्रभु! मार्ग अलग, नाथ! तुझे सरल लगता हो परन्तु यह इस प्रकार से नहीं मिलता। आहाहा!

यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र को मानने का जो विकल्प है, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, हों! आहाहा! वह भी निर्विकल्प समाधि के घातक हैं। आहाहा! उसकी ओर से पहलू बदल और भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके समीप में निर्विकल्पदशा से जा। ऐसी बात है, बापू! भगवान विराजता है अन्दर, भाई! विद्यमान चीज़ है। आहाहा! यह लोग ऐसा कहे, दया करो तो प्राप्त हो। अरे! बापू! यह बात तो कहीं रह गयी, भाई! तेरी दया कर तो प्राप्त हो। दया अर्थात्? पूर्णानन्द का नाथ अस्तिरूप से है, उसे उस प्रकार से स्वीकार। उसे राग से प्राप्त हो और अल्पज्ञपना मानना, यह तो उसकी हिंसा है, आहाहा! उसका अनादर है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... इस प्रकार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रकार से है।

अब ऐसा उपदेश। इसमें सभारंजन किस प्रकार हो? आहाहा! बापू! लोगों का रंजन करने जायेगा (तो) तेरा आत्मा (का) घातक हो जायेगा। शास्त्र में यह है, अष्टपाहुड़ में। अष्टपाहुड़ में है। भाई में तो बहुत है, तारणस्वामी में। लोकरंजन। लोक को ठीक पड़े, ऐसी बातें कर। मर जायेगा। लोग प्रसन्न होंगे कि आहाहा! क्या बात की! व्यवहार से भी प्राप्त होता है, इससे भी प्राप्त होता है। एकान्त कहते हैं कि व्यवहार से नहीं। वे प्रसन्न-प्रसन्न हों। तू मर जायेगा।

मुमुक्षु : .... प्राप्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल। हाँ कहे और यह सब बातें हैं, भाई! क्या करे? बापू! अरे रे! मिथ्या परिणाम, उसका फल भाई! कठोर है। समझ में आया? दुनिया में वर्तमान लोग मानेंगे। क्योंकि जो राग के, व्यवहार के रसिक हैं, उन्हें ये बात अच्छी लगे। यह अनेकान्त मार्ग कहा। देखा! वे तो कहते हैं व्यवहार से प्राप्त नहीं होता... व्यवहार से प्राप्त नहीं होता... एकान्त कहते थे। ऐई! भगवान! साक्षात् परमात्मा का विरह पड़ा। परन्तु साक्षात् प्रभु है, उसका पर्याय में विरह पड़ा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह तो अपनी बात करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अपनी। आहाहा! तीन लोक के नाथ भगवान विराजते हैं। उनका तो विरह पड़ा, परन्तु प्रभु पूर्णानन्द का नाथ साक्षात् प्रभु विराजता है, उसे तू विकल्प का आदर करके उसका विरह करे। घात होता है, भाई! आहाहा! प्रवीणभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! वस्तु यह है, भाई! दुनिया माने, न माने। इसे संख्या अधिक हो, न हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है कि बहुत माने। तेरी पण्डिताई एक ओर पड़ी रही। आहाहा! संकल्प-विकल्प का त्याग कर तो तेरा विरह छूटेगा, कहते हैं। आहाहा! परमात्मा विराजता है, उसमें से तू हट गया है। संसार कहा है। संसरण इति संसार। आहाहा! भगवान मोक्षस्वरूप है, अबन्धस्वरूप है। उसमें से तू हट गया है। हटकर विकल्प में आ गया, प्रभु! तेरे स्व का घात हो गया है। और उससे तू माने कि विकल्प से आत्मा को लाभ होता है। प्रभु! अटक जायेगा वहाँ, हों! अन्दर नहीं जा सकेगा। जिससे लाभ माने, उसे कैसे छोड़े?

मुमुक्षु : महिमा आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा आयी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

वे तो कहते हैं कि दया पालो, व्रत करो, तप करो तो धर्म होगा। वे और कहे यात्रा करो, भक्ति करो, पूजा करो। अरे! प्रभु! सुन न, भाई! यह सब विकल्प है, भाई! अन्तर निर्विकल्प समाधि में यह घातक हैं। उन्हें तू साधक माने, भाई! भटक मरेगा। आहाहा! वहाँ किसी की सिफारिश नहीं चलेगी। वस्तुस्थिति है वैसी रहेगी। तू बदलना

चाहे तो कहीं बदल नहीं जायेगी। आहाहा! बहुत सरस गाथा! २३। मनसुखभाई! दो व्यक्ति आये हैं। हीरालाल नहीं? हीरालाल नहीं होंगे। बाहर गाँव हैं।

हे प्रभाकर भट्ट... योगीन्द्रदेव कहते हैं, सन्त कहते हैं। आहाहा! तू इस विकल्प को छोड़, प्रभु! चाहे जिस जाति का हो। आहाहा! भगवान की भक्ति का हो, भगवान को मानने का हो। उसे छोड़। वह परसन्मुख की दशा है। स्वसन्मुख जाने के लिये, वह घातक है। आहाहा! ऐसी दशा की ओर ढला हुआ विकल्प, ऐसे दशा में जाने के लिये घातक है। आहाहा! समझ में आया? और अन्यत्र कहा है, ऐसा कि **दूसरी जगह भी कहा है। इन्द्रियों में जीभ प्रबल होती है,....** इन्द्रिय में रस की गृद्धि प्रबल है। उसे जीतना, कहते हैं। **ज्ञानावरणादि आठ कर्मों में मोहकर्म बलवान होता है,....** पर में सावधानी, यह जोरवाला है। **पाँच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रबल है,....** ब्रह्मचर्य। ब्रह्म अर्थात् आनन्द में रमना। **और तीन गुप्तियों में से मनोगुप्ति पालना कठिन है।** मन के विकल्पों को हटाकर अन्दर स्वरूप में गुप्त हो जाना। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! **ये चार बातें मुश्किल से सिद्ध होती हैं।** लो! आहाहा! २२ हुई न यह? २२ हुई।

गाथा - २३

अथ वेदशास्त्रेन्द्रियादिपरद्रव्यालम्बनाविषयं च वीतरागनिर्विकल्पसमाधिविषयं च परमात्मानं प्रतिपादयन्ति –

२३) वेयहिँ सत्थहिँ इंदियहिँ जो जिय मुणहु ण जाइ।
णिम्मल-झाणहँ जो विसउ सो परमप्पु अणाइ।।२३।।

वेदैः शास्त्रैरिन्द्रियैः यो जीव मन्तुं न याति।
निर्मलध्यानस्य यो विषयः स परमात्मा अनादिः।।२३।।

वेदशास्त्रेन्द्रियैः कृत्वा योऽसौ मन्तुं ज्ञातुं न याति। पुनश्च कथंभूतो यः। मिथ्याविरति-प्रमादकषाययोगाभिधानपञ्चप्रत्ययरहितस्य निर्मलस्य स्वशुद्धात्मसंवित्तिसंजातनित्यानन्दैक-सुखामृतास्वादपरिणतस्य ध्यानस्य विषयः। पुनरपि कथंभूतो यः। अनादिः स परमात्मा भवतीति हे जीव जानीहि। तथा चोक्तम् –''अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रपाण्डित्यमन्यथा। अन्यथा परमं तत्त्वं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा।।'' अत्रार्थभूत *एवं शुद्धात्मोपादेयो अन्यद्धेयमिति भावार्थः।।२३।।

आगे वेद, शास्त्र, इन्द्रियादि परद्रव्यों के अगोचर और वीतराग निर्विकल्प समाधि के गोचर (प्रत्यक्ष) ऐसे परमात्मा का स्वरूप कहते हैं –

जो वेद इन्द्रिय शास्त्र से भी ज्ञात होता है नहीं।
बस विषय निर्मल-ध्यान का ना आदि परमातम वही।।२३।।

अन्वयार्थ :- [वेदैः] केवली की दिव्यवाणी से [शास्त्रैः] महामुनियों के वचनों से तथा [इन्द्रियैः] इन्द्रिय और मन से भी [यः] जो शुद्धात्मा [मन्तुं] जाना [न याति] नहीं जाता है अर्थात् वेद, शास्त्र – ये दोनों शब्द अर्थस्वरूप हैं, आत्मा शब्दातीत है, तथा इन्द्रिय, मन विकल्परूप हैं और मूर्तीक पदार्थ को जानते हैं, वह आत्मा निर्विकल्प है, अमूर्तीक है, इसलिए इन तीनों से नहीं जान सकते। [यः] जो आत्मा [निर्मलध्यानस्य] निर्मल ध्यान के [विषयः] गम्य है, [स] वही [अनादिः] आदि-अंतरहित [परमात्मा] परमात्मा है।

* पाठान्तर :- एव - एवं

भावार्थ :- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग-इन पाँच तरह आस्त्रवों से रहित निर्मल निज शुद्धात्म के ज्ञानकर उत्पन्न हुए नित्यानंद सुखामृत का आस्वाद उस स्वरूप परिणत निर्विकल्प अपने स्वरूप के ध्यानकर स्वरूप की प्राप्ति है। आत्मा ध्यानगम्य ही है, शास्त्रगम्य नहीं है, क्योंकि जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाए, वे ही आत्मा का अनुभव कर सकते हैं। जिन्होंने पाया, उन्होंने ध्यान से ही पाया है, और शास्त्र सुनना तो ध्यान का उपाय है, ऐसा समझकर अनादि अनंत चिद्रूप में अपना परिणमन लगाओ। दूसरी जगह भी 'अन्यथा' इत्यादि कहा है। उसका यह भावार्थ है, कि वेद शास्त्र तो अन्य तरह ही हैं, नय प्रमाणरूप हैं, तथा ज्ञान की पंडिताई कुछ और ही है, वह आत्मा निर्विकल्प है, नय-प्रमाण-निक्षेप से रहित है, वह परमतत्त्व तो केवल आनन्दरूप है, और ये लोक अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं, सो वृथा क्लेश कर रहे हैं। इस जगह अर्थरूप शुद्धात्मा ही उपादेय है, अन्य सब त्यागने योग्य हैं, यह सारांश समझना।।२३।।

गाथा - २३ पर प्रवचन

२३। **आगे वेद, शास्त्र, इन्द्रियादि परद्रव्यों के अगोचर और वीतराग निर्विकल्प समाधि के गोचर (प्रत्यक्ष) ऐसे परमात्मा का स्वरूप कहते हैं :—** आहाहा!

२३) वेयहिँ सत्थहिँ इंदियहिँ जो जिय मुणहु ण जाइ।
णिम्मल-झाणहँ जो विसउ सो परमप्पु अणाइ।।२३।।

आहाहा! यह परमात्मा चिदानन्द प्रभु एक समय की पर्याय बिना की चीज़ जो है, वह केवली और दिव्यध्वनि से जानी नहीं जा सकती, ऐसी वह चीज़ है। है? उसमें है या नहीं? वेद अर्थात् वीतराग की वाणी। वे (अन्यमत के) वेद नहीं। आहाहा!

अन्वयार्थ :- केवली की दिव्यवाणी से... आहाहा! और **महामुनियों के वचनों से....** पहले देव की वाणी ली, फिर गुरु की ली। दोनों से आत्मा समझ में आये, ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! उसमें आया न कि भाई! भगवान को सुनना वह भी इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! जैसे स्त्री विषय है, वैसे वाणी विषय है। खोटे कर्म कर डाले,

ऐसा वे लोग कहते हैं। भगवान! सुन न, भाई! उस वाणी पर लक्ष्य जाये तब उसे राग होगा। परद्रव्य पर लक्ष्य जायेगा... आहाहा! और वह वाणी सुनकर यहाँ ज्ञान की पर्याय हुई, वह तो स्वयं से हुई है, उससे नहीं, यह ज्ञान, वह ज्ञान नहीं है। वह परसत्तावलम्बी ज्ञान है। वह ज्ञान नहीं है। आहाहा!

वीतराग की वाणी कान में पड़ी और उस काल में अपने ज्ञान की पर्याय अपने से हुई। तथापि वह पर्याय वास्तविक ज्ञान नहीं। वह पर्याय—ज्ञान की पर्याय बन्ध का कारण है। आहाहा! परसत्तावलम्बी है। आहाहा! यह वाणी और वाणी के ज्ञान से स्वयं प्राप्त हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें कहा है न? बुद्धि शास्त्र में जाये, तो (वह) व्यभिचारिणी है। पद्मनन्दि पंचविंशति। भाई! परसन्मुख का झुकाव, वह व्यभिचार है। आहाहा! परपदार्थ के संग में वृत्ति गई, वह व्यभिचार है। आहाहा! स्वसन्मुख में जाने के लिये वीतराग की वाणी और गुरु की वाणी काम नहीं करती, कहते हैं। है?

मुनियों के वचनों से तथा इन्द्रिय और मन से भी.... इन्द्रिय और मन से भी **शुद्धात्मा जाना नहीं जाता है,...** आहाहा! भगवान को, वाणी को भी इन्द्रिय कहा है। समयसार ३१ गाथा। '**इंदिय जिणित्ता**' द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उसका विषय, उस ओर का लक्ष्य छोड़ दे। उससे नहीं मिलेगा। यह बात लोगों को कठिन पड़ती है। भगवान की दिव्यध्वनि से लाभ नहीं होता। ऐंई! आहाहा! महा गणधरों की शास्त्र की रचना अर्थरूप। अर्थरूप भगवान ने कहा और श्रुतरूप रचा गणधर ने। इसलिए दो शब्द हैं अन्दर, देखो! **अर्थात् वेद, शास्त्र, ये दोनों शब्द अर्थस्वरूप हैं,....** है न? शब्द और अर्थ स्वरूप है न यह? वेद अर्थात् वाणी और शास्त्र। वास्तव में दिव्यध्वनि की वाणी शब्द सूत्ररूप है और गणधरों ने उसके अर्थ रचे हैं, वह अर्थरूप है। दिव्यध्वनि अर्थरूप है, और शास्त्र रचे, वे शब्दरूप है। आहाहा! सूत्ररूप है। क्या कहा यह?

दिव्यध्वनि में अर्थरूप बात आती है और शास्त्र रचे वे सूत्ररूप है। वे सूत्ररूप या अर्थरूप दोनों से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान निरपेक्ष वस्तु है, विद्यमान चीज़ है। आहाहा! सत् है, उसे ऐसे असत् के आश्रय की आवश्यकता नहीं। आहाहा! उससे असत् आश्रय से सत् ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में

आया? कहो, ऐसा कठिन लगे न लोगों को। लोगों को अभ्यास नहीं। सत्य क्या है, इसकी (खबर नहीं) और ऊपर से एकदम गोला मारना। व्यवहार से प्राप्त होता है, व्यवहार पहले होता है, व्यवहार निसरणी है, अशुभ टाले, फिर शुभ आवे, फिर शुभ टालकर पश्चात् शुद्ध होता है। ऐसी निसरणी है यह। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। अरे! भगवान! यह शुभ को भी छोड़ने की बात है यहाँ तो। साधन है तो छोड़ने का क्यों कहे? आहाहा! व्यवहार का विकल्प जितने हैं, वह निश्चय स्वभाव के आश्रय से होती निर्विकल्प समाधि, उसकी वह घातक है। इसलिए वाणी और अर्थ से या अर्थ और शब्द से (प्राप्त नहीं होता)। आहाहा! समयसार में ऐसा कहा, ४१५ गाथा। अन्तिम अर्थ। अर्थ में फिर अर्थ यह तू। यह नहीं। ४१५ गाथा है। समयसार की अन्तिम। आहाहा! शब्द और अर्थ से जानकर अर्थ में स्थिर हो। भगवान! यह अर्थ है वहाँ, हों! आहाहा!

वेद, शास्त्र, ये दोनों शब्द अर्थस्वरूप हैं, आत्मा शब्दातीत है,... भगवान तो शब्द से अतीत है। आहाहा!

मुमुक्षु : उपदेश तो शब्द से दिया जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे उपदेश? बापू! यह तो सब बातें हैं। इसलिए कल डाला था न? यह परक का अर्थ क्या, यह कहा भाई ने। निमित्तपरक। शब्द देखा था भाई ने। उपादानवादी घोर निमित्तपरक... करते हैं। घोर निमित्त का आश्रय लेते हैं। अरे! भगवान! ऐसा कि ऐसे मकान (मन्दिर) बनाकर और निमित्त द्वारा लोगों को खींचना है। उपादान... ऐसा कहे। अरे! प्रभु! भगवान! भाई! उसे कठिन पड़ेगा, बापू! और यह शिक्षण शिविर लगाना, धर्मचक्र निकालना, यह पण्डित जहाँ-तहाँ जाकर भाषण दे, धन्नालालजी और यह सब। हम पूछते हैं, उसका जवाब वाणी द्वारा तुम देते हो। तो वाणी का आश्रय लिया या नहीं? निमित्त द्वारा तुम्हें काम करना और कहना कि निमित्त से कुछ होता नहीं। यह कहाँ (बात) है? आहाहा! जहाँ विकल्प जिसमें नहीं, वहाँ फिर वाणी कहाँ से आयी? वाणी के काल में वाणी निकले, प्रभु!

अरे! प्रभु! कठिन, बापू! क्या हो? आहाहा! मिथ्यात्व का (फल) कठोर है, बापू! निगोद कहा है, भाई! एक व्यक्ति कहता था कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहे, उनका न

माने वह निगोद में जायेगा, ऐसा कहे ? अरे ! भगवान ! अरे ! तू ऐसा न कह, भाई ! ऐसा कि वे ऐसा कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य का न माने, उसे वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि निगोद में जाओगे, ऐसा कहता है। भाई ! तू खींचतान न कर। आहाहा ! ... प्राप्त नहीं होता ? कहते हैं कि, शास्त्र सुनना, वह तो ज्ञान का उपाय निमित्त लक्ष्य में आया इतना। बाकी उससे आत्मा प्राप्त होता है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! वाणी जड़ पुद्गल की पर्याय, 'तद् विकारो' नहीं आया ? नियमसार। तद् विकारो। अष्टपाहुड़, अष्टपाहुड़। शब्द का विकार है, वह वाणी तो। आहाहा ! अन्तिम गाथा। भावपाहुड़ या बोधपाहुड़ दोनों में से एक अन्तिम में है। उससे प्राप्त हो, ऐसा नहीं। आहाहा !

आत्मा शब्दातीत है, तथा इन्द्रिय, मन विकल्परूप हैं,.... अब उससे रहित। **और मूर्तिक पदार्थ को जानते हैं, वह आत्मा निर्विकल्प है,...** आहाहा ! वह **अमूर्तिक है, इसलिए इन तीनों से नहीं जान सकते।** शब्द से, अर्थ से और मन के संकल्प तथा इन्द्रिय से, इनसे आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा ! **जो आत्मा निर्मल ध्यान के गम्य है,...** आहाहा ! देखो, लो ! **निर्मल ध्यान के गम्य है,...** निर्मल अविकारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय को वह गम्य है। आहाहा ! समझ में आया ? इसके गम्य नहीं तो उसके गम्य है, ऐसा कहा न ? '**निर्मलध्यानस्य यो विषयः**' आहाहा ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान वीतरागी पर्याय का विषय वह वस्तु है। आहाहा ! **वही आदि-अन्त रहित परमात्मा है।** उसे हम परमात्मा कहते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण १०, सोमवार
दिनांक-२१-०६-१९७६, गाथा-२३ से २५, प्रवचन-१४

परमात्मप्रकाश, २३ गाथा। यहाँ तक आया है। **वह आत्मा निर्विकल्प है, अमूर्तिक है, इसलिए इन तीनों से नहीं जान सकते।** तीन कौन? मन, इन्द्रिय और शब्द। तीन से आत्मा जानने में आवे, ऐसा नहीं है। ऐसा है। **जो आत्मा निर्मल ध्यान के गम्य है....** आहाहा!

मुमुक्षु : मन तो मूर्तिक-अमूर्तिक सबको जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ नहीं। यह विकल्प नहीं। यहाँ तो निर्विकल्प चैतन्य के ध्यान से आत्मा प्राप्त होता है। शब्द से, मन से नहीं, इन्द्रिय से नहीं। आहाहा! व्यवहार के विकल्प से भी नहीं, मन के सम्बन्ध से विकल्प उठें, उनसे भी नहीं। उनसे यह हो गया व्यवहार। वह तो अतीन्द्रिय निर्विकल्प ध्यानगम्य है। आहाहा! यह बात। है? **निर्मल ध्यान के गम्य है....**

मुमुक्षु : कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा।

मुमुक्षु : किसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यघन वस्तु जो आत्मा है, वह तो निर्विकल्प ज्ञान और ध्यानगम्य है। यह तो व्यवहार से होता है और निमित्त से होता है, यह बात यहाँ उड़ जाती है। आहाहा! **वही (आत्मा) आदि-अन्त रहित परमात्मा है।** स्वयं, हों! भगवान। आहाहा! वस्तु है न? अनन्त ज्ञायकभाव से भरपूर पदार्थ है। यह परमात्मस्वरूप ही है। यह ध्यानगम्य है। आहाहा! व्यवहार से ही ज्ञात हो, ऐसा यह नहीं है। देखो! इसका विवाद उठाते हैं। (तब) तो एकान्त हो जायेगा। अरे! भाई! अन्दर निर्विकल्प ध्यान से ज्ञात होता है, यही सम्यक् एकान्त है। व्यवहार से भी ज्ञात हो तो वह अनेकान्त कहलाये, ऐसा नहीं है।

मूल तो यह 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' में आता है न? दो कारण से कार्य (होता

है)। यह डाला है। और एक समन्तभद्र आचार्य (का) समग्र शब्द आता है न? बाह्य -अभ्यन्तर समग्र। वह तो दूसरी बात है, भाई! अभ्यन्तर निर्विकल्प से प्राप्त हो, यह तो निश्चय तो यथार्थ है। उसे ऐसा का ऐसा रखकर, विकल्प साथ में निमित्त था, उसका ज्ञान कराने के लिये प्रमाण से यह बात की है। निश्चय में तो इस विकल्प से रहित, इतनी बात सिद्ध करके। ऐसी सूक्ष्म बात है। इस बात को तो ऐसा रखकर ही, फिर साथ में विकल्प था या निमित्त था, उसका ज्ञान कराने को प्रमाणज्ञान होने पर यह बात बोली जाती है। परन्तु इससे निर्विकल्प से प्राप्त होता है, यह बात मिथ्या करके विकल्प से प्राप्त होता है, ऐसी बात है—ऐसा नहीं है। अरे... अरे..! ऐसी कठिन बातें, भाई!

मूल तो पहला सिद्धान्त ही यह है और सत्य का स्वरूप ही यह है कि निर्विकल्प ध्यान में ही वह प्राप्त हो सकता है। समझ में आया? यह सत्य है, यह निश्चय है, यह यथार्थ है। परन्तु उसके साथ विकल्प अथवा निमित्त होता है, उसे प्रमाणज्ञान में इसकी बात रखकर, निमित्त का साथ में साधन है, ऐसा कहा है। वास्तव में तो यह है नहीं। आहाहा! ऐसा है कठिन यह, भाई! परमात्मा स्वयं आदि-अन्त रहित है। आहाहा!

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग—इन पाँच तरह आस्रवों से रहित.... पाँच प्रकार के विकल्प का आस्रव, उससे रहित। आहाहा! **निर्मल निज शुद्धात्मा के ज्ञानकर....** निर्मल निज शुद्धात्मा के ज्ञानकर **उत्पन्न हुए...** आहाहा! **नित्यानन्द सुखामृत का आस्वाद....** क्या कहा यह? निर्मल निज शुद्धात्मा का ज्ञान करके अन्दर से, उससे उत्पन्न हुआ नित्यानन्द सुखामृत आस्वाद। नित्य जो भगवान आत्मा का आनन्द, उसका सुखामृत का आस्वाद आया। **उस स्वरूप परिणत निर्विकल्प....** आहाहा! **अपने स्वरूप के ध्यानकर स्वरूप की प्राप्ति है।** आहाहा! ऐसा है। तब तुम सुनाते किसलिए हो? और ऐसा कहे, लो! अरे! भगवान! वाणी है, बापू! भाई! वाणी के काल में वाणी हो। परन्तु उस वाणी में ऐसा आया कि वाणी से और विकल्प से तू प्राप्त हो, ऐसा तू नहीं है। आहाहा! **उस स्वरूप परिणत निर्विकल्प अपने स्वरूप के ध्यानकर स्वरूप की प्राप्ति है।** भाषा देखो! आहाहा! भगवान निर्विकल्प आनन्दस्वरूप के निर्विकल्प ध्यान की परिणति से प्राप्त हो, ऐसा है। समझ में आया? **निर्विकल्प अपने स्वरूप के ध्यानकर....** है न? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान को अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति के

द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! अभी बड़ा झगड़ा चलता है। आहाहा!

आत्मा ध्यानगम्य ही है,.... है? '**ही**'। आहाहा! यह तो बाद में निकाला। पाठ तो इतना ही है। '**स्वादपरिणतस्य ध्यानस्य विषयः**' बस। ध्यान ही विषय, इतना संस्कृत है। इसलिए स्पष्टीकरण किया कि **आत्मा ध्यानगम्य ही है,...** यह टीका का स्पष्टीकरण है। टीका में नहीं। टीका में तो इतना ही है। जीव... आहाहा! '**निर्मलस्य स्वशुद्धात्म-संवित्तिसंजातनित्यानन्दैकसुखामृतास्वादपरिणतस्य ध्यानस्य विषयः।**' आहाहा! ४७ गाथा में यह कहा, वहाँ बृहद् द्रव्यसंग्रह में (कहा)। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' आहाहा! जो प्राप्त हुए हैं, वे ध्यान से प्राप्त हुए हैं। यह सब साधन तो है न?

मुमुक्षु : .... इसका उपाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त लक्ष्य... उपाय... यह अर्थकार ने कहा है। टीका में नहीं है। टीका में तो यह इतना ही है। '**नित्यानन्दैकसुखामृतास्वादपरिणतस्य ध्यानस्य विषयः**' बस। यह सिद्धान्त।

व्यवहार के विकल्प से रहित और शुद्ध आत्मा के ध्येय से जो शुद्ध परिणति प्रगट हुई, उससे वह आत्मा ज्ञात होता है और ध्यानगम्य (हो, ऐसा) विषय है। यह वस्तु की स्थिति है। लोग कहे, परन्तु इसका कुछ उपाय (है)? ऐसा कहते हैं। परन्तु यही उपाय है। **ध्यानगम्य ही है,....** यह स्पष्टीकरण। टीका का है न? '**ध्यानस्य विषयः**' इसका स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! **शास्त्रगम्य नहीं है,...** लो! 'शास्त्र दिशा दिखाकर अलगा रहे।' आनन्दघनजी कहते हैं। दिखाये कि भाई! ऐसा है यह अन्दर, यह बतावे। स्वयं तो अन्दर भिन्न है। आहाहा!

क्योंकि जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाये,.... सुनने से हो जाये इसका अर्थ? सुनने में आया कि अन्तर निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त होता है। इतना सुनने में आया और वह अन्दर गया। तो **सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाये,....** ऐसा मालूम पड़ा।

यही बात कहते हैं। शास्त्र ने ऐसा कहा, उसने ऐसा कहा कि निर्विकल्प ध्यान से तू प्राप्त करेगा, ऐसा शास्त्र ने इसे सुनाया। ऐसी बात है। आहाहा!

जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि.... अर्थात् ? शास्त्रकार ने ऐसा कहा कि तेरा जो स्वरूप है, वह निर्विकल्प ज्ञान की परिणति द्वारा प्राप्त होता है, ऐसा शास्त्र ने कहा। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! उसे ध्यान की सिद्धि हुई। निर्विकल्पदशा से निर्विकल्प वस्तु प्राप्त हुई, तब शास्त्र सुना था, उसका इसे निमित्त कहा जाता है। शास्त्र ने यह कहा था, ऐसा कहते हैं। यहाँ कहा न यह ? '**ध्यानस्य विषयः**' क्या कहा यह ? शास्त्र ने यह कहा। समझ में आया ? यह शास्त्र ने यही कहा है। आहाहा! शास्त्र ऐसा कहता है कि तू ध्यान का विषय है। ऐसा इसने सुना, तब इसने आत्मा को ध्यान का विषय बनाया। इतना। परन्तु सुना, इसलिए बनाया और सुनने की ओर का विकल्प था, इसलिए ध्यान का विषय हुआ—ऐसा नहीं है। आहाहा!

वहाँ यह पूछा था। श्रीमद् के 'अगास' (आश्रम) गये थे न तब। निश्चय (सही) परन्तु उसका साधन क्या ? क्योंकि उसमें आवे न ? 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोय'। उसका साधन ही यह एक प्रकार का। निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त हो, यह एक ही साधन है। समझ में आया ? यह बड़ा विवाद चलता है। वाद और विवाद और चर्चा। दो साधन चाहिए न! निश्चय और व्यवहार। भाई! इस व्यवहारसाधन को साधन कब कहा जाये ? अपनी निर्विकल्प परिणति द्वारा वस्तु को जानकर, अनुभव किया, तब उस विकल्प को व्यवहार साधन का आरोप दिया गया। आरोप दिया गया। सहचर देखकर, निमित्तरूप से देखकर, उपचार करके व्यवहार कहा। आहाहा! टोडरमलजी का यह वाक्य (है)। ओहोहो! सातवें (अधिकार) में जो यह है, वह बहुत ऊँचा! कहा था न (संवत्) १९८४ के समय में यह लिख लिया था। कहा, यह तो माल है। यह निश्चय-व्यवहार का जो है न, वह लिखा था। १९८४ में। 'बगसरा' (में) जीवणलालजी ने लिखा था।

दो साधन नहीं। दो साधन का निरूपण है। एक स्वरूप को निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त करना, यह एक ही साधन है। परन्तु साथ में शुभ विकल्प भी गुरु ने कहा, वह ध्यान में आया विकल्प से, उसे व्यवहार साधन का उपचार दिया जाता है। साधन है नहीं। व्यवहारनय से उसे उपचार (दिया जाता है)। यह अभूतार्थनय से है। आहाहा! २३वीं गाथा बहुत सरस।

जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाये, वे ही आत्मा का अनुभव कर सकते हैं,.... परन्तु ध्यान की सिद्धि हो वे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शास्त्र ने उसे कहा कि चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है, उसे निर्विकल्प परिणति से प्राप्त कर, ऐसा शास्त्र ने कहा। तब इसने ध्यान की सिद्धि प्रगट की। आहाहा! ऐसी बात है। है न? **जिन्होंने पाया, उन्होंने ध्यान से ही पाया है।** आहाहा! जिसे आत्मज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, वह ध्यान से ही प्राप्त हुए हैं। आहाहा! इसमें जरा यह श्रीमद् में है न, उसमें यह 'निश्चय रखकर लक्ष्य में।' साधन उस विकल्प को कहा है, वह व्यवहार है। आहाहा! स्वरूप में स्थिर न हो और तथापि वह साधन नहीं है। आता है, वह व्यवहार जाननेयोग्य आता है। ऐसा है। अन्तर वस्तु का जो पूर्ण स्वभाव, आदि-अन्त बिना का परमात्मतत्त्व, उसे अन्तर की निर्विकल्पधारा से पकड़ा और अनुभव किया, उसमें रह सका नहीं, फिर विकल्प आया, तथापि वह विकल्प आया; इसलिए व्यवहार साधन हुआ—ऐसा भी नहीं। आहाहा! वह तो आया, उसे जाननेयोग्य है। है, वैसा जानने (योग्य है)। परन्तु वह व्यवहार आया, इसलिए व्यवहार साधन भी हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं।

राग आया, उसे व्यवहार साधन उपचार से कहा। निर्विकल्प साधन है, इसलिए उसे विकल्प में उसे व्यवहार साधन कहा। परन्तु वह है नहीं। उसे उपचार से निमित्त का सहचर देखकर साधन का उपचार किया है। वह साधन नहीं है। बाधक है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही साधन है। इसकी शुद्ध परिणति, वह इसका साधन है। आहाहा!

मुमुक्षु : साधन और साध्य दोनों एक हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही हुए। साध्य-ध्येय ध्रुव है। ऐसे साध्य देखो तो परमात्म (पद की) प्राप्ति करना, वह साध्य है। उसका उपाय यह है। ज्ञानानन्दस्वभाव की अपूर्ण निर्विकल्पपरिणति, वह उपाय और ज्ञान की, आत्मा की पूर्ण परिणति, वह उपेय, उसका फल। बीच में व्यवहार आवे, वह जाननेयोग्य है। परन्तु साधन-बाधन है

नहीं। आहाहा! ऐसी कठिन बातें, भाई! फिर यह विवाद करे। यह समग्र कहा है और इसमें ऐसा कहा। वह तो दूसरा निमित्त है, उसका ज्ञान कराया। आहाहा! समन्तभद्राचार्य में आता है। बाह्य और अभ्यन्तर समग्र से कार्य होता है, ऐसा आता है। उसमें आया है। उन्होंने उसमें डाला है। अरे! भाई! साधन तो अकेला निर्विकल्प ध्यान, वह एक ही साधन है। अभ्यन्तर वह साधन है। आहाहा! परन्तु उस साधन के साथ विकल्प को व्यवहार साधन का आरोप दिया है। साधन है नहीं। आहाहा! उसे प्रमाणज्ञान में दोनों को मिलाया है। परन्तु उस निश्चय को निश्चयपने को रखकर। उसे तोड़कर हो तो व्यवहार प्रमाण से भी सच्चा ज्ञान नहीं। क्या कहा, समझ में आया?

वस्तु है, वह निर्विकल्प से प्राप्त होती है, उसे रखकर प्रमाण निमित्त से होता है, ऐसा भुलाया। वह प्रमाण स्व से होता है, उसे तोड़कर हो तब तो वह प्रमाणज्ञान ही नहीं हुआ। निश्चय का निश्चयरूप से और व्यवहार का व्यवहाररूप से दो का (ज्ञान रहे) तो प्रमाणज्ञान कहलाता है। आहाहा! बराबर है? आहाहा! अरे! भगवान!

मुमुक्षु : .... लिखे, वह मान्य किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैसे लिखा, वैसे माना जाता है न? जिस अभिप्राय से लिखा था, उस अभिप्राय से बात होती है। जिस अभिप्राय से कहा है, उस अभिप्राय से बात करे। ऐसा कि दो कारण से कार्य होता है, ऐसा लिखा, ऐसा समझा न! परन्तु किसने इनकार किया? किस प्रकार से यह कहा गया है?

स्वरूप के निर्मल ध्यान से प्राप्त हो, यह बात तो रखी इसमें। यह रखकर निमित्त के राग में व्यवहार का आरोप दिया। उसे उत्थापकर दे, तब तो निश्चय और व्यवहार दो प्रमाणज्ञान ही सच्चा नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? इसे उत्थापे तो निश्चय आता नहीं तो वहाँ प्रमाणज्ञान कहाँ हुआ? आहाहा! गजब भाई!

तब तो प्रमाणज्ञान होगा नहीं। इसका ऐसा रखे तो दूसरे का ज्ञान हो। आहाहा! कठिन, भाई! ऐसी बातें! अरे! इसे समझने में आया नहीं। ऐसे झगड़े उठावे। भाई! तुझे कहाँ जाना है, बापू! इस सत्य को इस रूप से नहीं स्वीकार करे तो स्वरूप सन्मुख नहीं जा सकेगा। क्योंकि विकल्प का प्रेम रहेगा और उसे साधन मानेगा तो वहाँ से हट नहीं सकेगा। आहाहा! गिरधरभाई! सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! प्रभु! यह तो आत्मा का

मार्ग है, भाई! वीतरागस्वरूप परमात्मा स्वयं है। आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। उसे प्राप्त करने की वीतराग परिणति साधन है। समझ में आया? फिर झगड़ा करे, बापू! भाई! इसका फल तो, भाई! तुझे भोगना पड़ेगा, बापू! असत्य को सत्य सिद्ध करना चाहे, वह नहीं होगा।

ऐसा समझकर... आहाहा! **अनादि-अनन्त चिद्रूप में अपना परिणमन लगाओ।** लो! अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, ऐसे चिद्रूप—ज्ञानरूप वस्तु में अपने वर्तमान निर्विकल्प परिणाम लगाओ। आहाहा! टीका भी कैसी की है, देखो न! .... सत्य को सत्यरूप से रख, भाई! वस्तु सत्य है, उसे सत्यरूप से रख। वस्तु प्रभु है। अनन्त-अनन्त शक्ति का सागर सर्वस्व, सर्वस्व वस्तु पूरी (मौजूद है)। आहाहा! उसे प्राप्त करने को तो परिणति निर्विकल्प उसकी जाति की चाहिए। जो मोक्षस्वरूप है, उसे मोक्ष का मार्ग उसके स्वरूप की जाति का होता है। आहाहा! स्वद्रव्य का। ऐसा कहा न? पुण्य-पाप (अधिकार) में नहीं? द्रव्यान्तर का नहीं। आहाहा! उसे अन्य द्रव्य का सहारा नहीं। यह पुण्य आदि भाव, वह तो अन्य द्रव्य का सहारा है। मात्र उससे हुआ है, उसमें एक दूसरी चीज़ का ज्ञान कराने को उसे साधक का आरोप देकर दो कारण से कार्य हुआ, ऐसा कहने में आया है, प्रभु! उसमें से आगे-ऊँचा जाये तो भाई! सत्य वस्तु नहीं रहेगी। समझ में आया? शुकनलालजी! आहाहा!

ऐसा समझकर... शास्त्र सुनना, वह तो ध्यान का उपाय, परन्तु ध्यान करना, वह अपना साधन वह है। **ऐसा समझकर अनादि-अनन्त चिद्रूप में....** भगवान अनादि-अनन्त है... है... है... है... सत्.... सत्.... सत्.... पूरा अनन्त दल सामान्य स्वभाव, ध्रुव स्वभाव, अभेद स्वभाव, एकरूप स्वभाव। वास्तविक आत्मा निश्चय तो यह है। आहाहा! उसे प्राप्त करने की परिणति तो ध्यान की परिणति है। आहाहा! परिणाम लगाओ, ऐसा कहा न? **अपना परिणाम लगाओ।** उस प्रकार के निर्विकल्प के परिणाम यहाँ लगाओ। वीतरागी परिणाम लगाओ। क्योंकि वीतरागी स्वरूप भगवान है। आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! उसे वीतरागी परिणाम लगाओ। आहाहा! कैसी बात की, देखो न! अब उसमें खींचतान करके... भाई! वस्तु को वस्तुरूप से रहने दे, बापू! खींचतान करने से वह वस्तु प्राप्त नहीं होगी। इसकी हाँ तो कर। आहाहा!

अनादि-अनन्त चिद्रूप में अपना परिणमन लगाओ। इतनी भाषा तो देखो! यह विकल्प है, वह अपने परिणाम है ही नहीं। वह तो व्यवहार है। अजीव है। आहाहा! जीव स्वभाव में अनादि-अनन्त चिद्रूप स्वभाव, उसमें परिणाम लगाओ। वीतरागी परिणाम ध्यान के लगाओ। देवचन्दजी! ऐसी बात है, बापू! चर्चा करे, वाद करे, चाहे जो करे। नियमसार में कहा, प्रभु! कोई ऐसे मार्ग की निन्दा करे, एकान्त माननेवाले हैं। अपने निर्विकल्प से प्राप्त होता है। व्यवहार को मानते नहीं। व्यवहार से होता है, यह (कहते नहीं), ऐसी कोई निन्दा करे (तो भी) वस्तु के स्वरूप में अभक्ति नहीं करना। आहाहा!

मुमुक्षु : नियमसार में तो व्यवहार की हँसी की है, मश्करी की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मश्करी ही है न यह। मश्करी ही की है न। यह विधि! मश्करी करी है। बापू! आहाहा!

दूसरी जगह भी 'अन्यथा' इत्यादि कहा है। उसका यह भावार्थ है कि वेद शास्त्र तो अन्य तरह ही हैं,.... वेद अर्थात् वीतराग की वाणी। आहाहा! और शास्त्र अर्थात् मुनि के वाक्य। ऊपर आया है न? वह तो **अन्य तरह ही हैं, नय प्रमाणरूप हैं,....** वह तो नय और प्रमाण के विकल्प से (-ज्ञान से) ज्ञात हो, ऐसी वस्तु है। **ज्ञान की पण्डिताई कुछ और ही है,...** आहाहा! **वह आत्मा तो निर्विकल्प है,....** आहाहा! ज्ञान की पण्डिताई बड़ी ऐसी हो और वैसी हो और ऐसा हो। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा पण्डिताई का विषय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आहाहा! शास्त्र का बहुत ज्ञान करके, फिर व्यवहार निकाला उसमें से (कि) इससे होता है। ऐसी पण्डिताई काम नहीं आती, बापू! आहाहा!

पण्डिताई कुछ और ही है, वह आत्मा तो निर्विकल्प है,.... आहाहा! वस्तु निर्विकल्प है। निर्विकल्प परिणति से प्राप्त होती है। उसमें पण्डिताई-फण्डिताई कुछ काम करे, ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। व्यवहार का लक्ष्य छोड़ेगा, तब निश्चय पर लक्ष्य जायेगा। अर्थात् व्यवहार से प्राप्त होता है, यह बात तो कथनमात्र है। व्यवहारनय का आया है न? कथनमात्र नहीं आया कलश में? (पाँचवें) कलश में आया है। व्यवहारनय तो कथनमात्र है। आहाहा! कहने में यह आवे। वस्तु की स्थिति ऐसी नहीं है। आहाहा!

वह परमतत्त्व तो केवल आनन्दरूप है,.... आहाहा! देखा! **आत्मा निर्विकल्प है, नय प्रमाण निक्षेप से रहित है,.... तथा ज्ञान की पण्डिताई कुछ और ही है,.... परमतत्त्व तो केवल आनन्दरूप है,....** आहाहा! वस्तु जो भगवान आत्मा अकेला आनन्दरूप है। ऐसा कहकर क्या कहना चाहते हैं? कि विकल्प आदि व्यवहार है, वह तो दु:खरूप है। समझ में आया? उसके इस साधन में कैसे आवे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय परम आनन्द की मूर्ति प्रभु है वह तो। आहाहा!

और ये लोक अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं,.... आहाहा! यह यशस्तिलक का है। यशस्तिलक ग्रन्थ है न? उसमें से लिखा है इसमें। चम्पु नहीं? यशस्तिलक चम्पु है न यह? पुस्तक-ग्रन्थ उसमें लिखा है। अरे! कुछ लगे, व्यवहार में लगे और मानो मिल जायेगा। बापू! वस्तु तो अन्तर्मुख ध्यान में मिले, ऐसा है। बाकी कुछ है नहीं। आहाहा! बाकी सब फांफां। शास्त्र बहुत पढ़े। न्याय के ग्रन्थ बहुत पढ़े तो हाथ लग जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह यात्रा करे तो भगवान प्राप्त हो जाये। भगवान की भक्ति से प्राप्त हो जाये, सब भ्रमणा है। आहाहा! लोग, मार्ग कुछ है और लगे कहीं है। ऐसा कहा है, देखो न! **अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं,....** आहाहा! मानो देव-गुरु की भक्ति करें तो उसमें से अपने को आत्मा मिल जायेगा। व्यवहार बहुत करें तो आत्मा मिल जायेगा। आहाहा! व्यवहार की दिशा परसन्मुख, उससे स्व दिशा सन्मुख की मदद मिले, यह कैसे हो? क्या समझ में आया? राग है, उसकी दिशा तो परसन्मुख है और निर्मल निर्विकल्प की दशा की दिशा तो स्वसन्मुख है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह श्लोक यशस्तिलक चम्पु का है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यशस्तिलक चम्पु, २५१। ऐसा लिखा है। अध्याय-५, गाथा-२५१। है यशस्तिलक चम्पु, अध्याय-५, गाथा-२५१। तब लिखी होगी। आहाहा!

आनन्द के नाथ को प्राप्त करने के लिये तो आनन्द की ही परिणति चाहिए, कहते हैं। विकल्प की परिणति तो दु:ख की दशा है। आहाहा! ऐसी बात करते हैं न। आहाहा! भाई! तेरा आत्मा अन्दर आनन्दमूर्ति है, प्रभु! तू आनन्द का धाम है। 'स्वयं ज्योति सुखधाम' अतीन्द्रिय आनन्द की वस्तु तू है। अतीन्द्रिय आनन्दमय ही तू है। आहाहा! उसे अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति द्वारा ही पूर्णता के ध्येय को पा

सकता है। आहाहा! उसकी जाति की परिणति द्वारा वह जाति पैदा होती है, प्राप्त होती है। यह व्यवहार के विकल्प से प्रभु हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! **लोक अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं,....** आहाहा! जिसकी ओर जाना, उसके मार्ग में न आकर, जिसकी ओर नहीं जाना, उसके मार्ग में जाते हैं। आहाहा! यह यशस्तिलक का अर्थ है, हों! देखो! है न? '**अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रपाण्डित्यमन्यथा। अन्यथा परमं तत्त्वं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा।**' मुफ्त का क्लेश करता है, व्यवहार के विकल्प को उठाकर। यह मानो भक्ति से मिलेगा, यात्रा से मिलेगा, शास्त्रवांचन से मिलेगा। आहाहा! दुःख है। भान कहाँ है इसे। आहाहा!

सो वृथा क्लेश कर रहे हैं। आहाहा! भगवान परमानन्द के नाथ के निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त करना चाहिए, निर्विकल्प शान्ति से प्राप्त करना चाहिए, उसके बदले अन्यत्र लगे हैं। आहाहा! यह साधन है व्यवहार का। अरे! प्रभु! परन्तु तू कहाँ जाता है? भाई! यह श्रीमद् (के अनुयायियों) में यह बड़ा घोटाला है। ऐसी बात एक मारवाड़ी ने पूछी, कि साधन? परन्तु साधन, यह साधन है, दूसरा साधन नहीं है। आहाहा! एकान्त सम्यक् साधक यह ही है। ऐई! बात ऐसी है।

इस जगह अर्थरूप शुद्धात्मा ही उपादेय है,... देखो! इसमें अर्थ अर्थात् पदार्थ-शुद्धात्मा। शुद्ध आत्मा, वह एक उपादेय है। **अन्य सब त्यागनेयोग्य हैं,...** लो! आहाहा! व्यवहार-ब्यवहार वह त्यागनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। उसका लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। परमात्मप्रकाश में गजब काम किया है! ओहोहो! उसमें और अभी सौ (पुस्तकें) आ गयी। ठीक किया। पढ़े तो सही। अरे..! बापू! ऐसा अवसर मिलना मुश्किल, भाई!

यह सारांश समझना। अर्थात् कि नित्यानन्द प्रभु ही उपादेय है। वीतरागी परिणति में वही आदरणीय है। बाकी सब हेय है। हेय है, ऐसा भी करना नहीं। इस ओर की परिणति में इसे उपादेय माना तो वह हेय हो गया। आहाहा! समझ में आया? परमानन्द-स्वरूप पूर्ण आनन्दघन वस्तु, अकेला अतीन्द्रिय आनन्ददल... आहाहा!

‘गगनमण्डल में गौआ विहाणी वसुधा दूध जमाया।
माखन था सो विरला पाया, छाछ में जगत भरमाया।

छाछ–मट्ठा। आहाहा!

मुमुक्षु : यह गगनमण्डल क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गगनमण्डल में आकाश की वाणी में से आया कि यह आत्मा ऐसा है, ऐसा आया। निरालम्बी वाणी निकली, गगनमण्डल में भगवान की वाणी। वसुधा—मनुष्य के कान में पड़ी, उसमें से मक्खन विरलों ने निकाला। यह तो कहे नहीं, इससे होता है, पर से होता है, पर से होता है, ऐसा करके रुका, वह छाछ में भरमा गया। आहाहा!

‘गगनमण्डल में अधबीच कुआ, वहाँ है अमी का वासा।
सुगुरा हुए सो भर–भर पीवे, नगुरा जावे रे प्यासा।
अवधु सो जोगी गुरु मेरा,
गगनमण्डल में अधबीच कुआ।’

आत्मा अध्धर है न? कहाँ है? अमृत का कुँआ है, वह अमृत का सिन्धु है। आहाहा! परन्तु ‘सुगुरा होवे सो वह भर–भर पीवे।’ सुगुरु ने उसे ऐसा कहा, प्रभु! तेरी वस्तु तुझमें पड़ी है। उसकी ओर के ध्यान की परिणति से तुझे प्राप्त होगी। उसे यह मिली। ‘नुगुरा जावे प्यासा।’ जिसे बोध ऐसा मिला कि व्यवहार करते हुए होगा, निमित्त के अवलम्बन से होगा, उसे वह प्राप्त नहीं होगा। ऐई! आहाहा! यह २३ (गाथा) हुई।

बहुत सरस बात! आहाहा! एक ही बारह अंग का सार है। चौदह पूर्व का मक्खन है। आहाहा! तुझे बहुत क्या काम है? बापू! आहाहा! जहाँ है वहाँ जा न! विकल्प में तू कहाँ है? भगवान की भेंट करना हो तो वहाँ उसके सामने जा। आहाहा! भगवान के दर्शन करना हो तुझे, (तो) वीतरागी परिणति से उसके दर्शन होंगे, प्रभु! आहाहा! एकान्त लगे लोगों को, हों! निश्चयाभासी जैसा हो जाये, प्रभु! सुन, भाई! चाहे जो तू कहे, परन्तु मार्ग तो यह है। माननेवाले माने, न माननेवाले न माने। संख्या सत् की नहीं होती, अधिक नहीं होती, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। ‘एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।’ ऐसा पंथ है, प्रभु! आहाहा! २४ (गाथा)

गाथा - २४

अथ योऽसौ वेदादिविषयो न भवति परमात्मा समाधिविषयो भवति पुनरपि तस्यैव स्वरूपं व्यक्तं करोति –

२४) केवल–दंसण–णाणमउ केवल–सुक्ख–सहाउ।
केवल–वीरिउ सो मुणहि जो जि परावरु भाउ।।२४।।

केवलदर्शनज्ञानमयः केवलसुखस्वभावः।
केवलवीर्यस्तं मन्यस्व य एव परापरो भावः।।२४।।

केवलोऽसहायः ज्ञानदर्शनाभ्यां निर्वृत्तः केवलदर्शनज्ञानमयः केवलानन्तसुखस्वभावः केवलानन्तवीर्यस्वभाव इति यस्तमात्मानं मन्यस्व जानीहि। पुनश्च कथंभूतः य एव। यः परापरः परेभ्योऽर्हत्परमेष्ठिभ्यः पर उत्कृष्टो मुक्तिगतः शुद्धात्मा भावः पदार्थः स एव सर्वप्रकारेणोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।२४।।

आगे कहते हैं कि जो परमात्मा वेदशास्त्रगम्य तथा इन्द्रियगम्य नहीं, केवल परमसमाधिरूप निर्विकल्पध्यानकर ही गम्य है, इसलिए उसी का स्वरूप फिर कहते हैं–

जो ज्ञानदर्शनमयी केवल सुखस्वभावी है सदा।
है वीर्य केवलमयी सर्वोत्कृष्ट वस्तु जानना।।२४।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो [केवलदर्शन ज्ञानमयः] केवलज्ञान केवलदर्शनमयी है, अर्थात् जिसके परवस्तु का आश्रय (सहायता) नहीं, आप ही सब बातों में परिपूर्ण ऐसे ज्ञानदर्शनवाला है, [केवलसुखस्वभावः] जिसका केवलसुख स्वभाव है, और जो [केवलवीर्यः] अनंत वीर्यवाला है, [स एव] वही [परापरभावः] उत्कृष्ट अर्हंतपरमेष्ठी से भी अधिक स्वभाववाला सिद्धरूप शुद्धात्मा है [मन्यस्व] ऐसा मानो।

भावार्थ :– परमात्मा के दो भेद हैं, पहला सकलपरमात्मा, दूसरा निष्कलपरमात्मा, उनमें से कल अर्थात् शरीरसहित जो अरहंत भगवान् हैं वे साकार हैं, और जिनके शरीर नहीं ऐसे निष्कल परमात्मा निराकारस्वरूप सिद्धपरमेष्ठी हैं, वे सकल परमात्मा से भी उत्तम हैं, वही सिद्धरूप शुद्धात्मा ध्यान करने योग्य है।।२४।।

गाथा - २४ पर प्रवचन

२४। **जो परमात्मा वेदशास्त्रगम्य तथा इन्द्रियगम्य नहीं, केवल परमसमाधिरूप निर्विकल्पध्यानकर ही गम्य है, इसलिए उसी का स्वरूप फिर कहते हैं।** २४ में विशेष (कहते हैं)।

२४) केवल-दंसण-णाणमउ केवल-सुक्ख-सहाउ।
केवल-वीरिउ सो मुणहि जो जि परावरु भाउ।।२४।।

भगवान **जो केवलज्ञान केवलदर्शनमयी है,....** आहाहा! सिद्ध को है और स्वयं भी आत्मा ऐसा है। आगे सिद्ध कहेंगे फिर २५वीं गाथा में। परन्तु आत्मा ही ऐसा है। सिद्ध जैसा ही आत्मा है। आहाहा! **केवलज्ञान केवलदर्शनमयी है,....** अकेला ज्ञान और अकेला दर्शनमयी भगवान आत्मा है। **जिसके परवस्तु का आश्रय नहीं,....** भगवान आत्मा अकेला ज्ञान और आनन्दमय है। उसे पर का आश्रय है नहीं। **आप ही सब बातों में परिपूर्ण ऐसे ज्ञान दर्शनवाला है,....** आहाहा! **सब बातों में परिपूर्ण ऐसे ज्ञानदर्शनवाला...** सब बातों से पूरा है। आहाहा!

भगवान आत्मा अकेला ज्ञान और दर्शनमय वस्तु। सर्व बातों से वह पूरा है, प्रभु! आहाहा! **जिसका केवलसुख स्वभाव है,....** अकेला आनन्द जिसका स्वभाव है। वस्तु की शक्ति अकेली आनन्दमय है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दरूप जिसका स्वरूप है। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा **और जो अनन्त वीर्यवाला है,...** ओहो! जिसका बल अनन्त है। जिसका स्वभाव अनन्त वीर्यवाला है। आहाहा! पर्याय का वीर्य प्रगटे, वह तो अनन्तवें भाग है, परन्तु भगवान आत्मा का जो स्वभाव वीर्य, वह तो अनन्त बल वीर्य। आहाहा! जिसके बल के स्वभाव के—शक्ति के भाग करो तो अनन्त-अनन्त हों, पूरा न पड़े ऐसा उसका पूर्ण वीर्य है। आहाहा!

वही उत्कृष्ट अर्हंतपरमेष्ठी से भी.... ऐसे जो अरिहन्त हैं, उससे भी **अधिक स्वभाववाला सिद्धरूप शुद्धात्मा है....** उनसे भी अधिक तो सिद्ध आत्मा हैं। ऐसा ही आत्मा है। वापस ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? पामरता की आदत पड़ गयी न, इसलिए प्रभुता इसे बैठती नहीं। आहाहा! एक-एक गुण में प्रभु परिपूर्ण सर्वस्व सार है। आहाहा! ऐसा अरिहन्त के स्वरूप से भी सिद्ध का स्वरूप उत्कृष्ट है। आहाहा!

है ? **ऐसा मानो।** उसमें से भी यह आत्मा उत्तम है, ऐसा सिद्ध करना है। वाद-विवाद करने से पार नहीं आता। आहाहा!

मुमुक्षु : चर्चा करना, वह तो राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग और वह भी वाद-विवाद... कहा न ? 'सद्‌गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा।' आहाहा!

परमात्मा के दो भेद हैं,.... पहले सकलपरमात्मा—शरीरवाले अरिहन्त। **दूसरा निष्कलपरमात्मा....** शरीररहित सिद्ध। **उनमें से कल अर्थात् शरीर सहित जो अरहन्त भगवान हैं,....** सकल कहा न ? सकल अर्थात् कल सहित—शरीर सहित। और बाहर **साकार है, और जिनके शरीर नहीं, ऐसे निष्कल परमात्मा निराकारस्वरूप सिद्ध परमेष्ठी हैं,....** अरिहन्त को साकार कहा। इन्हें (सिद्ध को) निराकार कहा। **वे सकल परमात्मा से भी उत्तम हैं,....** इन सकल परमात्मा से, अरिहन्त से **वही सिद्धरूप शुद्धात्मा ध्यान करनेयोग्य है।** ऐसे ही सिद्ध भगवान और ऐसा ही आत्मा। आहाहा! सिद्ध हुए वह तो उनकी पर्याय में है। यह तो सिद्ध स्वरूप ही है। सिद्ध होना, यह पर्याय हुई। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड स्वयं आत्मा—शुद्धात्मा है।

मुमुक्षु : अरिहन्त, सिद्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इससे आत्मा सिद्ध करते हैं, देखो! **वही सिद्धरूप शुद्धात्मा ध्यान करनेयोग्य है।** इसका अर्थ यह आत्मा है। वह सिद्ध जैसा ही यह आत्मा है। आहाहा! बात ऐसी है। आहाहा! सिद्ध समान आत्मा है। सिद्ध की व्याख्या की, परन्तु 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है न ? आहाहा! सिद्ध हैं, वे तो पर हैं। पर को उपादेय करने जाये तो व्यवहार हो जाता है। परन्तु ऐसा सिद्धस्वरूपी भगवान आत्मा है। वह सिद्ध की पर्याय तो एक समय की है और ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड। आहाहा! सिद्धस्वरूपी सिद्ध परमात्मा शुद्धात्मा अपना, वही उपादेय—आराधनेयोग्य है। ऐसा है इसमें तो। आहाहा!

अब इसमें लोगों को रस नहीं आता, फिर भक्ति, यात्रा, रथयात्रा, बैण्डबाजा करे, दस-बीस हजार लोग साथ में (हों), लो! और हजार-हजार, दो-दो हजार के एक-एक बैण्डबाजा। दस-बीस तो बैण्डबाजा हों। बड़ी रथयात्रा। चालीस हजार आदमी हों

तो दो-दो हजार के बीच एक-एक बैण्ड। बीस बैण्ड। कैसी धमाल चले, लो! अपने जयपुर नहीं की थी? चालीस हजार लोग। चालीस हजार लोग।

मुमुक्षु : कितना अधिक धर्म का फैलाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म? रथयात्रा ऐसी कि लोग देखने निकले। प्रायः तब वहाँ साधु थे।

मुमुक्षु : धर्मसागर....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मसागर नहीं, देशभूषण। देखने निकले थे। परन्तु कैसा! वह तो बनने की बाहर की प्रवृत्ति तो उसके काल में बनने की है। उसे कौन करे? भाई! आहाहा! लोगों को बाह्य की महिमा विशेष, इसलिए लोग ऐसा माने। परन्तु इससे कहीं उसके कारण आत्मा कुछ प्राप्त होता है, ऐसा है? करोड़ संख्या इकट्ठी हो और हो.. हा (करे)। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी जो शुद्ध पूर्ण परिणति उससे प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त नहीं। आहाहा! 'लाख बात की बात...' आता है न यह? 'एक निश्चय उर लाओ। छोड़ी जगत द्वंद्व-फंद निज आतम ध्याओ।'

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात सच्ची। कर्म में ऐसा कहते थे वहाँ। ऐसा कि वह अनित्य का कहा था न? पर के कारण विकार होता है, यह ऐसी अनीति सम्भव नहीं... ऐसे-ऐसे टुकड़े (रखे)। परन्तु जो मूल हो, टुकड़ा ही हो न? (संवत्) २०१३ के वर्ष में। 'कर्म बिचारे कौन...' ऐसी बात करे। आहाहा! बापू! कर्म तो क्या करे? तुझमें शुभ विकल्प हो, वह चैतन्य को क्या करे? नुकसान करे। आहाहा! घातक, कल कहा था न? व्यवहार का विकल्प है, वह घातक है। उसे साधन कहना, वह तो उपचार के कथन हैं, भाई! आहाहा! बिल्ली को सिंह कहना। यह दृष्टान्त दिया था न? पुरुषार्थसिद्धि उपाय। बिल्ली को सिंह कहे, बिल्ली सिंह होती होगी कभी? परन्तु उसकी क्रूरता को जरा देखकर कहा जाता है कि यह सिंह। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सिद्धरूप शुद्धात्मा ध्यान करनेयोग्य है।** लो! यह यहाँ लोकाग्र लेंगे अभी। परन्तु इस लोक के अग्र में—इसके विकल्प के अग्र में भगवान विराजता है आगे। व्यवहार विकल्प आदि है, उससे भिन्न वस्तु है। वह लोकाग्र में सिद्ध है। वे सिद्ध हैं, वह व्यवहार है।

गाथा - २५

अथ त्रिभुवनवन्दित इत्यादिलक्षणैर्युक्तो योऽसौ शुद्धात्मा भणितः स लोकाग्रे तिष्ठतीति कथयति –

२५) एयहिं जुत्तउ लक्खणहिं जो परु णिक्कलु देउ।
सो तहिं णिवसइ परम-पइ जो तइलोयहँ झेउ।।२५।।

एतैर्युक्तो लक्षणैः यः परो निष्कलो देवः।
स तत्र निवसति परमपदे यः त्रैलोक्यस्य ध्येयः।।२५।।

एतैस्त्रिभुवनवन्दितादिलक्षणैः पूर्वोक्तैर्युक्तो यः। पुनश्च कथंभूतो यः। परः परमात्मस्वभावः। पुनरपि किंविशिष्टः। निष्कलः पञ्चविधशरीररहितः। पुनरपि किंविशिष्टः। देवस्त्रिभुवनाराध्यः स एव परमपदे मोक्षे निवसति। यत्पदं कथंभूतम्। त्रैलोक्यस्यावसानमिति। अत्र तदेव मुक्तजीवसदृशं स्वशुद्धात्मस्वरूपमुपादेयमिति भावार्थः।।२५।। एवं त्रिविधात्मकथनप्रथममहाधिकारमध्ये मुक्तिगतसिद्धजीवव्याख्यानमुख्यत्वेन दोहकसूत्रदशकं गतम्।

आगे तीन लोककर वंदना करने योग्य पूर्व कहे हुए लक्षणों सहित जो शुद्धात्मा कहा गया है, वही लोक के अग्र में रहता है, यही कहते हैं –

पूर्वोक्त लक्षण युक्त जो उत्कृष्ट निष्कल देवता।
त्रैलोक्य का वह ध्येय रहता परम पद में है सदा।।२५।।

अन्वयार्थ :- [एतैः लक्षणैः] 'तीन भुवनकर वंदनीक' इत्यादि जो लक्षण कहे थे, उन लक्षणोंकर [युक्तः] सहित [परः] सबसे उत्कृष्ट [निष्कलः] औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण-ये पाँच शरीर जिसके नहीं है अर्थात् निराकार है, [देवः] तीन लोककर आराधित जगतका देव है, [यः] ऐसा जो परमात्मा सिद्ध है, [सः] वही [तत्र परमपदे] उस लोक के शिखर पर [निवसति] विराजमान है, [यः] जो कि [त्रैलोक्यस्य] तीन लोक का [ध्येयः] ध्येय (ध्यान करने योग्य) है।

भावार्थ :- यहाँ पर जो सिद्धपरमेष्ठी का व्याख्यान किया है, उसी के समान अपना भी स्वरूप है, वही उपादेय (ध्यान करने योग्य) है जो सिद्धालय है वह देहालय

है अर्थात् जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है वैसा ही हंस (आत्मा) इस घट (देह) में विराजमान है।।२५।।

गाथा - २५ पर प्रवचन

२५) **एयहिँ जुत्तउ लक्खणहिँ जो परु णिक्कलु देउ।**
सो तहिँ णिवसइ परम-पइ जो तइलोयहँ झेउ।।२५।।

अन्वयार्थः—आहाहा! **तीन लोककर वन्दना करनेयोग्य पूर्व कहे हुए लक्षणों सहित जो शुद्धात्मा कहा गया है, वही लोक के अग्र में रहता है,....** बाहर से लोक के अग्र में रहता है। अन्दर में विकल्प से भिन्न अन्दर भगवान रहता है। आहाहा! **यही कहते हैं—'तीन भुवनकर वन्दनीक' इत्यादि जो लक्षण कहे थे, उन लक्षणोंकर सहित सबसे उत्कृष्ट निष्कल....** निष्कल अर्थात् शरीररहित। **औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण ये पाँच शरीर जिसके नहीं है, अर्थात् निराकार है, तीन लोककर आराधित जगत का देव है,** आहाहा! **ऐसा जो परमात्मा सिद्ध है, जो परमात्मा वही उस लोक के शिखर पर....** आहाहा! **परमपदे 'नीवसई' विराजमान है, जो कि तीन लोक का ध्येय ध्यान करनेयोग्य है।** आहाहा! यह जगत के प्राणी को इसका ध्यान करनेयोग्य तीन लोक का नाथ भगवान है। आहाहा! समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ११, मंगलवार
दिनांक-२२-०६-१९७६, गाथा-२५ से २७, प्रवचन-१५

परमात्मप्रकाश। २५वीं गाथा। भावार्थ है।

भावार्थ :- यहाँ पर जो सिद्धपरमेष्ठी का व्याख्यान किया है,.... भगवान केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्दमय है, निराकार है। वे शरीररहित निकल परमात्मा है। **उसी के समान अपना भी स्वरूप है,....** यहाँ तो सिद्धान्त यह है। भगवान आत्मा सिद्ध समान स्वरूपी, उसकी शक्ति, उसका स्वभाव पूर्ण ज्ञान, दर्शन, आनन्द यह उसका स्वभाव है। वह सिद्धस्वरूप स्वयं ही है। **अपना भी स्वरूप है, वही उपादेय (ध्यान करनेयोग्य) है,....** यहाँ तो यह कहना है। देखा! सिद्ध को उपादेय कहा, वह तो निमित्त से, व्यवहार से बात की। और उसे उपादेय माने, इसलिए स्व उपादेय होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें!

भगवान परमात्मस्वरूप ही तेरा आत्मा है। सिद्ध तो एक समय की पर्याय है। यह तो पूरा पिण्ड ही प्रभु सिद्धस्वरूप है। वीतरागमूर्ति अकषायस्वभाव का पिण्ड, अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य से भरपूर पदार्थ, वही उपादेय है। ध्यान करनेयोग्य वह है, ऐसा कहते हैं। है? आहाहा! सिद्ध का ध्यान करने से... तब कोई कहे कि परन्तु यह सिद्ध का पहले ध्यान करे, फिर यह हो। ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। स्वयं ही परमात्मस्वरूप है, उसका सीधा आश्रय लेकर और ध्यान में उसे ध्येय बनावे। आहाहा! निर्विकल्प वीतराग परिणति द्वारा वस्तु यह है, उसे ध्येय बनावे अर्थात् उसका ध्यान करे। इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। ऐसी बात है।

जो सिद्धालय है, वह देहालय है,.... आहाहा! सिद्धालय है, वह यह देहालय है। **जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है,....** जैसे सिद्धलोक में परमात्मा पूर्ण स्वरूप विराजमान है। **वैसा ही हंस (आत्मा) इस घट (देह) में विराजमान है।** आहाहा! भगवान पूर्ण स्वरूप विराजमान आत्मा है। पर्याय में उसे ध्यान में ले। पर्याय है, वह ध्यान है और वस्तु है, वह उसका ध्येय है। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े। क्या हो?

मार्ग तो यह है। साक्षात् भगवान परमात्मस्वरूप है, उसकी भेंट करने के लिये तो निर्विकल्पदशा चाहिए। व्यवहार के विकल्प पहले आवे, इसलिए उसमें से कुछ मदद मिले—ऐसा नहीं है।

वह यही कहा। सीधे यहाँ है। व्यवहार आवे तो मदद मिले। वे भाई कहते थे न? छोटालालजी कहते थे। छोटालाल नहीं? ब्रह्मचारी। पहले ऐसा कहते थे। फिर विचार बदल गया यहाँ। व्यवहार में आवे तो शक्ति मिले कि जिससे अन्दर में जा सके। ऐसा कहते थे। श्रीमद् में एक ऐसा पत्र है। निश्चय में अकेला रूखा लगे तो उसे भक्ति में आना। एक पत्र है। है ख्याल? वह तो व्यवहार की बातें हैं, बापू! यह तो परमानन्द का नाथ पूर्ण है, उसे सीधे ध्येय में लेना। उसे पर की कोई अपेक्षा है ही नहीं।

मुमुक्षु : पात्रता तो अन्दर....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पात्रता यह। तब पात्रता कहलाती है। सम्यग्दर्शन स्व का आश्रय करे, तब उसे पात्रता कहा जाता है। अब उसका सिद्धपना उसमें टिकेगा, ऐसा। यह श्रीमद् ने कहा एकबार। सम्यग्दर्शन होते ही पात्रता होती है। ऐसी बात है, बापू! आहाहा! 'जो नव वाड विशुद्ध से पाले...' आता है न? इन सबकी बातें सब ऐसी चाहे जो हो। बात में बात उसका योगफल तो एक समय में परमात्मा पूर्ण स्वरूप है, उसे रागरहित वीतराग परिणति द्वारा उसे ध्येय करना। बस! वह वस्तु है। बाकी चाहे जो बातें व्यवहारनय की आती हो, वह वस्तु की स्थिति नहीं है। आहाहा!

जो सिद्धालय है, वह देहालय है,.... देह-आलय—स्थान। भगवान अन्दर परमानन्दस्वरूप अखण्ड आनन्द की रस कातली प्रभु है वह तो। आहाहा! गन्ने में जैसे मीठा रस है न? ऐसा वह छिलके से पृथक्। इसी प्रकार राग-द्वेष के विकल्प के छिलकों से प्रभु भिन्न पूर्ण आनन्दरस से भरपूर है। इसे ध्येय बना। आहाहा! यह बात है, भाई!

जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है,... जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है, वैसा ही हंस (आत्मा) इस घट में विराजमान है। आहाहा! हंस-हंस... हंस-हंसला। राग से भिन्न पड़कर अन्दर में जाये, उसे हंस कहते हैं। जैसे हंस की चोंच में खटाई है। दूध

और पानी इकट्ठे में चोंच डाले तो दूध का कोकड़ूं हो जाता है और पानी पृथक् पड़ जाता है। इसी प्रकार भगवान हंस है। उसकी वीतराग परिणति द्वारा अन्दर में जाये तो राग से भिन्न पड़ जाये और वीतरागता से अभेद हो। अर्थात् त्रिकाली के साथ अभेद हो। अभेद का अर्थ उस ओर ढल जाये, ऐसा। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

पर्याय जो है निर्विकल्प समाधि वीतरागी परिणति सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह तो द्रव्य की ओर ढलती है। परन्तु इससे द्रव्य में एकमेक हो जाती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वीतरागी पर्याय को पर्याय में द्रव्यस्वभाव का ज्ञान होता है और वीतरागी पर्याय द्रव्यस्वभाव को ध्येय बनावे। इसलिए वह वीतराग पर्याय अर्थात् मोक्ष का मार्ग, वह कहीं वस्तु में एकमेक नहीं हो जाता तथा वस्तु मोक्षमार्ग की पर्याय में आती नहीं। वस्तु का ज्ञान और सामर्थ्य क्या है, वह सब पर्याय में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

इस घट में विराजमान है। भक्ति में नहीं आता? 'जैसो वहाँ, तैसो यहाँ।' भक्ति में कहीं आता है। आहाहा! बात यह है कि उसे भरोसे में बात आनी चाहिए। वर्तमान प्रगट एक समय की पर्याय में अनादि से क्रीड़ा (की है)। और एक समय की पर्याय के अतिरिक्त पूरी वस्तु जो वास्तविक तो जो त्रिकाल है, वह चीज़ है। उसके सन्मुख न देखकर पर्याय के सन्मुख देखकर पर्याय का लक्ष्य तो फिर पर के ऊपर जाता है। आहाहा! समझ में आया? इससे भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप साक्षात् परमात्मस्वरूप ही विराजता है आत्मा। आहाहा! उसे वीतरागी परिणति कहो, निर्विकल्प समाधि कहो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति द्वारा उसकी भेंट कर। आहाहा! ऐसी बात है।

लोगों को तो ऐसा सब लगता है कि व्यवहार से कुछ नहीं? यह कहा, व्यवहार से परम्परा होता है। नहीं आया था? नहीं आया था इसमें? निश्चय से साक्षात् हो और व्यवहार से परम्परा होता है, लो! अरे! प्रभु! क्या है? बापू! आहाहा! यह तो व्यवहारनय के वचन हैं, भाई! राग से परम्परा से स्वआश्रय में जाया जाता है, ऐसा नहीं होता। विवाद करे। प्रभु! क्या करे? आहाहा! अपना जो बड़ा स्वरूप है, महन्त स्वरूप अपना है। आहाहा! उसे पकड़ने के लिये तो विकल्परहित, व्यवहाररहित निर्विकल्प दृष्टि ही काम

आती है। वह उसका स्वीकार कर सकती है। आहाहा! राग की पर्याय उसका स्वीकार नहीं कर सकती। और राग की पर्याय व्यवहार से निश्चय पर्याय होती है और निश्चय पर्याय का ध्येय द्रव्य, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

आगमपद्धति का व्यवहार सुगम (लगता है)। परमार्थवचनिका में आता है न? यह लोग करके मोक्ष का मार्ग मानते हैं। परन्तु अध्यात्म का व्यवहार क्या, इसकी उन्हें खबर नहीं। अध्यात्म का व्यवहार—निर्विकल्पदशा, वह अध्यात्म का व्यवहार है। समझ में आया? निर्विकल्पदशा, वह व्यवहार है और वह पर्याय, द्रव्य को पकड़ती है। यह व्यवहार, निश्चय को पकड़ता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार हुआ, वही पर्याय। क्योंकि एक वर्तमान क्षण जितनी वह दशा है। इसलिए उसे व्यवहार कहा और त्रिकाल को पकड़े, वह वस्तु निश्चय है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। २५ (गाथा) हुई। २६ (गाथा)

गाथा - २६

अत ऊर्ध्वं प्रक्षेपपञ्चक *मन्तर्भूतचतुर्विंशतिसूत्रपर्यन्तं यादृशो व्यक्तिरूपः परमात्मा मुक्तौ तिष्ठति तादृशः शुद्धनिश्चयनयेन शक्तिरूपेण देहेपि तिष्ठतीति कथयन्ति। तद्यथा –

२६) जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिँ णिवसइ देउ।
तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहँ मं करि भेउ।।२६।।

यादृशो निर्मलो ज्ञानमयः सिद्धौ निवसति देवः।
तादृशो निवसति ब्रह्मा परः देहे मा कुरु भेदम्।।२६।।

यादृशः केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपः कार्यसमयसारः, निर्मलो भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्म-मलरहितः, ज्ञानमयः केवलज्ञानेन निर्वृत्तः केवलज्ञानान्तर्भूतानन्तगुणपरिणतः सिद्धो मुक्तो मुक्तौ निवसति तिष्ठति देवः परमाराध्यः तादृशः पूर्वोक्तलक्षणसदृशः निवसति तिष्ठति ब्रह्मा शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा पर उत्कृष्टः। क्व निवसति। देहे। केन। शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन। कथंभूतेन। शक्तिरूपेण हे प्रभाकरभट्ट भेदं मा कार्षीस्त्वमिति। तथा चोक्तं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैः मोक्षप्राभृते ''णमिएहिं जं णमिज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं। थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह।।'' अत्र स एव परमात्मोपादेय इति भावार्थः।।२६।।

इस प्रकार जिसमें तीन तरह के आत्मा का कथन है, ऐसे प्रथम महाधिकार में मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यताकर चौथे स्थल में दश दोहा-सूत्र कहे। आगे पाँच क्षेपक मिले हुए चौबीस दोहों में जैसा प्रगटरूप परमात्मा मुक्ति में है, वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर देह में भी शक्तिरूप है, ऐसा कहते हैं –

ज्यों रहे निर्मल ज्ञानमय भगवान मुक्ति में अहो।
त्यों रहे तन में परम ब्रह्मा अतः भेद नहीं करो।।२६।।

अन्वयार्थ :- [यादृशः] जैसा केवलज्ञानादि प्रगटस्वरूप कार्यसमयसार [निर्मलः] उपाधिरहित भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप मल से रहित [ज्ञानमयः] केवलज्ञानादि अनंत गुणरूप सिद्धपरमेष्ठी [देवः] देवाधिदेव परम आराध्य [सिद्धौ] मुक्ति में [निवसति] रहता है, [तादृशः] वैसा ही सब लक्षणों सहित [परः ब्रह्मा] परब्रह्म, शुद्ध, बुद्ध, स्वभाव

* पाठान्तर :- मन्तर्भूत-मन्तर्भाव

परमात्मा, उत्कृष्ट शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्तिरूप परमात्मा [देहे] शरीर में [निवसति] तिष्ठता है, इसलिये हे प्रभाकरभट्ट, तूँ [भेदम्] सिद्ध भगवान् में और अपने में भेद [मा कुरु] मत कर। ऐसा ही मोक्षपाहुड़ में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने भी कहा है ''णमिएहिं'' इत्यादि-इसका यह अभिप्राय है कि जो नमस्कार योग्य महापुरुषों से भी नमस्कार करने योग्य है, स्तुति करने योग्य सत्पुरुषों से स्तुति किया गया है और ध्यान करने योग्य आचार्यपरमेष्ठी वगैरह से भी ध्यान करने योग्य ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है, उसको तूँ परमात्मा जान।

भावार्थ :- वही परमात्मा उपादेय है।।२६।।

गाथा - २६ पर प्रवचन

२६। **इस प्रकार जिसमें तीन तरह के आत्मा का कथन है, ऐसे प्रथम महाधिकार में मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यताकर चौथे स्थल में दश दोहा-सूत्र कहे। आगे पाँच क्षेपक मिले हुए चौबीस दोहों में जैसा प्रगटरूप परमात्मा मुक्ति में है,...** लो! **वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर देह में भी शक्तिरूप है,....** आहाहा! शक्ति कहो, सामर्थ्य कहो। आहाहा! पीपर के दाने में शक्तिरूप चौंसठ पहरी शक्ति चरपरारस पूरा-पूरा पड़ा है। आहाहा! उसी प्रकार भगवान शक्तिरूप से परमात्मा ही है। द्रव्यस्वभाव, परमात्मस्वभाव, त्रिकालीस्वभाव, ध्येय में लेनेयोग्य स्वभाव वह तो पूर्णानन्द पूर्ण है। समझ में आया? आहाहा! **वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर देह में भी शक्तिरूप है, ऐसा कहते हैं।** २६ (गाथा)

जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिं णिवसइ देउ।
तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहँ मं करि भेउ।।२६।।

अन्वयार्थ :- आहाहा! **जैसा केवलज्ञानादि प्रगटस्वरूप कार्यसमयसार....** प्रगट केवलज्ञानादि कार्यसमयसार परमात्मा जो है, **उपाधि रहित भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप मल से रहित....** आहाहा! **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप सिद्धपरमेष्ठी देवाधिदेव परम आराध्य मुक्ति में रहता है,....** आहाहा! **वैसा ही सब लक्षणों सहित....** तादृश्य है। **वैसा**

ही सब लक्षणों सहित परमब्रह्म,.... आहाहा! परमब्रह्म। भगवान आत्मा **परमब्रह्म, शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव परमात्मा,....** वहाँ 'एक' शब्द पड़ा रहा है। क्या कहा?

शुद्ध, बुद्ध फिर एक चाहिए। यह बहुत जगह एक नहीं रखते। वास्तव में तो यह **शुद्ध, बुद्ध, एक स्वरूप...** ऐसा कहना है। पर्याय का भी भेद नहीं। है न?

शुद्ध.... पवित्र **बुद्ध,...** ज्ञानघन। अकेला ज्ञानस्वरूप, वह एकरूप। भेद नहीं। आहाहा! पर्याय का भी जिसमें भेद नहीं। शुद्ध, बुद्ध, पवित्र अकेला ज्ञान—ज्ञायकभाव एक भाव। आहाहा! **परमात्मा, उत्कृष्ट शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्तिरूप परमात्मा शरीर में तिष्ठता है,....** आहाहा! जैसे मुक्ति में सिद्ध परमात्मा विराजते हैं, वैसा ही यह भगवान आत्मा ऐसे **सब लक्षणों सहित....** देखा! सिद्ध के जितने लक्षण हैं, उन सब लक्षणों से सिद्ध भगवान यहाँ अन्दर विराजते हैं। आहाहा! कैसा काम किया है!

यह परमात्मप्रकाश है। परमात्मप्रकाश पर्याय में हो, वह कार्यपरमात्मा है। परन्तु वस्तु कारणपरमात्मा त्रिकाल स्वयं है। यह वीतरागी भाव है। लोगों को—रागवालों को यह रूखा लगे। कोई ऐसा मानो बाहर में जाये और ऐसा हो तो (ठीक पड़े)। श्रीमद् में एक पत्र आता है। खबर है? ऐसा कि अध्यात्म में बहुत वैसा करने से वैसा हो जाये तो भक्ति में आवे। ऐसा पत्र आता है। इस ओर है। पर की भक्ति में आवे, उससे वह तो अन्तर में से हट गया है और इसलिए उसे अन्दर में जाना सरल पड़े, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा कि वीतरागी भाव तो रूखा है। थोड़ी भक्ति में आवे तो इसका रूखापन जाये। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : भक्ति स्वयं अशुद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग है। स्व की भक्ति, निर्विकल्पदशा की भक्ति, वह आत्मा की भक्ति है। ऐसी बात, भाई! कठिन काम। क्या हो? भाई! वस्तु ही ऐसी स्थिति है वहाँ। आहाहा! जहाँ परमात्मा स्वयं विराजता है, वहाँ इसे दृष्टि करनी है। और वह दृष्टि निर्विकल्पदृष्टि। आहाहा! वाद-विवाद करे तो कुछ पार आवे, ऐसा नहीं है। व्यवहार से ऐसा होता है, ढींकणा से ऐसा होता है। व्यवहार से परम्परा से होता है। बापू! उसमें उत्साह न कर, भाई!

मुमुक्षु : परम्परा का अर्थ कि उसका अभाव करके होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह परम्परा का अर्थ वह इससे होता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते हैं न? व्यवहार से उससे परम्परा होता है। इसका अर्थ ऐसा नहीं है, भाई! व्यवहार का अभाव करके निश्चय का आश्रय जब पूर्ण करेगा, तब उसे होगा। अभी भी जितना निश्चय का आश्रय किया है, उतना मार्ग है। पश्चात् भी अधिक आश्रय करेगा तब व्यवहार का भाव छूट जायेगा। इससे उसे परम्परा का आरोप कहा गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ... आहाहा!

और वास्तव में जो व्यवहार कारण है, वह तो असत् कारण है। निश्चय जो वीतराग परिणति द्वारा प्राप्त हो, वह सत् कारण है और उसकी अपेक्षा से व्यवहार है, वह तो असत् है। उपचार कहो, असत् कहो। जिसका भाव आत्मा में है ही नहीं। जिसका अभाव इसमें है। निर्विकल्प समाधि निर्विकल्पदृष्टि में व्यवहार के विकल्प का अभाव है। आहाहा! अब यह विकल्प द्वारा आत्मा को पहुँचा जाये, यह वस्तु है नहीं, भाई! आहाहा! पण्डितजी! ऐसी बात है जरा।

परमात्मा... प्रथम शक्तिरूप... है न? परम उत्कृष्ट, यह मुझे लेना है। उत्कृष्ट शब्द है न? है अन्दर देखो! '**परमात्मा पर उत्कृष्टः**' है? चौथी लाईन है। परमात्मा उत्कृष्ट। आहाहा! अपना भगवान आत्मा का स्वभाव उत्कृष्ट है। **शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर....** शुद्ध द्रव्य के प्रयोजन की दृष्टि से देखने पर वह उत्कृष्ट परमात्मा शक्तिरूप से साक्षात् है। आहाहा! **शरीर में तिष्ठता है,....** आहाहा! **इसलिए हे प्रभाकर भट्ट! तू सिद्ध भगवान में और अपने में भेद मत कर।** आहाहा! यह सिद्ध भगवान और यह तू, ऐसा न कर। तू स्वयं सिद्ध भगवानस्वरूप ही है। आहाहा! कैसे जँचे? अनादि से पर्याय में पामरता बैठी है न? आहाहा! प्रभुता के पक्ष में गया नहीं न! आहाहा! पूर्ण स्वरूप प्रभु आत्मा के पक्ष में गया नहीं तो वह प्रभुता मेरी इतनी है, यह इसे बैठती नहीं।

मुमुक्षु : टोडरमलजी इनकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ?

मुमुक्षु : सिद्ध समान....

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध समान तो द्रव्यरूप से है। पर्यायरूप से नहीं, ऐसा वहाँ कहा है। वह सातवें (अधिकार) में पहले यह लिया है। खबर है न? पर्याय जो है, ऐसी पर्याय मेरी वर्तमान (में है, ऐसा नहीं है), वस्तु से सिद्ध समान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ख्याल है। इसका सातवाँ अध्याय तो बहुत पहले (पढ़ा है)। (संवत्) १९८४ के वर्ष से। शब्द शब्द को... आहाहा! बात गजब की है, भाई!

हे प्रभाकर भट्ट! तू सिद्ध भगवान में और अपने में भेद मत कर। ऐसा ही मोक्षपाहुड़ में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने भी कहा है। लो! मोक्षपाहुड़ की १०३ गाथा है। १०३। आहा! यह तो बापू! मोक्षमार्ग की बातें हैं, भाई! जेल में से निकलने का रास्ता यह है। 'बन्धनों से मुक्त हो...' नहीं आता? आता है, श्रीमद् में (अमूल्य तत्त्वविचार में आता है)। 'बन्धनों से मुक्त हो...'

मुमुक्षु : वह दिव्य शक्तिमान....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'वह दिव्य शक्तिमान जिससे बन्धनों से मुक्त हो।' दिव्य शक्ति भगवान आत्मा, वह राग की एकता की जेल में पड़ा है, उसे अब छोड़। आहाहा! कैद में डाल दिया उसे।

भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु को विकल्प और राग के साथ एकता करके जेल में डाला है। उस बन्धन को छोड़ अब, भाई! आहाहा! समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ वह रागरहित ही है। रागरूप और राग के एकरूप कभी हुआ ही नहीं। आहाहा! प्रज्ञाछैनी में आता है न? कि राग और स्वभाव के बीच सांध है। (दोनों) एक हुए ही नहीं। आहाहा! आहाहा! दिगम्बर सन्त और मुनि, उनके विद्वान, उनकी बातें अलग! सनातन मार्ग के सेवक हैं न वे? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान पूर्णानन्दस्वरूप से स्वभाव का सत्त्व पड़ा है पूरा। और विकल्प जो है, चाहे तो दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का हो, वह विकल्प अर्थात् राग और स्वभाव के बीच सांध है। तड़ है। तड़ समझते हो? दरार है, दरार है। निःसन्धि हुए नहीं। ऐसा शब्द है न प्रज्ञाछैनी में? सन्धि है। निःसन्धि हुए नहीं। कलश में है। टीका है। कलश की टीका में है। समझ में आया? आहाहा! टीका में है। टीका में है, हों!

पाठ में इतना है। **‘सूक्ष्मेऽन्तः सन्धिबन्धे’** **अशुद्धत्व—विकाररूप परिणमित है, तो भी परस्पर सन्धि है, निःसन्धि हुए नहीं, दो द्रव्यों का एक द्रव्यरूप हुआ नहीं,...** वस्तु, वस्तु है, वह रागरूप तीन काल में हुई नहीं। आहाहा! **ज्ञानछैनी प्रविष्ट होने का स्थान,...** है वह। विकल्प इस ओर ढलता है और परिणति इस ओर ढलती है। अर्थात् कि बीच में सन्धि है। इसलिए ज्ञान की परिणति उससे हटकर ऐसे मुड़ती है। बीच में सांध है, एक हुए नहीं। इसलिए ज्ञान की परिणति ऐसे ढलने पर दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। भिन्न है। आहाहा! अनुपलब्धि शोभे? ऐसा नहीं आता? आहाहा! ऐसा भेदज्ञान करे, उसे प्राप्त न हो, यह शोभता है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो भाई! बात बहुत सूक्ष्म है। व्यवहार के रसिया को यह बात बैठना बहुत कठिन है। व्यवहार साधन है या नहीं? नहीं तो एकान्त हो जाता है। सम्यक् एकान्त ही है। वस्तु त्रिकाली का आश्रय लेना, वह आश्रय लेनेवाला तो निर्विकल्प पर्याय है। इसलिए उसे सम्यग्दर्शन कहा। **‘भूदत्थमस्सिदो खलु’** भूतार्थ त्रिकाल वस्तु भगवानस्वरूप विराजमान है। उसका आश्रय पर्याय ने लिया, अर्थात् कि पर्याय इस ओर ढली। आहाहा! उस पर्याय को सम्यग्दर्शन कहते हैं। और उस सम्यग्दर्शन का विषय वह त्रिकाली परमात्मास्वरूप है। समझ में आया? लो! मोक्षपाहुड़ की गाथा।

इसका यह अभिप्राय है कि जो नमस्कारयोग्य महापुरुषों से भी नमस्कार करनेयोग्य है,.... क्या कहते हैं? इन्द्र आदि जो नमस्कार करनेयोग्य हैं, वे इन्द्र भी जिसे नमते हैं। अन्दर को। आहाहा! नमस्कार करनेयोग्य गणधर आदि उत्तम पुरुष, वे भी अन्दर वस्तु में नमते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो गणधर आदि, छद्मस्थ तीर्थंकर आदि जो वन्दन करनेयोग्य है, नमन करनेयोग्य है, वे जीव अन्दर नमते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! **स्तुति करनेयोग्य सत्पुरुषों से स्तुति किया गया है,....** आहाहा! गणधरादि जीव को स्तुति करनेयोग्य है। वे गणधर भी इसकी—अन्दर की स्तुति करते हैं। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : एक में कहे, भूतार्थ का आश्रय लेना, दूसरे में कहे, ध्यान करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : भूतार्थ का आश्रय, एक ही सिद्धान्त है। फिर व्यवहार आवे,

उसे जाना हुआ कहा, बस। आहाहा! जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं। व्यवहार आवे, उसे जाननेयोग्य है। ज्ञान तो व्यवहारनय का विषय है न? नय है न? नय विषयी है। उसका विषय यह है। है यह बराबर। परन्तु इससे होता है, यह बराबर नहीं है। आहाहा! ऐसा है, भाई! वस्तु।

स्तुति करनेयोग्य सत्पुरुषों से स्तुति किया गया है,.... आहाहा! जिनकी स्तुति करनेयोग्य, ऐसे गणधर भी स्वयं अन्दर की स्तुति करते हैं, कहते हैं। आहाहा! निश्चयस्तुति। (समयसार की) ३१ गाथा में है। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' आहाहा! समझ में आया? **और ध्यान करनेयोग्य आचार्य परमेष्ठी वगैरह से भी ध्यान करनेयोग्य ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है,....** यह उसका ध्यान करते हैं। ध्यान करनेयोग्य आचार्य आदि भी आत्मा का ध्यान करते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी गम्भीर और तल में पहुँचा दे, ऐसी है। आहाहा!

भगवान परमात्मस्वरूप शक्ति स्वभाव सामर्थ्यरूप ही परमात्मा है। ऐसे जीव को जो स्तुति करनेयोग्य गणधरादि हैं, वे भी उसकी स्तुति करते हैं, कहते हैं। आहाहा! **ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है, उसको तू परमात्मा जान।** यह परमात्मप्रकाश। आहाहा! परमात्मा की पर्याय प्रगटे, परन्तु वह परमात्मा हो तो उसमें से प्रगटे। आहाहा! बहिरात्मा हो, उसमें से प्रगटे? अन्तरात्मा हो, उसमें से प्रगटे? आहाहा! अन्तरात्मा साधक पर्याय है। उसमें से सिद्ध की पर्याय वहाँ से आती है उसमें से? आहाहा! यह परमात्मस्वरूप है, भाई! तुझे बैठना (जँचना) चाहिए। रुचि में इसका पोषाण आना चाहिए। इस चीज़ का पोषाण, पोसाना चाहिए। आहाहा! लाख बात की बात बदल डाल। आहाहा! 'लाख बात की बात (यही) निश्चय उर लाओ, छोड़ी (सकल) जगत द्वंद्व फंद...' द्वैतपना छोड़ दे। यह द्रव्य और पर्याय, यह भी छोड़ दे। अकेला द्रव्य भगवान है, वहाँ तू जा। आहाहा!

ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है,.... भगवान विराजता है। आहाहा! बड़ा व्यक्ति आवे तो सामने मिलने जाये। महाभगवान विराजता है, उसे मिलने तो जा वहाँ। आहाहा! समझ में आया? कान्तिभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! पागल, गहल कहो,

जो कहो, परन्तु बात तो यह है। **उसको तू परमात्मा जान।** ऐसा कहा न? वे परमात्मा नहीं, तू इस परमात्मा को जान। आहाहा! परम आत्मा, परमस्वरूप, परमस्वरूप, ध्रुवस्वरूप। कायमी परमात्मस्वरूप ही भगवान विराजता है। शक्तिरूप से कहो, स्वभावरूप से कहो, सामर्थ्यरूप से कहो। आहाहा! उसका ध्यान कर। यह तो निश्चय से आया। परन्तु व्यवहार वापस दूसरा होता है या नहीं?

वह दृष्टान्त देते हैं। यह दही बनाते हैं न? बिलौना। एक का आकर्षण। इस ओर खीचें तो इस ओर ढीला रखे। यहाँ से खींचे तो यहाँ ढीला रखे। इसी प्रकार निश्चय के जोर में व्यवहार को ढीला रखे। व्यवहार के जोर में निश्चय को ढीला रखे। अरे! भाई! यह तो ज्ञान कराने की बात है। वहाँ तो ज्ञान निश्चय का करना हो, तब व्यवहार को गौण रखे। व्यवहार का ज्ञान करे तो निश्चय को गौण करे। जानने के लिये बात है। यह आदरने के लिये बात है ही नहीं। आहाहा! इसे आदरने में लगा दे। देखो! व्यवहार को जब मुख्य करना हो तब निश्चय को गौण कर डालना। अरे! निश्चय गौण तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? व्यवहार मुख्य हो जाये, वहाँ दृष्टि मिथ्यात्व हो जाती है। आहाहा! ऐसी बात जरा सूक्ष्म पड़े, परन्तु क्या हो? अरूपी निर्विकल्प चीज़ है। आहाहा! विकल्प से भी पता लगे, ऐसी चीज़ नहीं। वह तो निर्विकल्प से पता लगे। आहाहा! पर की ओर का लक्ष्य छोड़ और स्वसन्मुख के लक्ष्य से निर्विकल्प परिणति से उसका ध्यान कर। परमात्मा विराजता है न! आहाहा!

यही परमात्मा उपादेय है। लो! यह भगवान परमात्मा आदरणीय है, पर्याय में आदरणीय यह है। समझ में आया?

गाथा - २७

अथ येन शुद्धात्मना स्वसंवेदनज्ञानचक्षुषावलोकितेन पूर्वकृतकर्माणि नश्यन्ति तं किं न जानासि त्वं हे योगिन्निति कथयन्ति –

२७) जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व–कियाइँ।
सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ।।२७।।

येन दृष्टेन त्रुटयन्ति लघु कर्माणि पूर्वकृतानि।
तं परं जानासि योगिन् देहे वसन्तं न किम्।।२७।।

जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइं पुव्वकियाइं येन परमात्मना दृष्टेन सदानन्दैकरूप–वीतरागनिर्विकल्पसमाधिलक्षणनिर्मललोचनेनावलोकितेन त्रुटयन्ति शतचूर्णानि भवन्ति लघु शीघ्रम् अन्तर्मुहूर्तेन। कानि। परमात्मनः प्रतिबन्धकानि स्वसंवेद्याभावोपार्जितानि पूर्वकृतकर्माणि सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइं तं नित्यानन्दैकस्वभावं स्वात्मानं परमोत्कृष्टं किं न जानासि हे योगिन्। कथंभूतमपि। स्वदेहे वसन्तमपीति। अत्र स एवोपादेय इति भावार्थः।।२७।।

आगे जिस शुद्धात्मा को सम्यग्ज्ञान–नेत्र से देखने से पहले उपार्जन किए हुए कर्म नाश हो जाते हैं, उसे हे योगिन्, तू क्यों नहीं पहचानता, ऐसा कहते हैं –

जो पूर्वकृत सब कर्म आतम–दर्श से क्षणमात्र में।
ही नष्ट हों देहस्थ उसको क्यों नहीं तुम जानते?।।२७।।

अन्वयार्थ :– [येन] जिस परमात्मा को [दृष्टेन] सदा आनंदरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर देखने से [लघु] शीघ्र ही [पूर्वकृतानि] निर्वाण के रोकनेवाले पूर्व उपार्जित [कर्माणि] कर्म [त्रुटयन्ति] चूर्ण हो जाते हैं, अर्थात् सम्यग्ज्ञान के अभाव से (अज्ञान से) जो पहले शुभ–अशुभ कर्म कमाये थे, वे निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं, [तं परं] उस सदानंदरूप परमात्मा को [देहं वसन्तं] देह में बसते हुए भी [हे योगिन्] हे योगी [किं न जानासि] तू क्यों नहीं जानता?

भावार्थ :– जिसके जानने से कर्म–कलंक दूर हो जाते हैं, वह आत्मा शरीर में निवास करता हुआ भी देहरूप नहीं होता, उसको तूँ अच्छी तरह पहचान और दूसरे

अनेक प्रपंचों (झगड़ों) को तो जानता है; अपने स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता ? वह निज स्वरूप ही उपादेय है, अन्य कोई नहीं है।।२७।।

गाथा – २७ पर प्रवचन

आगे जिस शुद्धात्मा को सम्यग्ज्ञान-नेत्र से देखने से... अब ऐसे भगवान को देखने से **पहले उपार्जन किये हुए कर्म नाश हो जाते हैं,...** लो! समझ में आया? पहले तो उसे निर्विकल्प परिणति से पकड़ और निर्विकल्प परिणति से पकड़ने पर पूर्व के कर्म जो हैं, वे भी खिर जायेंगे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पूर्व कर्म के नाश की यह एक विधि है। अपवास करना और यह करना, बापू! यह सब बातें बाहर की है। **शुद्धात्मा को...** अर्थात् परमात्मा को, वस्तु जो है पूर्ण ध्रुव आनन्दस्वरूप, ऐसा जो भगवान स्वयं परमात्मा, इसे **सम्यग्ज्ञान-नेत्र से देखने से...** आहाहा! ज्ञान की निश्चय निर्मल परिणति से उसे देखने पर... आहाहा! **पहले उपार्जन किये हुए...** पहले के कर्म जो उपार्जन किये हों, वे नाश होंगे, निर्जरा होगी, ऐसा कहते हैं। **उसे हे योगिन! तू क्यों नहीं पहचानता,...** हे मुनि! धर्मात्मा! आहाहा! योगी कहकर कहा। ऐसा जो भगवान अन्दर, उसे तू क्यों नहीं जानता?

२७) जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ।
सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ।।२७।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :- हे योगिन! तू क्यों नहीं पहचानता,... जिस परमात्मा को सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर देखने से...** आहाहा! यह परमात्मा स्वयं द्रव्यस्वभाव त्रिकाल, उसे सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रों से देखने से। आहाहा! **सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि...** शान्ति। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति जो प्रगट हुई है... आहाहा! वह **सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप...** सदा का अर्थ? कि निर्विकल्प जो आनन्द परिणति है, वह आनन्दरूप ही सदा ही है, ऐसा। समझ में आया?

सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप... आहाहा! जो भगवान को

देखने की परिणति है, वह आनन्दरूप है, कहते हैं। आहाहा! रागरूप, विकल्परूप नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। भगवान पूर्ण परमात्मा को देखने की दृष्टि जो है परिणति, वह तो सदा आनन्दरूप है। वह भी वीतरागी आनन्दरूप है, वह भी निर्विकल्प अभेद है। ऐसी शान्तिस्वरूप निर्मल नेत्रों... आहाहा! है? आहाहा! '**येन दृष्टेन**' आहाहा! '**येन दृष्टेन**' '**येन दृष्टेन**' '**येन**' अर्थात् परमात्मा को '**दृष्टेन**' परमानन्दरूपी परिणति वीतरागी निर्विकल्प शान्ति, उससे तू देख। आहाहा! समझ में आया? दो शब्द में इतना समाहित कर दिया। क्या?

'**येन दृष्टेन लघु पूर्वकृतानि त्रुटयन्ति**' आहाहा! ऐसा जो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप साक्षात् परमात्मस्वरूप द्रव्य है। उसे '**दृष्टेन**' शान्ति अभेद वीतरागी आनन्दरूपी दशा से... आहाहा! ऐसे नेत्र से उसे देख। वह राग से नहीं ज्ञात होगा। वह निर्विकल्प वीतरागी परिणति के नेत्र से ज्ञात होगा। '**येन दृष्टेन**' उसे तू देख। आहाहा! उसकी जाति की निर्विकल्प आनन्द की दशा द्वारा, उस निर्विकल्प आनन्द के नेत्र द्वारा '**दृष्टेन**' भगवान पूर्णानन्द को देख। आहाहा! उसे देखने का उपाय यह है।

सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर... आहाहा! रागरहित निर्विकल्प अभेद वीतराग परिणति आनन्दरूप से उस भगवान को देख। तेरे कर्म टूट जायेंगे। वहाँ कर्म की निर्जरा होगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह लोग तो ऐसा कहते हैं, उपवास को तप कहा है और तप को निर्जरा कहा है। एक आर्यिका यह कहती थी। वडोदरा में अपने हैं न वहाँ के 'वेजलका' के हैं वडोदरा में। चन्दुभाई हैं। दूसरे टेलर हैं। उनके साथ एक आर्जिका को बात हुई थी। कहती है कि दूसरी सब बात बराबर, परन्तु उपवास है, वह तप है और तप, वह निर्जरा है, इस बात से तुम इनकार करते हो तो वह खोटी बात है। परन्तु कौन से उपवास? आहाहा! उसे निर्विकल्प परिणति द्वारा देखना, यह उपवास, उसके समीप में गया, यह उपवास। उससे कर्म छूटते हैं। वहाँ तो सब तप को निर्जरा कहा है। अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत, स्वाध्याय, ध्यान— सबको तप कहा है और तप से निर्जरा कही है। अरे! भगवान! यह बारह प्रकार के

व्यवहार के विकल्प से बातें की हैं। यह प्रायश्चित्त और विनय, वह भी बाहर का विकल्प है। आहाहा!

अन्तर भगवान को देखने के लिये निर्विकल्प नेत्र को खोल। आहाहा! तब कहे, पहले व्यवहार हो तो निश्चय होता है। और निश्चय से फिर यह ज्ञात होता है। ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? यह तो वस्तु है, वहाँ अन्दर विराजता है। उसकी ओर के झुकाव की रागरहित शान्ति और आनन्द के नेत्र द्वारा... आहाहा! आनन्द के नेत्र द्वारा, शान्ति के नेत्र द्वारा आनन्दनाथ को देख उसे। आहाहा! शान्ति के सागर को शान्ति के नेत्र से देख। आहाहा! गिरधरभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! अरे! प्रभु! तू कौन है? भाई! आहाहा! भगवान! तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरी महिमा इतनी कि वह निर्विकल्प से ज्ञात हो इतनी। राग से ज्ञात हो, इतनी नहीं। आहाहा! कहो, यह तो भाषा तो सादी है, भाव भले बहुत (गम्भीर हैं)। भाव तो यह है।

यह तो परमात्मा की बात है, भाई! परमात्मा के घर में जाना है। कोर्ट में जाये तो भी वस्त्र-बस्त्र (बढ़िया) पहनकर जाते हैं या नहीं? यह तो परमात्मा के घर में अन्दर जाना है। उसे निर्विकल्प परिणति प्रगट करनी पड़ेगी। आहाहा! बाबूभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! भगवान है न, भाई! देह-देवल में भगवान विराजता है, प्रभु! देह को न देख, राग को न देख। त्रिकाल को देख! वहाँ निर्विकल्प परिणति बिना त्रिकाल को तू देख नहीं सकेगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वाडा में तो कहीं सुनायी दे, ऐसा नहीं है। गुलाबचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो निश्चय की बात हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् असत्य। रात्रि में (रात्रिचर्चा में) स्पष्टीकरण नहीं किया था?

मुमुक्षु : कल दोपहर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोपहर को उपचार किया था। फिर रात्रि में उसे असत्य कहा। आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन स्वभाव के आश्रय से हो, वह निश्चय है और साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग (हो), उसे समकित का आरोप देकर; है तो बन्धभाव,

उसे समकित का आरोप देकर व्यवहार समकित कहा। अर्थात् यह है तो असत्, समकित से असत् दूसरी चीज़ है। उसे समकित का आरोप देना। आहाहा! इसी प्रकार व्यवहारमोक्षमार्ग है, वह निश्चयमोक्षमार्ग से असत्य भिन्न चीज़ है। सत् तो यह है। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ को सत् के साहेबा को पकड़ना, वह निर्विकल्प परिणति, वह सत् है। विकल्प है, उसकी अपेक्षा से असत् है। अथवा विकल्प का भाव वह निर्विकल्प में अभाव है। समझ में आया? आहाहा! रात्रि में कहा था, भाई! थोड़ा। नहीं? आहाहा!

'येन दृष्टेन लघु पूर्वकृतानि' निर्वाण के रोकनेवाले पूर्व उपार्जित कर्म... 'त्रुटयन्ति' चूर्ण हो जाते हैं,... आहाहा! **सम्यग्ज्ञान के अभाव से (अज्ञान से) जो पहले शुभ-अशुभ कर्म कमाये थे,...** अज्ञानभाव से जो पूर्व में शुभ-अशुभभाव थे, वे **निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं,...** आहाहा! प्रकाश के पिण्ड को देखते ही अन्धकार का नाश हो जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! भाषा कैसी है, देखो न! **'जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ'** आहाहा! है न? **'जें'** का अर्थ ऐसा किया। संस्कृत छाया है न? **'येन दृष्टेन'** ऐसा संस्कृत का अर्थ किया है। मूल पाठ का नहीं। संस्कृत है, उसका शब्दार्थ किया है। वरना शब्द तो **'जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ'** जिसे देखने से कर्म नाश हो जाये अल्प काल में, ऐसे कर्म पूर्व में जो किये थे वे। आहाहा!

'सो परु जाणहि' उस परमात्मा को जान। **'जोइया देहि वसंतु ण काइ'** आहाहा! **निज स्वरूप देखने से ही नाश हो जाते हैं, उस सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी...** आहाहा! भगवान तेरे समीप तू स्वयं है न! आहाहा! **देखने से ही नाश हो जाते हैं, उस सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी हे योगी... 'किं न जानासि'** आहाहा! तू वहाँ है, उसे क्यों नहीं जानता? और यह नहीं तुझमें, उसे जानने में रुक गया, कहते हैं। समझ में आया? ऐसा है। व्यवहारियों को यह ऐसा लगे। व्यवहार का लोप करते हैं, ऐसा कहे। बापू! व्यवहार का लोप हो, तब ही निश्चय होता है। केसरलालजी! यह केसर है, केसर। आहाहा! केसर के छींटे डालते हैं। क्या भाषा पाठ है! आहाहा!

'जैं दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ' आहाहा! **'लहु'** अर्थात् शीघ्र। **'सो परु जाणहि'** उस परमात्मा को **'जोइया देहि वसंतु ण काइ'** देह में पड़ा है, उसे तू देखता नहीं। आहाहा! यह तो मन्त्र हैं, भाई! वाद-विवाद करने से तो पार आवे, ऐसा नहीं है। निमित्त से हो, निमित्त से होता है कहो या व्यवहार से होता है, सब एक ही बात है। एक ही बात है, भाई! किसी समय निमित्त से होता है और किसी समय उपादान से होता है, किसी समय व्यवहार से होता है, किसी समय निश्चय से होता है। भाई! ऐसा नहीं, हों! आहाहा! एक ही समय में तू भगवान को सम्यग्ज्ञान नेत्र द्वारा देखने से पूर्व के बाँधे हुए कर्म टूट जायेंगे। दूसरी कोई पद्धति नहीं है। आहाहा! ऐसा है भगवान। **हे योगिन! तू क्यों नहीं जानता?** भावार्थ कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ११, बुधवार
दिनांक-२३-०६-१९७६, गाथा-२७ - २८, प्रवचन-१६

परमात्मप्रकाश, २७वीं गाथा। फिर से थोड़ा लेते हैं। शब्दार्थ है न, शब्दार्थ? '**येन दृष्टेन लघु पूर्वकृतानि कर्माणि त्रुटयन्ति**' जिसे देखने से—भगवान परमात्मस्वरूप स्वयं है, उसे देखने से '**लघु शीघ्र ही पूर्वकृतानि**' इसका अर्थ जरा किया है। '**परमात्मनः प्रतिबन्धकानि**' अर्थात् निमित्त है न? **निर्वाण के रोकनेवाले पूर्व उपार्जित कर्म चूर्ण हो जाते हैं,... 'येन दृष्टेन'** जो वस्तु भगवान परमात्मस्वरूप देह से भिन्न विराजती है, जिसे देखने से पूर्व के अज्ञानभाव से बँधे हुए कर्म टूटते हैं। समझ में आया? '**येन दृष्टेन**' ऐसा है न? '**जैं दिट्ठें**' संस्कृत में '**येन दृष्टेन**' जिसे देखने से—भगवान परमात्मस्वरूप को देखने से अर्थात् निर्विकल्प शान्त परिणति द्वारा उसे देखने से। आहाहा! ऐसी बात है। है न?

सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर देखने से... आहाहा! सदा आनन्दरूप वीतराग। यह वर्तमान परिणति की बात है, हों! वस्तु है, वह परमात्मस्वरूप है। उसे देखनेवाली परिणति—अवस्था सदा आनन्दरूप वीतराग है। ऐसी निर्विकल्प समाधि। राग बिना की दशा अर्थात् कि शान्ति समाधि, ऐसे स्वरूप निर्मल नेत्र। आहाहा! पूर्ण परमात्मस्वभाव को निर्मल नेत्र द्वारा। निर्मल नेत्र अर्थात्? स्वसन्मुख की निर्विकल्प शान्तिरूपी सम्यक् नेत्र से देखने से। आहाहा!

'**पूर्वकृतानि लघु कर्माणि त्रुटयन्ति**' आहाहा! पूर्व में जो अज्ञानभाव से उपार्जित कर्म हैं, वे शीघ्र चूर्ण हो जाते हैं। आहाहा! '**पूर्वकृतानि**' का अर्थ ऐसा किया है। '**पूर्वकृतानि**' का अर्थ रोकनेवाले। निमित्त से कथन है? '**प्रतिबन्धकानि**' है न? '**परमात्मनः प्रतिबन्धकानि**' आहाहा!

इससे तो बात छंछेड़ी है। प्रतिबन्ध। यह शब्द है इसमें। परन्तु इसका क्या अर्थ? स्वयं जो उल्टी परिणति की है, वह उसे प्रतिबन्ध है। कर्म तो निमित्तरूप है। उल्टी परिणति जो स्वभाव के भान बिना विपरीत परिणति जो की है, वह रुकावट है। उसे अन्तर निर्मल परिणति द्वारा शुद्ध परमात्मा को देखने से वह अशुद्ध परिणति छूट जाती

है। बात ऐसी है। कर्म तो जड़ है। जड़ को छूटना या टूटना, वह कहीं आत्मा के अधिकार की बात नहीं है।

मुमुक्षु : निमित्त को मानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा, नहीं? निमित्त तो होता है। आहाहा! निमित्त किस क्षण में नहीं? और किस क्षण में उपादान का कार्य स्वतन्त्र नहीं होता?

मुमुक्षु : प्रतिबन्धक मानो तो माना कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिबन्ध किसे कहते हैं? यह कल नहीं कहा था? पंचास्तिकाय का, नहीं? १६३ गाथा। स्वयं विषय की मर्यादा में अटकता है, वह प्रतिबद्ध है। है? पंचास्तिकाय। **वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** यह प्रतिकूलता और प्रतिबन्ध की व्याख्या, पण्डितजी! वास्तव में सौख्य का कारण—आत्मा के आनन्द का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है। 'प्रतिकूलता, विरुद्धता, विपरीतता, उल्टापन।' **आत्मा का स्वभाव वास्तव में दृशि-ज्ञप्ति (दर्शन और ज्ञान) है। उन दोनों को विषय प्रतिबन्ध होना, वह प्रतिकूलता है।** विषय में रूकावट करता है। मर्यादित—रोकता है, वह स्वभाव की प्रतिकूलता है। आहाहा! क्या कहा यह? अपनी पर्याय अल्प विषय में रोकता है, वह रुकावट है। ऐसी बात है, भाई! जिसे देखनेवाले की पर्याय जिसकी है, उसे देखने में रुकता नहीं और पर के विषय में देखने में रुकता है, यही उसकी प्रतिकूलता और प्रतिबन्ध है। भाई!

भगवान आत्मा '**येन दृष्टेन**' कहा है न? आहाहा! शुद्धानन्द परमात्मस्वरूप प्रभु, उसे जो निर्मल शान्ति की, अकषाय की, समाधि की परिणति द्वारा निर्मल नेत्र द्वारा देखना चाहिए, उसे न देखकर बाहर के विषयों को (देखने में) अल्प विषय में पर्याय को रोकता है, वही उसकी रूकावट है। बराबर है? आहाहा! दोनों को विषय प्रतिबन्ध होना, वह प्रतिकूलता है। आहाहा! **मोक्ष में वास्तव में आत्मा सर्व को जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है।** अल्पज्ञता में जो अटकता था, उसका मोक्ष में अभाव है। आहाहा! ऐसी बात है।

अर्थात् सम्यग्ज्ञान के अभाव से (अज्ञान से) जो पहले शुभ-अशुभकर्म कमाये

थे, वे निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं,... आहाहा! पर स्वरूप में अकेला देखने से अटका हुआ था और उसके कारण कर्म उपार्जित किया था, वह तो परवस्तु है। समझ में आया? अपने स्वरूप को न देखकर, पर की ओर के विषय की अल्पता में ज्ञान को रोककर जो प्रतिबद्ध था, वह '**येन दृष्टेन**' इस भगवान आत्मा को देखने से उस प्रतिबद्ध का नाश हो जाता है। ऐसा है यह। है? **निजस्वरूप के देखने से ही...** आहाहा! ज्ञान को अल्प विषय में—पर में रोका हुआ था, उस ज्ञान की परिणति से पूर्णानन्द के नाथ को देखा, उस ओर दशा ढली, इसलिए प्रतिबद्ध के जो कारण थे, उनका नाश होता है। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! यह तो परमात्मा के घर की बात, भाई! इसमें... आहाहा!

कहते हैं, देखो! **उस सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी... 'तं परं'** परमात्मा। परमस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति—ऐसा जो परमात्मा, वह परम। आहाहा! ऐसे परम परमात्मा को **सदानन्दरूप परमात्मा को...** आहाहा! पहले लिया था कि सदानन्दरूप वीतराग की समाधि। वह परिणति-पर्याय ली थी। सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि से देख। अब वह स्वयं कैसा है? सदानन्दरूप परमात्मा स्वयं है। आहाहा! सदानन्दरूप भगवान आत्मा त्रिकाल आनन्दरूप है। उसे आनन्द की परिणति द्वारा, शान्ति द्वारा देख। वहाँ देख। उसे—भगवान को देख। आहाहा! भगवान को देख। ऐसी बात है।

देह में बसते हुए भी हे योगी... आहाहा! सदानन्दस्वरूप भगवान वहाँ अन्दर प्रभु विराजता है न। आहाहा! देह में भिन्न विराजता है। उसमें बसे हुए को तू क्यों नहीं देखता? ऐसी बसी हुई वस्तु को क्यों नहीं देखता? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। **उस सदानन्दरूप परमात्मा को... 'देहे वसन्तं'** शरीर के रजकण से साथ में भिन्न प्रभु विराजता है। आहाहा! उसे **हे योगी... 'किं न जानासि'** आहाहा! जाननेवाले को क्यों नहीं जानता? ऐसा कहते हैं। और दूसरी चीज़ ज्ञात हो वहाँ रुक गया है, भाई! आहाहा! जाननेवाला, उसे तू जानता नहीं और जो ज्ञात होनेयोग्य परवस्तु है, वहाँ रुक गया है। आहाहा! और वह भगवान विराजता है। साक्षात् प्रभु है। आहाहा! उसे **तू क्यों नहीं जानता?** आहाहा! क्या गाथा है! यह वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई! यह

कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। वस्तु की मर्यादा है, इस प्रकार से जाने तो खबर पड़े। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- तू क्यों नहीं जानता? आहाहा! प्रभु परमात्मा है न, उसके सामने क्यों नहीं देखता? आहाहा! बड़ा पुरुष मिलने आया हो और उसके सामने न देखकर बालक से बात करने में रुक जाये। आहाहा! लड़का आया दो वर्ष का—चार वर्ष का। बापू! ऐसा। बापू! ऐसा। परन्तु वह बड़ा मिलने आया, उसके सामने तो देखता नहीं और इसके साथ रुक गया। आहाहा! इसी प्रकार परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ, जिससे मिलनेयोग्य है, वहाँ मिलता नहीं और मिलनेयोग्य नहीं, वहाँ रुक गया, इसको यह और यह और यह... यह तेरी भूल है, प्रभु! आहाहा! यह भूल किसी ने करायी है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : यह भूल छोटी है या बड़ी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बड़ी भूल है, निगोद में जाने की। और वह परमात्मा में जाने की (बात है)।

जिसके जानने से कर्म-कलंक दूर हो जाते हैं, वह आत्मा शरीर में निवास करता हुआ भी... आहाहा! भगवान अपना अस्तित्व शरीर में रखता होने पर भी, शरीर से भिन्न अस्तित्व रहता है। समझ में आया? **शरीर में निवास करता हुआ भी...** क्षेत्र में मानो शरीर में रहा हो, ऐसा कहने पर भी, **देहरूप नहीं होता,...** शरीररूप हुआ नहीं। वह तो अपने आनन्दस्वरूप से प्रभु रहा है। आहाहा! **शरीर में निवास करता हुआ भी देहरूप नहीं होता,...** आहाहा! **उसको तू अच्छी तरह पहचान...** आहाहा! ऊपर कहा था, वह निर्विकल्प था। आहाहा! भूतार्थ भगवान परमात्मा है, उसे तू देख। आहाहा! बाकी बाहर को देख-देखकर तो अनन्त समय तूने गँवाया है, प्रभु! आहाहा! जो चीज़ तुझमें नहीं, उसे देखने को समय, प्रभु! तूने गँवाया है। जो चीज़ तुझमें है, उसे देखने का तूने समय नहीं लिया। आहाहा! वीतरागमार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! वस्तु ऐसी है। ओहोहो!

उसको तू अच्छी तरह पहचान और दूसरे अनेक प्रपंचों (झगड़ों) को तो

जानता है,... देखो भाषा! आहाहा! पर को, शरीर को, देश को, परिवार को, इसे और उसे... आहाहा! यह सब प्रपंच पर हैं, उन्हें जानने में रुकता है। आहाहा! **अपने स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता ?** समझ में आया ? आहाहा! अकेला परप्रकाश में रुक गया है, ऐसा कहते हैं। स्वप्रकाश रह गया पूरा। समझ में आया ? वीतरागमार्ग, बापू! अनन्त पुरुषार्थ अपेक्षित है। यह कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा! जिसकी दिशा पलटा डालनी है, ऐसा कहते हैं। जो ज्ञान, उस पर के प्रपंच के झगड़े को जानने में रुका है... आहाहा! प्रभु! उस ज्ञान को अन्तर में झुका। वहाँ भगवान विराजता है। आहाहा! कहो, सुजानमलजी! ऐसी बात है।

दूसरे प्रकार से कहा कि ज्ञान की पर्याय पर को जानने में रुकी परप्रकाश में, परन्तु स्वप्रकाश रह गया अन्दर। आहाहा! जिसे जानने में स्वप्रकाश प्रगट होता है। और उस स्वप्रकाश में फिर पर का जानना होता है, वह तो स्वपरप्रकाशक अपना स्वभाव है। आहाहा! यह पंचाध्यायी में नहीं कहा ? हे महाप्रज्ञ! जानने का तो स्वभाव है, इसलिए पर को जानना, वह कहीं नुकसानकारक नहीं है।

मुमुक्षु : .... स्व और पर को....

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है। यह है पंचाध्यायी में। यह चर्चा पहले बहुत चली थी। (संवत्) १९९० के वर्ष। वहाँ वीरजीभाई के साथ बात चलती थी, राजकोट। ज्ञान है, वह तो प्रज्ञाब्रह्म भगवान जाने। सब जानना, वह कहीं नुकसान का कारण नहीं है। परन्तु उस जानने में स्वप्रकाश कब पर को जाने ? यह उसका स्वपरप्रकाशक तब सिद्ध होता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : .... पर को जानकर पर को छोड़ने का...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो स्व को जानने के बाद पर को जानने का तो उसका स्वरूप ही है। केवलज्ञानी सबको जानते हैं या नहीं ? परन्तु वह तो स्व को जानते हुए उनका स्वभाव स्व—पर प्रकाशित करना कार्य है, इसलिए वे प्रकाशित करते हैं। परन्तु अकेले पर को प्रकाशित करने जाने से परप्रकाशक भाव, वह उसका स्वभाव नहीं अकेला। आहाहा! समझ में आया ? केशवलालजी! ऐसा है। आहाहा!

जो त्रिकाली परमात्मस्वरूप है और वह देह से भिन्न वहाँ रहा हुआ तत्त्व है अन्दर। वह कहीं बाहर देखने जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान, उसे तू क्यों जानता नहीं, भाई! आहाहा! है? **उसको तू अच्छी तरह पहचान...** आहाहा! भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु पूर्ण आनन्द को भली रीति से अर्थात् स्वसन्मुख होकर निर्विकल्प शान्ति द्वारा उसे जान। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

और दूसरे अनेक प्रपंचों (झगड़ों) को तो जानता है;... आहाहा! अरे! शास्त्र का जानपना और अकेले पर का (जानपना), झगड़ा है, कहते हैं। आहाहा! इसका उसे अभिमान हो जाये फिर तो। आहाहा! हमको आता है और हम यह। अरे! प्रभु! भाई! यह तेरे मार्ग... बापू! स्व-परमात्मा को जानते हुए उस ओर— **स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता? वह निज स्वरूप ही उपादेय है,...** वास्तव में तो जाननेयोग्य एक ही चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव। आहाहा!

दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम हुए, उसकी तो बात एक ओर रख दी। परन्तु यह तो पर को जानने में रुकना, वह प्रतिबन्ध है, रुक गया है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? कि यह दया, दान, व्रत, भक्ति से जीव को लाभ होगा, यह बात तो कहीं रह गयी। यह तो राग है। आहाहा! प्रभु! आत्मा में राग नहीं। उसे जानने के लिये तो रागरहित की परिणति काम करती है। यह २८वीं गाथा में कहेंगे। परन्तु यहाँ तो ज्ञान की पर्याय जिसकी है, इसे जाने बिना वह पर्याय पर को जानने में अकेली रुकी हुई है, प्रभु! आहाहा! और झगड़ा खड़ा हुआ वहाँ। ग्यारह अंग जाने, नौ पूर्व जाने। आहाहा!

मुमुक्षु : अर्थात् स्वयं रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं रह गया जाननेयोग्य था। आहाहा! कहो, देवजीभाई!

वह निज स्वरूप ही उपादेय है, अन्य कोई नहीं है। देखो! आहाहा!

तात्पर्य रखते हैं न? तात्पर्य है न अन्तिम! भावार्थ रखते हैं न! शब्दार्थ, आगमार्थ, नयार्थ, मतार्थ, भावार्थ—पाँच बोल है न? प्रत्येक में पाँच है। उसमें भावार्थ रख देते हैं। आहाहा! २७ (गाथा) हुई।

गाथा - २८

अथ ऊर्ध्वं प्रक्षेपपञ्चकं कथयन्ति। तद्यथा -

२८) जित्थु ण इंदिय-सुह-दुहइँ जित्थु ण मण-वावारु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ अण्णु परिं अवहारु।।२८।।

यत्र नेन्द्रियसुखदुःखानि यत्र न मनोव्यापारः।
तं आत्मानं मन्यस्व जीव त्वं अन्यत्परमपहर।।२८।।

जित्थु ण इंदियसुहदुहइं जित्थु ण मणवावारु यत्र शुद्धात्मस्वरूपे न सन्ति न विद्यन्ते। कानि। अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसौख्यविपरीतान्याकुलत्वोत्पादकानीन्द्रियसुखदुःखानि यत्र च निर्विकल्पपरमात्मनो विलक्षणः संकल्पविकल्परूपो मनोव्यापारो नास्ति। सो अप्पा मुणि जीव तुहुं अण्णु परिं अवहारु तं पूर्वोक्तलक्षणं स्वशुद्धात्मानं मन्यस्व नित्यानन्दैकरूपं वीतराग-निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा जानीहि हे जीव, त्वम् अन्यत्परमात्मस्वभावाद्विपरीतं पञ्चेन्द्रियविषय-स्वरूपादिविभावसमूहं परस्मिन् दूरे सर्वप्रकारेणापहर त्यजेति तात्पर्यार्थः। निर्विकल्पसमाधौ सर्वत्र वीतरागविशेषणं किमर्थं कृततं इति पूर्वपक्षः। परिहारमाह। यत एव हेतोः वीतरागस्तत एव निर्विकल्प इति हेतुहेतुमद्भावज्ञापनार्थम्, अथवा ये सरागिणोऽपि सन्तो वयं निर्विकल्प-समाधिस्था इति वदन्ति तन्निषेधार्थम्, अथवा श्वेतशङ्ख वत्स्वरूपविशेषणमिदम् इति परिहारत्रयं निर्दोषिपरमात्मशब्दादिपूर्वपक्षेऽपि योजनीयम् ।।२८।।

इससे आगे पाँच प्रक्षेपकों द्वारा आत्मा ही का कथन करते हैं -

ना जहाँ इन्द्रिय सौख्य दुख ना जहाँ मन व्यापार ना।
हे जीव! मानो उसे आतम अन्य सब पर छोड़ना।।२८।।

अन्वयार्थ :- [यत्र] जिस शुद्ध आत्मस्वभाव में [इन्द्रियसुखदुःखानि] आकुलता रहित अतीन्द्रियसुख से विपरीत जो आकुलता के उत्पन्न करनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख [न] नहीं हैं, [यत्र] जिसमें [मनोव्यापारः] संकल्प-विकल्परूप मन का व्यापार भी [न] नहीं है, अर्थात् विकल्प रहित परमात्मा से व्यापार जुदे हैं, [तं] उस पूर्वोक्त लक्षणावाले को [हे जीव त्वं] हे जीव, तू [आत्मानं] आत्माराम [मन्यस्व] मान, [अन्यत्परम्] अन्य सब विभावों को [अपहर] छोड़।

भावार्थ :- ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा को निर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर जान, अन्य परमात्मस्वभाव से विपरीत पाँच इन्द्रियों के विषय आदि सब विकार परिणामों को दूर से ही त्याग, उनका सर्वथा ही त्याग कर। यहाँ पर किसी शिष्य ने प्रश्न किया कि निर्विकल्पसमाधि में सब जगह वीतराग विशेषण क्यों कहा है? उसका उत्तर कहते हैं – जहाँ पर वीतरागता है, वहीं निर्विकल्पसमाधिपना है, इस रहस्य को समझाने के लिये अथवा जो रागी हुए कहते हैं कि हम निर्विकल्पसमाधि में स्थित हैं, उनके निषेध के लिये वीतरागता सहित निर्विकल्पसमाधि का कथन किया गया है, अथवा सफेद शंख की तरह स्वरूप प्रगट करने के लिये कहा गया है, अर्थात् जो शंख होगा वह श्वेत ही होगा, उसी प्रकार जो निर्विकल्पसमाधि होगी, वह वीतरागतारूप ही होगी।।२८।।

गाथा - २८ पर प्रवचन

२८। **आगे पाँच प्रक्षेपकों द्वारा आत्मा ही का कथन करते हैं**—प्रक्षेप गाथा है पाँच, ऐसा कहते हैं।

२८) जित्थु ण इंदिय-सुह-दुहइँ जित्थु ण मण-वावारु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ अण्णु परिं अवहारु।।२८।।

अन्वयार्थ :— आहाहा! **जिस शुद्ध आत्मस्वभाव में...** भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वभावमय ज्ञायकस्वभाव में **आकुलता रहित अतीन्द्रियसुख से विपरीत जो आकुलता के उत्पन्न करनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख नहीं है,...** आहाहा! इन्द्रियजनित सुख-दुःख भगवान आत्मा में नहीं है। बाहर की मिठास में जो दिखते हैं न! प्रेम और राग और यह सब सुख-दुःख का भाव भगवान में नहीं है। आहाहा! अतीन्द्रिय सुख से विपरीत ऐसे इन्द्रिय सुख की कल्पना, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! इससे पहले ऐसा लिया, देखो न! '**इन्द्रियसुखदुःखानि**' कहना है, वहाँ ऐसा लिया। **आकुलता रहित अतीन्द्रिय सुख से विपरीत...** आहाहा! **आकुलता के उत्पन्न करनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख...** इन्द्रियजनित सुख तो आकुलता का उत्पन्न करनेवाला है। समझ में आया?

पाँच इन्द्रिय के ओर के प्रेम से उत्पन्न हुआ भाव, वह सब आकुलता उत्पन्न

करनेवाला है। भगवान आनन्दस्वरूप के प्रेम से उत्पन्न हुआ भाव, अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त कराता है। आहाहा! इसलिए महँगा पड़े लोगों को...यह **अतीन्द्रिय सुख से विपरीत जो आकुलता के उत्पन्न करनेवाले...** आहाहा! विषयों के लक्ष्य में जाती विकल्पदशा, वह सब दुःखरूप आकुलता उत्पन्न करती है। आहाहा!

जिसमें सुख-दुःख नहीं है,... आत्मा में यह वस्तु है नहीं। आहाहा! पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुई इन्द्रिय विषय के सुख-दुःख की कल्पना, भगवान आत्मा में उसका अभाव है। ऐसे आत्मा को तू देख। आहाहा! ऐसे आत्मा को तू देखने जा अन्दर। आहाहा! भगवान विराजता है न प्रभु, कहते हैं। आहाहा! 'नजर के आलस्य से रे मैंने नैन से न निरखे हरि।' 'नैन के अलास्य से (न) निरखे...' भगवान विराजता है, उसे तूने देखा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह मुर्दा, हड्डियाँ, चमड़ी, माँस को देखने में प्रेम से रुका है। वह प्रेम, वह सुख-दुःख की कल्पना और आकुलता है। आहाहा! समझ में आया?

जिसमें... 'मनोव्यापारः' आहाहा! **संकल्प-विकल्परूप मन का व्यापार भी नहीं है,...** आहाहा! संकल्प-विकल्प की व्याख्या अपने आ गयी है। वह जिसमें नहीं। पूर्णानन्द प्रभु अनाकुल आनन्द का नाथ सदानन्द प्रभु, उसमें मन के संकल्प-विकल्प का अभाव है। **विकल्प रहित परमात्मा से व्यापार जुदे हैं,...** स्पष्टीकरण किया। ऐसा पहले कहा था न? **आकुलता रहित अतीन्द्रिय सुख से विपरीत...** इन्द्रिय के सुख-दुःख। ऐसे विकल्परहित भगवान आत्मा में मन का व्यापार पृथक् है। आहाहा!

उस पूर्वोक्त लक्षणवाले को हे जीव! तू आत्माराम मान,... आहाहा! मन के संकल्प-विकल्प से भिन्न प्रभु, उसे तू आत्माराम जान। आहाहा! निश्चय की बातें लोगों को ऐसी लगे न! वस्तु ही यह है, भाई! **आत्माराम मान,...** आहाहा! **अन्य सब विभावों को छोड़।** सब विकल्पों की जाति... आहाहा! उसे छोड़।

भावार्थ :- ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा को... पहली व्याख्या की है कि आत्मा कैसा है। **ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा...** वह तो ज्ञान और आनन्दस्वरूपी भगवान है। ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव त्रिकाल है, वह आत्मा। आहाहा!

निर्विकल्प समाधि में स्थिर होकर जान,... आहाहा! कषाय के विकल्प से रहित अकषाय की समाधि, अकषाय की शान्ति। आहाहा! समाधि अर्थात् शान्ति। अकषाय की शान्ति द्वारा सदानन्द भगवान को जान। आहाहा! समझ में आया? यह संकल्प-विकल्प से भिन्न प्रभु है। इसलिए उसे जानने में संकल्प-विकल्प के कषाय से रहित और निर्विकल्प-कषाय रहित, ऐसी शान्ति... आहाहा! रागरहित और शान्तिसहित ऐसी समाधि अर्थात् शान्ति अर्थात् दशा, उसके द्वारा उसे जान। आहाहा! ऐसा कठिन लगे। व्यवहार से होता है... व्यवहार से होता है... ऐसे लोगों को (यह) कठिन लगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन इकट्ठा करे, भाई! कठिन बात रखी है भाई ने। उपादानवादी घोर निमित्तपरक घोर निमित्त का आश्रय हमेशा लेते हैं। अरे! प्रभु! भाई!

यह तो मुझे समझाते हो तो तुम वाणी का—निमित्त का आश्रय लिया या नहीं? अरे! प्रभु! ऐसा न बोल। आहाहा! सत्य सिद्धान्त क्या है? सत्य को सत्यरूप से रख। बोलने की क्रिया बोलने से होती है। उसमें आत्मा कहाँ उसे करता है? आहाहा! यहाँ तो संकल्प-विकल्प का कर्ता भी आत्मा नहीं, उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! परमानन्द का नाथ सदानन्द प्रभु, आहाहा! ऐसा आया है न? देखो!

ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा... वापस अपना भगवान। पर परमेश्वर और वीतराग की यहाँ बात नहीं है। परद्रव्य के प्रति लक्ष्य जायेगा तो इसे राग होगा। आहाहा! **ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा...** इसीलिए इससे बात की। समझ में आया? आहाहा! है, देखो! '**नित्यानन्दैकरूपं वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा जानीहि**' नित्यानन्द लिया है। आहाहा! परसन्मुख के विकल्प से छूट और स्वसन्मुख की निर्विकल्प परिणति द्वारा भगवान को देख। आहाहा! माल तो रखा है न! वस्तु तो यह है।

ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा को निर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर जान,... ऐसा कहकर यह कहते हैं कि, व्यवहार के विकल्पों से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। निर्विकल्प समाधि की शान्ति से ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? वह तो वीतराग परिणति से वीतरागस्वरूप सदानन्द ज्ञात हो, ऐसा है। व्यवहार से ज्ञात हो, ऐसा

नहीं। यह लोग कहे, व्यवहार परम्परा मुक्ति का कारण। अरे! प्रभु! क्या है? आहाहा! वास्तव में तो राग है, वह तो परम्परा दुःख का कारण है। परन्तु जिसे आत्मा के आनन्द का भान हुआ है, उसे जो यह शुभराग आया, उसमें अशुभराग घटता है और फिर उसे टालेगा, इससे परम्परा उसे आरोप दिया गया है। समझ में आया?

बाकी तो पण्डित बहुत आगे-पीछे करके उनकी बात को स्थापित करते हैं। परन्तु वस्तु तो यह है। (वे) ऐसा कहते हैं, तुमने यह सब ऐसे मकान (मन्दिर) बनाये। रामजीभाई ने यह सब कुछ किया। कितनी पुस्तकें बनाते हो तुम। तुम निमित्त द्वारा तो उपादान... अरे! प्रभु! कौन बनावे? भाई! ऐसा कि तुम निमित्त द्वारा उपादानवादी घोर निमित्त का आश्रय लेते हैं। प्रभु! शान्त हो, भाई! और निमित्तों द्वारा तथा सवेरे, दोपहर, रात्रि (चर्चा) द्वारा उपादान को कहते हैं, उपादान से होता है। राग द्वारा, करे निमित्त द्वारा। ऐई! भगवान! ऐसा नहीं होता, बापू! आहाहा! माँ की मजाक नहीं होती। समझ में आया? ऐसे सत् की स्थिति जहाँ खड़ी होती हो, वहाँ निमित्ता हो, परन्तु उसके द्वारा सत् को सिद्ध करते हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अन्य परमात्मस्वभाव से विपरीत पाँच इन्द्रियों के विषय आदि सब विकार परिणामों को दूर से ही त्याग,... आहाहा! भगवान और भगवान की वाणी भी इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! उसे छोड़, कहते हैं। भगवान स्वयं ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसा स्वयं कहते हैं, हमारी ओर का लक्ष्य तू छोड़। और तू भगवान अन्दर है, वहाँ जा न! आहाहा! भाई! तुझे भरोसा नहीं बैठता। एक समय की पर्याय की व्यक्तता में रुका हुआ, उस एक समय की पर्याय के पीछे पूरा आत्मदल है। वह पूरा परमात्मा है। परन्तु एक समय की पर्याय में ही उसकी लीनता लगी है अनादि से। इसलिए ऐसी पूरी वस्तु है, उसकी नजर नहीं की। आहाहा!

जैन साधु हुआ। दिगम्बर हुआ। अन्तिम नौवें ग्रैवेयक जाये, वह तो दिगम्बर मुनि जाये। ऐसी जिसकी शुभक्रिया और शुभ विकल्प शुक्ललेश्या। परन्तु वह कहीं आत्मा नहीं। ऐसे शुक्ललेश्या से भी जो आत्मा मिला नहीं। व्यवहार तो बहुत (पालन किया)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' परन्तु उस विकल्प से प्राप्त हो,

ऐसी वह चीज़ नहीं है। वह तो निर्विकल्प वीतराग परिणति से प्राप्त हो, ऐसा वीतरागभाव है। उसे लक्ष्य में लिया नहीं और यह क्रियाकाण्ड में रुककर रचपच गया। आहाहा!

परमात्मस्वभाव से विपरीत पाँच इन्द्रियों के विषय आदि सब विकार परिणामों को दूर से ही त्याग,... आहाहा! अर्थात् कि वह होने ही न दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उनका सर्वथा ही त्याग कर।** है? है न पाठ? **'सर्वप्रकारेणापहर'** है न? अपरि सर्व प्रकार से अपहर तज। आहाहा! **सर्वथा ही त्याग कर।** वीतराग का मार्ग स्याद्वाद कथंचित् है। संकल्प-विकल्प कथंचित् छोड़ना और कथंचित् आदरना, ऐसा होगा? यह स्याद्वाद होगा? यह लोग ऐसा कहते हैं। निमित्त से भी होता है और उपादान से भी होता है, उसे स्याद्वाद कहते हैं। अरे! भगवान! आहाहा!

यहाँ पर किसी शिष्य ने प्रश्न किया कि निर्विकल्पसमाधि में सब जगह वीतराग विशेषण क्यों कहा है? जहाँ तहाँ वीतराग समाधि, वीतराग परिणति—ऐसा वीतराग शब्द क्यों लगाते हो? लोगों को ऐसा है न? कि ऐसी वीतरागपने की आठवें से ही प्राप्ति होती है। यह लोग। परन्तु यहाँ तो पहले से ही वीतराग समाधि परिणति सम्यग्दर्शन की (हो), वह वीतराग परिणति है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह अरागी परिणति है। स्वसंवेदनज्ञान, वह अरागी ज्ञान है और उतना शान्ति—स्थिरता, वह अकषाय परिणति है। चौथे गुणस्थान में, हों! आहाहा! निर्विकल्प समाधि से जान, ऐसा कहा। वापस कहे, वीतराग क्यों कहा? तो यह निर्विकल्प समाधि से जान, यह चौथे में दूसरे प्रकार से ज्ञात होगा? और आठवें में निर्विकल्प समाधि से ज्ञात हो, ऐसा होगा? समझ में आया?

उसका उत्तर कहते हैं—जहाँ पर वीतरागता है, वहीं निर्विकल्पसमाधिपना है,... भाषा देखो! आहाहा! रागरहित शान्ति, वहाँ वीतरागता है और वीतरागता है, वहाँ रागरहित शान्ति है। आहाहा! भूतार्थ सत्यार्थ प्रभु परमात्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन होता है, वह वीतराग परिणति है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान से वीतराग परिणति है, भाई! आहाहा! **सब जगह वीतराग विशेषण क्यों कहा है? (उसका उत्तर कहते हैं—) जहाँ पर वीतरागता है, वहीं निर्विकल्पसमाधिपना है,...** जहाँ वीतरागता हो, वहाँ रागरहित शान्ति होती है।

इस रहस्य को समझाने के लिये अथवा जो रागी हुए कहते हैं कि हम निर्विकल्प-समाधि में स्थित हैं,... देखा ? आहाहा ! है राग और कहे, हमारे निर्विकल्प समाधि है। आहाहा ! वेदान्ती है न यह ? हमको अनुभव होता है। अनुभव होता है। धूल भी अनुभव नहीं। राग का अनुभव है। राग की बहुत मन्दता हो न, इसलिए उसे लगता है कि मुझे आत्मा का अनुभव हुआ।

मुमुक्षु : वीतरागता नहीं तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही है। विकल्परहित कहो या रागरहित कहो या वीतरागसहित कहो। है तो एक ही। देखा !

रागी हुए कहते हैं कि हम निर्विकल्पसमाधि में स्थित हैं, उनके निषेध के लिये वीतरागतासहित निर्विकल्पसमाधि का कथन किया गया है,... दो बातें हुई। एक तो निर्विकल्प समाधि है, वह वीतरागसहित ही होती है। वीतरागपना हो, वहाँ निर्विकल्प समाधि होती है। एक बात। और रागी भी राग में रुककर ऐसा कहे कि हमको निर्विकल्प समाधि है, उसका निषेध करने के लिये यह निर्विकल्प वीतरागता कही है। आहाहा ! और ऐसी परिणति तो जिसे भगवान ने सर्वज्ञ ने जैसा और जितना आत्मा कहा है, उतना और वैसा आत्मा दृष्टि में आवे, तब उसे वीतरागता प्रगट होती है। अज्ञानियों ने कहे हुए आत्मा में वीतरागी परिणति खड़ी ही नहीं होती। समझ में आया ? अब ऐसा उपदेश। उसमें क्या करना कुछ ? इच्छामि पडिकमणुं करना, तत्सूत्री करना। भगवान के निकट खड़े रहकर कायोत्सर्ग करना, दर्शन करना।

यहाँ तो कायोत्सर्ग अर्थात् विकल्प से भी छूटकर स्थिर होना, इसका नाम कायोत्सर्ग है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात करना और फिर वापस मन्दिर और लाखों पुस्तकें (प्रकाशित करना)। बीस लाख पुस्तकें प्रकाशित की। चौदह लाख यहाँ से और छह लाख वहाँ जयपुर से। प्रचार तो निमित्त द्वारा करते हो और फिर कहे निमित्त से होता नहीं। ऐई ! भगवान ! ऐसा अर्थ नहीं होता, भाई ! यह तो उसके कारण से, होने के काल में पुस्तकें होती हैं। मकान (मन्दिर) के काल में मकान होता है। वह किसने करना चाहा था ? ऐसा करना था ? मुम्बईवालों को नहीं करना था। तीन लाख का

बनाना था, ऐसा उन लोगों को, ऐसा सुना था। फिर बाद में सुना, तीन लाख का। पाँच का न ? उसमें पाँच लाख या करोड़ों... होने के काल में होता है, उसे करे कौन ? भाई ! आहाहा ! और वापस यहाँ होने के काल में दो वर्ष हो गये। भाव बढ़ गया। दाडिया का, कारीगर का, माल का। इसलिए जहाँ होने का काल (हो)... बापू ! तीन के पाँच, पाँच के दस, दस के छब्बीस हो गये। कौन करे ? भाई ! आत्मा एक रजकण भी बदले, यह आत्मा की सामर्थ्य नहीं है। करना और कहे, कर सकता नहीं। भाई ! करना नहीं, बापू ! तुझे खबर नहीं, भाई ! जहाँ होता है, उसे जानना। बस। आत्मा करता है, यह वस्तु में नहीं है, भाई ! आहाहा ! तो ऐसे मन्दिरों द्वारा आत्मा ज्ञात हो, ऐसा होगा ? तो फिर किये किसलिए तुमने यह सब ? रामजीभाई बहुत ध्यान रखते थे।

मुमुक्षु : किसने किये ? पुद्गल का कार्य जीव करे ? पर का काम तो पर करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे ! बोलना कुछ, करना कुछ। कथनी और करनी में अन्तर है, (ऐसा लोग) कहते हैं। वे कहें, वह अपने को बराबर जानना तो चाहिए न ?

मुमुक्षु : .... अधिक स्पष्टीकरण हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! पहले जैसे-जैसे विरोध होता गया है, वैसे-वैसे स्पष्टीकरण होता गया है। मार्ग तो ऐसा है, भाई !

यहाँ तो कहते हैं, वीतराग तू। अर्थात् कि जिसमें शान्ति और समाधि से आत्मा ज्ञात हो, वह समाधि वीतरागवाली ही होती है। उसमें लोग समाधि जो करते हैं न बाबा और वे ? वह नहीं। उसका निषेध करने के लिये यह बात है। अन्यमतिवाले समाधि (लगावे)। क्या धूल समाधि ? सुन न ! रागरहित अकषाय परिणति (हो), उसे वीतरागी परिणति और उसे समाधि कहते हैं। उसके द्वारा भगवान ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा ! उसे दूसरे प्रकार से... कहा न ? रागी हो और वीतरागी परिणति मानता हो, उसे बतलाने के लिये बात है। आहाहा ! आत्मा एक सर्वव्यापक है, ऐसा अनुभव हमको होता है। यह वस्तु खोटी है, ऐसा कहते हैं। उसे राग का अनुभव है वहाँ और मानता है कि हम आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। उसे समझाने के लिये वीतरागता ली है। आहाहा ! समझ में आया ?

अथवा सफेद शंख की तरह स्वरूप प्रगट करने के लिये कहा गया है, अर्थात् जो शंख होगा, वह श्वेत ही होगा,... शंख-शंख। सफेद शंख। आहाहा! **उसी प्रकार जो निर्विकल्पसमाधि होगी, वह वीतरागतारूप ही होगी।** मन के और इन्द्रियों के विकल्पों से पार भगवान के सन्मुख होने में तो निर्विकल्प परिणति ही होती है। वीतराग परिणति ही होती है। शंख हो, वह सफेद ही होता है। उसी प्रकार आत्मा की पकड़ने की दशा, वह निर्विकल्प परिणति वीतरागी ही होती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर कोई ऐसा कहता है कि वीतरागभाव की निर्विकल्प समाधि तो आठवें में होती है। उसका भी यहाँ निषेध करते हैं। जब-जब भगवान परमात्मस्वरूप है, उसे समझने के लिये जब दृष्टि जाती है, तब वह दृष्टि निर्विकल्प और वीतरागी होती है। समझ में आया? आहाहा! बहुत अच्छा (आया)।

शंख होगा, वह श्वेत ही होगा, उसी प्रकार जो निर्विकल्प... आत्मा, आत्मा आनन्द का नाथ, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द सदानन्द प्रभु आत्मा, उसे अनुभव करनेवाली दशा वीतरागी ही होती है। आहाहा! वहाँ विकल्प की गन्ध नहीं होती। आहाहा! यह बतलाने के लिये **वीतरागतारूप ही होगी।** ऐसा बतलाया है। २८ (गाथा) हुई। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २९

अथ यः परमात्मा व्यवहारेण देहे तिष्ठति निश्चयेन स्वस्वरूपे तमाह -

२९) देहादेहहिँ जो वसइ भेयाभेय-णएण।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ किं अण्णेँ बहुएण।।२९।।

देहादेहयोः यो वसति भेदाभेदनयेन।
तमात्मानं मन्यस्व जीव त्वं किमन्येन बहुना।।२९।।

देहादेहयोरधिकरणभूतयोर्यो वसति। केन। भेदाभेदनयेन। तथाहि-अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेणाभेदनयेन स्वपरमात्मनोऽभिन्ने स्वदेहे वसति शुद्धनिश्चयनयेन तु भेदनयेन स्वदेहाद्भिन्ने स्वात्मनि वसति यः तमात्मानं मन्यस्व जानीहि हे जीव नित्यानन्दैकवीतराग-निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावयेत्यर्थः। किमन्येन शुद्धात्मनो भिन्नेन देहरागादिना बहुना। अत्र योऽसौ देहे वसन्नपि निश्चयेन देहरूपो न भवति स एव स्वशुद्धात्मोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।२९।।

आगे यह परमात्मा व्यवहारनय से तो इस देह में ठहर रहा है, लेकिन निश्चयनयकर अपने स्वरूप में ही तिष्ठता है, ऐसी आत्मा को कहते हैं -

व्यवहार से देहस्थ पर ना नियत से देहस्थ है।
हे जीव! जानो उसे आतम अन्य से क्या काम है?।।२९।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो [भेदाभेदनयेन देहादेहयोः वसति] अनुपचरितअसद्भूत-व्यवहारनयकर अपने से भिन्न जड़रुप देह में तिष्ठ रहा है, और शुद्ध निश्चयनयकर अपने आत्मस्वभाव में ठहरा हुआ है, अर्थात् व्यवहारनयकर तो देह से अभेदरूप (तन्मय) हे और निश्चय से सदा काल से अत्यन्त जुदा है, अपने स्वभाव में स्थित है, [तं] उसे [हे जीव त्वं] हे जीव, तूँ [आत्मानं] परमात्मा [मन्यस्व] जान। अर्थात् नित्यानंद वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहर के अपने आत्मा का ध्यान कर। [अन्येन] अपने से भिन्न [बहुना] देह रागादिकों से [किम्] तुझे क्या प्रयोजन है ?

भावार्थ :- देह में रहता हुआ भी निश्चय से देहस्वरूप जो नहीं होता, वही निज शुद्धात्मा उपादेय है।।२९।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण १२, गुरुवार
दिनांक-२४-०६-१९७६, गाथा-२९ - ३०, प्रवचन-१७

२९ गाथा। **आगे यह परमात्मा...** अर्थात् यह आत्मा। **व्यवहारनय से तो इस देह में ठहर रहा है, लेकिन निश्चयनयकर अपने स्वरूप में ही तिष्ठता है,...** आत्मा को कहते हैं।

देहादेहहिँ जो वसइ भेयाभेय-णएण।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ किं अण्णेँ बहुएण।।२९।।

अन्वयार्थ :- जो अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनयकर सम्बन्धवाले झूठे नय से **अपने से भिन्न जड़रूप देह में तिष्ठ रहा है,...** आहाहा! अनुपचरितअसद्भूतनय, झूठे नय से। आहाहा!

मुमुक्षु : असद्भूत का अर्थ झूठे?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। झूठे। आहाहा!

जड़रूप देह में तिष्ठ रहा है,... आहाहा! **और शुद्धनिश्चयनयकर अपने आत्मस्वभाव में ठहरा हुआ है,...** भगवान तो अपने स्वरूप में ही है। वह शरीर में है नहीं। शरीर तो भिन्न चीज़ है। अभी भी भिन्न है। होवे तब (नहीं)। आहाहा! यह कहा, उसे कहते हैं, देख! **'भेदाभेदनयेन देहादेहयोः वसति' शुद्धनिश्चयनयकर अपने आत्मस्वभाव में ठहरा हुआ है, अर्थात् व्यवहारनयकर तो देह से अभेदरूप है,...** अभेद ऐसा कहना है। व्यवहारनय से—झूठे नय से शरीर और आत्मा एक है, अभेद है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....व्यवहार से तो सच्चा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार ही झूठा है। असद्भूतनय व्यवहार है।

परमाणु के स्कन्ध में परमाणु रहा है, वह भी अपने परिणमन के काल में स्वचतुष्टय में रहा है। जब जड़ में एक परमाणु भी स्व से है तो इस जड़ में भगवान आत्मा तो अत्यन्त भिन्न व्यवहारनय से शरीर के साथ अभेद कहने में आता है। भेदाभेद

शब्द है न? यह अभेद व्यवहारनय से अभेद। निश्चयनय से भेद, ऐसा। सत्यनय से भेद, सत्यनय से भेद, असत्यनय से अभेद। आहाहा! **देह से अभेदरूप (तन्मय) है,...** तन्मय अर्थात् व्यवहार से अभेद कहना है। शरीर में आत्मा अभेद असद्भूत—झूठे नय से अभेद कहने में आता है।

मुमुक्षु : अभेदनय से सच्चा है व्यवहारनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा जरा भी नहीं। मात्र ज्ञान कराने के लिये बात है। आहाहा! कलशटीका में तो बहुत लिखा है। झूठा, झूठा, झूठा। व्यवहार झूठा है। आहाहा!

शुद्धनिश्चयनयकर अपने आत्मस्वभाव में ठहरा हुआ है, अर्थात् व्यवहारनयकर तो देह से अभेदरूप (तन्मय) है, और निश्चय से सदाकाल से अत्यन्त जुदा है,... भेद। व्यवहार से अभेद, निश्चय से भेद। ऐसा कहना है यहाँ। अभेद अपना स्वरूप है निश्चय, वह यहाँ बात नहीं लेनी है। क्या कहा, समझ में आया? आत्मा निश्चय अभेदस्वरूप है, वह यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो शरीर के साथ इकट्ठा रहता है, इस अपेक्षा से अभेदनय से व्यवहाररूप से अभेदनय से एक है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

निश्चय से वस्तु स्वयं ही अभेद है, पर्याय आदि के भेद हैं, वह यहाँ बात नहीं लेनी। यहाँ तो शरीर और आत्मा व्यवहारनय से अभेद है, ऐसा कहना है। समझ में आया? निश्चयनय से भगवान आत्मा शरीर से भेद है, भिन्न है।

मुमुक्षु : सर्वथा भेद है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा भिन्न है।

मुमुक्षु : एक नय से....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह झूठे नय से कहा था। आहाहा! ऐसा है।

यहाँ तो भेद-अभेद की व्याख्या में अभेद अर्थात् आत्मा शरीर के साथ है, ऐसा व्यवहारनय से अभेद है, ऐसा कहा जाता है। वह जो अभेद आत्मा त्रिकाली दृष्टि का विषय जो अभेद, वह यहाँ नहीं। वह यहाँ अभेद की व्याख्या नहीं। समझ में आया? भूतार्थ वस्तु जो अभेद है, वही सम्यग्दर्शन का विषय है और पर्याय के भेद आदि हैं, वह व्यवहार का विषय है। उसका यहाँ काम नहीं। ऐसा भेदाभेद का यहाँ काम नहीं।

यहाँ तो शरीर और आत्मा व्यवहार से अभेद कहे जाते हैं। सत्यदृष्टि से वे दोनों भिन्न हैं, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया?

देखो! **निश्चय से सदाकाल से अत्यन्त जुदा है,...** देखो! वापस अभी ऐसा नहीं। सदा काल भिन्न है। है? आहाहा! '**शुद्धनिश्चयनयेन तु भेदनयेन स्वदेहाद्भिते स्वात्मनि वसति यः तमात्मानं मन्यस्व जानीहि हे जीव**' आहाहा! लो! **हे जीव! तू परमात्मा (उसे) जान।** आहाहा! तेरा भगवान ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्य सत्ता, ऐसा जो परमात्मा, उसे तू देह से निश्चय से भिन्न जान। समझ में आया? **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके... 'मन्यस्व'** आया न? जान। परन्तु किस प्रकार जान? आहाहा! **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके...** आहाहा! नित्य आनन्द ऐसी दशा, वीतराग निर्विकल्प समाधि। आहाहा! त्रिकाल अभेद में पर्याय को झुकाने से वहाँ आनन्द प्रगट होता है, वीतराग दशा है, अभेद है, शान्ति है। अरे! ऐसी बातें बहुत... उसमें **ठहरके अपने आत्मा का ध्यान कर।** मात्र परमात्मा '**मन्यस्व**' उसकी यह व्याख्या की है। है न? परमात्मा को मान। अर्थात् क्या? वह परमात्मा देह से अत्यन्त भिन्न, उसे नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्प शान्ति द्वारा ठहरकर जान। ऐसा (लिया)। आहाहा!

शरीर और आत्मा झूठेनय से अभेद है। शुद्ध निश्चयनय से, सत्यनय से देह और आत्मा भिन्न है। ऐसे आत्मा—परमात्मा को, उस त्रिकाली भगवान परमात्मा को वर्तमान नित्यानन्द ऐसी वीतराग निर्विकल्प शान्ति अर्थात् कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति द्वारा उसे जान। ऐसी व्याख्या है, भाई! समझ में आया? आया था न उसमें, नहीं? २७ में। **अपने स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता।** आहाहा! बाहर के झगड़े में पड़ा है। देखने यह, ऐसा कहते हैं।

भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप स्वयं विराजमान है। उसे पर से भिन्न निर्विकल्प शान्ति द्वारा, वीतरागी परिणति द्वारा उसे जान। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा ऐसा है, ऐसा जानकर धारणा कर ली, वह नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान परमात्मस्वरूप स्वयं, उसे विकल्प की वृत्तियाँ जो परसन्मुख की है, उन्हें छोड़कर, छोड़कर नहीं कहा परन्तु इसका अर्थ हुआ। अन्तर्मुख झुकने से उसकी अरागी शान्ति

की परिणति समाधि की होती है, उसके द्वारा जान। आहाहा!

शास्त्र से जान, ऐसा भी नहीं; विकल्प से जान, ऐसा भी नहीं। यह जानना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! रागरहित जैसा वीतराग सदानन्दस्वभाव भगवान है। सदानन्द वीतराग स्वभाव है प्रभु आत्मा का। उसकी ओर की झुकाववाली। सदानन्द नित्यानन्द अर्थात् कायम आनन्द की परिणतिवाला। आहाहा! ऐसी वीतराग समाधि से (जान)। यह समाधि अर्थात् शान्ति है। अरागी, अकषाय शान्ति द्वारा उसे जान। आहाहा! ऐसी बात है।

अपने आत्मा का ध्यान कर। अर्थात् कि उस स्वरूप की ओर का झुकाव, वही ध्यान है। पूर्णानन्द प्रभु की ओर का झुकाव, वही निर्विकल्प समाधि है और वही ध्यान है। आहाहा! ध्यान की है पर्याय। उसमें निर्विकल्प वीतराग समाधि है पर्याय। पर्याय में उसे जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ज्ञात होता है पर्याय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में क्या ज्ञात हो? ध्रुव किसे जाने? आहाहा! इसलिए दोनों बातें सिद्ध की। परिणमन सिद्ध किया और त्रिकाली ध्रुव सिद्ध किया। अर्थात् कि निर्विकल्प परिणति द्वारा ध्रुव को जान। आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! यह कहीं....

मुमुक्षु : अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) लेगा, उसमें क्या है? आहाहा! भरा है न! ज्ञानस्वभाव तो भरा ही है। आहाहा! समुद्र महा तालाब पानी भरा है। ऐसे एक लाईन करे पतली तो एकदम बाहर निकले पानी। आहाहा! इसी प्रकार भगवान चैतन्यस्वभाव के समुद्र से तो प्रभु भरा हुआ है। उसे एकाग्रता की जरा लाईन डाले तो शुद्ध परिणति बाहर आवे। स्वभाव का जो प्रवाह है, वह प्रवाह परिणति में आता है। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया? यह लोग यही घोंटे। लो, इससे होता है। व्यवहार से होता है, यह क्यों नहीं आया इसमें? दो मार्ग है—निश्चय और व्यवहार। अरे! बापू! ऐसा नहीं है, भाई!

मुमुक्षु : निश्चय का मार्ग जल्दी का, व्यवहार का मार्ग धीरे का।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार-फ्यवहार मार्ग ही नहीं है। यह बात ही की नहीं। वह तो विकल्प है। विकल्प द्वारा निर्विकल्प ज्ञात होता है? समझ में आया? बात तो ऐसी है, बापू!

मुमुक्षु : अनेकान्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त (यह कि) निर्विकल्प परिणति से ज्ञात होता है और विकल्प से ज्ञात नहीं होता। यह अनेकान्त। आहाहा! ऐसा स्वरूप। लोगों को... अन्तर वस्तु पड़ी है महाप्रभु। आहाहा! मात्र नजर के आलस्य से पड़ी है वह वस्तु। आहाहा! नजरें बाहर में भटका करती हैं, इसलिए अन्दर की चीज़ को देखने की निवृत्ति इसे नहीं है। आहाहा!

परमात्मा सदानन्दस्वरूप। जितने विशेषण पर्याय में प्रयोग किये हैं, ऐसे ही विशेषणवाला तत्त्व है। क्या कहा यह? यह पर्याय में प्रयोग किया है न? **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके...** तो यह तो पर्याय के वर्तमान के विशेषण हैं। परन्तु यह सब आत्मा में भी है। आत्मा नित्यानन्द है, वीतराग है, अभेद है, शान्तमय है। आहाहा! ओहो! शैली... शैली है परन्तु! इसकी जाति में है, उसकी जाति के अंकुर प्रगट करके उसे जान। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार से ज्ञात हो और व्यवहार से ज्ञात हो, व्यवहार से कहो या निमित्त से कहो। ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : आप निमित्त बहुत इकट्ठे करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे कहते हैं, भाई! क्या करे, बापू! यह पुस्तकें (प्रकाशित होती हैं), सब पण्डित बाहर भेजते हो। निमित्त द्वारा काम तो लेते हो और कहे उपादान से काम होता है और निमित्त से नहीं होता। अरे! प्रभु! क्या किया? भाई तूने! भारी तर्क निकाला, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : हजारों-लाखों रुपये तो आप पण्डितों के वेतन में खर्च करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्नालाल जैसे, बाबूभाई जैसे सबको बाहर भेजते हो और कहे कि निमित्त से नहीं होता। अरे! भगवान! ऐसा नहीं होता। प्रभु! ऐसे तर्क नहीं होते,

भाई! सिद्धान्त तो सिद्धान्त है, वही रहेगा। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहा न? देखो न! **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके अपने आत्मा का ध्यान कर।** उससे तुझे ज्ञात होगा। व्यवहार से अर्थात् निमित्त से ज्ञात नहीं होगा। अन्तर का व्यवहार, वह निमित्त है। बाहर का निमित्त, वह बाहर का व्यवहार है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार के तो छिलके हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : छिलके... छिलके कूचा है। आहाहा!

कलश में तो यहाँ तक कहा नहीं था? व्यवहारचारित्र आदरणीय नहीं। वर्जनेयोग्य नहीं, ऐसा नहीं है। दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है। ऐसे शब्द प्रयोग किये हैं। पुण्य-पाप अधिकार नहीं? १०८ कलश?

यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है, सो करनेयोग्य नहीं है, उसी प्रकार वर्जन करनेयोग्य भी नहीं है? उत्तर इस प्रकार है— वर्जन करनेयोग्य है,... आदरनेयोग्य तो नहीं। उससे होता नहीं परन्तु वर्जन करनेयोग्य है। **व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है; इसलिए विषय-कषाय के समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है...** आहाहा! अब व्यवहारचारित्र करते-करते होगा। अरे! प्रभु! यह मार्ग को कलंक है, भाई!

मुमुक्षु : यह तो पण्डित का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित का है परन्तु न्याय से है या नहीं? राजमल्लजी (कृत) न्याय मिलता है या नहीं?

राग है, वह तो घातक है। यह तो पाठ में है। '**मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च। मोक्षहेतुतिरोधायि**' पाठ है। मोक्ष के हेतु से वे सब विपरीत भाव हैं। आहाहा! इन्होंने घर का नहीं डाला है। पाठ में है, उसका स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! '**न्निषिध्यते**' देखो! **निष्कर्म-अवस्था उसका कारण है जीव का शुद्धरूप परिणमन, उसका घातक है,...** पाठ में ही है। **बन्धरूप है।** आहाहा! बहुत स्पष्ट! पण्डित घर का कहते हैं? जो मार्ग है, उसकी पण्डितों ने स्पष्टता की है। आहाहा! अरे! आठ वर्ष का

लड़का सत्य को कहे तो स्वीकार करना चाहिए। उसमें क्या है ? आहाहा! सत्य कहता हो तो स्वीकार करना चाहिए इसे। बालक है तो क्या ? बालक तो आठ वर्ष में केवल (ज्ञान) प्राप्त करता है। उसमें क्या है ? आहाहा!

कम्बल का सिंह, वह सिंह नहीं है। आता है न ? कपड़े का सिंह, वह सिंह नहीं है। कम्बल में। आता है, कलशटीका में है। उसी प्रकार राग का चारित्र, वह कम्बल का सिंह है। आहाहा! यह सब व्याख्या किसके ऊपर से चली ? **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके...** अन्तर स्वरूप-सन्मुख की शान्ति और रागरहित परिणति से वह ज्ञात हो, ऐसा है। अर्थात् कि व्यवहार से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! उसकी महत्ता है, इतनी कि यह निर्विकल्प से ज्ञात हो, ऐसी इसकी महत्ता है। सविकल्प से ज्ञात हो, यह कलंक है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

अपने से भिन्न... देखा ? **देह रागादिकों से तुझे क्या प्रयोजन है ?** शरीर की क्रिया और शरीर को अनुसरकर होते रागादि। ऐसा लिखा है ? कलश में ऐसा लिखा है। दो बातें ली हैं। ऐसा कि देहादि की क्रिया और उसे अनुसरकर होता भाव। कलश में ऐसी दो बातें ली हैं। जहाँ क्रिया का निषेध करना है न, वहाँ क्रिया के दो प्रकार लिये हैं। यह शरीर-वाणी से होता है, यह क्रिया। यह तो जड़ की भले। परन्तु उसे अनुसरकर होता भाव, दोनों निषेध है। यह पाठ में लिया है। कलशटीका में। आहाहा! क्योंकि वह पर-देह की क्रिया, उसे अनुसरकर हो, वह भाव तो विकारी ही होगा। स्व को अनुसरकर हो, वह भाव अविकारी है। सूक्ष्म पड़े। वस्तु ऐसी है, भाई!

अपने से भिन्न देह रागादिकों से तुझे क्या प्रयोजन है ? आहाहा! अर्थात् देह जड़ और देह को अनुसरकर होनेवाला शुभभाव आदि हों, उसके साथ तुझे क्या प्रयोजन है ? कहते हैं। समझ में आया ?

भावार्थ :- देह में रहता हुआ भी निश्चय से देहस्वरूप जो नहीं होता,... भगवान बाह्य में देह में एक क्षेत्र में इकट्ठे दिखते हैं तथापि वास्तव में देहस्वरूप जो नहीं होता। अरूपी भगवान जड़स्वरूप कैसे हो वहाँ ? आहाहा! **वही निज शुद्धात्मा उपादेय है।** आहाहा! मात्र मक्खन है! राग और देह से भिन्न भगवान, ऐसा जो निज शुद्धात्मा, वही उपादेय—आदरणीय है। यह २९ (गाथा) हुई।

गाथा - ३०

अथ जीवाजीवयोरेकत्वं मा कार्षीर्लक्षणभेदेन भेदोऽस्तीति निरूपयति –

३०) जीवाजीव म एक्कु करि लक्खण भेएँ भेउ।
जो परु सो परु भणमि मुणि अप्पा अप्पु अभेउ।।३०।।

जीवाजीवौ मा एकौ कुरु लक्षणभेदेन भेदः।
यत्परं तत्परं भणामि मन्यस्व आत्मन आत्मना अभेदः।।३०।।

हे प्रभाकरभट्ट जीवाजीवावेकौ मा कार्षीः। कस्मात्। लक्षणभेदेन भेदोऽस्ति तद्यथा–रसादिरहितं शुद्धचैतन्यं जीवलक्षणम्। तथा चोक्तं प्राभृते – ''अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणा–गुणमसद्दं जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।'' इत्थंभूतशुद्धात्मनो भिन्नमजीवलक्षणम्। तच्च द्विविधम्। जीवसंबन्धमजीवसंबन्धं च। देहरागादिरूपं जीवसंबन्धं, पुद्गलादिपञ्चद्रव्यरूपम–जीवसंबन्धमजीवलक्षणम्। अत एव भिन्नं जीवादजीवलक्षणम्। ततः कारणात् यत्परं रागादिकं तत्परं जानीहि। कथंभूतम्। भेद्यमभेद्यमित्यर्थः। अत्र योऽसौ शुद्धलक्षणसंयुक्तः शुद्धात्मा स एवोपादेय इति भावार्थः।।३०।।

आगे जीव ओर अजीव में लक्षण के भेद से भेद हैं, तू दोनों को एक मत जान, ऐसा कहते हैं – हे प्रभाकरभट्ट,

ना करो जीव अजीव में एकत्व लक्षण भिन्न हैं।
है आतमा ही मात्र आतम मान पर सब भिन्न हैं।।३०।।

अन्वयार्थ :– [जीवाजीवौ] जीव और अजीव को [एकौ] एक [मा कार्षीः] मत कर क्योंकि इन दोनों में [लक्षणभेदेन] लक्षण के भेद से [भेदः] भेद है [यत्परं] जो पर के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए रागादि विभाव (विकार) हैं, [तत्परं] उनको पर (अन्य) [मन्यस्व] समझ [च] और [आत्मनः] आत्मा का [आत्मना अभेदः] अपने से अभेद जान [भणामि] ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ :– जीव, अजीव के लक्षणों में से जीव का लक्षण शुद्ध चैतन्य है, वह स्पर्श, रस, गंधरूप शब्दादिक से रहित है। ऐसा ही श्री समयसार में कहा है – ''अरसं''

इत्यादि। इसका सारांश यह है, कि जो आत्मद्रव्य है, वह मिष्ट आदि पाँच प्रकार के रसरहित है, श्वेत आदिक पाँच तरह के वर्णरहित है, सुगन्ध-दुर्गंध इन दो तरह के गंध उसमें नहीं हैं, प्रगट (दृष्टिगोचर) नहीं है, चैतन्यगुणसहित है, शब्द से रहित है, पुल्लिंग आदि करके ग्रहण नहीं होता अर्थात् लिंगरहित है, और उसका आकार नहीं दिखता अर्थात् निराकार वस्तु है। आकार छह प्रकार के हैं - समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, सातिक, कुब्जक, वामन, हुंडक। इन छह प्रकार के आकारों से रहित है, ऐसा जो चिद्रूप निज वस्तु है उसे तूँ पहचान। आत्मा से भिन्न जो अजीव पदार्थ है, उसके लक्षण दो तरह से हैं, एक जीव सम्बन्धी, दूसरा अजीव संबंधी। जो द्रव्यकर्म भावकर्म-नोकर्मरूप है, वह तो जीवसंबंधी है, और पुद्गलादि पाँच द्रव्यरूप अजीव जीवसंबंधी नहीं हैं, अजीवसंबंधी ही हैं, इसलिये अजीव हैं, जीव से भिन्न हैं। इस कारण जीव से भिन्न अजीवरूप जो पदार्थ हैं, उनको अपने मत समझो। यद्यपि रागादिक विभाव परिणाम जीव में ही उपजते हैं, इससे जीव के कहे जाते हैं, परंतु वे कर्मजनित हैं, परपदार्थ (कर्म) के संबंध से हैं, इसलिये पर ही समझो। यहाँ पर जीव-अजीव दो पदार्थ कहे गये हैं, उनमें से शुद्ध चेतना लक्षण का धारण करनेवाला शुद्धात्मा ही ध्यान करने योग्य है, यह सारांश हुआ।।३०।।

गाथा - ३० पर प्रवचन

३०। **आगे जीव और अजीव में लक्षण के भेद से भेद है,...** दोनों के लक्षणभेद है, इसलिए वस्तु भिन्न है, ऐसा कहते हैं। **तू दोनों को एक मत जान, ऐसा कहते हैं—**

३०) जीवाजीव म एक्कु करि लक्खण भेएँ भेउ।
जो परु सो परु भणमि मुणि अप्पा अप्पु अभेउ।।३०।।

हे प्रभाकर भट्ट... परन्तु जब तुम ऐसा कहो कि पर से ज्ञात नहीं होता। और प्रभाकर भट्ट को कहे, तू ऐसा जान। भाई! ऐसे तर्क नहीं होते। वाणी के काल में वाणी होती है। समझ में आया? एक ओर कहे कि दिव्यध्वनि से लाभ नहीं होता। आया नहीं पहले? वेद अर्थात् दिव्यध्वनि और अर्थ अर्थात् शास्त्र। मुनियों के कहे हुए शास्त्र। महामुनि गणधरों के कहे हुए। उनसे आत्मा ज्ञात नहीं होता। यहाँ ऐसा कैसे कहते हैं

कि हे प्रभाकर भट्ट! मैं कहता हूँ, उसे जान। भाई! ऐसे तर्क नहीं होते। कथनशैली तो ऐसी आती है।

यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं कहा? '**वोच्छामि**' पहली गाथा। मैं समयसार कहूँगा। प्रभु! एक बार कहते हो कि वाणी आत्मा नहीं कर सकता। '**वोच्छामि समयपाहुड**' भाई! ऐसा नहीं लिया जाता। इसे विनय से जानना चाहिए, भाई! तुम ऐसा कैसे कहते हो? ऐसा नहीं किया जाता। समझ में आया? आत्मा बोल नहीं सकता। और कहे कि मैं कहूँगा।

मुमुक्षु : आचार्य कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं। भाई! इसमें ऐसा उल्टा नहीं लिया जाता। बापू! यह तो कहते हैं, विकल्प हुआ है और वाणी के काल में वाणी निकलती है। ऐसी बात है, भाई! इसलिए वाणी की पर्याय का स्व—पर कहने की सामर्थ्यवाली वाणी, स्व—पर जानने की सामर्थ्यवाला भगवान। वाणी में स्व—पर को कहनेवाली सामर्थ्य है। वह आत्मा के कारण वाणी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

जीव और अजीव को एक मत कर... आहाहा! **क्योंकि इन दोनों में लक्षण के भेद से भेद है, जो पर के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए रागादि विभाव (विकार) हैं, उनको पर समझ...** आहाहा! देखा! जीव-अजीव के लक्षणभेद से भेद है और अब रागादि जो होते हैं, उन्हें पर समझ। आहाहा! क्योंकि निमित्त के लक्ष्य से हुई चीज़, वह पर है। तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! यह व्यवहार होता है, वह कहीं तेरी चीज़ नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, पूरा उसका उपादान अतीन्द्रिय आनन्दवाला है। आहाहा! उसकी परिणति में अतीन्द्रिय आनन्द का अंश प्रगट हो, वह उसकी जाति है। और राग उत्पन्न होता है, वह परवस्तु है, विकार है। समझ में आया? अरे! अब ऐसा उपदेश। लोगों को...

भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। जो वाणी का कर्ता भी आत्मा नहीं। तथापि यहाँ तो आचार्य कहते हैं, तू ऐसा वाणी से... '**अप्पा अप्पु अभेउ**' आहाहा! सत्य को सत्यरूप से रहने दे, भाई! कहते हैं तो यह कहते हैं, वह वाणी से कहते हैं। उसमें ज्ञान निमित्त है। परन्तु निमित्त है, इसलिए वाणी हुई है, ऐसा नहीं है। वाणी का उस काल में

उत्पत्ति का क्षण और काल है। इस कारण से वाणी होती है, और उसे कहते हैं कि तू ऐसा जान। उसे जानने की पर्याय भी उस काल में उसके आश्रय से होगी। उसे जान का अर्थ यह हुआ या नहीं? उसे जान। अर्थात् कि निर्विकल्प परिणति से जान। कहते हैं, वह वाणी अलग और उसे कहते हैं कि तू ऐसा जान। यह तो वह स्वयं निर्विकल्प परिणति से जानेगा, तब 'जान' कहने में आयेगा। परन्तु उपदेश में क्या कहा जाये? समझ में आया?

'तत्परं' समझ और आत्मा का अपने से अभेद जान... आहाहा! यह राग से नहीं, पर से नहीं। चिदानन्द भगवान एकरूप अभेद है, उसे पर्याय में जान। आहाहा! है? **'आत्मन आत्मना अभेदः'** ऐसा। आत्मा को आत्मा से अभेद जान। आहाहा! **ऐसा मैं कहता हूँ।** लो! आया? **'भणामि'** ऐई! पण्डितजी! **'भणामि' ऐसा मैं कहता हूँ।** आहाहा! अरे! बापू! भाषा, भाई! ऐसे तर्क नहीं होते। समझ में आया?

इसलिए कहा है न? कि अबुध को समझाने के लिये ज्ञानी व्यवहार से समझाते हैं। परन्तु वह व्यवहार से समझावे, उसे ही पकड़ता है। तुम तो व्यवहार से कहते हो या नहीं हमको? तो वह देशना सुनने के योग्य नहीं है। आहाहा! तुमने व्यवहार से कहा है या नहीं? उसमें आया है न? आठवीं गाथा में। चाहे जैसा साधिक बुद्धिवाला हो, इतना तो उसे कहना पड़े, दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त हो, वह आत्मा। यह व्यवहार किया। (समयसार) आठवीं गाथा। दर्शन-ज्ञान-चारित्र (ऐसे) भेद से बात की। व्यवहार से बात की। तब तुम व्यवहार से कहते हो और फिर व्यवहार से लाभ नहीं होता? अरे! भगवान! ऐसा नहीं पकड़ा जाता। भाई! ऐसा नहीं होता। आहाहा!

चालीस वर्ष की माँ ऐसे वस्त्र व्यवस्थित पहनकर बैठी हो। बीस वर्ष का जवान लड़का उसकी मस्करी नहीं करता। वह जननी है। समझ में आया? आहाहा! माता है। चालीस वर्ष की जवान हो। तू बीस वर्ष का हो। वस्त्र पटली पाड़कर व्यवस्थित ऐसे बैठी हो। माँ यह क्या है? ऐसा नहीं कहा जाता। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि हम कहते हैं, उसे तू पकड़ कि जो कहो, है या नहीं? ऐसा नहीं कहा जाता। ऐसा कहते हैं। आहाहा! तुम कहो कि निमित्त से लाभ नहीं होता और फिर बोलकर हमको निमित्त से समझाते हो। भाई! ऐसे नहीं बोला जाता।

मुमुक्षु : 'मैं कहता हूँ।'

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं कहता हूँ। हाँ, देखो! **ऐसा मैं कहता हूँ।** है? आहाहा! '**भणामि**' है न परन्तु? '**भणामि**' है स्पष्ट। आहाहा! '**जो परु सो परु भणमि**' आहाहा! यह वह '**भणमि**' है, यह मूल शब्द है। परन्तु नीचे इसका अर्थ करते हैं। नीचे है न संस्कृत? '**भणामि**' है न? मूल में '**भणमि**' है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं करते। यह नीचे संस्कृत का अर्थ करते हैं। अपने ऐसा कहते हैं। मूल पाठ का न करके इन्होंने शब्दार्थ का—अन्वयार्थ में यह करते हैं, '**भणामि**' में से किया है। यह संस्कृत छाया है न, इसका अर्थ किया है। आहाहा!

भावार्थ :- जीव अजीव के लक्षणों में से जीव का लक्षण शुद्ध चैतन्य है,... आहाहा! जीव और अजीव के लक्षण में से दोनों भिन्न हैं, इसलिए उनके लक्षण भिन्न हैं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा का लक्षण शुद्ध चैतन्य है। आहाहा! हिले-चले, वह त्रस; स्थिर रहे, वह स्थावर—यह लक्षण जीव का नहीं है। आहाहा! ऐसा कि हिले-चले इसलिए त्रस और स्थिर रहे, वह स्थावर। तो स्थिर तो सिद्ध भी स्थिर रहते हैं और रजकण भी हिलते-चलते हैं। यह लक्षण जीव का नहीं कहलाता। आहाहा!

यह तो त्रस की यह व्याख्या नहीं है। पंचास्तिकाय में स्थावर और अग्नि, वायु को त्रस नहीं कहा? अग्नि और वायु गति करते हैं न! ऐसा है न? त्रस कहा। पंचास्तिकाय में। क्या अपेक्षा है? भाई!

मुमुक्षु : .... तो स्थावर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थावर है, तथापि उन्हें त्रस कहा। पृथ्वी, जल और अग्नि, वायु। पाँच को। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। पृथ्वी, जल, वनस्पति को स्थावर कहा और अग्नि तथा वायु (को त्रस कहा)। ऐसे अग्नि का भड़का होता है। हवा ऐसे (बहती है)। उसे त्रस कहा है, लो! पंचास्तिकाय में। आहाहा! भाई! क्या अपेक्षा है? उसमें भी कोई तर्क करता है कि यह शब्द आचार्य के नहीं। किसी ने ऊपर से डाले हैं, ऐसा कोई कहता है। आहाहा!

यह तो शुद्ध चैतन्य लक्षण से लक्षित है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य के भाव से वह

ज्ञात हो, ऐसा है। उसका लक्षण शुद्ध चैतन्य है। आहाहा! वह राग से और शरीर से ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

वह स्पर्श, रस, गन्धरूप शब्दादिक से रहित है। ऐसा ही श्री समयसार में कहा है—अरस आदि है न? अलिंगग्रहण। भावप्राभृत में है, पंचास्तिकाय में है। पंचास्तिकाय में गाथा-१२७। भावप्राभृत में गाथा-६४। पंचास्तिकाय गाथा-१२७। है। पंचास्तिकाय-१२७ और भावप्राभृत गाथा-६४। भावप्राभृत है न? उसकी गाथा-६४। १७२ प्रवचनसार में है। और नियमसार में (४६ गाथा) है। इसमें इतना लिखा था तब। है न नियमसार में है। धवल में है।

अरसं इत्यादि। इसका सारांश यह है कि जो आत्मद्रव्य है, वह मिष्ट आदि पाँच प्रकार के रस रहित है,... यह भी अपने आ गया है। **श्वेत आदिक पाँच तरह के वर्ण रहित है, सुगन्ध, दुर्गन्ध इन दो तरह के गन्ध उसमें नहीं है, प्रगट (दृष्टिगोचर) नहीं है, चैतन्यगुण सहित है, शब्द से रहित है,...** अव्यक्त का अर्थ किया है। **चैतन्यगुण सहित है, शब्द से रहित है, पुल्लिंग आदि करके ग्रहण नहीं होता, अर्थात् लिंगरहित है, और उसका आकार नहीं दिखता, अर्थात् निराकार वस्तु है। आकार छह प्रकार के हैं - समचतुरस्त्र, नेग्रोधपरिमण्डल, सातिक, कुब्जक, वामन, हुण्डक। इन छह प्रकार के आकारों से रहित है, ऐसा जो चिद्रूप निज वस्तु है,...** चिद्रूप, ज्ञानरूप, ज्ञानस्वरूप ऐसी जो वस्तु, निज वस्तु अपनी। आहाहा! **उसे तू पहचान।** उसे तू जान। आहाहा! चिद्रूप वस्तु प्रभु आत्मा, उसे तू जान। रागादि को जान, कि यह नहीं। वह तो सब आत्मा नहीं। यह तो भाई! इसमें पण्डिताई का काम नहीं। आहाहा! निभृत पुरुषों को... नहीं आया? आहाहा! चिन्तारहित पुरुषों का यह काम है, भाई! आहाहा!

आत्मा से भिन्न जो अजीव पदार्थ है, उसके लक्षण दो तरह से हैं,... आत्मा से भिन्न अजीव है, उसके लक्षण दो प्रकार के। एक जीव सम्बन्धी अजीव और एक दूसरा जीव सम्बन्ध बिना का अजीव। समझ में आया? **जो द्रव्यकर्म भावकर्म, नोकर्मरूप है, वह तो जीवसम्बन्धी है,...** उसका जीव के साथ सम्बन्ध है न? जीव जड़कर्म, भावकर्म, वह अजीव, हों! आहाहा! पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्तिभाव, वे सब अजीव। वह अजीव, जीव के सम्बन्धवाला अजीव। आहाहा!

पुद्गलादि पाँच द्रव्यरूप अजीव जीवसम्बन्धी नहीं है,... यह पुद्गल शरीरादि रजकण दूसरे। शरीर तो नोकर्म में गया। यह दूसरा। नोकर्म शरीर भिन्न। यह नहीं। यह जीव सम्बन्धी में आया। परन्तु इसके अतिरिक्त यों ही पुद्गल है न? और धर्मास्ति, अधर्मास्ति इत्यादि वे अजीव जीवसम्बन्धी नहीं। वे अजीव, जीवसम्बन्धी नहीं है, ऐसा। शरीरादि, वाणी आदि, भावकर्म आदि, द्रव्यकर्म आदि जीवसम्बन्धी अजीव। वे जीव सम्बन्ध बिना के अजीव। आहाहा! देखा! यह पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत के परिणाम को यहाँ अजीव में डाला। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य तो भावकर्म में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डाला न भावकर्म, कहा।

मुमुक्षु : जीव सम्बन्धी कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव सम्बन्धी, परन्तु वह भावकर्म अजीव। जीवसम्बन्धी भावकर्म, वह अजीव। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जीव से भिन्न हैं। लो! अर्थात् दोनों, हों! जीवसम्बन्धी में द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म तथा सम्बन्धरहित के यह सब **जीव से भिन्न हैं।** आहाहा! समझ में आया? जीव सम्बन्धी में जड़कर्म, भावकर्म, शरीर, वाणी, नोकर्म और उस सम्बन्धरहित के— जीव सम्बन्धरहित के पुद्गल, आकाश और कालादि, उन सबको अजीव जान। उन्हें तुझसे भिन्न जान, ऐसा कहते हैं। **अजीव हैं, जीव से भिन्न हैं।** आहाहा! **इस कारण जीव से भिन्न अजीवरूप जो पदार्थ हैं, उनको अपने मत समझो।** आहाहा! यह पुण्य और पाप, दया और दान, अरे! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह अजीव है। उसे अपना न मानो। आहाहा! ऐसा कहते हैं... बहुत स्पष्टीकरण होता है। यह ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : भावकर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : भावकर्म, वह अजीव। जीव के सम्बन्ध में भले हो, परन्तु है अजीव। आहाहा! वह जीव से भिन्न शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा, उससे व्यवहार भिन्न। आहाहा! व्यवहार से होता है, परम्परा होता है। इसमें आया है न? वे वहाँ फँस गये हैं

सब। किसी प्रकार भी कुछ... भाई! वह तो अजीव है। उससे जीव ज्ञात नहीं होता, जीव-प्राप्ति नहीं होती। आहाहा!

वीतरागी आनन्द की निर्विकल्प शान्ति द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा है। क्योंकि उसकी जाति में यह बात पड़ी है। आहाहा! भावकर्म में यह वस्तु नहीं। उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता। क्योंकि वह अजीव है। जीव से भिन्न लक्षणवाला है। उससे जीव कैसे ज्ञात हो? आहाहा! इस व्यवहार के राग से ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हैं। राग को व्यवहारमोक्षमार्ग कहा है न? व्यवहारमोक्षमार्ग, उससे ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यद्यपि रागादिक विभाव परिणाम जीव में ही उपजते हैं,... अब स्पष्टीकरण करते हैं। पुण्य और पाप के भाव **विभाव परिणाम जीव में ही उपजते हैं, इससे जीव के कहे जाते हैं, परन्तु वे कर्मजनित हैं,...** लो! निमित्त से होते थे न, इससे कर्मजनित। विकार निमित्त से हुआ। कौन सी बात करते हैं? भाई! आहाहा! यहाँ तो उसका लक्षण नहीं और उसे छोड़ना है, इस अपेक्षा से कर्मजनित कहा। बाकी है तो विकार उसकी पर्याय के उल्टे पुरुषार्थ से ही हुआ है। समझ में आया? जहाँ परमार्थ को निषेधने जाये, वहाँ यह कहे, जो निमित्त से नहीं होता। वहाँ तो कर्मजन्य विकार है। वह स्वभाव नहीं, इतना सिद्ध करना है। आहाहा!

यहाँ कर्मजनित कहे और पंचास्तिकाय की गाथा-६२ में ऐसा कहे, यह विकारी परिणाम षट्कारक का परिणमन, निमित्त की—कारक की अपेक्षा बिना अपने से होता है। वहाँ इसकी अस्ति सिद्ध करनी है और यहाँ इसका निषेध सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! अरे! भगवान का विरह पड़ा और ऐसे सब झगड़े उठे हैं।

परपदार्थ (कर्म) के सम्बन्ध से हैं,... देखा! परपदार्थ के सम्बन्ध से है। यह स्वयं स्पष्टीकरण किया। **इसलिए पर ही समझो।** व्यवहाररत्नत्रय का जो शुभराग है, वह कर्मजनित समझकर पर समझो। आहाहा! **यहाँ पर जीव-अजीव दो पदार्थ कहे गये हैं, उनमें से शुद्ध चेतना लक्षण का धारण करनेवाला शुद्धात्मा...** लो! राग को अजीव कहा न? और पुद्‌गलादि का अजीव कहा। भिन्न है उन्हें। तो यह जीव-अजीव दो पदार्थ कहे, उनमें से शुद्ध चेतना लक्षण को धारण करनेवाला भगवान... आहाहा! उसका ध्यान करनेयोग्य है।

रागादि व्यवहाररत्नत्रय अजीव है। वह अजीव है, इसलिए छोड़नेयोग्य है। वह ध्यान करनेयोग्य नहीं। तथा एक ओर ऐसा आया कहीं, भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना। आया है। इस अपेक्षा से, भाई! वस्तु तो अभेद रत्नत्रय, वही आराधक है। परन्तु विकल्प का आरोप डालकर उसे व्यवहार का आराधन कहने में आया है। आहाहा! कथन दो प्रकार से है। आराधन निश्चय का, अभेद का (है वैसा) भेद का वैसा आराधन नहीं। उसके कथन दो प्रकार से आये हैं। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसे सब कहाँ निर्णय करना? भाई! सत्य है, उसे खड़ा रख।

शुद्धात्मा ही ध्यान करने योग्य है,... एकान्त नहीं हो गया? 'ही' कहा तो। शुद्धात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। कथंचित् शुद्धात्मा और कथंचित् व्यवहार, ऐसा स्याद्वाद होगा न? यह बात ऐसे लोग लेते हैं। भाई! यह **शुद्धात्मा ही ध्यान करने योग्य है,...** दूसरा नहीं। ऐसा अनेकान्त है। शुद्धात्मा भी ध्यान करनेयोग्य है और राग भी ध्यान करनेयोग्य है, यह स्याद्वाद है—ऐसा नहीं है। आहाहा! अनेकान्त किया था न? कलशटीका में नहीं? सत्ता और आत्मा अभेद है और भेद है। सत्ता वह आत्मा, यह अभेद। और आत्मा की सत्तागुण भिन्न, यह अनेकान्त है। ऐसा कलशटीका में कहा है। कलशटीका में है न? सत्ता, वह द्रव्य है, वह अभेद है। और वह सत्ता द्रव्य से भिन्न है, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? कलश में है कहीं। अनेकान्त के कलश में है। एक जगह है।

यहाँ तो कहते हैं एकान्त प्रभु सम्यक्। शुद्धात्मा ही निश्चय से ध्यान करनेयोग्य है। कथंचित् यह और कथंचित् यह, ऐसा नहीं है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ३१

अथ तस्य शुद्धात्मनो ज्ञानमयादिलक्षणं विशेषेण कथयति -

३१) अमणु अणिंदिउ णाणमउ मुत्ति-विरहिउ चिमित्तु।
अप्पा इंदिय-विसउ णवि लक्खणु एहु णिरुत्तु।।३१।।

अमनाः अनिन्द्रियो ज्ञानमयः मूर्तिविरहितश्चिन्मात्रः।
आत्मा इन्द्रियविषयो नैव लक्षणमेतन्निरुक्तम्।।३१।।

परमात्मविपरीतमानसविकल्पजालरहितत्वादमनस्कः, अतीन्द्रियशुद्धात्मविपरीतेनेन्द्रिय-ग्रामेण रहितत्वादतीन्द्रियः, लोकालोकप्रकाशककेवलज्ञानेन निर्वृत्तत्वात् ज्ञानमयः, अमूर्तात्म-विपरीतलक्षणया स्पर्शरसगन्धवर्णवत्या मूर्त्या वर्जितत्वान्मूर्तिविरहितः, अन्यद्रव्यासाधारणया-शुद्धचेतनया निष्पन्नत्वाच्चिन्मात्रः। कोऽसौ। आत्मा। पुनश्च किंविशिष्टः। वीतराग स्वसंवेदनज्ञानेन ग्राह्योऽपीन्द्रियाणामविषयश्च लक्षणमिदं निरुक्तं निश्चितमिति। अत्रोक्तलक्षणपरमात्मोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।३१।।

आगे शुद्धात्मा के ज्ञानादिक लक्षणों से विशेषपने से कहते हैं -

मन रहित इन्द्रिय रहित ज्ञानमयी अमूर्तिक चेतना।
मय मात्र इन्द्रियगम्य ना इन युक्त आतम जानना।।३१।।

अन्वयार्थ :- [आत्मा] यह शुद्ध आत्मा [अमनाः] परमात्मा से विपरीत विकल्पजालमयी मन से रहित है [अनिन्द्रियः] शुद्धात्मा से भिन्न इन्द्रिय-समूह से रहित है [ज्ञानमयः] लोक और अलोक को प्रकाशनेवाले केवलज्ञानस्वरूप है, [मूर्तिविरहितः] अमूर्तीक आत्मा से विपरीत स्पर्श, रस, गंध, वर्णवाली मूर्तिरहित है, [चिन्मात्रः] अन्य द्रव्यों में नहीं पाई जावे ऐसी शुद्धचेतनास्वरूप ही है, और [इन्द्रियविषयः नैव] इन्द्रियों के गोचर नहीं है, वीतराग स्वसंवेदन से ही ग्रहण किया जाता है। [एतत् लक्षणं] ये लक्षण जिसके [निरुक्तम्] प्रगट कहे गये हैं उसको ही तू निःसंदेह आत्मा जान। इस जगह जिसके ये लक्षण कहे गये हैं वही आत्मा है, वही उपादेय है, आराधने योग्य है, यह तात्पर्य निकला।।३१।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण १३, शुक्रवार
दिनांक-२५-०६-१९७६, गाथा-३१ - ३२, प्रवचन-१८

३० गाथा हुई न? ३१।

आगे शुद्धात्मा के ज्ञानादिक लक्षणों से विशेषपने से कहते हैं :—

अमणु अणिंदिउ णाणमउ मुत्ति-विरहिउ चिमित्तु।
अप्पा इंदिय-विसउ णवि लक्खणु एहु णिरुत्तु।।३१।।

अन्वयार्थ :- यह शुद्ध आत्मा... 'अमनाः' परमात्मा से विपरीत विकल्पजालमयी मन से रहित है... शुभ-अशुभ विकल्प जो होते हैं, वह मन के सन्देह है। मनस्वरूप है। शुभ-अशुभभाव। ऐसा जो मन, उससे परमात्मा रहित है। आहाहा! विकल्प है न? शुभ-अशुभ जो राग होता है, वह (विकल्प है)। परमात्मा, ऐसा आत्मा का स्वरूप, उससे मन विपरीत है। उससे रहित आत्मा है। समझ में आया? परमात्मा आत्मा का जो स्वभाव त्रिकाल स्वरूप, उससे विपरीत मन सम्बन्धी विकल्प है। उस मन से परमात्मा रहित है। उस मन के विकल्प से भिन्न पड़कर अकेला ज्ञानस्वरूप है, उसका ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। **'अमनाः' परमात्मा से विपरीत विकल्पजालमयी...** उससे रहित। भाषा... आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प जाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : जान, विकल्प है उसे जाने। वह विकल्प जाल है। आहाहा! शुभ-अशुभ विकल्प का जाल है। ऐसा जो मन, वह परमात्मस्वरूप से विपरीत, उससे रहित भगवान है। ऐसा लिया।

अब वह विकल्प उत्पन्न हो, उसका वापस विवाद। कोई कहे कि भाई! स्व हेतु से विकल्प उत्पन्न होता है। पंचास्तिकाय की ६२ गाथा। वहाँ सिद्ध करना है कि इसके अस्तित्व की पर्याय में राग-द्वेष होते हैं। यह उसका अस्तित्व है। उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं। वहाँ ऐसा कहा। दूसरी जगह ऐसा कहा कि रागादि हों, (वह) स्व-पर हेतु है। उपादान और निमित्त दो होकर होते हैं, ऐसा कहा है। यहाँ अकेला उपादान से

हो, यहाँ निश्चय सिद्ध किया है और स्व-पर हेतु हो, वहाँ विभाव निमित्त के लक्ष्य से होता है, इसलिए स्व-पर हेतु कहा। तीसरी जगह ऐसा कहा। ऊपर आया था न? वह कर्म सम्बन्धी है, इसलिए विकार कर्मजनित। क्या अपेक्षा है? वह विभाव है। है तो अपनी पर्याय का स्वयंसिद्ध होना वहाँ। परन्तु निमित्त के लक्ष्य से होता है, इसलिए उसे स्व-पर हेतु कहा। और त्रिकाली स्वभाव में नहीं, इसलिए उसे अकेले कर्मजन्य कहकर छुड़ाना चाहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है। समझ में आया? और कहीं तो इस व्यवहार मोक्षमार्ग को साधन कहा है। निश्चय मोक्षमार्ग को साध्य कहा है। पंचास्तिकाय।

मुमुक्षु : निश्चय साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साधन है न? ऐसा। व्यवहार साधन अर्थात् उसे राग की मन्दता के शुभभाव की जाति होती है, उसे व्यवहार साधन का आरोप दिया है। व्यवहारनय से। पंचास्तिकाय में बहुत कथन है। व्यवहार साधन, निश्चय साध्य। वहाँ यह राग की मन्दता निमित्तरूप से है, उसे व्यवहार साधन का आरोप दिया है। यहाँ तो इनकार करते हैं कि उस साधन से भिन्न होकर (जान)। आहाहा!

जिसे आत्मा वस्तु कहते हैं, वह तो इस व्यवहार के विकल्प के साधन से रहित है। '**अमनाः**' कहा न? आहाहा! रहित है, उसे तू साधन कर। आत्मा विकल्प के भाव से रहित है। उसे साध्य बना। उसे साधकपने में साध्य कर। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें! विवाद... विवाद... विवाद...। एक शब्द हुआ। '**आत्मा अमनाः**' मन अर्थात्? विकल्प का जाल। और वह विकल्प का जाल परमात्मस्वरूप से रहित है ऐसा जो मन, उससे रहित होकर... आहाहा! चैतन्य स्वभाव को साध। आहाहा! उसे ध्यान में ले और उसका ध्यान कर। वह है यह। आहाहा!

'**अनिन्द्रियः**' यह आत्मा अणीन्द्रिय है। **शुद्धात्मा से भिन्न इन्द्रिय-...** देखा! व्याख्या ऐसी करते हैं न? इन्द्रियाँ कैसी है? **शुद्धात्मा से भिन्न इन्द्रिय-समूह से (प्रभु) रहित है...** आहाहा! है कैसा तब? रहित कहा। मन से रहित, इन्द्रिय से रहित। है

ज्ञानमय। वह तो स्व-परप्रकाशक स्वभाव का पिण्ड है। ज्ञानमय है। देखा! **लोक और अलोक के प्रकाशनेवाले केवलज्ञानस्वरूप है,...** केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञानस्वरूप, ऐसा। वह केवलज्ञान पर्याय नहीं। अकेला ज्ञानस्वरूप है।

'मूर्तिविरहितः' तीसरा बोल। **अमूर्तिक आत्मा से विपरीत स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्तिरहित है,...** यह अमूर्तिक आत्मा से रहित मूर्तपना, उससे रहित भगवान आत्मा है। आहाहा! क्या है? **'चिन्मात्रः' अन्य द्रव्यों में नहीं पायी जावे, ऐसी शुद्धचेतनास्वरूप ही है,...** शुद्ध चेतना। पहले ज्ञानमय कहा था न? वह शुद्ध चेतना, निर्मल चेतना, वह वस्तु है। **और... 'इन्द्रियविषयः नैव' इन्द्रियों के गोचर नहीं है,...** भगवान आत्मा यह पाँच इन्द्रियाँ, जड़, भावेन्द्रियाँ, उन्हें प्रभु गम्य नहीं है। आहाहा! वह अणीन्द्रिय है। **इन्द्रियों के गोचर नहीं है,...** आहाहा! तब गम्य किस प्रकार है?

वीतराग स्वसंवेदन से ही ग्रहण किया जाता है। आहाहा! देखो! पहले सम्यग्दर्शन में ही वीतराग स्वसंवेदन—रागरहित निर्विकल्प परिणति स्वसंवेदन—अपने आनन्द का वेदन, (उससे ग्रहण होता है)। आहाहा! इन्द्रिय है, उसकी ओर का झुकाव तो आकुलता है। उस आकुलता से रहित भगवान, **वीतराग स्वसंवेदन से ही ग्रहण किया जाता है।** प्रथम में प्रथम चौथे गुणस्थान में राग सहित ग्रहण होता है, आठवें में वीतराग सहित, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, बापू!

मुमुक्षु : एक ही वस्तु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु एक ही है। समझ में आया?

भगवान आत्मा चिन्मय, ज्ञानमय, शुद्ध चेतनास्वरूप है, वह वीतराग परिणति से ग्राह्य है। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी वह ग्राह्य नहीं। आहाहा! भगवान चिन्मय वस्तु, आनन्दमय वस्तु, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, वह अतीन्द्रिय वीतराग परिणति द्वारा ही प्राप्त होता है, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग स्वसंवेदन से ही ग्रहण किया जाता है। इसका अर्थ यह कि स्वयं वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! उसे अरागी, वीतरागी परिणति से वह अनुभव में आता है। वीतरागी परिणति से वह ग्रहण हो सकता है। आहाहा! ऐसा मार्ग! इन्द्रियातीत,

मनातीत। आहाहा! फिर इन्द्रिय का विषय नहीं। उसकी ओर ढलते हुए अरागी दशा को ग्राह्य है वह। समकित की परिणति, (वह) अरागी परिणति है। समझ में आया?

'एतत् लक्षणं' प्रगट कहे गये हैं... आहाहा! ऐसा लक्षण तो प्रगट कहा है। **'निरुक्तम्'** सर्वज्ञों ने—परमात्मा ने (ऐसा लक्षण कहा है)। आहाहा! इन्द्रिय के विषय की ओर जाने से तो राग होता है। इन्द्रिय के विषय से और इन्द्रिय से अगम्य। आहाहा! उसके झुकाव में वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान और वीतरागी स्वरूप के आचरणरूप स्थिरता, उस द्वारा ग्राह्य है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो वह निश्चयरत्नत्रय को ग्राह्य है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो द्रव्य के आश्रय से निश्चयरत्नत्रय प्रगट होता है। उस निश्चयरत्नत्रय के आश्रय से ज्ञात होता है। क्या कहा, समझ में आया?

वस्तु है भूतार्थ त्रिकाल, उसके आश्रय से निश्चयरत्नत्रय प्रगट होता है। स्व के आश्रय से। और ऐसे गुलांट खाकर कहें तो निश्चयरत्नत्रय से वह ज्ञात होता है। समझ में आया? ऐसी शैली ली है। वहाँ लिया कि भूतार्थ के आश्रय से भगवान परमात्मस्वरूप पूर्ण आनन्द का नाथ प्रभु, उसके आश्रय से वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान, स्वरूप की स्थिरता, वह त्रिकाल के आश्रय से होती है। यहाँ कहा कि निर्विकल्प वीतराग की परिणति से वह ग्राह्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : वीतराग परिणति द्वारा ग्राह्य है, यहाँ आश्रय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका आश्रय कहा।

जीव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होते हैं। ऐसा कहा न? (समयसार की) दूसरी गाथा में ऐसा कहा। **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो'** दूसरी गाथा। जीव स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिर होता है, वह स्वसमय है। ऐसा कहो या दर्शन-ज्ञान-चारित्र त्रिकाल के आश्रय से प्रगट होते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? कहो, देवजीभाई! ऐसी बातें हैं यह। आहाहा! ऐसा लक्षण कहा है। भगवान सन्तों ने मन और इन्द्रिय और मूर्तपनेरहित ऐसा जो आत्मस्वभाव, वह स्वयं वीतरागस्वरूप है। इसलिए वीतराग परिणति द्वारा वह ग्राह्य होता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? वह यह अन्दर एकाग्र होना वह।

मुमुक्षु : यह अर्थात् ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक की एक बात है। अन्तर एकाग्र हुआ तो वीतराग दशा आयी, वीतराग दशा द्वारा वह ग्राह्य हुआ। आहाहा! बापू! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! अनादि से चौरासी के अवतार में दुःखी है, दुःखी है। उस दुःख के भोग से इसे अलग करना है। तो प्रभु तो आनन्दमय है न? कहते हैं कि उसके आश्रय से वीतरागता प्रगट हो। पर के आश्रय से तो राग प्रगट होता है। वह कहीं साधन नहीं है। आहाहा! स्वयं भगवान ज्ञानस्वरूप का आश्रय लेकर जो निश्चय वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, उससे वह ग्राह्य हुआ। पण्डितजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! व्यवहार साधन कहा बहुत जगह, पंचास्तिकाय में। निश्चय का साधन सिद्ध किया। ऐसी गाथा आती है। भाई! यह सब व्यवहार आता है, इसलिए उसे बतलाया है और उसे आरोप से निश्चय का साधन कहा है। आहाहा! यहाँ तो इनकार किया। वह तो वस्तु स्वयं है, पूरी चीज़, उसका जहाँ स्वीकार होता है, तब ही वीतराग परिणति खड़ी होती है और उस वीतराग परिणति से वह स्वीकार होता है। इसका अर्थ यह। कान्तिभाई! ऐसा मार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : विकल्प जाल से, मन से, इन्द्रिय से रहित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रहित है। आहाहा!

वही आत्मा है। आहाहा! है न? **उसको ही तू निःसन्देह आत्मा जान। इस जगह जिसके ये लक्षण कहे गये हैं, वही आत्मा है,...** ज्ञानमय, चैतन्यमय उसका साधन वीतरागदशा द्वारा कर तो तुझे वह प्राप्त होगा। अथवा उस वस्तु का आश्रय कर तो वीतराग परिणति प्रगट होगी। आहाहा! ऐसा मार्ग, इसलिए व्यवहारवालों को ऐसा लगे न! पंचास्तिकाय में तो बहुत गाथायें आती हैं। यह निश्चय का साधन कहा व्यवहार। व्यवहार साधन, निश्चय साध्य है। व्यवहार तो राग है। निश्चय साधन स्वभाव का राग से भिन्न पड़कर किया है। वह इस साधन में राग की मन्दता अभी बाकी है, उसे साधन का आरोप दिया है। है तो बाधक।

समयसार नाटक में आता है। जो-जो साधक है, वह-वह वहाँ बाधक है। राग-

द्वेष की बात क्या करना ? कहते हैं। ऐसा आता है। समयसार नाटक में। आहाहा! नय, निक्षेप और प्रमाण से जीव को साधना, वह सब विकल्प है। वह साधक जहाँ कहा, वही बाधक है। आहाहा! व्यवहार साधक कहा है। निश्चय साधक के साथ सहचर देखकर उपचार से साधक कहा है। ऐसी बात है। आनन्द के नाथ का जिसे अनुभव करना हो... ऐसा कहते हैं। जिसे आनन्द का भोग करना हो (उसके लिये बात है)। अरे! अनादि से पुण्य-पाप के राग का भोग करता है, वह दुःख का अनुभव है। विषय में उसे मजा दिखता है, वह सब दुःख है, बापू! आहाहा! शरीर, माँस और हड्डियाँ-चमड़ी, उसकी चमक-दमक देखकर अन्दर में इसे प्रसन्नता होती है, यह दुःख है। चमक-दमक समझते हो ? शरीर रूपवान ऐसा दिखाई दे। आहाहा!

यह वस्त्र अच्छे पहने, गहने सोने के लटकते एक ऐसे हो और ऐसे हो। मारवाड में तो यहाँ पहने न सोने के। आहाहा! मुर्दे को श्रृंगार करते हैं।

मुमुक्षु : मुर्दा किसका ? परन्तु जीवता मुर्दा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवता नहीं। यह मुर्दा ही है, अभी। (समयसार) ९६ गाथा में कहा न ? मृतक कलेवर में अमृत का सागर मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! ९६ (गाथा) समयसार ९६ गाथा में है। **मृतक कलेवर (—शरीर) द्वारा...** यह शरीर अभी मुर्दा है।

मुमुक्षु : जीवित शरीर....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी बात है।

मृतक कलेवर (—शरीर) द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन... यह अमृत कलेवर और अमृत विज्ञानघन—भगवान। **परम अमृतरूप विज्ञानघन...** मृतक कलेवर में चमक देखकर मूर्च्छित हो गया है। यह श्मशान की हड्डियों की चमक है। क्या कहलाती है वह ? फोसफरस (चमक)। आहाहा! **मृतक कलेवर द्वारा...** संस्कृत है, हों! आहाहा! देखो! संस्कृत '**मृतककलेवरमूर्च्छित-परमामृतविज्ञानघनतया**' आहाहा! भगवान अमृत का सागर प्रभु, अतीन्द्रिय अमृत के स्वभाव से भरपूर, वह इस मृतक कलेवर में मूर्च्छित हो गया है। यह मेरा और यह मुझे ठीक। यह बाद में गाथा में कहेंगे। शरीर-तन से

वैराग्य पा, भाई! तन, भोग और... बाद की गाथा में आयेगा। है न ३४? ३२। **'भव-तणु-भोय-विरत्त'** यह बाद में आयेगा। आहाहा!

मृतक कलेवर में अमृत का सागर परमात्मा मूर्च्छित हो गया है। उसमें अर्पित हो गया है। अमृत सागर मृतक कलेवर में अर्पित हो गया है। आहाहा! समझ में आया? वह मूर्च्छितपना छोड़, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा में अन्तर ममत्व कर। ममत्व अर्थात् 'यह मैं हूँ' ऐसा कर। यह नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! शरीर की जवानी हो, इन्द्रियाँ पुष्ट हों, बड़े मकान हों, पाँच-दस लाख की... क्या कहलाता है? फर्नीचर... फर्नीचर। आहाहा!

हम अभी गये थे न मुम्बई। नहीं? मणिभाई नहीं? मणिलाल नहीं? मणिलाल के यहाँ आहार करने गये थे। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं और पाँच-साढ़े पाँच लाख रुपये का तो फर्नीचर। हमने चरण किये तो नीचे क्या कहलाता है वह? गलीचा। गलीचा बिछाया हुआ। अरेरे! इसमें से निकलना मुश्किल पड़ेगा, कहा। मखमल-मखमल। मखमल के ऐसे बिछाये हुए। गृहस्थ व्यक्ति है। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। यह शान्ताबेन हैं न, उनकी बहिन है। उनके वे... रसिकभाई के बहिनोई है। बहिन के वे ननदोई हैं। पैसा बहुत और 'ऐडन' में कुछ दुकान है। अरे रे! कहा। यह सब फर्नीचर, गलीचा और घर... क्या कहलाता है तुम्हारे यह बैठने का? कुर्सियाँ। कुर्सियाँ और अलमारी में अलग प्रकार के खिलौने और... आहाहा! प्रभु! तू कहाँ है? भाई! ऐसी क्रीड़ा में रम गया, प्रभु! मूर्च्छित हो गया है, कहते हैं। तीन लोक का नाथ आनन्द का कन्द प्रभु है न! आहाहा! भाई! तुझे तेरे समीप जाना सुहाता नहीं? और तेरा नहीं, वहाँ समीप में जाकर सुखी हुआ, ऐसा माना है, भाई! वह सुख नहीं है। वह तो अंगारा है। आहाहा! कषाय के अंगारों से सिंकता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह जो लक्षण कहे—ज्ञान द्वारा, अतीन्द्रिय द्वारा ज्ञात हो। आहाहा! **वही आत्मा है, वही उपादेय है,...** धर्मी को तो यह एक उपादेय है। पर्याय भी उपादेय नहीं तो फिर राग और बाहर की चीज़ का क्या कहना? समझ में आया? **वही उपादेय है, आराधने योग्य है,...** आहाहा! वीतरागमूर्ति आनन्दस्वरूप भगवान, वह आराधनेयोग्य,

सेवनयोग्य वह है और वही आदरणीय है। इसके अतिरिक्त आदरणीय है नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु, वह आदरणीय है। आहाहा!

मुमुक्षु : आदरणीय अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रहण करनेयोग्य—उपादेय।

मुमुक्षु : ग्रहण अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें एकाकार होनेयोग्य। आहाहा! यह बाहर की बातों में बेचारे। यह देखो न, बाहर की यात्रा-बात्रा करने निकले हों न बेचारे। वे ऐसा माने कि... आहाहा! अपने तो...

मुमुक्षु : दो-चार यात्रा करे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी कोई यात्रा? लाख बार यात्रा की।

मुमुक्षु : यह शत्रुंजय....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाहर का शत्रुंजय तो अनन्त बार किया। आहाहा! यह तो अन्दर है। तीर्थ तो अन्दर है, भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वहाँ आरूढ़ हो न! तो तुझे यात्रा होगी। जन्म-मरण का अन्त वहाँ आयेगा। यह तो सब पुण्यभाव। पुण्य संसार में प्रवेश कराता है। आहाहा! बाहर की यात्रा सम्मेदशिखर की। वहाँ और ऐसा कहा कि 'एक बार वंदे जो कोई...' ताहिं नरक-पशु (न हो), उसमें क्या भला हुआ? ऐसा कोई भाव हो तो वर्तमान में नरक-पशु में न जाये, बाद में जायेगा। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है, हों! बेचारों को। आहाहा! उन्हें यह आग्रह होता है बाहर का। बाहर की मिठास पड़ी है। आहाहा! यह ३१ (गाथा) हुई।

यह तात्पर्य निकला। है न अन्तिम? यह तात्पर्य निकाला इसमें से, कहते हैं। भगवान आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द का दल—कन्द चैतन्यमूर्ति प्रभु, वह श्रद्धा में आदरणीय है। ज्ञान की पर्याय में वह उपादेय है। आहाहा! पहली बात ही ऐसी कठिन पड़े। अभ्यास नहीं। जाति के घर में... उसमें कहा है न? उसमें नहीं? धवल में 'दिठमगेण'—ऐसा शब्द आता है। जिसने अन्दर में रागरहित जाने की दशा देखी है।

गिरिगुफा, लिखा है न? ४९। ४९ गाथा में, जयसेनाचार्य में। आहाहा!

'**निर्विकल्पनिर्मोहनिरंजननिजशुद्धात्मसमाधिसंजातसुखामृतरसानुभूतिलक्षणे गिरिगुहागह्वरे**' इस गिरि में जा। बाहर में पर्वत में जाकर क्या (करना है)? आहाहा! '**भिन्न जनसमस्तमनोवचनकायव्यापारेषु दुर्लभः स एवापूर्वः सचैवोपादेय इति मत्वा निर्विकल्पनिर्मोहनिरंजननिजशुद्धात्म**' अपना आत्मा, हों! वापस भगवान का आत्मा, ऐसा नहीं।'**समाधिसंजातसुखामृतरसानुभूतिलक्षणे**' आहाहा! आनन्द की अनुभूतिरूपी '**गिरिगुहागह्वरे**' ऐसी गिरि और गुफा में जाकर उसका ध्यान कर। '**सर्वतात्पर्येण ध्यातव्य इति**' उसका ध्यान कर। आहाहा! ४९ आ गयी है। अपने तो दूसरी चलती है न?

गाथा - ३२

अथ संसारशरीरभोगनिर्विण्णो भूत्वा यः शुद्धात्मानं ध्यायति तस्य संसारवल्ली नश्यतीति कथयति -

३२) भव-तणु-भोय-विरत्त-मणु जो अप्पा झाएइ।
तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टइ।।३२।।

भवतनुभोगविरक्तमना य आत्मानं ध्यायति।
तस्य गुर्वी वल्ली सांसारिकी त्रुटयति।।३२।।

भवतनुभोगेषु रञ्जितं मूर्छितं वासितमासक्तं चित्तं स्वसंवित्तिसमुत्पन्नवीतरागपरमानन्द-सुखरसास्वादेन व्यावृत्त्य स्वशुद्धात्मसुखे रतत्वात्संसारशरीरभोगविरक्तमनाः सन् यः शुद्धात्मानं ध्यायति तस्य गुरुक्की महती संसारवल्ली त्रुटयति नश्यति शतचूर्णा भवतीति। अत्र येन परमात्मध्यानेन संसारवल्ली विनश्यति स एव परमात्मोपादेयो भावनीयश्चेति तात्पर्यार्थः।।३२।। इति चतुर्विंशति-सूत्रमध्ये प्रक्षेपकपञ्चकं गतम्।

आगे जो कोई संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होके शुद्धात्मा का ध्यान करता है - उसी के संसाररूपी बेल नाश को प्राप्त हो जाती है, इसे कहते हैं -

भव भोग तन से विरत मन युत आतमा के ध्यान को।
जो करे उसकी महा भव-बेली नियम से नष्ट हो।।३२।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो जीव [भवतनुभोगविरक्तमनाः] संसार, शरीर और भोगों में विरक्त मन हुआ [आत्मानं] शुद्धात्मा का [ध्यायति] चिंतवन करता है, [तस्य] उसकी [गुर्वी] मोटी [सांसारिकी वल्ली] संसाररूपी बेल [त्रुटयति] नाश को प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ :- संसार, शरीर, भोगों में अत्यंत आसक्त (लगा हुआ) चित्त है, उसको आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए वीतराग परमानंद सुखामृत के आस्वाद से राग-द्वेष से हटाकर अपने शुद्धात्म-सुख में अनुरागी कर शरीरादिक में वैरागरूप हुआ जो शुद्धात्मा को विचारता है, उसका संसार छूट जाता है, इसलिये जिस परमात्मा के ध्यान से संसाररूपी बेल दूर हो जाती है, वही ध्यान करने योग्य (उपादेय) है।।३२।।

गाथा - ३२ पर प्रवचन

३२। **आगे जो कोई संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होके शुद्धात्मा का ध्यान करता है, उसी के संसाररूपी बेल नाश को प्राप्त हो जाती है,...** संसाररूपी बेलड़ी। आहाहा! चौरासी का बड़ा भ्रम जाल, उसकी बेल टूटती है कि जो संसार, उदयभाव, शरीर और भोग से विरक्त (होता) है। आहाहा! स्वभाव में से संसरण कर उदयभाव में निकला है और वह संसार है। वह **संसार, शरीर, भोग...** विषयों के। आहाहा! उससे **विरक्त होके...** रक्त है, उससे विरक्त होकर। आहाहा! उदय, शरीर, भोग में अनादि का रक्त है। उसमें से विरक्त होकर। यह विरक्ति। समझ में आया? बाहर के स्त्री-पुत्र छोड़े और विरक्त हो गये, ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! 'विरला जाने तत्त्व को विरला जाने कोई...' यह सब आता है न? श्रद्धे कोई। आहाहा! 'ध्यावे तत्त्व को...' आहाहा! ऐसी चीज़ है, बापू!

३२) भव-तणु-भोय-विरत्त-मणु जो अप्पा झाएइ।
तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टइ।।३२।।

आहाहा! '**गुरुक्की**' अर्थात् बड़ी।

अन्वयार्थ :- जो जीव संसार, शरीर और भोगों में विरक्त मन हुआ... आहाहा! उदयभाव का कर्तापना और भोक्तापना तथा शरीर के लक्ष्य को छोड़कर। आहाहा! **शुद्धात्मा का चिन्तवन करता है,...** चिन्तवन का अर्थ ध्यान। चिन्तवन अर्थात् विकल्प नहीं। **संसार, शरीर और भोगों में विरक्त मन हुआ शुद्धात्मा का चिन्तवन करता है, उसकी... 'गुर्वी' मोटी संसाररूपी बेल...** आहाहा! अनन्त भव जाल की बेलड़ी, अनन्त भव **नाश को प्राप्त हो जाती है।** अनन्त भव की बेलड़ी नाश हो जाती है। आहाहा! मिथ्यात्व, वही संसार है और उसमें अनन्त भव करने की सामर्थ्य है। आहाहा!

संसार, शरीर, भोगों में अत्यन्त आसक्त (लगा हुआ) चित्त है,... देखा! रक्त है न, उसे विरक्त होना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा? उदयभाव, शरीर और भोग **अत्यन्त आसक्त (लगा हुआ) चित्त है,...** अनादि से चित्त वहाँ लगा है। आहाहा!

उसको आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए... उस चित्त को **उसको आत्मज्ञान से... आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए वीतराग परमानन्द सुखामृत के आस्वाद से...** आहाहा! गजब, भाई! उदयभाव, शरीर और भोग, उसमें जो चित्त रक्त है, उसे परमानन्द के नाथ का आश्रय लेकर... आहाहा! जिसे आत्मज्ञान हुआ। देखा? आत्मा का ज्ञान हुआ है। वस्तु भगवान आत्मा, उसका ज्ञान होने से वीतराग परमानन्द सुखामृत। आहाहा! वीतरागी परम आनन्द के सुख का अमृत, उसके **आस्वाद से राग-द्वेष से हटाकर...** आहाहा! ऐसे आनन्द के स्वाद से, राग-द्वेष से चित्त को हटाकर। आहाहा! ऐसी बातें सब। वह तो ऐसा सीधा सट्ट था। सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना।

सामायिक किसे कहना? बापू! आहाहा! आत्मा वस्तु है, उसका ज्ञान होकर उस स्वरूप में स्थिर हो, उसे सामायिक कहा है। अभी आत्मा कौन, कहाँ है, उसकी खबर नहीं होती और सामायिक कहाँ से आयी? समझ में आया? सामायिक और प्रौषध। जामनगर में बहुत करते हैं। आठम और पंचमी के दिन। बापू! वह प्रौषध नहीं। (संवत्) १९८२ में जब गये न पहले? इसलिए यह बात की। अन्दर व्याख्यान में आयी। वीरजीभाई के पिता थे। वीरजी वकील है न, उनके पिता थे। यह शास्त्र चलता सूत्र कहलाता। साधु-आर्यिका को पढ़ावे। इसलिए यह बात आयी। (संवत्) १९८२ पहले गये जामनगर तब। कहा, भाई! देखो! मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता का सब भाव, यह पुण्यबन्ध का कारण है; धर्म नहीं। यह क्रियायें सब पुण्यबन्ध का कारण, धर्म नहीं। अब उन लोगों ने उस प्रकार से धर्म माना हुआ। इसलिए बेचारे व्यक्ति नरम। कोई नहीं थे, तब शाम को अकेले आये। वृद्ध थे। वीरजीभाई के पिताजी ताराचन्दभाई। महाराज! यह सब धर्म नहीं तो कठिन पड़ता है लोगों को। यह कर्म करते हैं न! भाई! तुम तुम्हारा देखो, कहा। क्या कहा? ज्ञान... ज्ञानसागर, वहाँ का पूनातर का किया हुआ है न? पूनातर, यह देखो! कहा ज्ञानसागर न। मन का शुभभाव, वचन का शुभभाव, काया का शुभभाव, उससे तो नामकर्म—पुण्य बँधता है, ऐसा कहा है, देखो! १९८२ के वर्ष की बात है। बाहर की क्रियायें सामायिक और प्रौषध और प्रतिक्रमण (करे), वह धर्म। आहाहा! भाई! ऐसा नहीं, कहा।

मन में राग की मन्दता का भाव, वह पुण्यबन्ध का कारण है। उससे नामकर्म

बँधे ऐसा पाठ है। '...' चार प्रकार से शुभ नामकर्म बँधता है। काया की, मन की वक्रता से अशुभ नामकर्म बँधता है। उसमें मन-वचन में शुभभाव आया, वह धर्म कहाँ है? नामकर्म है। वह तत्त्वार्थराजवार्तिक में (कहा है)। पुण्य नामकर्म चार प्रकार से बँधता है। काया, मन, वचन और ... झगड़ा नहीं। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है, कहा। ऐसी क्रिया धर्म नहीं है। उसे धर्म मानता है। परन्तु कठिन पड़ता है वहाँ सबको। सीखा हुआ बहुत नहीं न! मार्ग तो ऐसा है, भाई! इस क्रियाकाण्ड में राग की मन्दता वर्तती हो, वह देहादि की क्रिया, उसे अनुसरकर होते परिणाम, वह शुभ उपयोग बन्ध का कारण है। उसमें आता है—कलश में। दो बात। देह, वाणी, मन की क्रिया और उसे अनुसरता शुभभाव दोनों बन्ध का कारण है। समझ में आया?

वीतराग परमानन्द। आहाहा! वस्तु जो आत्मा ज्ञान और आनन्दमय वस्तु, उसका आश्रय लेने से वीतरागी परमानन्द सुखामृतदशा प्रगट होती है। आहाहा! **वीतराग परमानन्द...** भाषा कितनी! वीतरागी आनन्द और वह भी सुखरूप अमृत। आहाहा! उसके आस्वाद से वे राग-द्वेष छूट जाते हैं। राग-द्वेष चित्त को इसके आस्वाद से, चित्त को राग-द्वेष से विमुख करके। ऐसा लेना। है न पहला?

संसार, शरीर, भोगों में अत्यन्त आसक्त... आहाहा! संसार, शरीर और भोग **अत्यन्त आसक्त (लगा हुआ) चित्त है, उसको आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए...** आहाहा! **वीतराग परमानन्द सुखामृत के आस्वाद से राग-द्वेष से हटाकर...** आहाहा! राग-द्वेष कैसे टले? तब कोई कहे कि भाई! इसका उपाय नहीं शास्त्र में। एक व्यक्ति ने ऐसा कहा। ऐसी बात आयी थी। यहाँ कहा। वह आया था, नहीं? इस ओर से। आया था। इस ओर से आया था। कैसे राग-द्वेष टले, यह शास्त्र में अधिकार नहीं है। आहाहा! अरे! भाई! चित्त में राग-द्वेष है, उसे आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए सुखामृत के स्वाद से छोड़। समझ में आया? उसकी श्रद्धा तो करे, उसके ज्ञान में कि मार्ग तो यह है; दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आहाहा!

अपने शुद्धात्म-सुख में अनुरागी... आहाहा! भगवान आत्मा के सुख का अनुरागी। **अनुरागी कर शरीरादिक में वैराग्यरूप हुआ...** आहाहा! शुद्धात्मसुख में अनुरागी, शरीरादि सुख में वैराग्य। आहाहा! भगवान आत्मा के आनन्दस्वरूप का प्रेमी-अनुरागी

और पर से वैरागी। अस्ति-नास्ति किया। आहाहा! **वैराग्यरूप हुआ जो शुद्धात्मा को विचारता है,...** आहाहा! पर से हटकर स्व के स्वभाव के आनन्द के स्वाद को लेता हुआ वह राग-द्वेष को छोड़ता है। वहाँ राग-द्वेष होते नहीं, उसे छोड़ता है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा उपदेश अब लोगों को (कठिन लगता है)।

पूजा करो, भक्ति करो, बड़ी रथयात्रा निकालो। यहाँ कितने लोग आये थे! २६ हजार। दरबार देखने के लिये खड़े रहे थे, बेचारे जमींदार। शोभायात्रा निकली थी न! २६ हजार। उस चौक में इकट्ठे हुए थे। ओहोहो! ऐसे लोग कहाँ से! यह सब बाहर का है। आहाहा! दुनिया ने बाहर का देखा है न, अभ्यन्तर चीज़ को देखा नहीं और उसका माहात्म्य आया नहीं; इसलिए बाहर का माहात्म्य हटता नहीं। ऐसे चार-चार हाथी। चार हाथी? कितने थे? पाँच हाथी, २६ हजार लोग, केशुभा और नानभा। नानभा बेचारे गुजर गये। दोनों यहाँ। मैं साथ में नहीं था। दुकान है, वहाँ मैं देखने खड़ा रहा। वे दो भाई राजकोट से आये। ओहोहो! लोग... लोग। सोनगढ़ में ऐसा कभी हुआ न हो। भाई! यह तो बाहर की प्रवृत्ति है। इसमें कदाचित् शुभभाव हो तो वह पुण्यबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : इससे धर्म हो, ऐसा माने तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब मिथ्यात्व है। ऐसी बातें हैं। बाहर के भपका का माहात्म्य इसे उड़ जाना चाहिए।

मुमुक्षु : निमित्त तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त उसमें क्या करे... करता है, कहते हैं उसे। कौन करे? बापू! होने के काल में होता है। मकान (मन्दिर) होने के काल में हुआ है, भाई! और यह उपदेशक भी ऐसा कि बाहर जाकर, अन्यत्र निमित्त द्वारा उपादान से नहीं होता, यह बात सिद्ध करते हैं। निमित्त का तो सहारा लेते हैं। भगवान! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु..! आहाहा!

निमित्त से होता है, यह तो व्यवहार का कथन है। वास्तव में तो उपादान उस-उस द्रव्य की, उस-उस समय की पर्याय उस-उस समय में उत्पन्न होनेवाली, उसका काल ही था। इसलिए निश्चय से तो स्वहेतु; परहेतु नहीं। परन्तु जब इसे विभाव सिद्ध

करना है, तब इसे कहना है कि भाई! यह विभाव पर के लक्ष्य से होता है, इसलिए यह विभाव स्व-पर हेतु है, ऐसा कहा। पंचास्तिकाय में। स्व-पर हेतु कहा न पंचास्तिकाय में।

मुमुक्षु : यह तो सोनगढ़ की क्रमबद्धपर्याय सिद्ध हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध ही है। सोनगढ़ की है? आहाहा! अरे! भगवान!

मुमुक्षु : सोनगढ़ की या द्रव्य की?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य की ऐसी वस्तु है। जो क्रमसर एक के बाद एक बाद में जो होनेवाली हो वह होती है। उस-उस समय का काल, वह-वह पर्याय वहाँ होती है। यह उसका अस्तित्व सिद्ध करने को उसे द्रव्य-गुण और पर्याय, उसे निमित्त के कारक की अपेक्षा नहीं। अपना अस्तित्व सिद्ध करना, उसमें पर के कारण का क्या काम है? ऐसा कहते हैं। पंचास्तिकाय (में) सिद्ध किया है न! ६२ गाथा।

मुमुक्षु : परन्तु ४५ वर्ष पहले तो हमने सुनी नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सुनी थी? अभी सुन, उसमें क्या? समझे तब से सवेरा, नहीं कहते? आहाहा!

आत्मानुशासन में ऐसा भी कहा है कि यदि निमित्त से होता न हो तो वह विभाव, स्वभाव हो जायेगा। यह तो विकार सिद्ध करने को (बात है)। परन्तु यहाँ तो विकार भी उस समय का वह स्वतन्त्र है। उसके अस्तित्व में पर की अपेक्षा नहीं है। वह है, उसे पर की अपेक्षा क्या? ऐसा कहते हैं। अस्तिकाय सिद्ध करना है न? आहाहा! और यहाँ तो उसे कहते हैं कि भाई! उस राग की ओर का झुकाव है न, उसे निमित्त की ओर का। इसलिए राग होता है। है तो अपने से हुआ। परन्तु निमित्त के लक्ष्य से हुआ, इसलिए विभाव को सिद्ध करने के लिये स्व-पर हेतु कहा। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। जो भगवान आत्मा उदयभाव, शरीर और भोग से विरक्त होकर आनन्द के नाथ में लीन होकर जो ऐसे राग को छोड़ता है... आहाहा! उसका संसार छूट जाता है। **जिस परमात्मा के ध्यान से संसाररूपी बेल दूर हो जाती है, वही ध्यान करने योग्य (उपादेय) है।** यह इसका सार है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ३३

तदनन्तरं देहदेवगृहे योऽसौ वसति स एव शुद्धनिश्चयेन परमात्मा तन्निरूपयति -

३३) देहादेवलि जो वसइ देउ अणाइ-अणंतु।
केवल-णाण-फुरंत-तणु सो परमप्पु णिभंतु।।३३।।

देहदेवालये यः वसति देवः अनाद्यनन्तः।
केवलज्ञानस्फुरत्तनुः स परमात्मा निर्भ्रान्तः।।३३।।

व्यवहारेण देहदेवकुले वसन्नपि निश्चयेन देहाद्भिन्नत्वाद्देहवन्मूर्तः सर्वाशुचिमयो न भवति। यद्यपि देहो नाराध्यस्तथापि स्वयं परमात्माराध्यो देवः पूज्यः, यद्यपि देह आद्यन्तस्तथापि स्वयं शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनानाद्यनन्तः, यद्यपि देहो जडस्तथापि स्वयं लोकालोकप्रकाशकत्वात्केवलज्ञानस्फुरिततनुः, केवलज्ञानप्रकाशरूपशरीर इत्यर्थः। स पूर्वोक्तलक्षणयुक्तः परमात्मा भवतीति। कथंभूतः। निर्भ्रान्तः निस्सन्देह इति। अत्र योऽसौ देहे वसन्नपि सर्वाशुच्यादिदेहधर्मं न स्पृशति स एव शुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः।।३३।।

आगे जो देहरूपी देवालय में रहता है, वही शुद्धनिश्चयनय से परमात्मा है, यह कहते हैं -

जो देहदेवल में रहे है देव त्रैकालिक सदा।
आकार केवल ज़ानमय निर्भ्रान्त वह परमात्मा।।३३।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो व्यवहारनयकर [देहदेवालये] देहरूपी देवालय में [वसति] बसता है, निश्चयनयकर देह से भिन्न है, देह की तरह मूर्तीक तथा अशुचिमय नहीं है, महा पवित्र है, [देवः] आराधने योग्य है, पूज्य है, देह आराधने योग्य नहीं है, [अनाद्यनन्तः] जो परमात्मा आप शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर अनादि अनंत है, तथा यह देह आदि अंतकर सहित है, [केवलज्ञानस्फुरत्तनुः] जो आत्मा निश्चयनयकर लोक-अलोक को प्रकाशनेवाले केवलज्ञानस्वरूप है, अर्थात् केवलज्ञान ही प्रकाशरूप शरीर है, और देह जड़ है, [सः परमात्मा] वही परमात्मा [निर्भ्रान्तः] निःसंदेह है, इसमें कुछ संशय नहीं समझना।।३३।।

भावार्थ :- जो देह में रहता है, तो भी देह से जुदा है, सर्वाशुचिमयी देह को वह देव छूता नहीं है, वही आत्मदेव उपादेय है।।३३।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण १४, रविवार
दिनांक-२७-०६-१९७६, गाथा-३३, प्रवचन-१९

यह देह जड़ है, मिट्टी है। उसमें—देहरूपी देवालय में रहता है। **वही शुद्धनिश्चयनय से परमात्मा है,...** वह स्वयं परमात्मा है। देह के देवालय में भिन्न ज्ञानस्वरूपी परमात्मा, वह देह से भिन्न स्वयं ही परमात्मा है। आहाहा! ऐसी बात!

मुमुक्षु : कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या?

मुमुक्षु : कौन परमात्मा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा अन्दर है वह। देह देवालय में, जैसे सिद्धालय में परमात्मा विराजते हैं, उसी प्रकार देह देवालय में प्रभु आत्मा, परमात्मस्वरूप, शुद्ध आनन्दघन, चैतन्य वह देह से भिन्न विराजता है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : देह में रहे और देह से भिन्न?

पूज्य गुरुदेवश्री : देह में रहता ही नहीं। देह में रहे वह अशुद्ध... कहेंगे अभी। वह तो अशुद्धनय से, असद्भूतनय से ऐसा कहने में आता है। आगे ३४ गाथा में कहेंगे। यह तो हड्डियाँ जड़ अजीव है। देह तो भूतावल, जड़ का स्वरूप है। भगवान उससे भिन्न, जो जन्म-मरण रहित है, जिसमें पुण्य और पाप के भाव भी नहीं। उसमें नहीं। आहाहा! ऐसा केवलज्ञान—अकेला ज्ञानस्वरूप पूर्ण शुद्ध आनन्दघन, उसे यहाँ आत्मा अथवा परमात्मा कहने में आयेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : सब परमात्मा ही हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा ही है प्रत्येक। 'सर्व जीव है सिद्धसम'। वस्तु तो (ऐसी ही है)। उसकी इसे खबर नहीं। यह देह का कुछ करूँ, पर का करूँ, देश का करूँ, परिवार का करूँ, यह सब अज्ञान, अभिमान है। इस कारण इसे देह देवालय में इसे प्रभु भासित नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

जो व्यवहारनयकर देहरूपी देवालय में बसता है,... व्यवहार से कहा जाता है।

जड़ परमाणु यह मिट्टी है, यह अजीवतत्त्व है। आहाहा! उसमें व्यवहार से कहा जाता है। एकक्षेत्रावगाह में भिन्न है और इतना निमित्त सम्बन्ध है, इसलिए व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि देह में है। आहाहा!

मुमुक्षु : देह में है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। देह में नहीं। देह से भिन्न है, उसमें है। ऐसी बातें।

निश्चयनयकर देह से भिन्न है,... वास्तविक तत्त्व देखो तो देह के, जड़ के रजकणों से प्रभु चैतन्यस्वरूप से भिन्न है। आहाहा! **देह की तरह मूर्तिक तथा अशुचिमय नहीं है,...** देह तो मूर्त है। रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाली यह चीज़ है और अशुचि है। देह तो अपवित्रता का पिण्ड है। वेदना की मूर्ति है। अन्दर भगवान आत्मा... आहाहा! है? आहाहा! **देह की तरह मूर्तिक तथा अशुचिमय नहीं है,...** आहाहा! भगवान देह की भाँति (मूर्तिक नहीं है)। यह (देह) तो जड़ है। आहाहा! हड्डियाँ, माँस, खून, पेशाब, दस्त, वीर्य की थैली है यह तो। जड़ है, अपवित्र है। भगवान अन्दर इससे भिन्न चैतन्य और पवित्र है। यह (शरीर) अपवित्र और जड़। भगवान (आत्मा) पवित्र और चेतन है। आहाहा! इसकी दृष्टि अनन्त काल में कभी की नहीं।

इसकी अपनी पात्रता नहीं। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान अनन्त बार किये। यह तो राग की क्रिया है। यह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा! जैसे शरीर आत्मा नहीं, वैसे यह राग की क्रिया, वह आत्मा नहीं।

मुमुक्षु : क्रिया में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रिया से पहुँचे ऐसा नहीं। आत्मा को पहुँचे, तब पहुँचा कहलाये। आहाहा!

चैतन्यमूर्ति अरूपी और पवित्रता का पिण्ड, उसे अन्तर में देह और राग, उसका राग छोड़कर चैतन्य पवित्र और आनन्द ऐसे आत्मा का प्रेम करना। निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प शान्ति द्वारा उसे देखना, इसका नाम धर्म है। अरे रे! समझ में आया? देखो न!

देह की तरह मूर्तिक तथा अशुचिमय नहीं है, महा पवित्र है,... आहाहा! अतीन्द्रिय

आनन्द का धाम है। अनाकुल शान्ति, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द प्रभु तो है। आहाहा! कैसे जँचे ? कभी खबर नहीं होती। बाहर में भटका भटक की है इसने। आहाहा! मानो यात्रा की, वहाँ से मिले। भगवान की पूजा करते-करते वहाँ से मिले। वह तो सब राग की क्रिया है। आहाहा! भगवान स्वयं अन्दर विराजता है। भग अर्थात् अनन्त ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी, वान अर्थात् वाला है यह। ऐसे पवित्र भगवान को देह से भिन्न देख। **आराधने योग्य है,...** देखो! यह देव है। आहाहा!

मुमुक्षु : मनुष्य में से देव कहो यह तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य है ही कहाँ ? देव हुआ, वह देव स्वर्ग का, वह कहाँ है ? यह तो दिव्य शक्ति का धनी देव है। आहाहा! दिव्य-देव स्वयं भगवान, दिव्य आनन्द और ज्ञान आदि शक्ति का भण्डार वह यह देव है। समझ में आया ?

आराधने योग्य है, पूज्य है,... आहाहा! यह वस्तु स्वयं आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप, वह पर्याय में पूज्य है। वर्तमान दशा से वह पूजनेयोग्य है। भगवान तीर्थंकर और सर्वज्ञों को पूजना, वह तो व्यवहार है। पुण्य का भाव है, वह धर्म नहीं। आहाहा! यह पूज्य है। परम स्वरूप परमात्मा ज्ञान और आनन्द और शान्ति तथा प्रभुता और स्वच्छता के स्वभाव का सागर वह स्वयं पूज्य है। समझ में आया ?

देह आराधने योग्य नहीं है,... शरीर की सेवा करनेयोग्य नहीं। शरीर से कोई काम लिया जाये, (यह) आत्मा नहीं ले सकता। वह (शरीर) तो मिट्टी है। आहाहा! उसका हिलना—चलना, वह सब क्रिया तो जड़ की है। आहाहा!

मुमुक्षु : खाना-पीना...

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ है, वह सब जड़ की क्रिया है। खाना, पीना, जंगल जाना, वह सब जड़ की क्रिया है।

मुमुक्षु : किसी के साथ कलह करे वह ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कलह करे तो राग है, क्लेश-क्रोध है। कलह वाणी से करे, वह कर नहीं सकता। वाणी तो जड़ है। वाणी का होना, वह आत्मा से हुआ नहीं है।

आत्मा में वाणी नहीं। वाणी में आत्मा नहीं। जैसे देह में आत्मा नहीं, आत्मा में देह नहीं। उसी प्रकार वाणी में आत्मा नहीं, आत्मा में वाणी नहीं। यह तो देह से बात की है। आहाहा! अरे! इसकी खबर नहीं होती। जो सेवनयोग्य है, पूज्य है, आराधनेयोग्य है, वह तो स्वयं भगवान स्वयं है। आहाहा!

अनादि-अनन्त है,... आहाहा! स्वयं परमात्मा स्वरूप पूर्ण **आप शुद्ध द्रव्यार्थिकनय...** त्रिकाली द्रव्य को जाननेवाली दृष्टि से वह तो अनादि-अनन्त है। वस्तु है। आदि नहीं, अन्त नहीं, ऐसा यह भगवान आत्मा अनादि-अनन्त विराजता है। देह तो सादि-सान्त है। आवे और जावे। वह तो जड़ है। यह श्वास है, वह आवे और जावे, यह तो जड़ है। यह आत्मा नहीं। आत्मा में श्वास नहीं। श्वास की क्रिया में भगवान नहीं—आत्मा नहीं।

मुमुक्षु : किसकी बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की बात करते हैं अन्दर। जहाँ आत्मा है, वहाँ श्वास नहीं, वाणी नहीं, देह नहीं। जहाँ श्वास, वाणी और देह है, वहाँ आत्मा नहीं।

मुमुक्षु : दोनों आकाश के प्रदेश में है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आकाश के प्रदेश में नहीं, अपने में है। आहाहा! ऐसी बातें!

शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर... आहाहा! शुद्ध द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु। उसे देखनेवाली नय से देखें तो... आहाहा! अनादि-अनन्त प्रभु है। उसे जाननेवाली दशा है, वह पर्याय है, परन्तु वस्तु है, वह अनादि-अनन्त है। समझ में आया? आत्मा के अतिरिक्त यह देह, वाणी, कुटुम्ब, भाषा, राग में जिसका प्रेम है न, उसे यह भगवान अन्दर सूझता नहीं। जहाँ यह प्रेम बाहर में चला गया है, उसे यह भगवान अन्दर राग रहित, देह रहित (है, ऐसा) मिथ्यादृष्टि को भासित नहीं होता। आहाहा! **तथा यह देह आदि अन्तकर सहित है,...** आत्मा अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु है। परन्तु शरीर आदि को अन्त है। हुआ और नाश होगा, हुआ और नाश होगा। आहाहा!

'केवलज्ञानस्फुरत्तनुः' जब यह क्या है इसका शरीर? भगवान आत्मा का शरीर है या नहीं? है। क्या? आहाहा! **निश्चयनयकर लोक-अलोक को प्रकाशनेवाले**

केवलज्ञानस्वरूप (शरीर) है,... इसका। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान का पिण्ड। समझण और ज्ञान का कन्द अकेला आत्मा, वह उसका शरीर है। यह नहीं। वाणी नहीं, शरीर नहीं, राग नहीं। आहाहा! दया, दान, भक्ति आदि का भाव, वह राग, वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञान प्रकाशरूप शरीर है,... 'स्फुरत्त' है न? **'केवलज्ञानस्फुरत्त'** अकेला ज्ञान का प्रगट प्रकाश। चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु, वह इसका शरीर है। अर्थात् यह चीज़ है। इस शरीर से इनकार किया कि यह (मूर्तिक जड़) शरीर नहीं। आहाहा! अकेले चैतन्य के प्रकाश का पूर, चैतन्य के प्रकाश का नूर का तेज का पूर, वह इसका स्वरूप है, वह इसका शरीर है अर्थात् कि वह इसका स्वरूप है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! इसमें करना क्या परन्तु यह? यह देश सेवा करना, भगवान की सेवा करना, भूखे को अनाज देना, प्यासे को पानी पिलाना, रोगी को औषधि देना। क्या कहलाता है? औषध। वह कौन करे? बापू! वह तो जड़ की क्रिया है। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। तू तो ज्ञानस्वरूप चैतन्य है न! उसमें लेने-देने की क्रिया तुझ में से कहाँ से आयी? आहाहा! अज्ञानी ने भ्रम में (उसे अपनी) माना है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु चैतन्य केवलज्ञानी प्रकाशस्वरूप शरीर है। आहाहा! अकेला ज्ञानस्वरूप, वह इसका शरीर अर्थात् वह इसका स्वरूप है। देह जड़ है। यह (आत्मा) चैतन्यप्रकाश का पूर, नूर है तो यह शरीर जड़ है। यह सब क्रियायें जो हिलने-चलने की, वह सब जड़ की जड़ से है; आत्मा से नहीं। कठिन कहलाये यह तो। समझ में आया?

'सः परमात्मा' आहाहा! यह केवलज्ञान अकेले ज्ञान की मूर्ति, ज्ञान के नूर का तेज का पूर, वह इसका स्वरूप, वह इसका शरीर, यह परमात्मा है। भगवान परमात्मा तो उनके पास रहे वे। आहाहा! यह तो स्वयं परमात्मा त्रिलोकनाथ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे भगवान को दृष्टि में लेना, ऐसे परमात्मा को दृष्टि में स्वीकार करना, ऐसा है, ऐसा सत्कार करके स्वीकार करना, इसका नाम सत्यधर्म और सम्यग्दर्शन है। अरे! ऐसी कठिन बातें! ऐसा करो और ऐसा करो और देश की सेवा करो, परिवार का

सुधार करना और फिर गाँव का सुधार और फिर देश का सुधार। धूल भी कर नहीं सकता, सुन न!

मुमुक्षु : दोनों का काम करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ का काम कभी तीन काल में कर नहीं सकता। और आत्मा अपना छोड़कर पर का कर सके, यह उसका स्वरूप ही नहीं है। आहाहा!

वास्तव में तो दया-दान के भाव होना, वह भी आत्मा का कर्तव्य नहीं है। क्योंकि वह विकल्प है, और वह राग है, विकार है। भगवान निर्विकारी प्रभु चैतन्य है। ऐई! ऐसी बातें हैं। दुनिया से बहुत फेरफारवाली है। पूरी दुनिया क्या कहती है, यह तो सब खबर है या नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : आपने रात्रि में कहा था, धीर का काम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धीर का काम, भाई!

अन्दर वस्तु है या नहीं? आत्मा वस्तु है या नहीं? तो वस्तु है तो उसमें अनन्त-अनन्त शक्तियाँ, गुण बसे हुए हैं या नहीं? या खाली है वह? आहाहा! वस्तु उसे कहते हैं कि जिसकी अनन्त शक्तियाँ और स्वभाव गुण जिसमें बसे हैं। ऐसा जो यह भगवान आत्मा उसे आत्मतत्त्व-वस्तु कहते हैं। उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी अन्दर ईश्वरता आदि अनन्त शक्तियाँ उसमें बसी हुई है। उसमें पुण्य और पाप के भाव बसे नहीं हैं। उसमें दया-दान के विकल्प बसे नहीं हैं। वह तो विकार है। उसमें शरीर बसा नहीं है। शरीर जड़ है। आहाहा! ऐसी कठिन बात! लोगों को बेचारों को कहाँ पड़ी है अन्दर। यह जन्मे और कहीं अवतरित हुए। जिस सम्प्रदाय में या जिस कुल में अवतरित हुए, जिसके संग में आये, उस प्रकार की प्रवृत्ति करना। आहाहा!

परन्तु इसने भगवान का संग नहीं किया। आनन्द का नाथ ज्ञानस्वरूपी प्रभु का संग इसने नहीं किया। राग और शरीर के संगरहित प्रभु पुण्य के, दया-दान के भाव, विकल्प बिना का प्रभु है यह। यह तो अनादि-अनन्त चैतन्यघन, आनन्दकन्द, स्वभाव का सागर है। शक्तियों का संग्रहालय है। अनन्त आनन्दादि शक्तियों का संग्रहालय।

संग्रह का आलय—स्थान है। यह पुण्य और पाप और शरीर का स्थान नहीं। आहाहा! ऐसी बात लोगों को ऐसी (कठिन) पड़े न, इसलिए बेचारे बाहर में चल निकले। यह करूँ... यह करना... और यह करना... करना-करना यह माने, वह मरना है।

भाई सोगानी लिखते हैं न? यह करना, यह पुण्य करूँ, यह राग करूँ। ऐई! प्रवीणभाई! लिखा है न? सोगानी लिखते हैं। करना, वह मरना है। भगवान ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव, उसे राग करूँ, यह शान्ति का मरण है। आहाहा! ऐसी बात भारी कठिन जगत को! पण्डितजी! अरे रे! जगत को मिलती नहीं, सत्य सुनने को मिलता नहीं, वह सत्य को कब विचार करे? कब वह सत्य की शरण में जाये? असत्य की शरण कब छोड़े? आहाहा!

केवलज्ञान ही प्रकाशरूप शरीर है,... आहाहा! **वही परमात्मा... 'निर्भ्रान्तः' निःसन्देह...** पने जाना उसे। आहाहा! जानना है, वह पर्याय में है—वर्तमान अवस्था। यह त्रिकाल परमात्मा है, ऐसा जानना पर्याय में है। पर्याय अर्थात् अवस्था, वर्तमान प्रवर्तती दशा। है न? **संशय नहीं समझना।** नहीं समझना और समझना, वह तो ज्ञान की वर्तमान दशा है। वह दशा है, वह आदि-अन्तवाली है। होती है और जाती है। परन्तु उसका विषय जो है, वह तो अनादि-अनन्त है। अरे... अरे..! ऐसी बातें! उसकी और दशा और...

यह जानने की जो दशा है न, वह राग-द्वेष, पुण्य-पाप तो भिन्न, उन्हें एक ओर रखो। वे आत्मा में है नहीं। शरीर-बरीर आत्मा में है नहीं, वह वस्तु। वह सब पर है। परन्तु उन्हें जानने की दशा वर्तमान है, वह भी नाशवान है। परन्तु उस नाशवान दशा का विषय है, वह अविनाशी है। अरे... अरे...! ऐसी बातें! ऐसा है, बापू! सत्य तो ऐसा है जरा। अनन्त काल में इसे मिला नहीं। साधु हुआ, बाबा हुआ, हजारों रानियाँ छोड़कर जंगल में रहा, परन्तु यह आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ भिन्न है, विकल्प की क्रिया से भिन्न है, यह बात इसे रुचि नहीं।

छहढाला में कहा न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' साधु हुआ, रानी-रानियाँ छोड़ी, परिवार छोड़ा, राज छोड़, शरीर नग्न किया, जंगल में बसा परन्तु वह भगवान अन्दर आनन्द का नाथ भिन्न है, वह राग की और देह की क्रिया से भिन्न है,

उसकी खबर नहीं ली। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक बड़ा व्यक्ति मिलने आया हो, उसके साथ बात छोड़कर पाँच-छह वर्ष का लड़का आया हो और उस बालक के साथ बात करने लगे और समय व्यतीत हो तो उसका अनादर किया कहलाये। लड़का आया, बापू ऐसा... बापू ऐसा... परन्तु वह मिलने आया उसे तो देख। यहाँ समय जाता है तो वह उठकर चला जायेगा।

मुमुक्षु : उसमें भूल नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भूल नहीं करता। यह तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु परमात्मा तुझे मिलने आया है यहाँ। इस पर्याय में भेंट करना है यह। आहाहा! और उस पर्याय को वहाँ भेंट न करके राग, द्वेष और संकल्प-विकल्प में बालक के साथ बातें करके निकाल देता है। आहाहा! समझ में आया? देवजीभाई! ऐसी वस्तु है, भगवान! आहाहा!

यहाँ तो तू परमात्मा है, ऐसा कहते हैं। अरे! कैसे जँचे? शक्तिस्वरूप परमात्मा है। जैसे नारियल में छाल, काचली और लालिमा कांचली की ओर की लाल छाल, इन तीनों से खोपरा जो श्वेत-सफेद है, वह भिन्न है। जिसे श्रीफल कहते हैं, वह तो सफेद मीठा गोला है। वह लाल छाल कांचली और छाला (जटा) से अत्यन्त भिन्न चीज़ है।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा शरीर की छाल से भिन्न, कर्म की कांचली— रजकण जो जड़कर्म है, शुभाशुभभाव से भरपूर रजकण कर्म से भिन्न और पुण्य और पाप की वृत्तियाँ हैं, वे लाल छाल हैं, इनसे प्रभु भिन्न। आहाहा! जैसे वह सफेद और मीठा गोला है, उसी प्रकार यह शुद्ध और आनन्दस्वरूप है। उसे आत्मा कहते हैं और उस आत्मा का अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। बाकी सब व्यर्थ है। समझ में आया? कहो, गिरधरभाई! यह सब पाँच-पाँच, दस-दस लाख के मन्दिर बनाये। पचास-पचास लाख के मन्दिर। उसमें कहीं धर्म होगा या नहीं?

मुमुक्षु : २६ लाख का बनाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह २६ लाख का हुआ। यह रामजीभाई ने किया है, हों! यह। धर्म कैसा? लाख-करोड़ का हो तो भी वह तो परवस्तु है। उसमें कदाचित् भाव हो

किसी का तो शुभभाव है, पुण्य है। धर्म नहीं। पुण्य संसार में प्रवेश करावे, ऐसा वह भाव है। आता है ?

मुमुक्षु : वह तो साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन नहीं, वह बाधक है। ऐसी बातें हैं, भाई!

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु पूर्ण, उसे राग से भिन्न करके और प्रज्ञाछैनी द्वारा जिसका अनुभव करना, वह साधन है। बाकी साधन-फाधन एक बिना के शून्य हैं। दुनिया माने और मनावे। मनुष्यदेह चला जायेगा इसका और ढ़ोर / तिर्यंच में जाकर भटकेगा। आहाहा! समझ में आया? यह कीड़ा, कौआ, कुत्ता, बापू! अवतार कर-करके मर गया है। अपना निर्भ्रान्त स्वरूप आनन्द का नाथ, उसे नहीं पहिचाना और बाहर के क्रियाकाण्ड में स्वयं मान लिया कि कुछ करता हूँ। आहाहा! वे सब चौरासी लाख के अवतार के वे सब मेहमान हैं। वहाँ सब भटकने जानेवाले हैं।

मुमुक्षु : कठिन बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन बात है परन्तु बापू! परन्तु पूरा प्रवाह चलता है, बापू! मार्ग अलग, नाथ! आहाहा! जगत की प्रवाह वृत्तियाँ जो सब है, उनसे भगवान भिन्न है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान, सेवा का भाव जो है, वह भी राग और विकार है। वह आत्मा नहीं और उससे आत्मा को कुछ लाभ नहीं परन्तु नुकसान है। ऐसी बातें हैं। पण्डितजी! कठिन बातें, बापू! बाहर में रखना, हों! आहाहा! सत्य तो ऐसा है, बापू! लोग बाहर से मनायेंगे और जिन्दगी चली जायेगी। भाई! वापस ऐसा मनुष्यपना मिलना मुश्किल है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप जो कहते हो, वह तो जवानों का काम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का काम। जवान-फवान का नहीं। आत्मा जवान भी नहीं, वृद्ध भी नहीं और बालक भी नहीं। अज्ञानरूप से रागादि मेरा (माने), वह बालक अज्ञानी है, बालक है और राग बिना की चीज़ मेरी पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि और अनुभव करना, वह जवान मनुष्य है और केवलज्ञान पूर्ण प्राप्त करना, वह वृद्ध व्यक्ति

है। यह वृद्ध और जवान तो जड़ की दशा मिट्टी की है। आहाहा! सिद्धान्त में है, हों! यह कहा वह।

मुमुक्षु : सब अर्थ बदल दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब प्रकार बदल जाता है यहाँ तो। आहाहा!

'रजकण तेरे भटकेंगे जैसे भटकती रेत।' यह रजकण बिखर जायेंगे, बापू! यह तो मिट्टी-धूल है। श्मशान की राख होकर फू होकर उड़ जायेंगे। वह कहाँ तू है? आहाहा! 'रजकण तेरे भटकेंगे अरु जैसे भटकती रेत, फिर नर तन पायेगा कहाँ? चेत, चेत नर चेत।' अरे! अवसर आया और चेतेगा नहीं, भाई! वह भूल में भ्रमित हो जायेगा और वापस भगवान नहीं मिलेगा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

परमात्मप्रकाश है न यह? परमात्मा तू स्वयं प्रकाश है, ऐसा कहते हैं। कहा न? '**केवलज्ञानस्फुरत्तनुः**' आहाहा! यह चैतन्य का प्रकाश नूर-तेज पूर्ण, वह तन—वह तेरा शरीर, वह तेरा स्वरूप। आहाहा! नजर जाना कठिन। बाहर में भटकने का अनादि अभ्यास। यहाँ तो कहते हैं कि पर की दया तो पाल सकता नहीं जीव। क्योंकि पर की क्रिया है, वह तो उसकी स्वतन्त्र है। उसमें आत्मा उसे क्या करे? परन्तु पर की दया का भाव आवे, वह भी राग और हिंसा और दुःख है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा राग बिना की चीज़ है। आहाहा! राग के भाव से खाली है और आनन्द और ज्ञान के भाव से भरपूर चीज़ है। आहाहा!

'**सः परमात्मा निर्भ्रान्तः**' जान। तेरी दशा में, वर्तमान ज्ञान में यह परमात्मा पूर्ण है, ऐसा निःसन्देह जान। आहाहा! ऐसा भारी कठिन। परन्तु इसका दूसरा कोई साधन होगा या नहीं? यही साधन है। दूसरा साधन नहीं। सुन न!

साधन (नाम का) आत्मा में गुण है। करण नाम का गुण है। शक्ति है। साधन नाम की आत्मा में एक शक्ति अनादि-अनन्त है। ऐसे भगवान को पकड़ने से वह साधन गुण ही परिणति में साधनरूप होता है। दूसरा साधन-फाधन नहीं। राग की मन्दता और कषाय की मन्दता, शुभभाव वह कोई साधन-फाधन नहीं। समझ में आया? जगत से निराली बातें हैं, भाई! ऐसी बात है। आहाहा! दुनिया में क्या चलता है, यह तो सब

खबर है या नहीं ? कहनेवाले मुनि को भी खबर है या नहीं ? मार्ग तो यह है, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

मुमुक्षु : यहाँ तो आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं यह ? क्या लिखा है, इसका भाव क्या है ? यह तो वाचक शब्द है। परन्तु इसका वाच्य ? आहाहा ! परमात्मा ऐसा एक वाचक शब्द है। परन्तु उसका वाच्य कौन है ? कि परमात्मा तू स्वयं उसका वाच्य है।

मुमुक्षु : .... धर्म निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग कहते हैं बेचारे। करना-धरना नहीं। ऐसा उसमें कहता था वहाँ आगरा में। वह पण्डित था न ? करना-धरना नहीं और आनन्द बहुत। भाई ! मश्करी रहने दे, बापू ! आहाहा ! भाई ! तुझे अभी ठीक लगेगा। और तेरी बात लोगों को भी ठीक लगेगी। परन्तु तू मर जायेगा, बापू ! आहाहा ! यह कुछ करते हैं, किसका करता हैं ? सुख के साधन देते हैं। भूखे को पानी-आहार देते हैं और उसमें से धर्म होगा न ? धूल भी नहीं होगा, सुन न ! धर्म, वह अपने स्वभाव में से होता होगा या पर की क्रिया में से होता होगा ? समझ में आया ?

धर्म, वह वस्तु का स्वभाव है। त्रिकालरूप से वस्तु का—आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय लेकर दशा प्रगट हो, वह धर्म है। आहाहा ! वस्तु धर्मी, उसकी शक्तियाँ वह धर्म और उसका आश्रय लेकर पर्याय में धर्म—अरागी / वीतरागी परिणति प्रगट हो, वह धर्म। अर्थात् तीनों में व्याप्त हुआ धर्म। द्रव्य-गुण-पर्याय। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा है, बापू ! मार्ग सबसे अलग। लोगों की जिन्दगी चली जाती है बेचारों की। मनुष्यपना मिला है, व्यर्थ (जाता है)। सब कार्यकर्ता नहीं यह तुम्हारे ? गिरधरभाई बहुत कार्य करते वहाँ वढवाण में। किसके कार्यकर्ता ? जगत के ? आहाहा ! गाँव में सुधार करो, ऐसा करो... ऐसा करो... पानी के प्याऊ बाँधो... भूखों के लिये ऐसा करो। अनाज की... भाई ! वह तो पर की क्रिया है। वह कहीं आत्मा करे, यह है नहीं। वह आत्मा को राग होता है। राग हो वह आकुलता और दुःख है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

इसमें कुछ संशय नहीं समझना। देह देवालय में भगवान पूर्णानन्द पूर्ण ज्ञान से विराजता है। यह तो उसकी पर्याय में—हालत में अपूर्णता है। वस्तु में अपूर्णता है नहीं। वस्तु तो पूर्ण है। उस पूर्णानन्द के नाथ को पर्याय में निःसन्देह यह परमात्मा है, ऐसा जान। आहाहा! यह पर्याय कितनी? कि ऐसा त्रिकाली निःसन्देह भगवान, उसे पर्याय में स्वीकार करे, उस पर्याय में भगवान त्रिकाली आवे नहीं, परन्तु उसका ज्ञान आवे। आहाहा! समझ में आया? राग में पर्याय नहीं आती, द्रव्य-गुण नहीं आते। राग में तो विकार और दुःख आता है। आहाहा! ऐसा जो पूर्ण स्वरूप, पूर्णमिदं, अनन्त शक्ति का संग्रह स्वरूप भगवान परमात्मस्वरूप। परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप, वह निःसन्देह भगवान आत्मा है, ऐसा तू पर्याय में जान। वर्तमान दशा में उसे जाने। आहाहा! तो उसे धर्म हो और जन्म-मरण मिटें। नहीं तो गोते खाकर मर जायेगा। समझ में आया? दुनिया महिमा करेगी कि इसने परोपकार के भारी काम किये। पागल महिमा करेंगे, पागल। पागल को पागल महिमा करेंगे। भगवान उसकी महिमा नहीं करेंगे। आहाहा! है?

इसमें कुछ संशय नहीं समझना। भगवान पूर्ण आनन्द द्रव्य वस्तु, वस्तु है वस्तु। वह राग बिना की, शरीर बिना की और एक समय की पर्याय बिना की। उसे पर्याय में परमात्मा है ऐसा निःसन्देह जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म का उपदेश है। वह तो एकेन्द्रिय को नहीं मारना, दो इन्द्रिय को नहीं मारना, इच्छामि पडिकमणा, तत्सूत्री करणेन.... वह सब क्रिया राग की बातें हैं, बापू! वह नहीं। आहाहा! वह आत्मा नहीं और उससे आत्मा मिलता नहीं। उसकी जाति से आत्मा मिले। उसका स्वभाव हो, उस स्वभाव से मिले। आहाहा!

सत्य बात की बातें घट गयी और असत्य का प्रचार बहुत हो गया। आहाहा! इससे सत्य को सुनना भी मुश्किल पड़ता है। ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं? यह तो सब मिटाते हैं। बस, किसी का कुछ करना नहीं? अरे! बापू! शरीर में रोग आवे तो मिटा सकता है? प्रिय में प्रिय पत्नी-स्त्री कहलाये, लोगों में अर्धांगना (कहलाती हो)। रोग में पीड़ित हो तो इसका भाव नहीं, उसके रोग मिटाने का? बचाने का भाव नहीं? तथापि मर जाती है। इसका भाव वहाँ काम नहीं करता। वह भाव दूसरे को बचाने का

काम करता होगा? आहाहा! समझ में आया? भ्रम में और भ्रम में जिन्दगी व्यतीत करता है। जिन्दगी व्यर्थ हार जाता है।

यहाँ कहते हैं, तू पूर्ण स्वरूप है। '**केवलज्ञानस्फुरत्तनुः**' केवलज्ञान के प्रकाश से प्रगटरूप आत्मा। आहाहा! उसे तू आत्मा जान, उसे तू परमात्मा जान। निःसन्देह परमात्मा (जान)। सन्देह न कर कि ऐसा आत्मा परमात्मा! वह आत्मा परमात्मा है। ऐसी दृष्टि अन्दर में होना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसे सच्चा सत्य पूर्ण था, वैसी प्रतीति ज्ञान में भान होकर हुई, इसलिए उसे सत्य दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- जो देह में रहता है, तो भी देह से जुदा है,... आहाहा! डिब्बी में शक्कर हो तो डिब्बी से शक्कर अलग रहती है या एकमेक हो गयी है? इसी प्रकार इस शरीररूपी डिब्बी में शक्कर (अर्थात्) भगवान आनन्द का कन्द प्रभु शक्कर है। आहाहा! यह ऐसी वीतराग की वाणी है। सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव ने इस प्रकार से देखा है, ऐसा उसका स्वरूप है, ऐसा जाना है। ऐसा उसे बताते हैं। आहाहा!

सर्वाशुचिमयी देह को वह देव छूता नहीं है,... आहाहा! सर्व अशुचिमय देह। आहाहा! इसमें तो हड्डियाँ, चमड़ी, खून, पीव अशुचि है। इस चमड़ी की ऊपर की गार निकाल डालो तो देखो तो अकेले हड्डियाँ-चमड़ी है। इस ऊपर की चमड़ी से रूपवान लगता है। यह गार है ऊपर, गार। गार समझते हो? लीपण-लीपण। अन्दर में तो हड्डियाँ, माँस और... आहाहा! यह **अशुचिमयी देह को वह देव छूता नहीं है,...** भाषा देखो! **सर्वाशुचिमयी देह को वह देव छूता नहीं है,...** सर्व अशुचिमय यह देह, और देह को भगवान आत्मा छूता नहीं—स्पर्श नहीं करता। अभी, हों! आहाहा! भाषा कैसी की है, देखा! सर्व अशुचिमय देह। ऐसा। और पूर्ण शुचिमय पवित्र भगवान। वह देव, देह को स्पर्श नहीं करता। अभी, हों! दोनों भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया?

धर्म की दशा, बापू! अलौकिक! अनन्त काल में इसने ध्यान दिया ही नहीं। ऐसा का ऐसा बाहर में और बाहर में रुककर और कुछ करते हैं। मिलेगा फल। ऐसा करके जिन्दगी गँवायी है सबने। आहाहा! समझ में आया? साधु होकर भी पंच महाव्रत पाले, दया-दान के भाव हों तो कुछ किया, वह तो सब राग है, शुभ है। उसमें सन्तुष्ट हो गये

और वह वस्तु रह गयी। जहाँ देखने का था, जानने का था, उसके सामने देखा नहीं और जो उसमें नहीं, ऐसी राग की क्रिया हम (हैं) देखकर जिन्दगी व्यतीत की। आहाहा!

सर्वाशुचिमयी देह को वह देव छूता नहीं है, वही आत्मदेव उपादेय है। यह आत्मदेव आदरनेयोग्य है, कहते हैं। अर्थात्? वर्तमान पर्याय में उसे आदरनेयोग्य है। वर्तमान ज्ञान की दशा में भगवान आदरणीय है।

मुमुक्षु : .... पर्याय पर बहुत वजन देते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जाननेवाली है कौन? जाननेवाला कहीं ध्रुव है? जाननेवाली पर्याय है अपनी। आहाहा!

नाशवान की पर्याय में अविनाशी का आदर कर। लो! यह ... चिद्विलास में तो ऐसा कहा है, नित्य का निर्णय अनित्य करता है। त्रिकाली आनन्द का नाथ, उसका निर्णय तो वर्तमान पर्याय में होता है। पर्याय तो बदलती अनित्य है। बराबर है? आहाहा! दुनिया का काम नहीं। यहाँ दुनिया चाहे जो कहे और चाहे जो माने। मार्ग यह है। समझ में आया? आहाहा! **वही आत्मदेव उपादेय है।** लो! आहाहा! ३३ गाथा। दो तिगड़े। लो! आज रविवार था। हमारे भावनगरवाले आये हैं। लड़के आये हैं। बापू! मार्ग यह है, भाई!

जिसमें से आनन्द की दशा प्रगट हो, ऐसा जो आनन्द का नाथ भगवान पूर्ण स्वरूप, उसे उपादेय मान, उसका आदर कर। एक क्षण की पर्याय उसे आदर करे, पर्याय पर्याय का आदर नहीं करे। यह पर्याय क्या, वह भी सुना न हो। पर्याय—वर्तमान हालत। वस्तु है, उसकी जो शक्तियाँ हैं, वे ध्रुव हैं और वर्तमान हालत-दशा उसे वीतराग पर्याय कहते हैं। हालत-अवस्था। वह ज्ञान की वर्तमान अवस्था, उसमें अवस्थायी त्रिकाल का आदर कर। वह देव है। इस देह में देव-प्रभु विराजता है। आहाहा! यह ३३ (गाथा) हुई। ३४ कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ३४

अथ शुद्धात्मविलक्षणे देहे वसन्नपि देहं न स्पृशति देहेन सोऽपि न स्पृश्यत इति प्रतिपादयति –

३४) देहे वसंतु वि णवि छिवइ णियमें देहु वि जो जि।
देहें छिप्पइ जो वि णवि मुणि परमप्पउ सो जि।।३४।।

देहे वसन्नपि नैव स्पृशति नियमेन देहमपि य एव।
देहेन स्पृश्यते योऽपि नैव मन्यस्व परमात्मानं तमेव।।३४।।

देहे वसन्नपि नैव स्पृशति नियमेन देहमपि, य एव देहेन न स्पृश्यते योऽपि मन्यस्व जानीहि परमात्मा सोऽपि। इतो विशेष : शुद्धात्मानुभूतिविपरीतेन क्रोधमानमायालोभस्वरूपादि-विभावपरिणामेनोपार्जितेन पूर्वकर्मणा निर्मिते देहे अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण वसन्नपि निश्चयेन य एव देहं न स्पृशति, तथाविधदेहेन न स्पृश्यते योऽपि तं मन्यस्व जानीहि परमात्मानं तमेवम्। किं कृत्वा। वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वेति। अत्र य एव शुद्धात्मानुभूतिरहितदेहे वसन्नपि देहममत्वपरिणामेन सहितानां हेयः स एव शुद्धात्मा देहममत्वपरिणामरहितानामुपादेय इति भावार्थः ।।३४।।

आगे शुद्धात्मा से भिन्न इस देह में रहता हुआ भी देह को नहीं स्पर्श करता है और देह भी उसको नहीं छूती है, यह कहते हैं –

जो देह में रहता हुआ भी देह को छूता नहीं।
ना देह भी जिसको छुए तू मान परमातम वही।।३४।।

अन्वयार्थ :– [य एव] जो [देहे वसन्नपि] देह में रहता हुआ भी [नियमेन] निश्चयनयकर [देहमपि] शरीर को [नैव स्पृशति] नहीं स्पर्श करता, [देहेन] देह से [यः अपि] वह भी [नैव स्पृश्यते] नहीं छुआ जाता। अर्थात् न तो जीव देह को स्पर्श करता और न देह जीव को स्पर्श करती, [तमेव] उसी को [परमात्मानं] परमात्मा [मन्यस्व] तूँ जान, अर्थात् अपना स्वरूप ही परमात्मा है।

भावार्थ :– जो शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत क्रोध, मान, माया, लोभरूप विभाव परिणाम हैं, उनकर उपार्जन किये शुभ-अशुभ कर्मोंकर बनाई हुई देह में

अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयकर बसता हुआ भी निश्चयकर देह को नहीं छूता, उसको तुम परमात्मा जानो, उसी स्वरूप को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में तिष्ठकर चिंतवन करो। यह आत्मा जड़रूप देह में व्यवहारनयकर रहता है, सो देहात्मबुद्धिवाले को नहीं मालूम होती है, वही शुद्धात्मा देह के ममत्व से रहित (विवेकी) पुरुषों के आराधने योग्य है।।३४।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल १, सोमवार
दिनांक-२८-०६-१९७६, गाथा-३४, प्रवचन-२०

परमात्मप्रकाश ३४वीं गाथा। **आगे शुद्धात्मा से भिन्न इस देह में रहता हुआ भी देह को नहीं स्पर्श करता है और देह भी उसको नहीं छूती है,...** आत्मा शुद्धस्वरूप पवित्र, वह देह में रहा होने पर भी देह को छूता नहीं—स्पर्शता नहीं।

मुमुक्षु : एकक्षेत्रावगाह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकक्षेत्रावगाह है परन्तु भिन्न-भिन्न है। आहाहा! एक-दूसरे में अभाव है। अभाव है, वह दूसरे को कैसे स्पर्श करे? सूक्ष्म बात है। देह का और आत्मा के स्वभाव का एक-दूसरे में अभाव है। अभाव है, उसे भावरूप स्पर्शना कैसे हो? आहाहा! आत्मा देह को स्पर्शता नहीं, छूता नहीं; देह आत्मा को स्पर्शता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो .... बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कल कोई कहता था न, लो! यह देह से भिन्न हो तो यहाँ दु:ख कैसे होता है? कल कोई कहता था। नहीं? देह में ऐसा होता है। तो इसे क्यों होता है? परन्तु कहाँ? वह स्वयं ऐसा मानता है कि यह चीज़ मेरी है। उसमें होता है, उसका इसे दु:ख है। शरीर की क्रिया का दु:ख नहीं। शरीर में कुछ लगे (चुभे), उसका इसे दु:ख नहीं। उसे तो स्पर्श भी नहीं करता। मात्र वह मैं हूँ और देहादि का जो प्रेम है, उसके कारण उसे कुछ होने से दु:ख होता है, वह इसके भाव का दु:ख है। इसकी विकार की परिणति का दु:ख है। शरीर की स्थिति का दु:ख नहीं। शरीर को स्पर्श भी नहीं करता और दु:ख कहाँ से हो? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बात है। परमात्मप्रकाश है न?

मुमुक्षु : परमात्मा की बात है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं परमात्मस्वरूप है। शक्ति और स्वभावरूप से परमात्मस्वरूप न हो तो पर्याय में अरिहन्त और परमात्मा कहाँ से होगा? समझ में आया? जो पर्याय में—अवस्था में परमात्मा होता है, वह परमात्मस्वरूप है, उसमें से होता है। आहाहा! उसका द्रव्य अर्थात् वस्तु, परम पूर्ण आनन्द आदि स्वभाव से भरपूर पदार्थ, वह परमात्मस्वरूप प्रभु आत्मा है। आहाहा! और उसमें परमात्मस्वरूप है, इसलिए उसका आश्रय करके निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र; निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् कि निर्विकल्प शान्ति, उसके साधन द्वारा जो शक्तिरूप परमात्मा है, वह पर्यायरूप परमात्मा होता है। समझ में आया? आहाहा! बैठना, भरोसा बैठना... यह कहेंगे।

३४) देहे वसंतु वि णवि छिवइ णियमें देहु वि जो जि।
देहें छिप्पइ जो वि णवि मुणि परमप्पउ सो जि।।३४।।

अन्वयार्थ :- जो देह में रहता हुआ भी... आहाहा! देह तो जड़ मिट्टी का पिण्ड है। उसमें **रहता हुआ भी निश्चयनयकर... 'नियमेन'** शब्द पड़ा है न? **'नियमेन'** वास्तविक स्थिति से। निश्चयनय से अर्थात् यथार्थ दृष्टि से **शरीर को नहीं स्पर्श करता,...** आहाहा! भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप; शुद्धात्मा लिया है न? शुद्ध आत्मा वस्तु द्रव्यस्वभाव, जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति से प्राप्त होता है, ऐसा जो परमात्मा, वह देह में रहा होने पर भी देह को स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर उसमें रहता किस प्रकार है?

पूज्य गुरुदेवश्री : रहता कहाँ है? यह तो व्यवहारनय से कहा। यह कहेंगे अभी। टीका करेंगे।

शरीर को नहीं स्पर्श करता,... आहाहा! **देह से वह भी नहीं हुआ जाता।** आहाहा! स्पर्श नहीं करता। देह उसे स्पर्श नहीं करता, भगवान आत्मा देह को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! **उसी को परमात्मा तू जान,...** है? आहाहा! सम्यग्दर्शन दृष्टि द्वारा उसे आत्मा जान। समझ में आया? **उसी को परमात्मा...** (जान)। स्वयं परमात्मस्वरूप ही है। शक्ति परमस्वरूप अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त स्वच्छता,

ईश्वरता, ऐसा जिसका पूरा रूप, ऐसा वह परमात्मा स्वयं है, उसे तू जान, ऐसा कहते हैं। है? **उसी को परमात्मा तू जान, अर्थात् अपना स्वरूप ही परमात्मा है।** दृष्टि में (उसे) विषय बनाने से, दृष्टि को अन्तर में झुकान से वह परमात्मा स्वयं है, वही ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

देहदेवल में विराजता प्रभु, चाहे तो स्त्री का शरीर हो, पुरुष का हो, तिर्यंच का हो। भगवान आत्मा तो देह से तीनों काल अत्यन्त भिन्न है। ऐसा जो प्रभु, उसकी माहात्म्यवाली दृष्टि करके उसे देख, ऐसा कहते हैं। उसे मान। आहाहा! देह आदि के भाव से, प्रेम से छूट जा। देहादि परवस्तु की अधिकता तुझे दिखती है, उसमें परमात्मा नहीं दिखता। पर की अधिकता का उल्लसित वीर्य जो पर में है, वह आत्मा को जानने नहीं देता। पर में जो उल्लसित वीर्य का उत्साह, आत्मा के अतिरिक्त शरीर, राग, पर में जो वीर्य की उल्लसित सावधानी होती है, उसके कारण आत्मा का सावधानीपना नहीं होता। समझ में आया? उसे तू आत्मा जान। आहाहा! **अपना स्वरूप ही परमात्मा है।**

बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—ऐसी तीन दशायें हैं न? यह तो तीन दशाओं की बात है। बहिरात्मा भगवान आत्मा से बाह्य शरीर, रागादि का जिसे प्रेम है, बहिर् वस्तु का प्रेम है, उसे बहिरात्मा—मिथ्यादृष्टि अवस्था में कहा। जिसे अन्तरात्मा में प्रेम है, वर्तमान दशा में उसे अन्तरात्मा कहते हैं। जिसे इस आत्मा की अन्तर दशा में पूर्ण सावधान होकर, पर्याय की परमात्मदशा पूर्ण प्रगट हुई, वह परमात्मा है। यह परमात्मा तो द्रव्य परमात्मा है। समझ में आया? वह तीन दशायें जो हैं, वह अवस्था की बात है। परन्तु वह अवस्था परमात्मदशा हुई, वह हुई कहाँ से? अन्तरात्मा की पर्याय में से हुई? बहिरात्मा की पर्याय में से हुई? अन्तरात्मा की पर्याय में से नहीं हुई तो कहाँ से हुई? वह परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! अरे! उसकी महत्ता कैसे बैठे? आहाहा! साधारण... साधारण बात में जिसका प्रेम परपदार्थ में उल्लसित होता है, उसे यह भगवान परमात्मा है, ऐसी बुद्धि में यह कैसे बैठे? समझ में आया?

भावार्थ :- जो शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत... यहाँ तो कहते हैं कि शरीर हुआ कैसे? कि भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप प्रभु का जो अनुभव, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-

चारित्र की पवित्र परिणति ऐसी जो अनुभूति, उससे विपरीत **क्रोध, मान, माया, लोभरूप विभाव परिणाम हैं,...** आहा! चाहे तो भगवान की भक्ति का भाव हो या भगवान की वाणी सुनने का भाव हो, वह सब रागभाव कषायभाव है। समझ में आया? यह कहते हैं। परसन्मुख के झुकाववाली वृत्ति, वह कषाय है। वह आत्मा की अनुभूति से विपरीत भाव है। आहाहा!

भगवान आत्मा... कहेंगे, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी निर्विकल्प— राग रहित शान्ति, समाधि, उससे यह विपरीत भाव है। पहले तो कहा था न? वीतराग की दिव्यध्वनि से भी भगवान आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि दिव्यध्वनि के ऊपर लक्ष्य जायेगा, उसे राग होगा। ऐसी बातें हैं। महामुनियों के परमार्थतत्त्व की वाणी, उससे भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। पहले आ गया है। वेद, शास्त्र आ गया है न? वेद अर्थात् दिव्यध्वनि। ओहोहो! तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि से प्रभु ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग होगा। आहाहा! गुरु से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। भगवान से ज्ञात हो ऐसा नहीं है। ऐसी कठिन बातें।

देशना से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। देशना से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। देशना परलक्ष्यी ज्ञान है। उससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : देशनारूप से परिणमे—

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, वह तो अलग वस्तु है। उसका लक्ष्य छोड़कर शुद्ध आत्मा पर दृष्टि पड़े, तब वह जानने में आवे। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! बात बहुत आ गयी है।

यहाँ तो शुद्ध आत्मा जो स्वरूप भगवान आत्मा, उसकी जो शुद्ध अनुभूति, उसकी ओर के झुकाववाली जो अनुभूति, उससे परसन्मुख के झुकाववाले क्रोध, मान, माया, लोभ। है? **विभाव परिणाम है, उनकर उपार्जन किये...** ऐसे विभावभाव से उत्पन्न किये शुभ-अशुभ कर्म। शुद्धात्मानुभूति से तो कुछ पुण्य-पाप बँधते नहीं। तो उस शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत ऐसा जो पुण्य-पाप का भाव क्रोध, मान, माया, लोभ से उपार्जित कर्म। शुभभाव से निमित्तरूप से हुआ कर्म। आहाहा!

उन **कर्मोंकर बनायी हुई देह...** कर्म से बनी देह। आहाहा! निमित्त से कथन है। उसमें **अनुपचरितअसद्भूत व्यवहारनयकर बसता हुआ...** मात्र नजदीक में है, इसलिए अनुपचरित है, परन्तु असद्भूत—झूठी दृष्टि है। आहाहा! असद्भूतव्यवहार, झूठी व्यवहारनय की दृष्टि से देह में **बसता हुआ...** ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा परमात्मा शुद्ध स्वरूप ही उसका है। उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा की अनुभूति जो निर्मल परिणति, उससे तो परमात्मा प्राप्त होता है, परन्तु उससे विपरीत विकारभाव से कर्म बँधते हैं। उससे प्राप्त होती है यह देह। आहाहा!

लक्ष्मी, पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, यह तो उनका उपचरित सम्बन्ध है। उपचरित असद्भूत झूठा नय। और यह नजदीक है, इसलिए अनुपचरित झूठा नय। आहाहा! समझ में आया? ऐसे देह में रहा है, ऐसा कहना... आहाहा! तथापि **निश्चयकर देह को नहीं छूता,...** सत्यदृष्टि से वास्तविक सत्ता के स्वभाव से देखें तो देह से पृथक्, देह को स्पर्शा ही नहीं, देह को छूता ही नहीं। आहाहा! अभी, हों! समझ में आया? यह तो मिट्टी जड़ धूल मूर्त है। भगवान तो अमूर्त है, अरूपी है। वह अरूपी भगवान अपनी अनुभूति से विपरीत भाव द्वारा बँधे हुए कर्म, उनसे प्राप्त देह, अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से उसमें है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यह सब सीखना कब इसे? समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी वीतराग परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं। समझ में आया?

यह निश्चय से देह को छूता—स्पर्शता ही नहीं, उसे परमात्मा जान। आहाहा! वर्तमान ज्ञान और दृष्टि की परिणति द्वारा उसे जान, ऐसा कहते हैं। शुद्धात्मानुभूति परिणति से उसे जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो परमात्मा देह में झूठे नय से नजदीक से रहा है, ऐसा कहना। आहाहा! ऐसे भगवान को तू अन्दर... आहाहा! देख, जान। आहाहा!

उसी स्वरूप को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में तिष्ठकर चिन्तवन करो। आहाहा! ऐसी बात है। जानना अर्थात्? ऐसा कहते हैं। **उसी स्वरूप को वीतराग निर्विकल्प...** रागरहित अभेद शान्ति, अकषायभाव (से जान)। वह कषायभाव था न? उससे कर्म

बँधते थे। इस ओर भगवान आत्मा की ओर की वीतराग अभेद शान्ति द्वारा **तिष्ठकर...** आहाहा! चिद्घन भगवान परमात्मा में शुद्ध वीतराग परिणति द्वारा तिष्ठकर, वीतराग परिणति में रहकर उसे जान। आहाहा! उसका चिन्तवन कर अर्थात् एकाग्र हो। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई!

एक समय में भगवान पूर्ण परमात्मस्वरूप है। यह परमात्मा होने की सामर्थ्यवाली ही शक्ति है। वह परमात्मा होता है, ऐसा सामर्थ्य इसका स्वभाव है। उसे तू... आहाहा! देहादि के प्रेम को छोड़कर... आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त परपदार्थ में उल्लसित वीर्य की सावधानी को छोड़कर, स्वरूप की सावधानी के अनुभूति के परिणाम द्वारा उसमें तिष्ठकर उसे देख—उसका अनुभव कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? चौथे गुणस्थान में यह कहते हैं। परसन्मुख का लक्ष्य छोड़कर, राग का भी लक्ष्य छोड़कर, एक समय की पर्याय का भी लक्ष्य छोड़कर पूर्णस्वभाव परमात्मा के प्रति अभेद अकषायभाव की शान्ति द्वारा उसमें स्थिर होकर उसे देख—उसे अनुभव कर। आहाहा! यह धर्म। ऐसा लगे लोगों को।

वे कहें, भगवान की भक्ति करते हैं, गुरु की भक्ति करते हैं तो समझ में आये। यहाँ तो कहते हैं कि (वह) विकल्प है, भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! आहाहा! आत्मा निर्विकल्पस्वरूप है। परमात्मा शुद्ध चैतन्यघन है। आहाहा! वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा है। वीतरागता प्रगट कहाँ से होती है? कहीं बाहर से आती है? आहाहा! यह 'जिन सो ही आत्मा।' जिन, वह जिनवर और जिनवर, वह जिन। वह जिनस्वरूप भगवान आत्मा शुद्धात्मस्वरूप, वह जिनवर और वह जिन। आहाहा! कैसे जँचे? पर के प्रेम के कारण इसे प्रभु का प्रेम लगता नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन परमात्मस्वरूप स्वयं है। आहाहा! उसे उससे विरुद्ध सब पदार्थ के प्रति रुचि और प्रेम को छोड़कर और पूर्णानन्द के नाथ की रुचि की अनुभूति से... आहाहा! उसे अनुभव कर। उसे आत्मा प्राप्त हो और उसे धर्म होता है। आहाहा! प्रेमचन्दभाई! ऐसी गजब बाते हैं, भाई! व्यवहारवालों को तो ऐसा लगे न! आहाहा! वे श्रीमद् के हैं एक मोरबी (वाले), जयन्तीभाई। उन्होंने पैसे दिये हैं? वे

कहे, हमारे तो व्यवहार सुनना है, निश्चय सुनना नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार सुनना है, वह तो राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय सुनना, वह भी राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार, निश्चय को बताता है। व्यवहार, व्यवहार को बतलाता नहीं। समझ में आया?

पूर्णानन्द का नाथ है, ऐसा विकल्प अथवा वाणी द्वारा कहते हैं कि यह है। उसे विकल्प छोड़ दे, फिर ऐसा कहे। विकल्प से और वाणी से बतलाते हैं निर्विकल्पस्वरूप। उसे बताते हुए विकल्प का और वाणी का अनुसरण छोड़ दे। आठवीं गाथा में आता है। व्यवहार से उसे कहा जाता है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्ततया। परन्तु वह व्यवहार हुआ। किन्तु व्यवहार, उसने बतलाया क्या? अखण्ड आत्मा। तो कहनेवाले और सुननेवाले को व्यवहार को अनुसरण करना नहीं। है? आहाहा! भेद डालकर समझाये बिना वह समझता नहीं। वह चीज़ नहीं है। तथापि भेद का अनुसरण करना नहीं। आहाहा! भारी कठिन बात, भाई! वीतराग का परम सत्य सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनेश्वरदेव ने कहा हुआ तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! व्यवहार से होता है, ऐसा माननेवाले राग से और परलक्ष्य से होता है, ऐसा वे माननेवाले हैं। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा देह में रहा है, ऐसा कहना वह झूठे नय से, नजदीक है इसलिए उसके नय से कहा जाता है। आहाहा! परन्तु वह आत्मा देह को अभी स्पर्शता भी नहीं। आहाहा! वह चैतन्य अरूपी, अमूर्त स्वरूप भिन्न और शरीर मूर्त स्वरूप भिन्न। यहाँ तो दोपहर में वहाँ तक कहा कि दया, दान के, भक्ति के परिणाम भी रूपी हैं। आहाहा! आत्मा के साथ उन परिणाम का तादात्म्यपना नहीं है। आहाहा! मार्ग... बापू! अरे! चौरासी के अवतार में भटकता है, भाई! यह उत्साह करता है, परन्तु इसे दुःख का उत्साह है। शुभभाव में, अशुभभाव में यह हर्षित दिखता है, वह दुःखी है। समझ में आया? उसे भगवान... कहेंगे अभी फिर दूसरी गाथा में। आहाहा!

आत्मा को जो इस प्रकार से जाने, उसे आनन्द से प्रगट होता आत्मा ज्ञात हो कि ओहोहो! अतीन्द्रिय आनन्द की स्फूरणा जिसे अनुभव में आवे, तब यह अतीन्द्रिय

आनन्द का नाथ है, ऐसा अनुभव में समकिती को आता है। आहाहा! अरे! ऐसी लम्बी बातें। वे कहें, भाई! सम्मेदशिखर की यात्रा करो। लो! यह कहे, शत्रुंजय की। पूर्व में ९९ बार ऋषभदेव भगवान यहाँ गये। अरे! लाख बार वहाँ अनन्त सिद्ध हुए हैं, ले न! उससे क्या हुआ? तुझे भी क्या? उससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। भाव आवे। शुभभाव अशुभ से बचने के लिये आवे, परन्तु उससे आत्मज्ञान और धर्म होता है, ऐसा नहीं है। भाई! दुनिया को मनवाकर रोक दिया है। समझ में आया? पर की भक्ति और पर की सेवा और पर के भाव में इसे रोक रखा है।

मुमुक्षु : वह तो धर्म का दरवाजा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दरवाजा है। आहाहा!

यहाँ तो शुद्धात्मानुभूति से प्राप्त होता है, ऐसा कहा है। उससे विरुद्ध प्राप्त हो, वह क्लेश। कर्म बँधे। देव को देह। देव भगवान आत्मा दिव्य शक्ति का परमात्मस्वरूप, वह अपने स्वभाव के सन्मुख दृष्टि-ज्ञान और शान्ति से वह प्राप्त हो, ऐसी वह चीज़ है। और उससे विरुद्ध भाव से कर्म बँधते हैं। आहाहा! उससे शरीर मिलता है। उस शरीर में रहे, वह असत् नय से कहा जाता है। आहाहा! व्यवहारनय अर्थात् असत् नय। सत् नय से वस्तु वस्तु में है। वस्तु शरीर को स्पर्शी भी नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। देह और पाँच इन्द्रिय के विषय में जिसका प्रेम है, उससे बँधते कर्म और कर्मों से प्राप्त देह। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा छूता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा छूता नहीं, प्रभु! आहाहा! लो! यह आषाढ़ शुक्ल एकम् आयी आज।

मुमुक्षु : पूर्व कर्म सत्ता में है...

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्ता जड़। उससे मिले देह, देह से भगवान भिन्न। ऐसी बात है। बातें कठिन, बापू! भाई! जो कुछ शुभाशुभभाव किये हों, उनसे जड़कर्म बँधते हैं, और उनके फलरूप से यह देह मिले जड़। लो! इसमें रहा, ऐसा कहना, वह असत् नय से है। असद्भूतनय कहो। आहाहा! भगवान तो उससे भिन्न अभी है।

इसे कहते हैं, देखो! **उसको तुम परमात्मा जानो,...** सन्त, दिगम्बर मुनि... आहाहा!

यह दिगम्बर सन्त की वाणी है। ऐसी वाणी अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त वनवासी वन में रहते थे। वे फरमाते हैं, भाई! देह में रहा है परन्तु देह को छूता नहीं। अपनी परिणति द्वारा उसे स्पर्श। उसे स्पर्श। आहाहा! इसे (शरीर को) स्पर्शता नहीं परन्तु शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र द्वारा इसे स्पर्श (आत्मा को) स्पर्श। आहाहा! यह परमात्मा, इसे जाने, भाई! तो तुझे धर्म होगा। बाकी धर्म-बर्म हराम है। आहाहा! आहाहा! लाख भक्ति करे। उसमें नहीं आता? 'एक बार वंदे जो कोई'। सम्मेदशिखर का आता है न? 'एक बार वंदे जो कोई, नरक-पशु गति न होई।' इसमें क्या हुआ? भव का अभाव उसमें नहीं है। पुण्य बँधे, स्वर्गादि मिले। आहाहा! वह कहीं आत्मा का लाभ नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! भगवान! आहाहा!

स्वरूप को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में तिष्ठकर चिन्तवन करो। आहाहा! यह सन्तों की वाणी। वह यह उत्कीर्ण हुई है। पौने चार लाख अक्षर हैं। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा अन्दर जो शुद्ध चैतन्यघन है, पुण्य-पाप के विकल्प जो उठते हैं, वे कहीं आत्मा नहीं हैं। वह तो आस्रव है, अनात्मा है। आहाहा! ऐसे आस्रवरहित ऐसा शुद्ध भगवान यह अभी है। उसे यह पुण्य-पाप के भाव रहित निर्विकल्प शान्ति, श्रद्धा-ज्ञान द्वारा उसे जान, इसे अनुभव कर। आहाहा! तो तुझे जन्म-मरण मिट जायेंगे। नहीं तो जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। चौरासी के अवतार सिर पर पड़े हैं, बापू! आहाहा! देह और देह का संयोग यह अनुकूलता सब या प्रतिकूलता, इनके प्रेम में तो चौरासी की गति मिलती है। आहाहा! चौरासी के अवतार, नरक और निगोद। आहाहा! तेरा नाथ अन्दर विराजता है, उसकी ओर देख न, प्रभु! ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसका स्वीकार कर। वह शुद्ध पूर्णानन्द का नाथ प्रभु है। वह देहदेवल से भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें लिखा है। सिद्धालय में सिद्ध हैं और देहालय में तू देव है। पहले आ गया है। नहीं? पहले आ गया। सिद्धालय में। आहाहा! पहले बहुत गाथायें गयी न, देखो! २५वीं गाथा में है।

जो सिद्धालय है, वह देहालय है,... २५वीं गाथा। आ गया है। अन्तिम शब्द हैं। २५वीं गाथा के अन्तिम शब्द हैं। **जो सिद्धालय है, वह देहालय है, अर्थात् जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है, वैसा ही हंस (आत्मा) इस घट (देह) में विराजमान है।** आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने जगत को सत्य प्रसिद्ध किया, उसे बैठना, न बैठना... ऐसा मार्ग। यह तो ऐसा कहे, हमारे से भी तुझे आत्मा प्राप्त नहीं होगा। हम सुनाते हैं। सुनने से भी तुझे प्राप्त नहीं होगा। ऐसी बात!

मुमुक्षु : यह तो कहते हैं, हमको सुनाते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनावे कौन? वाणी तो जड़ है। आहाहा! ऐसी बातें है, भाई! वर्तमान व्यवहार के रसिकों को तो ऐसा लगे कि यह तो निश्चय... निश्चय (करते हैं)। अर्थात् सत्य। आहाहा! व्यवहार तो उपचार और असत्य है, झूठा है। सच्चिदानन्द प्रभु, वह शुद्धात्मा की अनुभूति से प्राप्त हो, ऐसी वह चीज़ है। भक्ति और शुभराग से भी प्राप्त हो, ऐसा आत्मा नहीं है। आत्मा ऐसा नहीं। आहाहा! उसे ऐसा मानना कि वह पर से, भक्ति से प्राप्त होगा, यह आत्मा क्या है, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह आत्मा जड़रूप देह में व्यवहारनयकर रहता है, सो देहात्मबुद्धिवाले को नहीं मालूम होती है,... लो! जिसे देह और राग और परवस्तु का प्रेम है (ऐसी) देहात्मबुद्धिवाले को आत्मा देह से भिन्न भासित नहीं होता। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो जो शुभाशुभभाव है, उसमें जिसकी बुद्धि है, उसे आत्मा भिन्न भासित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **देहात्मबुद्धिवाले को नहीं मालूम होती है,...** आहाहा! जिसे यह देह की और पुण्य के भाव की आत्मबुद्धि है कि उससे प्राप्त होगा, उससे मुझे लाभ होगा, ऐसे देह और राग में आत्मा माननेवाले को ज्ञात नहीं होता। उसे **नहीं मालूम होती है,...** आहाहा! वह दिशा बदलता नहीं।

क्या कहा, समझ में आया? शरीर और राग का प्रेम है, उसकी दिशा बाहर है। उसके द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! दिशा को बदलने से ज्ञात हो, ऐसा है। ऐसी बात! यह क्रियाकाण्डी सब महाव्रत पालन करे और यह करे... और करे... उससे धर्म होगा, ऐसा माने। उसे आत्मा ज्ञात नहीं होगा, कहते हैं। आहाहा! महाव्रत के परिणाम भी राग है।

मुमुक्षु : महापुरुष इनका आचरण करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो किसकी (बात है) ? दृष्टि सहित की बात है। यह तो अन्दर में स्वरूप में रमणता होना। महापुरुषों ने किया कि महा... आता है न ? खबर है न! आनन्द के नाथ को ढंढोलकर जिसने प्रगट किया है। यह आयेगा अभी। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! अनादि से जिसे शुभ और अशुभराग का स्वाद आता है, वह कर्मचेतना का स्वाद, वह मिथ्या स्वाद है। समझ में आया ? परन्तु जिसे उस कर्मचेतना से भिन्न ऐसा भगवान आत्मा, उसका जिसे आनन्द का स्वाद आता है, उसे ज्ञानचेतना कहा जाता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : वह स्वाद कैसा होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे, ऐसा होता है। करे, उसे खबर पड़े। आहाहा! देखो न! आहाहा!

देहात्मबुद्धि... की व्याख्या चलती है यह। देह, वह मैं हूँ और देह की क्रिया मुझसे होती है। ऐसे पंच महाव्रत के परिणाम, वह मैं और वह मेरी क्रिया है—ऐसा माननेवाले को आत्मा मालूम नहीं पड़ता। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई! आहाहा! दूसरे प्रकार से तोड़-मरोड़ कर कहेगा। भाई! ऐसे हाथ नहीं आवे, भाई! आहाहा! यह सहजात्मस्वरूप है। सहज शुद्ध दशा से ही प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया ? ओहोहो! ऐसा कहते हैं न कि शुभभाव करते-करते शुद्धता को प्राप्त करेगा। शुभभाव साधन है और फिर शुद्धता प्रगट होगी। अरे! प्रभु! जिसे इस शुभभाव का प्रेम है, वह ऐसा साधन मानता है, उसे आत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ऐसा यहाँ कहते हैं। उसे पुण्य—राग के भाव का प्रेम है। परमात्मस्वरूप से भिन्न राग है और भिन्न राग है उसका प्रेम है, वह उसकी देहात्मबुद्धि है। उसे आत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। लोगों को ऐसा लगे बेचारों को (कि) यह... सोनगढ़ में निश्चय... निश्चय... निश्चय... व्यवहार का तो लोप करते हैं, ऐसा बेचारे कहते हैं। भाई! ऐसी गाली देना रहने दे, बापू! यह तुझे गाली पड़ती है, हों!

राग से ज्ञात हो, पुण्य के परिणाम से धीरे-धीरे ज्ञात हो, ऐसा आता है। परन्तु

किसे ? मोक्ष अधिकार में। जिसे राग से रहित आत्मा का अनुभव हुआ है, उसे धीरे-धीरे शुभराग आया, उसमें उसे अशुभ टलता है। अज्ञानी को कहाँ टलता है ? वह तो मिथ्यात्व में खड़ा है। वह शुभभाव में अशुभ टलता है, स्वभाव का आश्रय है, इसलिए (टलता है)। वह अशुभराग को टालता है। वह फिर शुभ को टालेगा। इससे उसे क्रम-क्रम से कहा है। मोक्ष अधिकार में है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

सत्य को सत्य रीति से रख। तोड़-मरोड़ न कर, भाई! तुझे कुछ ठीक लगे और लोगों को ठीक लगे, लोकरंजन हो, उसमें कहीं बापू! सार नहीं है। अष्टपाहुड़ में कहा है, लोकरंजन। ऐसा शुभभाव करते हुए तुमको कल्याण होगा। आगे चलो। साधन है। लोग सुनकर प्रसन्न होंगे। यह लोकरंजन तुझे मार डालेगा, भाई! दुनिया ऐसा कहेगी, वाह! वाह! देखो! इन्होंने अनेकान्त मार्ग कहा। वह तो एक निश्चय से प्राप्त होता है... निश्चय से (प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं)। लोकरंजन। तारणस्वामी में उन्होंने बहुत कहा है। भगवानदास! लोकरंजन करनेवाले मरकर नरक और निगोद में जायेंगे। लोगों को प्रसन्न करे ऐसे। आहाहा!

मुमुक्षु : लोग नाराज हों, ऐसा कहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाराज हों, उसका क्या काम है यहाँ ? प्रसन्न हों। प्रसन्न हो जाये कि आहाहा! इतना ऐसा करे तो ऐसा होता है। यहाँ महावीरकीर्ति आये थे। फिर मुझे आहार करके घुमने की आदत है न, इसलिए वहाँ उतरे थे वे। एक पुस्तक हमारे पास है। उसमें लिखा है... जैसे श्वेताम्बर में शत्रुंजय का एक माहात्म्य का पुस्तक है। वैसा ऐसा कि अपने सम्मेदशिखर के माहात्म्य का पुस्तक है। उसमें ऐसा लिखा है कि सम्मेदशिखर की यात्रा-दर्शन करे तो ४९-४८ भव में मोक्ष जाये। (हमने) कहा, ऐसी वाणी वीतराग की नहीं। पर के आश्रय से भव घटे, यह वीतराग की वाणी नहीं है। आहाहा! महावीरकीर्ति पद्मावती और देव को बहुत मानते हैं। पद्मावती। आहाहा! यहाँ आये थे। चार दिन रहे थे। बापू! मार्ग यह नहीं है, भाई! यह सम्मेदशिखर की यात्रा करने से ४८-४९ भव में मोक्ष हो, यह वाणी वीतराग की नहीं है। वीतराग की वाणी तो चैतन्य भगवान के आश्रय से संसार परित हो। पर के आश्रय से परित न हो, यह वीतराग

की वाणी है, कहा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी भी गड़बड़ सब गड़बड़। अब उनके साथ पद्मावती देवी रखते।

मुमुक्षु : पार्श्वनाथ को....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अब उसे क्या है? पार्श्वनाथ भगवान को माने तो भी राग है। पद्मावती को माने, वह तो मिथ्यात्व है।

रखे और ऐसे रखे। आहाहा! यहाँ तो तीन लोक के नाथ देवाधिदेव को मानना, वह भी शुभराग है। आहाहा! पुण्यबन्ध का कारण है। अबन्ध का कारण नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सिर पर बैठाओ तो ठीक?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिर पर बैठाओ तो ऊपर बहुत देव हैं। आहाहा! सबसे ऊपर तो सिद्ध हैं। परमात्मा सिद्ध भगवान सबसे ऊँचे हैं। लोकाग्र में। आहाहा! उन्हें सिर पर रख न! तो उन्हें मानने से भी शुभराग है, कहते हैं। ऐसी बात है, बापू!

स्व आश्रय में धर्म का लाभ होता है। बाकी पर आश्रय में पुण्य आदि का लाभ होता है, वह तो संसार है। आहाहा! बहुत कठिन बात है, भाई! लोगों को बैठना कठिन। निवृत्ति नहीं मिलती। थोड़ा समय मिले, उसमें सुनने का मिले, उसमें रुक जाये। यह जिन्दगी चली जाती है। कल बेचारा एक व्यक्ति आया था। भावनगरवाला अशोक है न? एक है। कल लड़का आया था। वह अपने तीन लड़के यहाँ बोर्डिंग में पढ़ गये हैं। यह प्रेमचन्दभाई के तुम्हारे दामाद आये थे कल। कल बेचारा सुनकर कहे... आहाहा! यहाँ पढ़ गये हैं न तीन? सुनकर कल कहे, महाराज! यह सुनकर आँख में से आँसू बह जाते हैं। अररर! यह क्या करते हैं और कहाँ जायेंगे? ऐसा कहते थे। कल कहते थे। नरम व्यक्ति है। कारखाना है। पीपरमेन्ट का कारखाना है। लड़कों को देने के लिये पीपरमेन्ट लाये थे। तीन-सवा तीन को (आये थे)। पीपरमेन्ट लाये थे। दी उनको हाथ में। परन्तु यह किसी को कहा कि... आहाहा! यह सुनकर अरे! यह कहाँ जाते हैं और क्या करना है? आँख में आँसू बह जाते हैं, ऐसा कहे। अरर! कहाँ जाऊँगा... कहाँ जाऊँगा...? बापू! पूरे दिन पर के काम कर-करके, अरे! प्रभु को रोका वहाँ उसने। उसका फल तो संसार का फल है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, देखो न! आहाहा! **निर्विकल्प समाधि में तिष्ठकर चिन्तवन करो।** आहाहा! राग से रहित अन्दर स्थिरता करके उसमें स्थिर होकर ध्यान कर। आहाहा! राग के काम पूरे दिन पुण्य और पाप के। अन्त में तो संसार के तो पाप के ही हैं पूरे दिन। उसमें किसी समय और यह यात्रा, भक्ति, पूजा, श्रवण, वांचन हो तो यह शुभभाव है। आहाहा! पठन, पाठन, स्तुति, वन्दन, भक्ति वह सब शुभभाव है। उससे आत्मा नहीं मिलेगा। जिसे उस शुभभाव का प्रेम है, उसे देह का ही प्रेम है। वह शुभभाव वास्तव में तो निश्चय से तो अचेतन है। भले उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है, परन्तु है उसमें ज्ञान चैतन्य की ज्योति का अभाव है। ऐसे अचेतन के प्रेमवाले को यह आत्मा ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा मार्ग। है?

उसी स्वरूप को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में तिष्ठकर... देखा! आहाहा! '**स्थित्व**' शब्द है न पाठ में? '**वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वेति**' स्थिति है उसमें अन्दर। संस्कृत में। संस्कृत में, हों! '**स्थित्व**'। आहाहा! जैसे यहाँ राग में स्थिर होकर, राग में स्थिर होकर बाहर के प्रति तेरा लक्ष्य जाता है। आहाहा! वैसे स्वरूपसन्मुख की दृष्टि की शान्ति निर्विकल्प में स्थिर होकर, टिककर उसे देख। आहाहा! ऐसा मार्ग, बापू! यह दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त कहीं यह बात नहीं है। अभी तो वाडा में भी उल्टा किया है। आहाहा!

यह तो सनातन वीतराग मार्ग है। परमात्मा केवली का कहा हुआ। आहाहा! वे ऐसा पुकारते हैं... आहाहा! **वही शुद्धात्मा देह के ममत्व से रहित (विवेकी) पुरुषों के आराधने योग्य है।** आहाहा! देहात्म (बुद्धि में) राग का प्रेम है, उसे ज्ञात नहीं होता। अब **शुद्धात्मा देह के ममत्व से रहित...** होकर, राग और देह का प्रेम छोड़कर। आहाहा! वह विवेकी अर्थात् भिन्न करनेवाले को **पुरुषों के आराधने योग्य है।** भिन्न करके आराधने योग्य है। उसे आत्मा प्राप्त होगा और उसे धर्म होगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ३५

अथ यः समभावस्थितानां योगिनां परमानन्दं जनयन् कोऽपि शुद्धात्मा स्फुरति तमाह-

३५) जो सम-भाव-परिट्ठियहँ जोइहँ कोइ फुरेइ।
परमाणंदु जणंतु फुडु सो परमप्पु हवेइ।।३५।।

यः समभावप्रतिष्ठितानां योगिनां कश्चित् स्फुरति।
परमानन्दं जनयन् स्फुटं स परमात्मा भवति।।३५।।

यः कोऽपि परमात्मा जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखशत्रुमित्रादिसमभावपरिणतस्व-शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकवीतरागनिर्विकल्पसमाधौ प्रतिष्ठितानां परमयोगिनां कश्चित् स्फुरति संवित्तिमायाति। किं कुर्वन्। वीतरागपरमानन्दजनयन् स्फुटं निश्चितम् तथा चोक्तम् - ''आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः।।'' हे प्रभाकरभट्ट स एवंभूतः परमात्मा भवतीति। अत्र वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतानां स एवोपादेयः, तद्विपरीतानां हेय इति तात्पर्यार्थः।।३५।।

आगे जो योगी समभाव में स्थित हैं, उनको परमानन्द उत्पन्न करता हुआ कोई शुद्धात्मा स्फुरायमान है, उसका स्वरूप कहते हैं -

जो प्रतिष्ठित समभाव में उन योगियों के प्रगट है।
जिससे प्रगट हो परम आनन्द प्रगट वह परमात्म है।।३५।।

अन्वयार्थ :- [समभावप्रतिष्ठितानां] समभाव अर्थात् जीवित, मरण, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, शत्रु, मित्र इत्यादि इन सबमें समभाव को परिणत हुए [योगिनां] परम योगीश्वरों के अर्थात् जिनके शत्रु-मित्रादि सब समान है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्ररूप अभेदरत्नत्रय जिसका स्वरूप है, ऐसी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में तिष्ठे हुए हैं, उन योगीश्वरों के हृदय में [परमानन्दं जनयन्] वीतराग परम आनन्द को उत्पन्न करता हुआ [यः कश्चित्] जो कोई [स्फुरति] स्फुरायमान होता है, [स स्फुटं] वही प्रकट [परमात्मा] परमात्मा [भवति] है, ऐसा जानो। ऐसा ही दूसरी जगह भी ''आत्मानुष्ठान'' इत्यादि से कहा है, अर्थात् जो योगी आत्मा के अनुभव में तल्लीन हैं,

और व्यवहार से रहित शुद्ध निश्चय में तिष्ठते हैं, उन योगियों के ध्यान करके अपूर्व परमानन्द उत्पन्न होता है। इसलिए हे प्रभाकरभट्ट, जो आत्मस्वरूप योगीश्वरों के हृदय में स्फुरायमान है, वही उपादेय है। जो योगी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लगे हुए हैं, संसार से पराङ्मुख हैं, उन्ही के वह आत्मा उपादेय है और जो देहात्मबुद्धि विषयासक्त हैं, वे अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं, उनको आत्मरुचि नहीं हो सकती यह तात्पर्य हुआ।।३५।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल २, मंगलवार
दिनांक-२९-०६-१९७६, गाथा-३५-३६, प्रवचन-२१

परमात्मप्रकाश, ३५। गाथा ३५। **आगे जो...** आत्मा के स्वभाव में जुड़ान करनेवाला **योगी समभाव में स्थित हैं, उनको परमानन्द उत्पन्न करता हुआ कोई शुद्धात्मा स्फुरायमान है, उसका स्वरूप कहते हैं**- जो समभाव में स्थित होकर स्वरूप शुद्ध अखण्ड चैतन्य के साथ जिसने जुड़ान किया है, योग जोड़ा है, ऐसे क्षण में उसे **परमानन्द उत्पन्न करता हुआ...** अतीन्द्रिय आनन्द की उत्पत्ति करता हुआ जो स्फुरायमान होता है, वह आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ३५।

३५) जो सम-भाव-परिट्ठियहँ जोइहँ कोइ फुरेइ।
परमाणंदु जणंतु फुडु सो परमप्पु हवेइ।।३५।।

समभाव। यह जीवन हो या मरण हो। जीवन में हर्ष नहीं, मरण में शोक नहीं। दोनों में जिसे समभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : मरण के समय आनन्द हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द, वह तो अपना है, मरण का आनन्द नहीं। आनन्द अन्तर का आवे, वह कहीं मरण का नहीं है। और जीते जी अन्तर का आनन्द आवे, वह कहीं जीवन का नहीं। आहाहा! यह तो आयुष्य की स्थिति जीवन हो या देह का छूटना— मरण हो, दोनों में जिसे समभाव है। आहाहा! दोनों में दोनों ज्ञेय हैं। उसमें कहीं हर्ष और शोक नहीं है। आहाहा! वह आत्मा में जा सकता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जीवित, मरण, लाभ, अलाभ,... अनुकूलता शरीर, वाणी, कुटुम्ब, पैसा आदि

इज्जत, इसका लाभ हो तो भी जिसे समभाव है और अलाभ हो, नुकसान हो तो भी जिसे समभाव है। आहाहा! लाभ-अलाभ, बाहर की चीज़ें, उसमें कोई अनुकूलता की प्राप्ति हो और प्रतिकूलता की प्राप्ति हो, दोनों में जिसे समभाव है। **सुख, दुःख...** संयोगी अनुकूलता में और प्रतिकूलता में जिसे समभाव है। सुख-दुःख अर्थात् विकल्प नहीं। परन्तु अनुकूल सामग्री (और) प्रतिकूल में जिसका समभाव है।

मुमुक्षु : समभाव है अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् कि जिन्हें समता है। विषमता जहाँ नहीं। वह अन्तर में जा सकता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उसे अन्तर आत्मा में से आनन्द की स्फुरणा प्रगट करता हुआ आत्मा उसे ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। यह तो अकेला मक्खन है। सुख-दुःख, अनुकूल संयोग हो या प्रतिकूल हो, दोनों में जिसकी ज्ञाताबुद्धि है, समभावबुद्धि है। आहाहा! और **शत्रु, मित्र...** सिर को काटनेवाला हो या शरीर की अनुकूलता देनेवाला हो—सेवा करनेवाला आदि मित्र, दोंनों में जिसे समभाव है। आहाहा!

भगवान आत्मा जिनस्वरूपी वीतरागस्वरूपी आत्मा, वह ऐसे समभाव से पकड़ में आये ऐसा है, कहते हैं। समझ में आया? मार्ग यह है। प्रभु स्वयं जिनस्वरूप है। समभाव वीतरागस्वरूप ही भगवान आत्मा है। त्रिकाल, हों! उसे ध्यान में लेने के लिये समभाव की दशा झुककर... आहाहा! ऐसा जो **शत्रु, मित्र इत्यादि...** (उसमें समभाव है)।

उत्कृष्ट योग जुड़ गया है अन्दर। आहाहा! ऐसे **परम योगीश्वरों के अर्थात् जिनके शत्रु-मित्रादि सब समान है,...** आहाहा! एक बात। **और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अभेदरत्नत्रय जिसका स्वरूप है,...** आहाहा! जिसने भगवान परमानन्द आत्मा की प्रतीति—सम्यग्दर्शन प्रगट किया है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान। वह स्वरूप जो ज्ञानमूर्ति, उसका ज्ञान जिसने प्रगट किया है और सम्यक्चारित्र। आहाहा! और स्वरूप में शान्ति की रमणता, शान्तस्वरूप है, उसमें शान्ति की रमणता, ऐसी चारित्रदशा जिसे प्रगट की है। ऐसा अभेदरत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय। अभेदरत्नत्रय कहो या निश्चयरत्नत्रय कहो, **जिसका स्वरूप है,...** जिसका यह स्वरूप है। आहाहा! **ऐसी वीतराग-**

निर्विकल्पसमाधि में तिष्ठे हुए हैं,... ऐसी रागरहित अभेद शान्ति में स्थित रहा हुआ। आहाहा!

उन योगीश्वरों के हृदय में... उस क्षण में जिसकी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई है... आहाहा! उसे ही वीतराग परम ज्ञान, वही प्रगट... लो! **वीतराग परम आनन्द को उत्पन्न करता हुआ...** आहाहा! ऐसे सन्तों को, योगीश्वरों को परम आनन्द वीतरागपना उत्पन्न करता हुआ। आहाहा! **वीतराग परम आनन्द को उत्पन्न करता हुआ...** पर्याय में वीतराग परमानन्द प्रगट करता हुआ आत्मा स्फुरायमान होता है। आहाहा! ऐसी बात है। '**परमानन्दं जनयन्**' पाठ इतना है, फिर स्पष्टीकरण किया। वीतराग परम आनन्दमय। आहाहा!

आनन्द को उत्पन्न करता हुआ जो कोई स्फुरायमान होता है,... परम आनन्द की दशा जो प्रगट करता है, वह आत्मा। वह आत्मा बाहर आया, ऐसा कहते हैं। स्फुरायमान हुआ। परमानन्द की दशा परिणत आत्मा स्फुरायमान हुआ। यह आत्मा, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? समभाव में स्थित और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थित... आहाहा! वह मुनियों को हृदय में वीतरागी परमानन्द उत्पन्न करता हुआ आत्मा प्रगट होता है। अनाकुल आनन्द की दशा प्रगट करता हुआ प्रभु दृष्टिगोचर होता है। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, समझ में आया?

'**यः कश्चित् स्फुरति**' आहाहा! वह **जो कोई...** आनन्द अन्दर प्रगट होता है, वह आत्मा है। आहाहा! **वही प्रकट परमात्मा है,...** आहाहा! समभाव की स्थिति द्वारा और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्विकल्प समाधि—शान्ति द्वारा अन्तर में जो परमानन्द से प्रगट होता भगवान, वह परमात्मा है। पण्डितजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी वह आनन्द से प्रगट होता प्रभु, उस सम्यग्दर्शन में ज्ञान और चारित्र साथ ही है। स्वरूपाचरण भी इतना चारित्र है। इसलिए स्वभाव सन्मुख की दृष्टि के परिणमन में भगवान परमानन्द से प्रगट होता है। आहाहा! जिसका रूप परमानन्द है, उस परमानन्द से वह आत्मा स्फुरायमान (होता है)। आहाहा! परम आनन्द जिसका त्रिकाली स्वभाव है, उसे वर्तमान में समभाव से उसमें देखने पर परमानन्द पर्याय में

प्रगट होता है। वह स्फुरायमान आत्मा होता है। आहाहा! जैसे फब्बारे में पानी आता है न? उसी प्रकार अन्दर में एकाग्र होने से आनन्द का फब्बारा फूटता है, कहते हैं। आहाहा! अब व्यवहारवालों को ऐसी बात कठिन लगे। व्यवहार से होता है, व्यवहार साधन है। भाई! वह तो आरोप से कथन है, भाई!

जिसे—व्यवहार को तो पुद्गल के परिणाम कहा। रूपी कहा न? राग को, शुभराग, वह रूपी कहा। आया न दोपहर में? वह तो रूपी है, पुद्गल परिणाम है। कल दोपहर में यह आया था कि उसमें जिसका उल्लास है। वह उसने कहा परन्तु उसमें यह उल्लास आया। उसमें जिसकी भावना है कि यह हो, राग हो, राग हो। उसमें उसकी जिसे प्रशंसा है, उसमें जो रुका हुआ जीव में... उसकी जिसे श्रद्धा है, वह स्वभाव से भ्रष्ट है। आहाहा! यह मार्ग से कहा है। दोपहर में दिमाग में यह आया था। आहाहा!

शुभराग परमात्मा की भक्ति का, श्रवण का, देव-गुरु-शास्त्र के प्रेम का राग, उस राग को परमात्मा तो कहे, यह रूपी है न, भाई! यह पुद्गल रूपी से उत्पन्न हुआ, इसलिए रूपी है। उसे प्रति का उल्लास आदि है, वह तो आत्मा के स्वभाव को भ्रष्ट करता है। और उससे हटकर द्रव्यस्वभाव के प्रति उत्साह आता है, तब आनन्द से आत्मा स्फुरायमान होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार से नहीं प्रगट होता, ऐसा कहते हैं। व्यवहार साधन कहा है न? अरे! बापू! भाई! क्या हो? यह तो कथन की पद्धति है। आहाहा!

भगवान समस्वभावी आनन्द का नाथ प्रभु। समरस, वीतरागरस से भरपूर भगवान। दूसरे प्रकार से कहें तो अकषायस्वभाव से भरपूर तत्त्व, शान्त... शान्त... शान्त... उपशमरस का कन्द प्रभु, वह उपशमभाव—समभाव से ज्ञात हो, ऐसा है। राग से, पुण्य से, व्यवहार से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है। इस बात में झगड़ा करे कि ऐसा है, भाई! वह यह झगड़े का अवसर नहीं है, प्रभु! यह तो छूटने का अवसर। उसमें यह नहीं होता। आहाहा!

देखो न! आहाहा! सन्तों ने काम किया है न! दिगम्बर सन्त, उनकी चीज़ है यह तो आत्मा तो समभावी वस्तु है। समभावी कहो या जिनस्वरूपी कहो, वीतरागस्वरूपी

कहो, चारित्रस्वरूप कहो, अकषायस्वरूप कहो। आहाहा! ऐसा जो चैतन्यदल, वह तो समभाव से प्रगट हो, ऐसा है, कहते हैं। अर्थात् कि समभाव से ज्ञात हो ऐसा है। राग से ज्ञात हो ऐसा नहीं। राग तो विषमभाव है। उसकी जाति में तो है नहीं और यह समभाव तो उसके स्वरूप में है। समझ में आया? कितने ही कहे, यह और नया मार्ग निकाला। प्रभु! नया कहाँ है? भाई! यह अनादि का है।

मुमुक्षु : सुनने को नहीं मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिला न हो, इसलिए नया कहे। अनादि का यह मार्ग है। 'एक होय तीन काल में...' आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु आत्मा है वह तो... कहा न? परमात्मा स्वयं वीतरागस्वरूप से समभाव का पिण्ड प्रभु है। उसे वर्तमान दशा में समभाव है। जीवित, मरण, शत्रु, मित्र, सुख, दुःख... आहाहा! उसमें जिसका एकभाव है—समभाव है। यह ठीक और अठीक, ऐसा विषमभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे भाव में निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्विकल्प समाधि से। आहाहा! अन्दर में जो आनन्द से प्रगट हो, वह आत्मा, उसे परमात्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कहते हैं कि उसकी निर्विकल्प आनन्द की दशा प्रगट होनी चाहिए। निर्विकल्प आनन्द का स्वाद उसे आना चाहिए। आहाहा! तब वह... कहा न? **वीतराग परम आनन्द को उत्पन्न करता हुआ जो कोई स्फुरायमान होता है,...** प्रभु! वह आत्मा परमात्मा है। समझ में आया? यहाँ तो यह एक ही मार्ग कहा। व्यवहार से होता है (ऐसा) दूसरी जगह कहा है न? दूसरी जगह कहा, बापू! वह तो बतलाया है। उसके सन्मुख होने की वीतरागीदशा एक ही प्राप्त होने का उपाय है। समझ में आया? और वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान चौथे गुणस्थान में वीतरागीदशा है। कोई ऐसा कहे कि चौथे गुणस्थान में तो सराग समकित ही होता है। अरे! समकित सराग होता ही नहीं। राग और समकित दोनों चीज़ें ही अलग है। आहाहा!

मुमुक्षु : आगम में देखकर कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह (आगम में) देखकर कहते हैं, वह तो अन्दर राग है, उसे

बताते हैं। समकित तो राग बिना की चीज़ है। चारित्र का दोष साथ में है, उसे बतलाकर सरागसमकित कहते हैं। समझ में आया?

मूल वस्तु है, वह चैतन्यघन, विज्ञानघन है। आया था न? कल आया था या, नहीं? विज्ञानघन है। अर्थात्? वीतराग की मूर्ति है। विज्ञानघन में राग कैसा? और विज्ञानघन में अपूर्णता कैसी? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : विज्ञानघन में वीतरागता कहाँ आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विज्ञानघन, यही वीतरागता आयी। अकेला ज्ञान का पिण्ड। उसमें राग नहीं, विकार नहीं, विपरीतता नहीं, अल्पता नहीं। आहाहा! अरे! प्रभु एक ओर रह गया पूरा और उसके बिना सब बातें कीं। आहाहा!

स्फुरायमान होता है,... आहाहा! **वीतराग परम आनन्द को उत्पन्न करता हुआ...** आहाहा! **जो कोई स्फुरायमान होता है, वही प्रकट परमात्मा है,...** आहाहा! उसे परमात्मा की भेंट हुई। आहाहा! वह परमात्मा से मिला। समझ में आया? उसके जन्म-मरण गल गये। आहाहा! उसे आनन्द की दशा प्रगट हुई। वह पूर्ण आनन्द को प्रगट करेगा। आहाहा! धवल में आता है न? जिसने ऐसा सम्यक् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान स्वभाव के आश्रय से आनन्दसहित प्रगट हुआ, वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। ऐसा पाठ है। आहाहा! जैसे मनुष्य दूर हो और आवाज लगाये न? भाई! यहाँ आओ... यहाँ आओ... यह रास्ता कौन सा है? आहाहा! देखो तो सही वीतरागमार्ग! जिसे अन्तर्दृश्टि होकर मति-श्रुतज्ञान प्रगट हुए। धवल में परमात्मा कहते हैं, वह मतिज्ञान सम्यक् आनन्दसहित प्रगट हुआ, वह पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द को बुलाता है। आहाहा! अल्प काल में अब पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान आओ। आहाहा! देखो तो मार्ग प्रभु का! आहा! यह वीर का काम है, भाई! यह कायर का काम नहीं। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, प्रभु! तू वीतरागमूर्ति है न! हमको जो दशा प्रगट हुई, वह कहाँ से आयी? कि अन्तर में स्वरूप पूर्ण वीतराग है, पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण आनन्द है, पूर्ण वीर्य है। आहाहा! उसमें से पूर्ण प्रगट दशा हुई। जिसमें ऐसे पूर्णानन्द के नाथ की समभाव से प्रतीति की है अर्थात् सम्यग्दर्शन, वह वीतरागी पर्याय

है, ऐसा कहना है। ऐसे भाव से जिसने आत्मा प्रगट किया। आनन्द की स्फुरणा से प्रभु प्रगट हुआ। आहाहा! धर्म की पहली दशा प्रगट होने पर उस आनन्द का उफान पहला आवे, कहते हैं। ऐई! यह दूध में उफान नहीं आता? उफान। परन्तु वह तो पोला है। पाँच सेर दूध हो और उफन कर फूले, परन्तु वह तो पोला होता है। आहाहा!

भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण पड़े हैं। उसमें से जब पर्याय में स्फुरणा होती है, तो अतीन्द्रिय आनन्द का उफान बाहर आया। आहाहा! जैसे समुद्र के किनारे पानी का ज्वार आवे, वह अन्दर से आता है। समझ में आया? ज्वार कहते हैं? बाढ़। उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द, ज्ञान, स्वभाव का मध्य बिन्दु भरा है अन्दर। उसकी दृष्टि होने पर, उसकी पर्याय में—अवस्था में ज्ञान सम्यक्, श्रद्धा, शान्ति और आनन्द साथ में प्रगट होते हैं। वह आत्मा परमात्मा है। अरे... अरे! अब ऐसी बातें। वह तो दया पालना और यह करना। उसमें कुछ यह था? अरे! ऐ भाई! मार्ग नहीं, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! वह तो राग की मन्दता की क्रिया की बातें हैं। वे बन्धभाव की बातें हैं। यह तो अबन्धस्वरूप भगवान, अबन्धस्वरूप प्रभु, इसके अबन्ध परिणाम से यह ज्ञात हो, ऐसा है। अबन्ध परिणाम कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान परिणाम कहो। आहाहा! अबन्ध परिणाम कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। आहाहा! क्या परमात्मा की वाणी! क्या उनकी शैली! आहाहा!

'चिदानन्द भूपाल की राजधानी' ऐसा आता है। 'जिनादेश जाता' में आता है न! चिदानन्द भूपाल की राजधानी। वीतराग वाणी। 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी नमो देवी वागेश्वरी जिनवाणी।' आहाहा! वागेश्वरी अर्थात् वाघेश्वरी नहीं, वाकेश्वरी। वाक् की ईश्वर। वचन की ईश्वरता। समझ में आया? ऐसा वीतरागमार्ग परमात्मा का। अरे रे! जैन में जन्मे को सुनने को नहीं मिलता और दूसरे रास्ते चढ़कर मानता है, भाई! आहाहा! चौरासी के अवतार में वह डूब गया है।

यहाँ कहते हैं कि इसे प्रभु (आत्मा) का उद्धार करना हो तो राग से हटकर समभाव की वृत्ति द्वारा, परिणति द्वारा अन्दर आत्मा का जुड़ान कर। तुझे आनन्द है, वह आनन्द से स्फुट प्रगट होगा (कि) यह आत्मा है। तुझे उसका वेदन होगा और वेदन में

तुझे विश्वास होगा कि यह आत्मा परमात्मा है। पर्याय में आया, वह नहीं परन्तु पूर्ण वह परमात्मा। समझ में आया? ऐसी बात अब। अब वे बेचारे साधारण लोग...

मुमुक्षु : साधारण मनुष्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह महिलाये-बहिलायें बेचारी देखो न! लोगस्स बोलती थी न एक महिला। लोगस्स आता है न? विहुयरयमला। उसकी खबर नहीं होती—अर्थ की खबर नहीं होती। वह घड़ी लेकर बैठे। ४८ मिनिट हो तो पूरा हो जाये, तो सामायिक हुई। उसमें लोगस्स का पाठ बोलती थी। दशाश्रीमाली महिला थी। लींबडी में। विशाश्रीमाली और दशाश्रीमाली को विवाद था। दोनों को विरोध था। कुछ खबर नहीं होती। शब्द क्या है, इसका अर्थ क्या है, भाव क्या है? वह जब यह शब्द आया—विहुयरयमला। अर्थात् वह बोली विहा रोई मला। उन विशा के साथ विरोध था न? विशाश्रीमाली। लोग कहे, परन्तु अपना विवाद लोगस्स में कहाँ से आया? अरे! देखो तो सही, यह क्या कहते हैं? वहाँ तो कहते हैं, विहुयरयमला। विशा रोई मळया नहीं। यह अर्थ की खबर नहीं होती, भाव की खबर नहीं होती। अरे प्रभु! वहाँ तो कहते विहुय। हे परमात्मा! हे वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर! आपने विहुय। विशेष हुय—टाले हैं। हुय—टाले हैं, रयमला। यह जड़कर्म आठ, यह रज और पुण्य-पाप का भाव, वह मल। दोनों को आपने टाला है। ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! जिसने शुभभाव जो मैल है। दया, दान, व्रत, भक्ति, भाव, वह मैल है। प्रभु! आपने मैल को टाला है। आहाहा! और रजकण टले हैं अपने आप, परन्तु साथ में ऐसा कहा जाता है। आहाहा! अर्थात् जिसे अभी अर्थ की खबर नहीं होती। भाव की तो कहाँ रही? और वस्तु क्या है? आहाहा! अरे! उसे पता नहीं। उसे किसकी प्राप्ति होगी? आहाहा!

आचार्य महाराज कहते हैं, उसे परमात्मा जानो। ऐसा है न? आहाहा! **ऐसा ही दूसरी जगह भी 'आत्मानुष्ठान' इत्यादि से कहा है, अर्थात् जो योगी...** अर्थात् आत्मा में आनन्द में जुड़ान करे वह (योगी है)। वह अन्यमति के बाबा-बावा की यहाँ बात नहीं है। समझ में आया? योगी अर्थात् योग में जुड़ान। चैतन्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप में जिसका जुड़ान, दृष्टि का जुड़ान हो, उसे योगी कहा जाता है। आहाहा! वे बाबा-बावा, यह उन योगी की बात नहीं है, हों!

मुमुक्षु : णमो लोए सव्व साहूणं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सव्व साहूणं, वे आत्मा के साधक साधु हैं। कितने ही यह कहते हैं कि इसमें तो सब साधु आते हैं। णमो लोए में। भाई! वे साधु थे कब? आहाहा! अभी जिसे आनन्द प्रगट नहीं हुआ और आनन्दसहित दर्शन-ज्ञान-चारित्र की तीन दशा जिसे प्रगट नहीं हुई, आहाहा! ऐसे को साधु कौन कहे? जैनदर्शन में उसे साधु नहीं कहते। आहाहा! जिसे गणधर नमस्कार करे, वह पद कैसा होगा! चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना करनेवाले गणधर की अन्तर्मुहूर्त में जिसकी प्राप्ति ऐसी है। वे कहे कि णमो लोए सव्व साहूणं। हे सन्त! तेरे चरण में हमारा नमस्कार। आहाहा! बापू! वह सन्त दशा कैसी होगी, भाई! जिसे तीर्थंकर के वजीर—दीवान जिसे नमस्कार करते हैं। आहाहा!

णमो लोए सव्व साहूणं। आता है न? णमो लोए। यह आता है तो पहले से, हों! सबमें। शास्त्र का पद ऐसा है णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। यहाँ से शुरु होता है। परन्तु पश्चात् संक्षिप्त करके त्रिकाल को निकालकर लोए सव्व साहूणं रखा, यह पाँचों पद में गर्भित है। जैसे णमो लोए सव्व साहूणं, उसी प्रकार णमो लोए सव्व अरिहंताणं। ऐसा पाठ है। आहाहा! समझ में आया? और उसके साथ भगवान ने त्रिभुवन मिलाया है। धवल में है। णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व अरिहंताणं। आहाहा! णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व सिद्धाणं। ऐसा पद है। फिर संक्षिप्त कर दिया। णमो सव्व आईरियाणं। त्रिकालवर्ती आईरियाणं, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें जैन कहाँ आया? जैन के आचार्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जैन में ही होता है, दूसरे अन्य में नहीं होता। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र साधुपना तीन काल में नहीं होता। वह सुशीलकुमार है न एक स्थानकवासी? वह जा आया न अभी बाहर, विलायत में। वह ऐसा कहता है कि णमो लोए सव्व साहूणं में सब आते हैं।

मुमुक्षु : स्वयं आ जाये न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ था? अभी उसका भान नहीं तुझे। वीतराग क्या कहते हैं

और मार्ग क्या कहता है ? मुँहपत्ती सहित बलून में बैठकर विलायत जा आया। अमेरिका। स्वयं को खबर नहीं कि धर्म क्या है। आहाहा!

मुमुक्षु : अधिक नहीं रुके, एकदम सब चले आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो वहाँ चला नहीं लम्बा। उसे अंग्रेजी आती नहीं। हिन्दी आती है। हिन्दी में तो अपने लोग इकट्ठे हों थोड़े, वहाँ विलायत में। हिन्दी आवे उसकी इंग्लिश दूरे करे तब हो। चले आये।

अरे! भगवान, बापू! यह वीतराग मार्ग का स्वरूप कोई अलौकिक है। जिनेश्वर-परमेश्वर ऐसा कहे... आहाहा! प्रभु! कहते हैं, तू एक पूर्णानन्द का नाथ, पूर्ण स्वरूप... पूर्ण स्वरूप... पूर्ण स्वरूप... पूरा परमात्मा। परम आत्मा परम स्वरूपी भगवान, वह परमपारिणामिकस्वभावभाव, वह परम स्वरूप। चार पर्यायें, वे अपरमभाव हैं। आहाहा! समझ में आया ? त्रिकाली वस्तु है, वह परमभाव है। केवलज्ञानादि भी अपरमभाव है। आहाहा! एक समय की अवस्था है। समझ में आया ? ऐसा जो परम स्वभावभाव का वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा। अनादि-अनन्त वीतरागस्वरूप है वह। उसकी दृष्टि... आहाहा! वह समभावी दृष्टि, उसकी दृष्टि हो। राग बिना की दृष्टि, वह दृष्टि समभावी होती है। आहाहा! वह द्रव्य को विषय कर सकती है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, भाई! सत्य तो ऐसा है। इसलिए किसी ने व्यवहार से मनाया, किसी ने भक्ति से मनाया। यह सब वीतरागमार्ग नहीं है, भाई! आहाहा! क्या गाथा!

'यः कश्चित् स्फुरति स परमात्मा' आहाहा! समभाव की वीतराग परिणति द्वारा जो अन्तर में एकाग्र हुआ और जो आनन्द स्फुरित हो... आहाहा! वह परमात्मा स्वयं भगवान परमात्मा है। आहाहा! भगवान अरिहन्त परमात्मा हुए, वे तो उनकी दशा में वे हुए। आहाहा! यह स्वयं ही परमात्मा है। **'स परमात्मा' 'स स्फुटं परमात्मा'** आहाहा! भाई! इन मन्त्रों को सुनकर इसे समझना चाहिए। यह तो वीतराग परमात्मा के मन्त्र हैं। आहाहा!

जो योगी आत्मा के अनुभव में तल्लीन हैं,... देखो! वस्तु भगवान आत्मा के अनुभव में, स्वभाव सन्मुख में तल्लीन है। **व्यवहार से रहित...** राग के विकल्प से

रहित। आहाहा! **शुद्ध निश्चय में तिष्ठ हैं,...** आहाहा! शुद्ध वस्तु है, उसमें स्थित है। आहाहा! यह तो अकेला मक्खन है। बात ऐसी है। आहाहा! उसे ज्ञान में तो ले। वस्तु ऐसी है, भाई! यह कोई पक्ष की बात नहीं। यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ने कहा, वह मार्ग यह है। कहते हैं कि **व्यवहार से रहित शुद्ध निश्चय में तिष्ठ हैं,...** आहाहा! यह विकल्प जो भक्ति आदि का और दया-दान का राग, उससे हटकर स्वभाव के निश्चय में स्थिर है। आहाहा!

उन योगियों के ध्यान करके... ऐसे सन्तों को अथवा स्वरूप का जुड़ान करनेवाले को **अपूर्व परमानन्द उत्पन्न होता है...** पूर्व में अनन्त काल में कभी नहीं आया, ऐसा आनन्द सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर अतीन्द्रिय आनन्द आता है। अभी तो समकित—चौथा गुणस्थान पहले। आहाहा! पूरे दिन व्यापार करना, पाप में जुड़ान। घण्टे भर समय मिले, उसमें सुनने जाये, उसमें सुनने का वापस ऐसा मिले तो बेचारे का सारा समय चला जाये।

मुमुक्षु : मुम्बई में मिले एक घण्टा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुम्बई में। यह तो और सुनने जाये एक घण्टे। आहाहा! वह तो बहुत आते बेचारे... व्याख्यान हुए न वहाँ? ५१ व्याख्यान। २६ दिन रहे। सात व्याख्यान हुए घाटकोपर, ८ हुए मलाड, और ३६ हुए दादर। परन्तु पाँच-छह हजार से कम लोग कभी नहीं। ८, १०, १२, १३, १५ हजार तक हो गये। १५-१५ हजार लोग सुनते थे, बापू! सुनो। भाई! आहाहा! यह वीतराग का मार्ग ऐसा है, बापू! भाई! लोग सुनते थे। स्थानकवासी, श्वेताम्बर सब। हजारों, दो हजार, पाँच हजार... महिलायें ऐसे सुनें। सुनो भाई! रुचे सुहावे उसे सुहाओ, भाई! बड़े का सन्देश है, भाई! वीतराग परमात्मा का सन्देश है। आहाहा!

इसलिए हे प्रभाकर भट्ट... मुनि कहते हैं। आहाहा! **जो आत्मस्वरूप योगीश्वरों के हृदय में स्फुरायमान है,...** आहाहा! जो धर्मात्मा को अन्तर आत्मा की स्फुरायमान हुई है... आहाहा! **वही उपादेय है।** वह त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु आत्मा, वह आदरणीय—आदरनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? वह विज्ञानघन है, आनन्दकन्द है, स्वच्छता का सागर है, प्रभुता का ईश्वर है। आहाहा! पूर्ण ईश्वर शक्ति उसमें पड़ी

है। आहाहा! ईश्वर दूसरा है, वह इसका कोई कर्ता नहीं। आहाहा! कोई ईश्वर कर्ता आत्मा का है, ऐसा नहीं है। यह सब बातें सुने, ईश्वर की दया हो। कौन सा ईश्वर? परमात्मा वीतराग हैं वे तो साक्षी हैं। वे तो केवलज्ञानी हैं, वे कहीं किसी के कर्ता नहीं। आहाहा! और तेरा सत् है, वह सत् है, उसे कौन करे? है, उसे कौन करे? न हो, उसे कौन करे? है, उसे कौन करे? आहाहा! शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा, आनन्द का कन्द प्रभु वीतरागमूर्ति प्रभु सत् है। उसे करे कौन? उसका नाश हो कैसे? वह स्वभाव से खाली हो कैसे? आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा सन्तों के हृदय में स्फुरायमान (होता है), वह उपादेय है। आहाहा! व्यवहार उपादेय नहीं, ऐसा कहा। वह तो नहीं परन्तु परिणति उपादेय नहीं, वस्तु उपादेय है, ऐसा कहा। उपादेय करनेवाली पर्याय। त्रिकाली भगवान आत्मा, वह आदरणीय है। आहाहा!

जो योगी... अर्थात् धर्मात्मा। **वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लगे हुए हैं,...** आहाहा! जो कोई आनन्द के नाथ में लीन हुए हैं। रागरहित दृष्टि होकर अन्दर में स्थिरता हुई है। आहाहा! **संसार से पराङ्मुख हैं,...** यह विकल्प जो रागादि, उससे उल्टे हो गये हैं, पराङ्मुख हो गये हैं। स्वसन्मुख और राग से पराङ्मुख। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आत्मा के सन्मुख (और) राग से पराङ्मुख। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों एक ही बात हुई?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्ति-नास्ति हुई। अस्ति-नास्ति, आहाहा!

उन्हीं के वह आत्मा उपादेय है,... उसे आत्मा उपादेय है। जिसने अन्दर उपादेय किया उसे। क्या कहा, समझ में आया? जिसने समभाव से आत्मा को पकड़ा और अनुभव किया, उसे आत्मा उपादेय है। ऐसे उपादेय... उपादेय... (बोले, वह उपादेय नहीं)। समभाव की परिणति द्वारा जो आत्मा में जुड़ गये हैं, लीन हैं, उन्हें वह आत्मा उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? **और जो देहात्मबुद्धि विषयासक्त हैं,...** आहाहा! देह को आत्मा माननेवाले। देह की क्रिया आत्मा करता है, ऐसा माननेवाले विषयासक्त हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय पर, की ओर जिसकी रुचि तथा प्रेम है, उसे यह दुर्लभ है। आहाहा!

मुमुक्षु : दुर्लभ है या अशक्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुर्लभ है, इसका अर्थ ही अशक्य है न! यहाँ तो संसार है।

वे अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं,... बस, इतनी बात। जिसे शरीर की बुद्धि है कि शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, शरीर वह मेरा है और पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर की जिसे आसक्ति और प्रेम है, उसे यह आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। **वे अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं,...** ऐसा। आहाहा! ऐसा जिसका प्रेम है, वह स्वरूप को कैसे जाने? समझ में आया? एक लड़का अच्छा जगे। बीस वर्ष का जवान रूपवान। ... ऐसा मानो, आहाहा! परन्तु कहाँ, वह चीज़ तो पर है। वह तेरी चीज़ है? पुत्र तेरा है? उसका आत्मा तेरा है? उसका शरीर तेरा है? आहाहा! जिसे ऐसी पर के प्रेम की बुद्धि है... आहाहा! पर को अपना मानने की जिसकी बुद्धि है, वह स्वचैतन्य (को) नहीं जान सकता।

वे अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं, उनको आत्मरुचि नहीं हो सकती... आहाहा! जिसे शरीर, पुत्र, पुत्रियाँ, इज्जत, कीर्ति की जिसे रुचि और प्रेम है, उसे यह भगवान आत्मा की रुचि नहीं हो सकती। एक म्यान में दोनों नहीं रह सकते। आहाहा! **उनको आत्मरुचि नहीं हो सकती यह तात्पर्य हुआ।** लो! आहाहा! जिसे राग और शरीर और बाह्य चीजों के प्रति जिसकी रुचि है, उनकी जिसे बुद्धि है, उसे आत्मरुचि नहीं होती। समझ में आया? और जिसे आत्मरुचि होती है, उसे राग और शरीर तथा बाहर की रुचि नहीं रहती। आहाहा! समझ में आया? यह तात्पर्य है। आसक्ति होती है परन्तु रुचि नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आत्मरुचिवाले को राग का भाव आता है, आसक्ति होती है, परन्तु रुचि नहीं होती। वह रुचता न हो, सुहाता न हो। आहाहा!

मुमुक्षु : .... विषयासक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, होती ही नहीं।

मुमुक्षु : देहात्मबुद्धि विषयासक्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे यह हो, उसे वह नहीं और वह हो, उसे यह नहीं। आहाहा! यह ३५ (गाथा हुई)।

गाथा - ३६

अथ शुद्धात्मप्रतिपक्षभूतकर्मदेहप्रतिबद्धोऽप्यात्मा निश्चयनयेन सकलो न भवतीति ज्ञापयति –

३६) कम्म–णिबद्धु वि जोइया देहि वसंतु वि जो जि।
होइ ण सयलु कया वि फुडु मुणि परमप्पउ सो जि।।३६।।

कर्मनिबद्धोऽपि योगिन् देहे वसन्नपि य एव।
भवति न सकलः कदापि स्फुटं मन्यस्व परमात्मानं तमेव।।३६।।

कर्मनिबद्धोऽपि हे योगिन् देहे वसन्नपि य एव न भवति सकलः क्वापि काले स्फुटं मन्यस्व जानीहि परमात्मानं तमेवेति। अतो विशेषः– परमात्मभावनाविपक्षभूतैः रागद्वेषमोहैः समुपार्जितैः कर्मभिरशुद्धनयेन बद्धोऽपि तथैव देहस्थितोऽपि निश्चयनयेन सकलः सदेहो न भवति क्वापि तमेव परमात्मानं हे प्रभाकरभट्ट मन्यस्व जानीहि वीतरागस्वसंवेदनज्ञानेन भावयेत्यर्थः। अत्र सदैव परमात्मा वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतानामुपादेयो भवत्यन्येषां हेय इति भावार्थः।।३६।।

आगे शुद्धात्मा से जुदे कर्म और शरीर इन दोनोंकर अनादिकर बँधा हुआ यह आत्मा है, तो भी निश्चयनयकर शरीरस्वरूप नहीं है, वह कहते हैं –

जो कर्म से बँधता हुआ वा देह में रहता हुआ।
भी कभी पर ना हुआ उनमय मान वह परमात्मा।।३६।।

अन्वयार्थ :– [योगिन्] हे योगी [यः] जो यह आत्मा [कर्मनिबद्धोऽपि] यद्यपि कर्मों से बँधा है [देहे वसन्नपि] और देह में रहता भी है, [कदापि] परंतु कभी [सकलः न भवति] देहरूप नहीं होता, [तमेव] उसी को तू [परमात्मानं] परमात्मा [स्फुटं] निश्चय से [मन्यस्व] जान।

भावार्थ :– परमात्मा की भावना से विपरीत जो राग, द्वेष, मोह हैं, उनकर यद्यपि व्यवहारनय से बँधा है, और देह में तिष्ठ रहा है, तो भी निश्चयनय से शरीररूप नहीं है, उससे जुदा ही है, किसी काल में भी यह जीव जड़ तो न हुआ, न होगा, उसे हे प्रभाकरभट्ट, परमात्मा जान। निश्चयकर आत्मा ही परमात्मा है, उसे तू वीतराग

स्वसंवेदनज्ञानकर चिंतवन कर। सारांश यह है, कि यह आत्मा सदैव वीतरागनिर्विकल्प-समाधि में लीन साधुओं को तो प्रिय है, किन्तु मूढ़ों को नहीं।।३६।।

गाथा - ३६ पर प्रवचन

आगे शुद्धात्मा से जुदे कर्म... भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, उससे आठ कर्म जड़ हैं, वे तो भिन्न हैं। वे तो अजीव हैं, जड़ हैं और यह शरीर जड़ है। आहाहा! **इन दोनोंकर अनादिकर बँधा हुआ (सम्बन्ध में है) यह आत्मा है, तो भी निश्चयनयकर शरीरस्वरूप नहीं है,...** कर्मस्वरूप नहीं। आहाहा! इस प्रकार शरीर और कर्म के सम्बन्ध में अनादि से है, पर्याय में सम्बन्ध, हों! अर्थात् वर्तमान। परन्तु वस्तुरूप से भगवान आत्मा **निश्चयनयकर शरीरस्वरूप नहीं है,...** वह कर्मरूप आत्मा कभी हुआ ही नहीं। आहाहा!

वास्तव में तो ज्ञायकवस्तु, वह रागरूप हुई ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? छठवीं गाथा में आता है न? नहीं? शुभाशुभरूप परिणमता नहीं। अर्थात् शुभाशुभ जड़ है। आहाहा! समयसार की छठवीं गाथा में आता है। ज्ञायकभाव जड़रूप होता नहीं, अर्थात् शुभ-अशुभभाव जो अचेतन है, उसमें आत्मा नहीं है। उसरूप होता ही नहीं। आहाहा! चैतन्य तो चैतन्यरूप रहा है। उसकी इसे खबर नहीं। यह बात यहाँ ३६वीं गाथा में करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल ३, बुधवार
दिनांक-३०-०६-१९७६, गाथा-३६-३७, प्रवचन-२२

आगे शुद्धात्मा से भिन्न कर्म और शरीर इन दोनों कर अनादि कर बँधा हुआ यह आत्मा है, तो भी निश्चयनयकर शरीरस्वरूप नहीं है, यह कहते हैं —

३६) कम्म-णिबद्धु वि जोइया देहि वसंतु बि जो जि।
होइ ण सयलु कया वि फुडु मुणि परमप्पउ सो जि।।३६।।

अन्वयार्थ :- हे योगी! आत्मा को उपादेय करके जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान में जाना है, उसे यहाँ योगी कहते हैं। जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान में आत्मा उपादेय है, ऐसा जिसे परिणमा है, उसे वह आत्मा उपादेय है और राग की रुचिवाले को आत्मा हेय है, आत्मा हेय है। गुलाँट खाता है। आत्मा, शरीर और कर्म से रहित है, ऐसा जिसने अन्तर में जाना है, उसे वह आत्मा उपादेय हुआ है और जिसने शरीर तथा कर्म सम्बन्धवाला है, ऐसा जिसने माना है, उसे आत्मा हेय है। समझ में आया? ऐसा है। यह तो उपादेय को ऐसा कहते हैं। यह हेय है तो यह हेय है, यह शैली इसमें है। समझ में आया?

जो यह आत्मा यद्यपि कर्मों से बँधा है, और देह में रहता भी है, परन्तु कभी देहरूप नहीं होता,... कर्मरूप और देहरूप प्रभु हुआ नहीं। आहाहा! **उसी को तू परमात्मा निश्चय से जान...** उसे तू राग से भिन्न पड़कर और स्वरूप को आदरणीय करके जान। समझ में आया? ऐसा परमात्मा वास्तव में प्रगट है (ऐसा) जान। आहाहा!

भावार्थ :- परमात्मा की भावना से विपरीत राग, द्वेष, मोह हैं,... इससे हुआ। संस्कृत टीका में अशुद्धनय है। यहाँ व्यवहारनय कहा है। टीका में अशुद्धनय कहा है। **'कर्मभिरशुद्धनयेन बद्धोऽपि'** ऐसा है। यह तो अशुद्धनय वह व्यवहार है, ऐसा स्पष्ट किया। भगवान आत्मा अशुद्धनय से अर्थात् विकारी परिणाम की रुचिवाला, वह कर्म से बँधा हुआ और शरीर में है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया? जिसे आत्म अशुद्धपना जो है, पुण्य और पाप तथा मिथ्याभ्रान्ति आदि, ऐसे में जो है, उसकी रुचिवाले को कर्म से बँधा हुआ शरीर में है, ऐसा अशुद्धनय से कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

और देह में तिष्ठ रहा है, तो भी निश्चयनय से शरीररूप नहीं है,... यह ज्ञायकस्वरूप—चैतन्यस्वरूप, वह शरीररूप हुआ नहीं। **उससे जुदा ही है,...** आहाहा! शरीर से भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप भिन्न ही है। **किसी काल में भी यह जीव जड़ तो न हुआ,...** आहाहा! छठवीं गाथा में यहाँ तक कहा है न कि शुभाशुभभावरूप भी हुआ नहीं। (समयसार गाथा) छठवीं। क्योंकि चैतन्य ज्ञायक ज्ञानस्वभावस्वरूप प्रभु, वह पुण्य-पाप के भाव अचेतनरूप वह कैसे हो? इसने माना है कि मैं शुभ-अशुभभाव का कर्ता हूँ और वह मेरा आचरण है। ऐसा माना है। माना है, तथापि वस्तुस्वरूप जो है, वह शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं तो फिर शरीर और कर्म के सम्बन्धरूप हो, यह है नहीं। आहाहा! **उसे हे प्रभाकरभट्ट! परमात्मा जान।** आहाहा! यह जान का अर्थ, राग और शरीर और कर्म के लक्ष्य से छूटकर, जो परमात्मस्वरूप शरीर और कर्मरूप हुआ नहीं, उसे स्वसंवेदन ज्ञान से जान। समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा!

निश्चयकर आत्मा ही परमात्मा है,... वास्तव में भगवान आत्मा, वही वस्तुस्वरूप से परमस्वरूप परमस्वरूप परमात्मा स्वयं है। **उसे तू वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानकर चिन्तवन कर।** देखा! जान का अर्थ यह किया। यह वस्तु है, इसे जान अर्थात्? **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानकर...** जान, अनुभव कर। आहाहा! शरीर और कर्म से रहित प्रभु है। इस आत्मा को उसके स्व—अपना वेदन, ज्ञान के वेदन द्वारा उसे जान। वह राग के पुण्य-पाप के विकल्प से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह आत्मा सदैव वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन साधुओं को तो उपादेय (प्रिय) है,... उपादेय का अर्थ प्रिय किया है। क्या कहा यह? ऐसा जो भगवान आत्मा सम्यग्दृष्टि को अर्थात् कि वीतराग निर्विकल्प शान्ति में लीन ऐसे सन्तों को तो वह आत्मा ऐसी दशा में उपादेय है। समझ में आया? मुख्यपने की बात ली है। मुख्यरूप से लिया है न! यहाँ तो कहना है कि कर्म और शरीररहित चीज़—वस्तु जो है, उसे उपादेयरूप से कौन जाने? कि जिसे स्व-संवेदन ज्ञान से आत्मा ज्ञात हुआ, उसे उपादेयरूप से है। उसका आदर हुआ है, उसे उपादेय है। आहाहा! अब ऐसी बातें।

मूढ़ों को नहीं। ऐसा कहा है। नहीं? पाठ में दूसरा है। '**अन्येषां हेय**' ऐसा है। आहाहा! जो पुण्य और पाप के प्रेम में पड़े हैं, उन्हें ऐसा आत्मा हेय है। भाई! टीका ऐसी है। यह तो इन्होंने फिर साधारण भाषा मूढ़ कहकर कर डाली। आहाहा! क्या कहा? यह आत्मा जो है एक समय में प्रभु पूर्ण ज्ञान-आनन्द के स्वभाव से भरपूर वस्तु स्वयं है, उसकी सन्मुख के स्वसंवेदन ज्ञान से जो जानता है, उसे वह उपादेय है। उपादेय हुआ, उसे उपादेय है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! हीरा के पैसे भरे, उसका हीरा है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! इसी प्रकार जिसने भगवान पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु को जिसने स्वसन्मुख होकर, स्वसंवेदन ज्ञान से, दृष्टि से जिसने जाना, उसे वह तब उपादेय हुआ। समझ में आया? आहाहा! '**अन्येषां हेय**' आहाहा! जिसे पुण्यपरिणाम के भाव में प्रेम है, जिसे कर्म के सम्बन्ध की रुचि है, जिसे शरीर के प्रति मोह है, उस जीव को आत्मा हेय है। लो, यह बात कहाँ से आयी?

मुमुक्षु : आत्मा की खबर नहीं, वह कहाँ से हेय करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ख्याल नहीं, इसलिए हेय है। यही कहा कि उसे ख्याल नहीं, इसलिए हेय है। ऐई!

चैतन्यस्वरूप ज्ञायकमूर्ति प्रभु जिसे अन्तर में दृष्टि और वेदन से जानने में आया, उसे वह आत्मा उपादेय हुआ। उपादेय है, इसलिए उपादेय हुआ। आहाहा! यह तो परमात्मप्रकाश है। और जिसे '**अन्येषां हेय**' अर्थात् वीतरागी रुचि से, वेदन से जिसने आत्मा को जाना नहीं और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग के भाव में जिसे प्रेम है, उसे आत्मा हेय है। आहाहा! अस्ति-नास्ति की है। हेय है कहा। ज्ञानी को राग हेय है, ऐसा न कहकर, ज्ञानी को आत्मा उपादेय है। आहाहा! धर्मी ने पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उस ओर का आश्रय लिया है, उसका आदर किया है, वीतरागी पर्याय में उसे उपादेय किया है, उसने उसका आदर किया है, उसे उपादेय है। आहाहा! परन्तु जिसे उस वीतरागी पर्याय द्वारा जिसे उपादेय हुआ नहीं, उसे तो राग के, पुण्य के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव... आहाहा! ऐसे राग के प्रेमी को भगवान (आत्मा) हेय है। अर्थात् कि उसे लक्ष्य में आया नहीं, उसे आदरणीय नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि को अभी क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भी तब तक अभी आदर नहीं है। सन्मुख है परन्तु अभी वहाँ परिणति निर्मल हो, तब उसने आदर किया कहलाता है। ऐसी बात है, भाई! वीतरागमार्ग जगत से अलग प्रकार है। आहाहा! वे तो कहें दया पालो, व्रत करो, अपवास करो। यहाँ कहते हैं कि यह दया पाले, व्रत-तप करने के भाव वाले के प्रेम को... ऐई प्रेमचन्दजी! उसे आत्मा हेय है। आहाहा! उसने आत्मा देखा नहीं, उसे आत्मा की खबर नहीं। आहाहा! कहो, चेतनजी!

मुमुक्षु : आँगन में आया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह जरा भी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो वीतरागी परिणति द्वारा उसे पकड़ा है, और आदर किया है, उसे वह उपादेय कहा जाता है। परिणति में उपादेय हुआ है, उसे उपादेय कहा है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! बहुत संक्षिप्त बात और बहुत मर्म की बात। आहाहा!

जिसे परपदार्थ के प्रति के प्रेम में चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम हो, शास्त्र का प्रेम हो, उसके प्रेम में जो रुका है, उसे प्रभु हेय है, कहते हैं। आहाहा! उसने आत्मा का आदर नहीं किया, उसे छोड़नेयोग्य (माना) है। आहाहा! गजब बात है न! यह तो उस टीका में देखा न भाई! जरा तब कहा, यह तो दूसरा कहते हैं। साधारण अर्थ करते हैं। यह उपादेय है न मूढ़ों को... वस्तु ऐसी है। प्रत्येक में, हों! ३५ में भी ऐसा है, देखो! **'वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतानां स एवोपादेयः, तद्विपरीतानां हेय'** ३५ में भी यह आया है। आहाहा! टीका ऐसी आयी है। उसका अर्थ साधारण किया है। **अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं, उनको आत्मरुचि नहीं हो सकती...** ऐसा। इतना किया। क्या कहा? यह कहीं पुनरुक्ति लगे, ऐसा नहीं है।

पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा है, उसके सन्मुख होकर वीतरागी परिणति सम्यग्दर्शन आदि भाव में उसने आदर किया है, उसे वह उपादेय है। आत्मा उपादेय है, उपादेय है। अर्थात् कहीं शब्दों में, धारणा में (नहीं), ऐसा कहते हैं। आत्मा उपादेय है और राग हेय है अर्थात् क्या? ज्ञान में धार रखा कि यह उपादेय? ऐसा नहीं है। आहाहा! देखो!

वीतरागमार्ग! आहाहा! सम्प्रदाय में तो ऐसी बातें सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! पूरी बात ही (बदल गयी)। हमारे बेचारे हीराजी महाराज थे, कितनी कषाय मन्द और 'हीरा एटला हीर' ऐसा कहलाते थे, हों! परन्तु पर की दया पालना, वह अहिंसा और वह सिद्धान्त का सार है, ऐसा कहते थे। आहाहा! यह सिद्धान्त से एकदम विरुद्ध। पर की दया पाली नहीं जा सकती। पर की पर्याय की नहीं जा सकती और पर की दया का भाव उठता है, वह राग है। और जिसे राग का रस है, प्रेम है, उसे भगवान हेय है। आहाहा! ऐसी बात भी कहाँ से लावे, भाई! सुजानमलजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लोग धर्म मानते थे। आहाहा!

प्रत्येक में इन्होंने कहा है, हों! ३५वीं में भी ऐसा कहा है। '**एवोपादेयः, तद्विपरीतानां हेय**' आहाहा! जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु उपादेयरूप से परिणति में उपादेय हुआ है... आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान की दशा में जिसे उपादेय हुआ है, उसे वह उपादेय है। आहाहा! इससे विपरीतवाले को जिसे राग और पुण्य-पाप में प्रेम है तथा पुण्य-पाप के फलरूप से प्राप्त संयोगी चीज़, यह देव-गुरु-शास्त्र भी संयोगी चीज़ है। आहाहा! उनकी रुचिवाले को आत्मा हेय है। आहाहा! प्रेमचन्दभाई! ऐसी बात सुनने को मिले कहाँ? बापू! क्या करें? सत्य तो यह है। आहाहा!

भक्तिभाव आवे, परन्तु वह तो अशुभ को टालनेमात्र बात है। आहाहा! गजब किया है न? टीकाकार ने भी टीका की है न!! आहाहा! भगवान परमात्मस्वरूप है न, प्रभु! निश्चय से जो पूर्ण आत्मा, वही आत्मा है। आहाहा! उसे जिसने पर्याय में, वीतरागी दशा द्वारा उपादेयरूप से परिणमा है... आहाहा! उसने वह आदर किया है, ऐसा कहा जाता है, उसे आत्मा आदरणीय है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो निश्चय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु यह है न, दूसरी कौन सी है? आहाहा!

अरे! भगवान! देख तो सही! आहाहा! तीन लोक के नाथ की वाणी तो देखो! सन्तों की बात। दिगम्बर सन्तों की वाणी... आहाहा! एक चोट और दो टुकड़े कर

डाले। वीतरागी परिणति द्वारा जिसे आत्मा का प्रेम है, उसे वह आत्मा उपादेय कहने में आया है। आहाहा! जिसकी दशा में स्वभाव से विरुद्ध भाव, स्वभाव से अन्य भाव विरुद्ध अर्थात् राग और अन्य अर्थात् परपदार्थ... आहाहा! उसका जिसे प्रेम है, उसे प्रभु हेय है। यह अर्थ तो अभी पहला होता है, हों! कभी हुआ नहीं है। उसमें—टीका में देखा तो यह तो अर्थ यहाँ किया है। अपने को ऐसा कि यह उपादेय है और यह हेय है। राग हेय है और यह उपादेय है।

मुमुक्षु : कहाँ हेय-उपादेय और कहाँ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह हेय। राग हेय है, वह अभी यहाँ नहीं। यहाँ तो हेय है, उसे उपादेय मानता है, उसको आत्मा हेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : विपरीतता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीत है। आहाहा!

आत्मा स्वयं परमेश्वरस्वरूप है, अकषायस्वरूप है, वीतरागी मूर्ति प्रभु अनादि-अनन्त है, उसका जिसने स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम द्वारा उसे उपादेय किया, उसको उपादेय है। आहाहा! क्या शैली! क्या शैली! गजब है न!! और उसे राग हेय है, ऐसा न कहकर राग और राग के फलरूप से बाह्य चीज़ें, उनके प्रति जिसे प्रेम है, उसे आत्मा हेय है। आहाहा! तेरी चीज़ तो देख, नाथ! आहाहा! एक में... अर्थात् कोई व्यवहाररत्नत्रय का राग और व्यवहाररत्नत्रय के निमित्त... आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र प्रशस्त राग के निमित्त हैं न? पंचास्तिकाय में आता है। भाई! वे प्रशस्त राग के निमित्त हैं।

मुमुक्षु : प्रशस्त ही इसलिए कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए उसे प्रशस्त कहा। राग को प्रशस्त क्यों कहा? कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र जिसमें निमित्त है। प्रशस्त जिसके निमित्त है। देव-गुरु-शास्त्र केवली और त्रिलोक के नाथ आदि प्रशस्त राग में निमित्त है, इसलिए राग को प्रशस्त कहा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उस प्रशस्त राग का जिसे प्रेम है... आहाहा! और राग के निमित्त हैं, उनका जिसे प्रेम है... आहाहा! उसे आत्मा हेय है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए न? लम्बा-लम्बा बड़ा करे और हो नहीं सत् का ठिकाना। आहाहा!

सारांश :-**यह आत्मा सदैव वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन...** स्वरूप सन्मुख की शुद्ध परिणति में जो लीन है। आहाहा! उन सन्तों को वह उपादेय है। उसका अर्थ उपादेय। मूल पाठ उपादेय है। मूल पाठ—टीका है, वह उपादेय है। परन्तु साधारण लोगों को प्रिय, मूढ़ को अप्रिय - ऐसे मूढ़ को प्रिय नहीं, ऐसा संक्षिप्त किया। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु है, उसका जिसे स्वसंवेदन से प्रेम नहीं, वह राग के प्रेम में पड़े हैं, निमित्त के प्रेम में पड़े हैं। आहाहा! गजब बात है! देखो! यह वीतराग की वाणी तो देखो! देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं कि हम पर हैं, हमारे प्रति का प्रेम, उसकी रुचि में रुक जाएगा तो तुझे आत्मा हेय होगा। आहाहा! यह वीतरागी वाणी है। आहाहा!

ऐसा जो आत्मा। कैसा? कि **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानकर...** अनुभव में आवे ऐसा। आहाहा! वह वीतराग, रागरहित... आहाहा! भाषा। और लोग चौथे गुणस्थान में ऐसा कहे कि रागसहित है। यह तो आत्मा ही रागरहित परिणतिवाले को ही उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? चौथे गुणस्थान से (उपादेय है)। आहाहा! वह गुणस्थान ही वीतरागी परिणति है, सम्यग्दर्शन वीतरागी दर्शन है, वीतरागी ज्ञान है, वीतरागी स्थिरता है। भले अनन्तानुबन्धी का (राग गया) इतना हो। आहाहा! ऐसे श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता में जो लीन है, उसे वह भगवान उपादेय है। आहाहा! राग से हट गया है और वीतरागस्वरूपी भगवान की वीतराग परिणति जिसने प्रगट की है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप है। उसके सन्मुख होने पर उसके आश्रय से तो वीतराग परिणति ही प्रगट होती है और वीतरागी परिणति अर्थात् अवस्था, उसमें भगवान स्वयं त्रिकाली, वह उपादेय हुआ है। उसका आश्रय हुआ, उसमें वह उपादेय हुआ। आहाहा!

जिसके दर्शन में आत्मा समीप है। आता है न? आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन में

आत्मा समीप है, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है! जिसके ज्ञान में आत्मा समीप है, उसे ज्ञान कहा जाता है! जिसमें–चारित्र में भगवान आत्मा समीप है, उसे चारित्र कहा जाता है! आहाहा! जिसके दर्शन–ज्ञान–चारित्र में भगवान समीप है, उसे यहाँ उपादेय कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' ऐसा है। और स्वद्रव्य के आश्रय से परिणति में वह उपादेय हुआ। इसके अतिरिक्त परद्रव्य के लक्ष्य से होती परिणति, राग की चाहे तो भक्ति की हो, शुभ की हो, यात्रा की हो, शास्त्र सुनने की हो... आहाहा! देव–गुरु और शास्त्र परद्रव्य है, इनके प्रति का प्रेम है, वह राग है। आहाहा! और राग के प्रेमियों को प्रभु हेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : विनय है, विनय तो धर्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विनय तो अपेक्षा से कहते हैं। यह अपेक्षा आती है न, आता है। यह तो निर्मानता है, इतना गिनकर ऐसा कहा है। यहाँ तो बात यह है। एक और एक = दो जैसी बात है। इसमें वाद–विवाद को कोई स्थान नहीं है।

जिसके श्रद्धा–ज्ञान में भगवान समीप में वर्तता है, जिसने श्रद्धा–ज्ञान में आत्मा आदरणीय किया है। आहाहा! पर्याय भी नहीं, हों! वापस। पर्याय ने द्रव्य को उपादेय किया है। आहाहा! ऐसा आया न? भाई! आहाहा! जिसने वीतरागी सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र की पर्याय में आत्मा का आश्रय लिया है और आत्मा समीप है, उसे आत्मा आदरणीय और उपादेय है। आहाहा! गजब काम है! ऐसा सत्य है। आहाहा! और इससे विपरीत स्वद्रव्य के सिवाय परद्रव्य का प्रेम (हो)... आहाहा! यह १६वीं गाथा में कहा न? **'परदव्वादो दुग्गइ'** मोक्षपाहुड़, १६वीं गाथा। देव, गुरु की वाणी, शास्त्र, उससे दुर्गति है। गजब बात है, बापू! अर्थात्? कि परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाएगा तो तुझे राग ही होगा, भाई! यह राग, वह चैतन्य की गति नहीं है। आहाहा! अरे रे! यह बात सुनने मिलना कठिन पड़े जगत को और ऐसा लगता है कि यह तो निश्चय है, एकान्त है। प्रभु! ऐसी गाली न दे, नाथ! वस्तु यह है। आहाहा! वहाँ तो ऐसा ही कहा, **'परदव्वादो दुग्गइ'** देव–गुरु–शास्त्र से भी दुर्गति है। दुर्गति अर्थात् चैतन्य की गति नहीं है। राग होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। आहाहा!

स्वद्रव्य की परिणति के भाव में उपादेय के अतिरिक्त जिसे राग के किसी भी कण का और राग के निमित्त देव-गुरु-शास्त्र, अशुभराग के निमित्त स्त्री-कुटुम्ब-परिवार; शुभराग के निमित्त प्रशस्त देव-गुरु-शास्त्र, वे जिसे उपादेय है अर्थात् प्रेम है... आहाहा! वे उपादेय है, उसे आत्मा हेय है। आहाहा! इस प्रकार का स्पष्टीकरण आज ही होता है, पहले में नहीं हुआ। क्योंकि उस टीका में नजर की, तब (पढ़ा) अमूढ़ को प्रिय है और मूढ़ को प्रिय नहीं, परन्तु इसका मूल यह है। उस टीका में देखा न! प्रत्येक गाथा में होगा, हों! यह। आहाहा! और आगे जाने पर सर्वत्र यह लेंगे। निर्विकल्प समाधि में रहे हुए को आत्मा आदरणीय है, उपादेय है। उस काल में उसे उपादेय है, ऐसा कहते हैं। आगे कहेंगे। जो वस्तु भगवान आत्मा, उसके सन्मुख की जो दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई, उस काल में उसे आत्मा उपादेय है। आहाहा! ऐसा आत्मा उपादेय है और राग हेय है, ऐसी जो धारणा कर रखी है, उसे उपादेय नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, प्रेमचन्दभाई! यह ठीक बात में आये तुम। आहाहा! वीतरागी मार्ग है, भाई!

जिसे परपदार्थ का प्रेम है, अशुभराग, स्त्री, पुत्र की तो क्या बात करना? आहाहा! उसके प्रेमवाले को तो आत्मा हेय है। आहाहा! बाहर की चमक दिखाई दे, यह शरीर और यह और यह... उसमें जिसका वीर्य उल्लसित और प्रेम में वर्तता है। यह है न वह श्रद्धा, भावना? भावना, उल्लास, उत्साह... पाँच बोल हैं। आहाहा! क्या गजब शैली! दिगम्बर सन्तों की शैली तो चारों ओर से देखो तो एक सरीखी खड़ी होती है। व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा कहकर, आदरणीय नहीं परन्तु जानने के लिये है, ऐसा सिद्ध किया। आहाहा! राग होता है, व्यवहार होता है, वह जानने के लिये है, आदर करने के लिये नहीं, हेयरूप से जाननेयोग्य है। उसे हेयरूप से न जाने और उपादेयरूप से जाने, उसे भगवान आत्मा हेय हो जाता है। आहाहा! और आज यह आया। ऐसी स्पष्टता किसी समय नहीं आयी। आत्मा हेय है, ऐसा कभी नहीं आया,

ऐई! राग हेय है और व्यवहार हेय है (ऐसा आवे)। नवलचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ...में डाल दिया राग को हेय कहकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ तो... आहाहा! अज्ञान के प्रेम में अज्ञानी को आत्मा हेय है। आहाहा! हेय है अर्थात् कि उसे जाना नहीं, इसलिए हेय है। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक में मुनि होकर गया, पंच महाव्रत पालन किये और क्रियाएँ (की) परन्तु वह सब रस और प्रेम वहाँ था। उसे आत्मा हेय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आता है। कहा न, यह उतारा है, उसमें उतारा है। रूपी पदार्थ सब लिये थे न? समयसार। उसमें उतारा है। उसमें उतारा था, अन्यमार्ग और जैनमार्ग। और यह सब वह। पर्याय में जितने सब भंग-भेद हैं, उनका जिसे उत्साह है, प्रशंसा है, वह सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ भी परपदार्थ को, स्व के स्वभाव का आश्रय छोड़कर और अकेले परपदार्थ के प्रेम में-राग में उत्साह प्रशंसा है, वह सब हेय है। उसे इसने उपादेय माना है और इसीलिए भगवान आत्मा इसे हेय हो गया। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! वहाँ कहीं मुम्बई में मिले, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : परन्तु दूसरा तो मिले?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल मिले, वहाँ धूल मिले। वहाँ क्या है? वह वहाँ कमाता है एक... क्या कहलाता है? हाँगकाँग। एक वहाँ कमाता है और एक यहाँ। सब धूल में है। रोता है। आहाहा! नुकसान के धन्धे में है। यहाँ तो शुभराग, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति प्रेम, उसकी रुचिवाले को आत्मा हेय-नुकसान है। उसके नुकसान का धन्धा है। आहाहा! ऐसी बात...

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना, कहते हैं।

मुमुक्षु : भगवान उपादेय है और राग हेय है, ऐसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, यह उपादेय है, वह करना। हेय है, उसे करना नहीं पड़ता।

और अज्ञानी को हेय है, इसलिए उसे भी करना नहीं पड़ता, हेय हो जाता है। राग के प्रेम में हेय (हो जाता है)। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है, भाई! आहाहा! ठीक, यह हिम्मतभाई! यह तुम्हारे सब आये थे। आज बात दूसरे प्रकार की निकली। आहाहा! आत्मा उपादेय है और राग हेय है। यह तो जिसे राग उपादेय है, उसे आत्मा हेय है। आहाहा! यह पाठ में है, हों!

इसलिए वीतराग निर्विकल्प समाधि के जीवों को उपादेय है। प्रिय अर्थात् उपादेय है। परन्तु राग के प्रेमियों को, अज्ञानियों को वह हेय है। मूढ़ों को नहीं उपादेय, इसका अर्थ हेय है। आहाहा! ३६ हुई।

तब वहाँ लिखा है अवश्य, हों! इसमें ऐसा है परन्तु उपादेय-हेय शब्द है। ऐसा लिख रखा था। सर्वत्र है। उसमें भी लिखा है। उनके आत्मा उपादेय है, ३५ में, देहात्मबुद्धि विषयासक्त नहीं जानता। परन्तु लिखा है अन्दर। कहा, है उपादेय-हेय। उसकी ऐसा व्याख्या की है। ३५ में लिखा है और ३६ में लिखा है। उपादेय-हेय। दोनों उपादेय हों और दोनों हेय हों, ऐसा नहीं है। आहाहा! व्यवहार और निश्चय दोनों उपादेय हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! दोनों मार्ग हैं, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

गाथा - ३७

यः परमार्थेन देहकर्मरहितोऽपि मूढात्मनां सकल इति प्रतिभातीत्येवं निरूपयति –

३७) जा परमत्थें णिक्कलु वि कम्म–विभिण्णउ जो जि।
मूढा सयलु भणंति फुडु मुणि परमप्पउ सो जि।।३७।।

यः परमार्थेन निष्कलोऽपि कर्मविभिन्ना य एव।
मूढाः सकलं भणन्ति स्फुटं मन्यस्व परमात्मानं तमेव।।३७।।

यः परमार्थेन निष्कलोऽपि देहरहितोऽपि कर्मविभिन्नोऽपि य एव भेदाभेदरत्नत्रय–भावनारहिता मूढात्मानस्तमात्मानं सकलमिति भणन्ति स्फूटं निश्चितं हे प्रभाकरभट्ट तमेव परमात्मानं मन्यस्व जानीहीति, वीतरागसदानन्दैकसमाधौ स्थित्वानुभवेत्यर्थः। अत्र स एव परमात्मा शुद्धात्मसंवित्ति–प्रतिपक्षभूतमिथ्यात्वरागादिनिवृत्तिकाले सम्यगुपादेयो भवति तदभावे हेय इति तात्पर्यार्थः।।३७।।

आगे निश्चयनयकर आत्मा देह और कर्मों से रहित है, तो भी मूढ़ों (अज्ञानियों) को शरीर स्वरूप मालूम होता है, ऐसा कहते हैं –

परमार्थ से जो देह से वा कर्म से है भिन्न ही।
पर मूढ़ इनसे सहित कहते मान परमातम वही।।३७।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो आत्मा [परमार्थेन] निश्चयनयकर [निष्कलोऽपि] शरीररहित है, [कर्मविभिन्नोऽपि] और कर्मों से भी जुदा है, तो भी [मूढाः] निश्चय–व्यवहार रत्नत्रय की भावना से विमुख मूढ़ [सकलं] शरीरस्वरूप ही [स्फुटं] प्रगटपने से [भणन्ति] मानते हैं, सो हे प्रभाकरभट्ट, [तमेव] उसी को [परमात्मानं] परमात्मा [मन्यस्व] जान, अर्थात् वीतराग सदानंद निर्विकल्पसमाधि में रहके अनुभव कर।

भावार्थ :– वही परमात्मा शुद्धात्मा के वैरी मिथ्यात्व रागादिकों के दूर होने के समय ज्ञानी जीवों को उपादेय है और जिनके मिथ्यात्वरागादिक दूर नहीं हुए उनके उपादेय नहीं, परवस्तु का ही ग्रहण है।।३७।।

गाथा - ३७ पर प्रवचन

३७ (गाथा)। **आगे निश्चयनयकर आत्मा देह और कर्मों से रहित है,...** उसमें सहित था और ऐसा बताया था। है न? **अनादि का बँधा हुआ...** सहित बताया था। अब इसमें रहित। **तो भी मूढ़ों (अज्ञानियों) को शरीरस्वरूप मालूम होता है,...** यह गाथा में अन्तर है। उसमें सहित था, उसका (स्वरूप) बताया। सहित माननेवाले को। और अब यहाँ रहित है, उसकी बात की। आहाहा! आत्मा, (शरीर) और कर्म से रहित है। **तो भी मूढ़ों (अज्ञानियों) को शरीरस्वरूप मालूम होता है,...** लो! **'सकल इति प्रतिभातीत्येवं'** शरीर ही मैं हूँ, राग मैं हूँ, ऐसा उसे भासित होता है। क्योंकि वह भगवान अन्दर स्थित है, उसके सामने देखता नहीं।

निश्चयनयकर आत्मा देह और कर्मों से रहित है, तो भी मूढ़ों (अज्ञानियों) को शरीरस्वरूप मालूम होता है, ऐसा कहते हैं :- उसमें भी यह आता है।

३७) जो परमत्थें णिक्कलु वि कम्म-विभिण्णउ जो जि।
मूढा सयलु भणंति फुडु मुणि परमप्पउ सो जि।।३७।।

जो आत्मा निश्चयनयकर... 'निष्कलोऽपि' अर्थात् शरीररहित। कल अर्थात् शरीर। शरीररहित है। **'कर्मविभिन्नोऽपि' और कर्मों से भी जुदा है, तो भी निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय की भावना से विमुख मूढ़...** मूढ़ की व्याख्या की। **'भेदाभेदरत्नत्रय-भावनारहिता' शरीरस्वरूप ही प्रगटपने से मानते हैं,...** शरीर की क्रिया और शरीर, वह मैं। **शरीरस्वरूप ही प्रगटपने से मानते हैं। सो हे प्रभाकरभट्ट! उसी को परमात्मा जान, अर्थात् वीतराग सदानन्द निर्विकल्पसमाधि में रहकर अनुभव कर।** जान की व्याख्या यह।

वीतराग सदानन्द... आहाहा! सत् आनन्द, निर्विकल्प समाधि, शान्ति—रागरहित शान्ति, रागरहित आनन्द, सदानन्द। आहाहा! सत् का आनन्द। **वीतराग सदानन्द निर्विकल्पसमाधि में रहकर अनुभव कर।** इसका नाम आत्मा को जान, ऐसा कहा। आहाहा! वीतरागी समभाव की परिणति से आत्मा को जान। समझ में आया? **वही परमात्मा शुद्धात्मा के वैरी मिथ्यात्व रागादिकों के दूर होने के समय...** भाषा देखो!

भगवान आत्मा शुद्धात्मा जो उसके वेरी, विरोधी, मिथ्यात्व और राग-द्वेष **दूर होने के समय में...** आहाहा! **ज्ञानी जीवों को उपादेय है,...** उस समय में उपादेय है। आहाहा! किस समय? कि **मिथ्यात्व रागादिकों के दूर होने के समय...** यह दूर (अर्थात्) उनका नाश हुआ उस समय। आहाहा! **ज्ञानी जीवों को...** निर्मल शुद्ध परिणति में ज्ञानी को जीव उपादेय है। आहाहा! भाषा क्या शैली है?

मिथ्यात्व रागादिकों के दूर होने के समय... तब उसे आत्मा उपादेय है, ऐसा कहा। समझ में आया? आत्मा उपादेय है और राग हेय है, ऐसी धारणा की, वह नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु भ्रमणा, मिथ्यात्व और राग का अभाव होकर... आहाहा! वस्तु स्वभाव ज्ञानी को शुद्ध परिणति में उपादेय हुआ, उस काल में उपादेय हुआ। मिथ्यात्व और राग के दूर होने के काल में स्वभाव के समीप हुआ, तब आत्मा उपादेय हुआ। आहाहा! समझ में आया?

'तदभावे हेय' बस, यहाँ यही डाला है। आहाहा! अर्थात्? मिथ्यात्व और राग-द्वेष दूर होने के काल में आत्मा उपादेय है। इसके अतिरिक्त मिथ्यात्व और राग के काल में भगवान उसे हेय है। अरेरे! आहाहा! ऐसी बात सुनना मुश्किल पड़े, ऐसा है। आहाहा! भगवान! क्या कहा? जिसे भ्रमणा और राग का अभाव हुआ है, उस काल में उसे—धर्मी को आत्मा उपादेय है। और जहाँ आगे राग और मिथ्यात्वभाव है, उसे भगवान आत्मा हेय है। आहाहा! कहो, हिम्मतभाई! यह सब सुना नहीं था। यह सब पहला-पहला है। आये बराबर ठीक। आहाहा! अर्थात्? विपरीत मान्यता और राग के भाव का अभाव होने से उस अभाव के काल में धर्मी को आत्मा आदरणीय है। रागादि भाव रहे और प्रेम रहे और आत्मा आदरणीय हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा! वाडावालों को बेचारों को ऐसा कठिन पड़े, हों!

मुमुक्षु : ... जरा फिर से समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुनता है, प्रेम से सुनता है। यह तो वस्तु है न, बापू! आहाहा! यह कहाँ किसी के घर की है। इसके अन्तर घर की है। आहाहा!

कहा न कि राग और पुण्य के भाव का प्रेम जिसे दूर हो गया है, उसे उस काल

में आत्मा उपादेय है और जिसे... आहाहा! राग की रुचि है, वह मिथ्यात्व है और राग है, वह प्रेम है, अन्दर पर के प्रति, उसका जिसे राग में व्यवहाररत्नत्रय में भी जिसको प्रेम है और जिसे रुचि है, उसे आत्मा हेय है। आहाहा! देखो! यह सन्तों की वाणी! यह दिगम्बर सन्तों का मार्ग देखो! आहाहा! यही मार्ग दिगम्बर सन्त यह वाणी कहते हैं। यही जैनदर्शन है, बाकी कहीं जैनदर्शन नहीं है। आहाहा! **मिथ्यात्वरागादिक दूर नहीं हुए उनके उपादेय नहीं,...** अर्थात् कि उसे हेय है, ऐसा लेना। यहाँ सुधारा है, हों!

मुमुक्षु : परवस्तु का ही ग्रहण करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परवस्तु का ग्रहण, उसका अर्थ (यह कि) आत्मा हेय है। राग का ग्रहण है, वहाँ आत्मा हेय है। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ३८

अथानन्ताकाशैकनक्षत्रमिव यस्य केवलज्ञाने त्रिभुवनं प्रतिभाति स परमात्मा भवतीति कथयति -

३८) गयणि अणंति वि एक्क उडु जेहउ भुयणु विहाइ।
मुक्कहँ जसु पए बिंबियउ सो परमप्पु अणाइ।।३८।।

गगने अनन्तेऽपि एकमुडु यथा भुवनं विभाति।
मुक्तस्य यस्य पदे बिम्बितं स परमात्मा अनादिः।।३८।।

गगने अनन्तेऽप्येकनक्षत्रं यथा तथा भुवनं जगत् प्रतिभाति। क्व प्रतिभाति। मुक्तस्य यस्य पदे केवलज्ञाने बिम्बितं प्रतिफलितं दर्पणे बिम्बमिव। स एवंभूतः परमात्मा भवतीति। अत्र यस्यैव केवलज्ञाने नक्षत्रमेकमिव लोकः प्रतिभाति स एव रागादिसमस्तविकल्प-रहितानामुपादेयो भवतीति भावार्थः।।३८।।

आगे अनंत आकाश में एक नक्षत्र की तरह जिसके केवलज्ञान में तीनों लोक भासते हैं, वह परमात्मा है, ऐसा कहते हैं -

अनन्त नभ में एक उडु ज्यों केवली के ज्ञान में।
है सर्व जग बिम्बित वही परमातमा ना आदि है।।३८।।

अन्वयार्थ :- [यथा] जैसे [अनन्तेऽपि] अनंत [गगने] आकाश में [एकं उडु] एक नक्षत्र ['तथा'] उसी तरह [भुवनं] तीन लोक [यस्य] जिसके [पदे] केवलज्ञान में [बिम्बितं] प्रतिबिंबित हुए [विभाति] दर्पण में मुख की तरह भासता है, [सः] वह [परमात्मा अनादिः] परमात्मा अनादि है।

भावार्थ :- जिसके केवलज्ञान में एक नक्षत्र की तरह समस्त लोक-अलोक भासते हैं, वही परमात्मा रागादि समस्त विकल्पों से रहित योगीश्वरों को उपादेय है।।३८।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल ४, गुरुवार
दिनांक-०१-०७-१९७६, गाथा-३८-३९, प्रवचन-२३

परमात्मप्रकाश, ३८ गाथा। **आगे अनन्त आकाश में एक नक्षत्र की तरह जिसके केवलज्ञान में तीनों लोक भासते हैं, वह परमात्मा है, ऐसा कहते हैं —**

३८) गयणि अणंति वि एक्क उडु जेहउ भुयणु विहाइ।
मुक्कहँ जसु पए बिंबियउ सो परमप्पु अणाइ।।३८।।

अन्वयार्थ :- जैसे अनन्त आकाश में... आकाश जो अनन्त है। लोकालोक व्यापक, अलोक में भी आकाश अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त है। ऐसा जो **अनन्त आकाश में एक नक्षत्र उसी तरह...** आहाहा! एक नक्षत्र होता है, एक तारा। **अनन्त आकाश में एक नक्षत्र उसी तरह तीन लोक जिसके केवलज्ञान में प्रतिबिम्बित हुए...** जिसकी शक्ति इतनी है और प्रगट हो वह तो है, परन्तु जिसकी शक्ति में लोकालोक... जैसे एक नक्षत्र लोकालोक में है, वैसे तीन काल, तीन लोक... आहाहा! जिनके ज्ञान में एक नक्षत्र की भाँति ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : इतना सब लोक एक नक्षत्र हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक भले क्षेत्र से बड़ा हो। अनन्त अलोक हो।

जिसका ज्ञानस्वभाव, जिसका ज्ञानस्वरूप, जिसकी ज्ञान शक्ति उस अनन्त आकाश में एक नक्षत्र, ऐसे लोकालोक जिसके ज्ञान में नक्षत्र की भाँति है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान की एक पर्याय की शक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक शक्ति। पर्याय की शक्ति है और यह तो स्वभाव की शक्ति कही। अभी यह वर्णन है।

भगवान आत्मा यह चैतन्य... आया था न? चैतन्यस्वभाव से व्याप्त आत्मा, ऐसा आया था न? वह तो चैतन्यस्वभाव से व्याप्त पसरता है। चैतन्यस्वभाव इतना अनन्त और अपार है कि आकाश में नक्षत्र जैसे अल्प दिखता है, वैसे भगवान के ज्ञान में लोकालोक नक्षत्र की भाँति है। आहाहा! ऐसा परमात्मस्वरूप अपना है, ऐसा कहते हैं।

अनन्त आकाश में एक नक्षत्र उसी तरह तीन लोक जिसके... तीन लोक शब्द प्रयोग किया है, परन्तु लोक और अलोक सब (ले लेना)। आहाहा! जिसके एकरूप ज्ञानस्वभाव में, जिसका ज्ञानस्वभाव चैतन्य भगवान आत्मा का, उसमें तो **प्रतिबिम्बित हुए दर्पण में मुख की तरह...** दर्पण में जैसे मुख ज्ञात हो, वैसे ज्ञान के प्रकाश के स्वभाव में लोकालोक नक्षत्र की भाँति ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा! आत्मा ज्ञानस्वभाव है, वह अनन्त पदार्थ में से कोई पदार्थ का कर्ता नहीं। तथा उसे कोई कर्ता नहीं। ऐसा जो स्वतः ज्ञानस्वभाव, जिसके प्रकाश में, दर्पण में जैसे मुख ज्ञात हो... आहाहा! आकाश में जैसे नक्षत्र ज्ञात हो एक इतना; उसी प्रकार भगवान ज्ञान जिसका स्वभाव, जिसका सत्त्व, जिसकी शक्ति, उसका क्या माप? आहाहा! समझ में आया? ऐसा परमात्मा स्वयं है, ऐसा कहते हैं।

वह परमात्मा अनादि है। आहाहा! बात इसे अन्तर में बैठनी (चाहिए)। ऐसी चीज़ है। यह भगवान आत्मा देह में जो है, उसका चैतन्यप्रकाश, उसके स्वभाव की बेहदता... आहाहा! ऐसा आत्मस्वरूप जिसका, जैसे आकाश में नक्षत्र दिखाई दे, वैसे जिसके ज्ञान के प्रकाश में लोकालोक एक नक्षत्र की भाँति ज्ञात हो। आहाहा! ऐसा आत्मा... है? अनादि... आहाहा! वह ध्यान करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहेंगे, देखो!

जिसके केवलज्ञान में एक नक्षत्र की तरह समस्त लोक-अलोक भासते हैं,... मूल तो '**भुवनं**' शब्द किया परन्तु लोक-अलोक लेना है न! **वही परमात्मा...** स्वयं परमस्वरूप। ज्ञानस्वभाव ऐसा भगवानआत्मा स्वयं। आहाहा! **रागादि समस्त विकल्पों से रहित...** आहाहा! राग से रहित निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और ज्ञान, उसके द्वारा उसे जाननेयोग्य है। भगवान आत्मा ऐसी शक्तिवाला तत्त्व, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान जो रागरहित दृष्टि, राग बिना का ज्ञान, राग बिना की स्थिरता, ऐसी निर्विकल्पदशा से उसे ध्यान में लेने योग्य है। आहाहा!

यहाँ तो उसके ज्ञान में अनन्त आकाश में जैसे नक्षत्र (होते हैं), उसी प्रकार... आहाहा! इसके ज्ञान में अनन्त देव—केवलज्ञानी, सिद्ध। देव, सिद्ध, चार ज्ञान के धनी

आदि सन्त, गुरु और जो शास्त्र चौदह पूर्व को बतलानेवाले या आत्मा को बतलानेवाले, ऐसे शास्त्र, वे सब इस ज्ञानस्वभाव में ज्ञात हों, ऐसा इसका स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कोई मेरे हैं, ऐसा मानना, इसका स्वरूप नहीं। आहाहा! देव-गुरु और शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब और परिवार, स्वर्ग-नरक के भाव... आहाहा! लाखों केवली विराजते हैं, तीर्थंकर विराजते हैं, उन सबका आत्मा के ज्ञान में जानना हो, ऐसी इसकी शक्ति है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कब की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि की। अनादि का ऐसा भगवान आत्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह है, तब ज्ञात होते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : है, उन्हें जाने तब 'है', ऐसा इसने माना। आहाहा!

चैतन्य के प्रकाश का पूर-नूर प्रभु आत्मा है। जिसमें, अनन्त पंच परमेष्ठी हुए, होते हैं और होंगे... आहाहा! वे भी जिसके ज्ञान में, जैसे आकाश में नक्षत्र है, वैसे ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा! अनन्त केवली, सिद्ध (जैसे) आकाश में नक्षत्र (हो), वैसे अनन्त सिद्ध जिसके ज्ञान में ज्ञात होते हैं, ऐसा वह ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसे निर्विकल्प दृष्टि-ज्ञान और शान्ति से ध्यान में लेनेयोग्य है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! है? देखो! टीका में है।

'**रागादिसमस्तविकल्परहितानामुपादेयो**' आहाहा! सार निकाला है न वापस? संस्कृत में है। ३८। आहाहा! यह तो अकेला मक्खन है। यहाँ तो कहते हैं कि तू रागवाला नहीं, व्यवहार—पुण्यवाला नहीं, पापवाला नहीं, शरीरवाला नहीं, कर्मवाला नहीं, अल्पज्ञवाला नहीं। आहाहा! तेरा स्वभाव प्रभु ज्ञानस्वरूप है, उसका क्या कहना? आहाहा! जिसके ज्ञान के स्वभाव में लोकालोक, दर्पण में जैसे मुख दिखता है... आहाहा! उसी प्रकार ज्ञानरूपी दर्पण में लोकालोक नक्षत्र की भाँति ज्ञात होते हैं। आहाहा! गजब बात है। यह साधारण बात नहीं, हों! बहुत संक्षिप्त शब्द में महाप्रभु का वर्णन है। आहाहा! चेतन महाप्रभु। समझ में आया? जिसकी चैतन्य महाप्रभु शक्ति है। आहाहा! अनादि की, हों! आहाहा!

चैतन्यशक्ति स्वभाववन्त प्रभु, जिसमें लोकालोक तो नक्षत्र की भाँति ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं यह? ऐसा तू परमात्मस्वरूप है। उसे वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति द्वारा उसे देख, उसे मान। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान ज्ञानशक्ति, जिसमें अनन्त केवली भी नक्षत्र की भाँति ज्ञात हो जाये, प्रभु! ऐसा तू। आहाहा! चैतन्य महाप्रभु, उसे राग बिना की निर्विकल्प दृष्टि-ज्ञान द्वारा उपादेय कर। वहाँ ध्यान लगा। आहाहा! जहाँ महा प्रभु पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

जहाँ प्रभु शक्ति से भरपूर... आहाहा! जिसकी शक्ति खण्डित न हो और जिसकी शक्ति स्वतन्त्ररूप से शोभायमान परमात्मा स्वयं है। आहाहा! यहाँ ज्ञान की शक्ति ली है न? जिसका ज्ञानस्वभाव, ऐसे तो अनन्त गुण हैं, परन्तु यह एक स्वभाव। आहाहा! जिसका यह ज्ञानस्वभाव, एक गुण का स्वभाव... आहाहा! जिसे लोकालोक जानने से नक्षत्र की भाँति ज्ञात हो। आहाहा! अरे! ऐसे तो अनन्त गुण अन्दर हैं। और वे अनन्त गुण भी ज्ञान में ज्ञात हो जाते हैं और वह ज्ञान में ज्ञात हो जाता है वापस। आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा है, भाई! उसे पामररूप से मानकर अनादर कर दिया। उसे रागवाला मानकर उसका अनादर किया है। आहाहा! यह हिंसा की है। अर्थात्? ऐसे स्वभावसहित जिसका जीवन है, टिकना है, उसे उस प्रकार से न मानकर, उसे रागवाला, अल्पज्ञ मानना, वह पूरे चैतन्य के स्वभाव की, अनन्त लोकालोक को जाने तो भी अनन्त शक्ति बाकी रहे, ऐसे आत्मा का नकार करके जिसने राग के भाव का प्रेम और रुचि की है... आहाहा! जिसे अल्प ज्ञान में रुचि और उत्साह हुआ है। आहाहा! उसने ऐसे जीव की हिंसा की है। अर्थात् कि तू नहीं। इतना तू नहीं। तू इतना है। आहाहा!

ऐसा भाववाला प्रभु, उसे तो कहते हैं कि उसके ओर की सन्मुख दृष्टि और ज्ञान द्वारा जो ज्ञात हो और उपादेय हो। आहाहा! ऐसा प्रभु वीतरागी परिणति द्वारा उपादेय होता है अथवा ज्ञात होता है। आहाहा! जो लोकालोक को यह जाने, वह वीतरागी परिणति द्वारा ज्ञात होता है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! यह तो परमात्मप्रकाश है। आहाहा! रात्रि में आया है न? आहाहा!

तेरी चैतन्यशक्ति की महिमा की क्या बात करना, प्रभु! आहाहा! उस चैतन्यशक्ति से तू प्रभु है। उस प्रभुत्वशक्ति में लोकालोक तो जैसे आकाश में एक नक्षत्र हो, वैसे ज्ञात हो जाता है। आहाहा! ऐसे पूर्ण स्वरूप भगवान को आदरने के लिये उसके सन्मुख की दृष्टि ज्ञान और निर्विकल्पदशा चाहिए, ऐसा कहते हैं। तो उसने आदर किया। और जिसने राग और पुण्य का आदर किया है, उसने भगवान के स्वभाव का अनादर किया है। ऐसा परमात्मा है, वह नहीं (-ऐसा माना है)। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा!

वही परमात्मा... आहाहा! **रागादि (राग-द्वेष) समस्त विकल्पों से रहित...** निर्विकल्प अनुभव में वह ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! ऐसी महत्ता, वह कहीं राग से ज्ञात हो? समझ में आया? ऐसा महाप्रभु चैतन्यतत्त्व, वह तो शान्ति, विकल्प बिना की... आहाहा! निर्विकल्प समभाव की परिणति द्वारा वह (ज्ञात होता है)। आहाहा! वह मानो लोकालोक को अर्थात् इतना नक्षत्र बड़ा, परन्तु इस निर्विकल्प परिणति से वह ज्ञात हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? तो उस निर्विकल्प परिणति का सामर्थ्य कितना? '**अक्खयामेया**' कहा न? चारित्र (पाहुड)। आहाहा! गजब बात है! चारित्रपाहुड़, चौथी गाथा। उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, यह ऐसा है, ऐसी प्रतीति, उसका ज्ञान, उसकी अन्तर की एकाग्रता, अमाप वस्तु को श्रद्धे—जाने तो वह वस्तु कितनी? आहाहा! चैतन्य वस्तु क्या है, उसका लोगों को माहात्म्य नहीं है। और यह बाहर के माहात्म्य में फँस गया। आहाहा! परद्रव्य के माहात्म्य में या बाहर के क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रतादि के भाव, वे विकार हैं। उसके माहात्म्य में चला गया, उसे स्वभाव का माहात्म्य नहीं आया। समझ में आया?

इसलिए अन्त में कहा। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे वीतरागी परिणति से योगीश्वरों ने उपादेय किया है। है न? **रागादि समस्त विकल्पों से रहित योगीश्वरों के उपादेय है।** ऐसी वीतरागदशावाले को वह उपादेय है। आहाहा! जिसने ऐसी प्रभुता सन्मुख, पर से विमुख होकर और ऐसा भगवान है, उसके सन्मुख दृष्टि, उसके सन्मुख का ज्ञान विकार बिना का, उसके सन्मुख की स्थिरता, उस द्वारा वह उपादेय है। आहाहा! बहुत सरस बात है। आहाहा! आत्मा कितना-बड़ा कैसे है! यह तो एक ज्ञानगुण की इतनी शक्ति! आहाहा!

मुमुक्षु : एक गुण की पर्याय की।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह तो शक्ति का वर्णन है अन्दर। पर्याय में ज्ञात होता है। यह तो उसकी शक्ति इतनी है। ऐसी-ऐसी अनन्त शक्ति। आहाहा! प्रगट एक समय में ज्ञात हो और उसकी वापस श्रद्धा, इतनी श्रद्धा कि पूरा पूर्ण इतना है, ऐसी श्रद्धा। और पर्याय में केवलज्ञान हो एक समय में, ऐसी एक श्रद्धा। उस श्रद्धा का ही कितना जोर! आहाहा! उस श्रद्धा में कितना सामर्थ्य आया! इसी प्रकार उसकी रमणता में कितना सामर्थ्य आया! आहाहा! पूर्ण परमात्मशक्ति का सागर, उसमें उसकी ओर के झुकाव की स्थिरता। स्थिरता और अन्दर का चारित्रगुण है, उसका तो क्या माप! समझ में आया? ज्ञानगुण, श्रद्धागुण, शान्ति-चारित्रगुण, आनन्दगुण, अस्तित्वगुण... ओहोहो!

अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं। नहीं आया? आचार्य ने शक्तियों में गजब काम किया है! ओहोहो! थोड़े शब्दों में समुद्र बताया है पूरा। सागर बताया है सागर। सागर के तीन अक्षर में सागर बतलाया है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी शक्तियाँ जो अनन्त हैं, वह एक-एक शक्ति इतनी अनन्त है। तत्प्रमाण सभी शक्तियाँ हैं, वे अनन्त हैं। ऐसी शक्ति का सागर भगवान, वह तो वीतरागी दृष्टि द्वारा ही उपादेय हो सकता है। बाकी कोई (दूसरा उपाय नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उस दशा द्वारा ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ३८ (गाथा) हुई। ३९। ओहोहो! एक-एक गाथा ने प्रभु को डोला दिया है।

जिसकी एक पर्याय में इतना आत्मा... आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो और इस शक्ति में ज्ञात हो, परन्तु उसकी जो पर्याय है, उसमें वह स्वयं ज्ञात होता है। आहाहा! उस पर्याय का सामर्थ्य कितना! आहाहा! एक-एक श्रद्धा की पर्याय, ज्ञान की पर्याय, चारित्र की पर्याय। इससे वहाँ अष्टपाहुड़ में भगवान ने कहा। '**अक्खयामेया**' आहाहा! गजब बातें की हैं न! जो परमात्मस्वरूप ऐसा प्रभु, उसकी जिसे प्रभुता प्रतीति में आयी, ऐसी प्रभुता जिसके ज्ञान में ज्ञेय होकर ज्ञात हुई, ऐसी प्रभुता में जो स्थिर हुआ है, कहते हैं कि वह तो अक्षय—अमेय दशा है। आहाहा! पर्याय, हों! साधक की, हों! आहाहा! उसका द्रव्य इतना, उसके गुण इतने, उसे स्वीकारनेवाली पर्याय भी अक्षय

अमेय। आहाहा! उसे यहाँ द्रव्य-गुण-पर्यायवाला आत्मा कहते हैं। समझ में आया? यह वाद-विवाद से कहीं पार नहीं आता, बापू! बाहर में हो-हा। समाज सुधारो और यह करो... और यह करो... अरे! भाई! करे कौन? किसे न जाने और करे कौन? किसे न जाने? सबको जाने। करे किसका? किसका नहीं। आहाहा! वह तो लोगों को बाहर में देश को सुधारो, सुखी करो, यह करो। लोगों को ऐसा लगे... युवा वर्ग, यह याद करो। दहेज-पैसा लेना बन्द करो। दहेज-दहेज। यह आया है। कल बहुत आया है।

मुमुक्षु : विवाह में....

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाह में पैसा लेना। युवक इकट्ठे होकर बन्द करो। युवक प्रतिज्ञा लो कि जहाँ ऐसे दहेज दिये जायें, वहाँ जाऊँगा नहीं। लोगों को अच्छा लगे। अखबार में आया है। वहाँ ... है न कोई बड़ा? कार्यकर्ता नहीं? उपराष्ट्र। वह वहाँ आये थे। सब भाषण किया। उन्होंने कहा। लोगों को बाहर से ऐसा लगे कि ... इकट्ठे होकर पूरा दे... वह कैसे? देवकुमार, हीरालाल। अरे! प्रभु!

भाई! तू तो जाननेवाला है न। और जानने में किसी को बाकी रखे नहीं, ऐसा है। आहाहा! वह जाननेवाला क्या करे? भाई! आहाहा! वह करे जानने की दशा। आहाहा! वह श्रद्धा की दशा। यह तो कहे, सब स्वार्थी हो गये। ऐसा कहते हैं। अरे! प्रभु! भाई! इसी प्रकार हो सकता है। दूसरे प्रकार से नहीं हो सकता। परमार्थ का अर्थ भी यह है। कहा था न? टीका का परमार्थ का। यह मूल श्लोक में है, हों! परामा—उत्कर्ष मा—लक्ष्मी ऐसा जो अर्थ—पदार्थ... आहाहा! उसे परमार्थ कहते हैं। पर के परमार्थ करे, वह कभी तीन काल में कर नहीं सकता, भाई! परमार्थ करो... परमार्थ करो... परमार्थ करो... आहाहा! परमार्थ तो परमात्मा उसे कहते हैं—परा-मा। परा अर्थात् उत्कृष्ट, मा अर्थात् लक्ष्मी। आनन्द की और ज्ञान की लक्ष्मी, ऐसा जो अर्थ—पदार्थ। आहाहा! उसका जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान से आदर करे वह लक्ष्मी, उसने काम किया। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। ३८ (गाथा) हुई।

गाथा - ३९

अथ योगीन्द्रवृन्दैर्यो निरवधिज्ञानमयो निर्विकल्पसमाधिकाले ध्येयरूपश्चिन्त्यते तं परमात्मानमाह –

३९) जोइय-विंदहिं णाणमउ जो झाइज्जइ झेउ।
मोक्खहँ कारणि अणवरउ सो परमप्पउ देउ।।३९।।

योगिवृन्दैः ज्ञानमयः यो ध्यायते ध्येयः।
मोक्षस्य कारणे अनवरतं स परमात्मा देवः।।३९।।

योगीन्द्रवृन्दैः शुद्धात्मवीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतैः ज्ञानमयः केवलज्ञानेन निर्वृत्तः यः कर्मतापन्नो ध्यायते ध्येयो ध्येयरूपोऽपि। किमर्थं ध्यायते। मोक्षकारणे मोक्षनिमित्ते अनवरतं निरन्तरं स एव परमात्मा देवः परमाराध्य इति। अत्र य एव परमात्मा मुनिवृन्दानां ध्येयरूपो भणितः स एवशुद्धात्मसंवित्तिप्रतिपक्षभूतार्तरौद्रध्यानरहितानामुपादेय इति भावार्थः।।३९।।

आगे अनंत ज्ञानमयी परमात्मा योगीश्वरोंकर निर्विकल्पसमाधि-काल में ध्यान करने योग्य है, उसी परमात्मा को कहते हैं –

है मोक्ष हेतु से सदा जो ध्येय ज्ञानमयी कहा।
ध्यातव्य है सब योगियों से देव वह परमात्मा।।३९।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो [योगीन्द्रवृन्दैः] योगीश्वरोंकर [मोक्षस्य कारणे] मोक्ष के निमित्त [अनवरतं] निरन्तर [ज्ञानमयः] ज्ञानमयी [ध्यायते] चिंतवन किया जाता है, [सः परमात्मा देवः] वह परमात्मदेव [ध्येयः] आराधने योग्य है, दूसरा कोई नहीं।

भावार्थ :- जो परमात्मा मुनियों को ध्यावने योग्य कहा है, वही शुद्धात्मा के वैरी आर्त-रौद्र ध्यानकर रहित धर्म ध्यानी पुरुषों को उपादेय है, अर्थात् जब आर्तध्यान रौद्रध्यान ये दोनों छूट जाते हैं, तभी उसका ध्यान हो सकता है।।३९।।

गाथा - ३९ पर प्रवचन

आगे अनन्त ज्ञानमयी परमात्मा योगीश्वरोंकर निर्विकल्पसमाधि-काल में ध्यान करनेयोग्य है,... भाषा देखो! आहाहा! ऐसा जो भगवान, विकल्प से शून्य होकर निर्विकल्प में उस अस्तिपने का ज्ञान हो सकता है। समझ में आया? ऐसा जो अस्तित्व परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा, अभी इतना ही वह है। आहाहा! वह परमात्मा अनन्त ज्ञानमय परमात्मा योगीश्वरों से अन्तर में जुड़ान करनेवाला समकिती ज्ञानी आदि द्वारा निर्विकल्प शान्ति के काल में... आहाहा! उसकी ओर उन्मुख हुई शान्त दशा में, आहाहा! **ध्यान करनेयोग्य है, उसी परमात्मा को कहते हैं—** ३९।

३९) जोइय-विंदहिँ णाणमउ जो झाइज्जइ झेउ।
मोक्खहँ कारणि अणवरउ सो परमप्पउ देउ।।३९।।

अन्वयार्थ :- जो योगीश्वरोंकर मोक्ष के निमित्त... धर्मात्मा को मोक्ष के कारण **निरन्तर ज्ञानमयी...** ध्यान करनेयोग्य है। आहाहा! वह तो अकेला ज्ञानस्वरूप है ऐसा पूर्ण, ऐसा जिसे ध्यान अर्थात् चिन्तवन करनेयोग्य है। आहाहा! लो! यह अपना स्वार्थ करनेवाला है यह तो। आहाहा! और यह कहाँ पूर्ण स्वरूप नहीं कि जिससे तू उसे कुछ कर दे? आहाहा! यह पूर्ण प्रभु है। समझ में आया? आहाहा! उस पूर्ण का स्वीकार करके उसी पूर्ण को आदर करेगा। उसमें तू दूसरे को क्या कर दे? समझ में आया?

धर्मात्मा को **मोक्ष के निमित्त निरन्तर ज्ञानमयी... 'ध्यायते'** भगवान अकेला ज्ञानस्वभाव, चैतन्यस्वभाव से व्याप्त परमात्मा, ऐसा जो ज्ञानस्वरूप उसका ध्यान कर। आहाहा! बाह्य क्रियाकाण्ड में बाह्य त्याग की महिमा हो जाती है न? उसे तत्त्व की खबर नहीं। बाह्य त्याग और कुछ यह करे और वह करे, ऐसा करके... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! अन्तर में अल्पज्ञरूप से माना है, रागवाला माना है, उसका त्याग कर और पूर्ण ज्ञानमय, आनन्दमय हूँ... आहाहा! उसका ध्यान कर। अब यह वस्तु नहीं। लोग अधिक इकट्ठे हों न, ओहोहो! देश को सुधारो, सुखी करो, देश के सुख में भाग लो। युवकों को यह काम करना।

मुमुक्षु : वृद्धों को क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि युवक अब भविष्य में ये बड़े होनेवाले हैं, इसलिए इनको अब यह सब काम उठा लेना चाहिए। बड़े-वृद्ध तो यह होनेवाले हैं न अब? यह वृद्ध तो हो गये अब। आहाहा! कौन वृद्ध और कौन युवक? भाई! भगवान तीन लोक का नाथ सदा ऐसा का ऐसा है। आहाहा! उसे अल्पज्ञ और रागवाला माना है, वही बालकपना है। वह बालकपना अज्ञान है। बालक है, वह बालक है। आहाहा! उसका अभाव करके सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा ऐसे पूर्ण प्रभु को जिसने श्रद्धा-ज्ञान से ध्यान में आदर लिया है, वह युवक हुआ। वह धर्म में युवक हुआ। उसे यह जवानी खिल गयी। यह शरीर की जवानी खिलती है न? अवयव स्थूल, पुष्ट और श्वेत। अरे! यह तो हड्डियाँ हैं, बापू! तेरी जवानी तो परमात्मा उसे कहते हैं कि जैसा पूर्ण स्वरूप है, वैसी प्रतीति ज्ञान और उस सन्मुख की रमणता (हो), तब उसे जवान कहते हैं। आहाहा! और उसकी पूर्ण दशा की, जैसा पूर्ण है, ऐसी पूर्ण पर्याय प्रगट हो जाना, वह वृद्ध हो गया, वह पक्का हो गया। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! जगत से अलग है। जगत में तो सुनने को मिले, ऐसी नहीं है।

मुमुक्षु : इस बात का मिलान कहीं खाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया के साथ कहीं मिलान नहीं खाता। बात तो सच्ची है। आहाहा! तेरी प्रभुता में कहाँ कमी है, नाथ! कि तुझे पर के सामने देखना पड़े, ऐसा कहते हैं। लालच रखे कि यहाँ से होगा और यहाँ से होगा। प्रभु! तुझे प्रभुता की प्रतीति नहीं, हों! जो कुछ मुझे चाहिए है, वह सब पूर्ण मुझमें पड़ा है। कहीं बाहर से आता नहीं। परमात्मा दे सकते नहीं कि यह तेरा माल वहाँ है, वे दे? तेरा माल तो (तेरे पास है)। उसकी प्रतीति और उसकी रमणता द्वारा वह माल प्रगट हो, ऐसा है। आहाहा! दूसरा कोई उसका उपाय नहीं है।

ज्ञानमयी चिन्तवन किया जाता है, वह परमात्मदेव... 'स परमात्मा देवः' आहाहा! स्वयं दिव्यशक्ति का देदार भगवान आत्मा देव है। आहाहा! बाहर की आँखों से देखने पर उसकी खबर नहीं पड़ती। **'स परमात्मा'** देव है। वह तू देव है, उसका आराधन कर,

ऐसा कहते हैं। परदेव है, वह तो पर में लक्ष्य जायेगा तो राग होगा। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! मुद्दे की रकम तो यह है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा काम है, बापू! परम सत्य प्रभु है। वह परम प्रभु... वह सत् है, उसके सन्मुख हो। ... ऐसा कहते हैं। आहाहा! और उसमें वह ज्ञात हो, ऐसा है। वह गुरु से नहीं, वाणी से नहीं। आहाहा! यह तो पहले आ गया है। वेद—दिव्यध्वनि से ज्ञात हो, ऐसा नहीं; गुरु से ज्ञात हो, ऐसा नहीं; महामुनियों की वाणी से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! अरे! कठिन बातें! तेरी प्रभुता, तेरी पर्याय की प्रभुता द्वारा ज्ञात हो, ऐसी है। आहाहा! ऐसा है। यह पैसेवाले और यह धन्धे में हैरान-हैरान होकर मर गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मर गये हैं। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द के नाथ का जहाँ स्वीकार नहीं और उसकी अपनी अस्ति ऐसी होने पर भी, राग और उसके फल की अस्ति का स्वीकार (करते हैं), उसका अनादर—मृत्यु है। हिम्मतभाई! यह ऐसी बातें हैं। आहाहा! जिसकी ऐसी प्रभुता से भरपूर भगवान, उसकी अस्ति में दूसरे की अस्ति का स्वीकार करके इस अस्ति का नकार करना। ऐसा है।

भगवान आत्मा... आहाहा! सब देहदेवल में विराजमान। आहाहा! वहाँ नहीं नात-नहीं जाति, नहीं वेद, नहीं वासना... आहाहा! नहीं गति। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, एक बार दृष्टि में तो ले, नाथ! आहाहा!

है, उसका रक्षक तो हो एकबार। राग और पर को मानकर भक्ष तो हो गया है तू। आहाहा! बात बहुत ऐसी है। यह तो जिसे संसार अन्त लाने का निकट है... आहाहा! यह तो उसकी बात है, भाई! बाहर में तो इस प्रकार ऐसा करे, ऐसे दे न पैसे दूसरे को दे, दूसरे की महिमा करे। आहाहा! लोगों को कितना अच्छा लगे! अरेरे! कहाँ बापू, भाई! यह परमात्मदेव आराधने योग्य है। '**ध्येयः**' का अर्थ यह किया। परमात्मदेव को '**ध्येयः**' करनेयोग्य है। आहाहा! अर्थात् कि आराधना करनेयोग्य है। आहाहा! यह देवी की आराधना नहीं करते? वह तू देव है, उसकी आराधना कर, भाई! आहाहा! यह तो जिसे वह कैसी पद्मावती देवी और चक्रेश्वरी देवी... आहाहा! उसका जिसे माहात्म्य... अरे रे! क्या करे?

मुमुक्षु : पद्मावती देवी ने पार्श्वनाथ की रक्षा की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई रक्षा करता नहीं।

वह **आराधने योग्य है, दूसरा कोई नहीं।** है न? ३९। **'इति भावार्थः'** फिर नकार उसका **'ध्येयरूपो भणितः स एवशुद्धात्मसंवित्तिप्रतिपक्षभूतार्तरौद्रध्यानरहिता-नामुपादेय'** यह आया न? ३९। वह उपादेय है। थोड़ा भी परम सत्य होना चाहिए न, भाई! सब विकल्प, पुण्य-पाप के, दया के, व्रत के, भक्ति के... आहाहा! उस द्वारा कुछ ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। अब यह कहते हैं कि व्यवहार द्वारा निश्चय ज्ञात होता है। शास्त्र में है न? व्यवहार साधन। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। आहाहा! पंचास्तिकाय में आता है। यह सब अर्थ करे। और यह समयसार की १२वीं गाथा का अर्थ करे। **'ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा'** जिसकी अपरम स्थिति इतनी है, उसे व्यवहार का उपदेश देना। ऐसा अर्थ करते हैं।

मुमुक्षु : उसे आता है वह कहा....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! उसके उपदेश की बात नहीं, भाई! निचलीदशा में है, उसकी निचलीदशा को जानना। बस! जानना, इतना उसे कहने में आया है। बाकी आश्रय तो एक त्रिकाली परमात्मा का है। परन्तु अभी अपूर्णदशा है, वह है, उसे व्यवहार से जानना। व्यवहार आदरणीय है, ऐसा नहीं। तथा व्यवहार का उपदेश देना, ऐसा भी नहीं वहाँ। इसका अर्थ ही नहीं किया अमृतचन्द्राचार्य ने। आहाहा! अब यह सब सामने इसे रखे, लो! यह सेठ ने वहाँ दिल्ली में रखा था। साहूजी (ने)। (कहे), यह १२वीं गाथा। उन लोगों ने कहा हो न! **'ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा'** अरे रे!

मुमुक्षु : आप दूसरे अर्थ करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें टीका में ऐसा अर्थ है। इसका अर्थ यह है। **'ववहारदेसिदा'** का अर्थ (यह कि) व्यवहार है, उसे जानना, इसका नाम **'ववहारदेसिदा'।** उपदेश करना-फरना, इसकी व्याख्या है ही नहीं। परन्तु क्या हो? लोगों को बाहर की मिठास (लगी है), ऐसा कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। निचलेवाले को तो व्यवहार का ही उपदेश देना। आहाहा! अपरमभाव में स्थित है, उसे वह अपूर्णता है, उसको

जानना। उस काल में उसको जानना, वह प्रयोजनवान है। आहाहा! ऐसी बात है परन्तु क्या हो? श्रीमद् में लोगों को यह जरा खटकता है। 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोई।' अर्थात् यह साधन, हों! बाहर के। वह साधन नहीं। वह साधन ही नहीं।

मुमुक्षु : वह निमित्त कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त हो। उससे क्या हुआ? निमित्त का अर्थ कहीं कार्यकर नहीं है, ऐसा हुआ यह तो।

मुमुक्षु : कार्यकर तो अपना उपादान ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया तब। यह ऐसी बात है। परन्तु वे सब इस प्रकार (मानते हैं)। अभी डाला है न, चीमनचकु ने। देखो! ऐसा लिया है। साधन कहा है, अमुक कहा है। उस समय में उस स्थिति में खड़े रखे थे। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? साधन एक ही प्रकार का है। निर्विकल्प शान्ति, वह एक ही साधन है। राग को साधन कहे, वह तो आरोपित कथन है। आहाहा! अब यहाँ तक ऐसे अर्थ न समझे तो क्या हो? उसे स्वयं को ही नुकसान का कारण है, ऐसा न समझे। आहाहा! राग के साधन द्वारा वीतरागता की पुष्टि होगी?

मुमुक्षु : कभी-कभी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी (अर्थात्) कब? किस काल में? आहाहा! राग तो बाधक है। उसे साधक का आरोप दिया है। जैसे निश्चय सम्यग्दर्शन स्व के आश्रय से है, उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के राग को व्यवहार समकित कहा। वह समकित की पर्याय नहीं, वह तो राग है। यह तो इसका उसे आरोप दिया है। राग है, उसका आरोप दिया व्यवहार को। इसलिए व्यवहार समकित, समकित नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : दो समकित नहीं? एक निश्चयसमकित, एक व्यवहारसमकित।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही वस्तु है। क्या हो, वस्तु ऐसी है। यहाँ यह कहेंगे, देखो न!

वह परमात्मदेव आराधनेयोग्य है, दूसरा कोई नहीं। व्यवहार विकल्प आदि

आराधनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र आराधनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। आवे, राग आवे। अस्थिरता हो, तब तक आवे। परन्तु उसकी रुचि या उससे होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भावार्थ :- जो परमात्मा मुनियों को ध्यावनेयोग्य कहा है,... जो परमात्मा अर्थात् स्वयं भगवानस्वरूप है, परन्तु गुप्तस्वरूप, शक्तिस्वरूप है न, इसलिए लोगों को उसकी महिमा भासित नहीं होती। एक समय की पर्याय प्रगट, उसकी रमणता में रमनेवाला। उसे ऐसा भगवान पूर्ण स्वरूप है, होवे तो मुझे क्यों नहीं ज्ञात होता? ऐसा कहता है। परन्तु है, उसे जान—मान तो ज्ञात हो। है, उसे माने नहीं और ज्ञात हो? समझ में आया? **जो परमात्मा मुनियों को ध्यावनेयोग्य कहा है, वही शुद्धात्मज्ञान के वैरी...** देखो! शुद्धात्मज्ञान। भगवान आत्मा का ज्ञान, वह शुद्धात्मज्ञान, उसके शत्रु **आर्त-रौद्र ध्यानकर रहित धर्म ध्यानी पुरुषों को उपादेय है,...** ऐसा धर्म अन्तर में आराधनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आर्त-रौद्र ध्यानकर रहित... धर्म शब्द तो अधिक डाला है। पाठ में तो इतना ही है। '**शुद्धात्मसंवित्तिप्रतिपक्षभूतार्तरौद्रध्यानरहितानामुपादेय इति**' इतना। अर्थात् कि वीतरागी धर्म द्वारा आत्मा उपादेय है। आर्तध्यान, रौद्रध्यान रहित। ऐसा। समझ में आया? आहाहा! **धर्म ज्ञानी पुरुषों को उपादेय है, अर्थात् जब आर्तध्यान रौद्रध्यान ये दोनों छूट जाते हैं, तभी उसका ध्यान हो सकता है।** आहाहा! परसन्मुख के झुकाव का ध्यान पर के ध्येय से जो हो, वह छूट जाये, तब उसे स्वध्येय का ध्यान होता है। आहाहा! समझ में आया? लो! **छूट जाते हैं, तभी उसका ध्यान हो सकता है।** विशेष ४० में कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४०

अथ योऽयं शुद्धबुद्धैकस्वभावो जीवो ज्ञानावरणादिकर्महेतुं लब्ध्वा त्रसस्थावररूपं जगज्जनयति स एव परमात्मा भवति नान्यः कोऽपि जगत्कर्ता ब्रह्मादिरिति प्रतिपादयति –

४०) जो जिउ हेउ लहेवि विहि जगु बहु-विहउ जणेइ।
लिंगत्तय-परिमंडियउ सो परमप्पु हवेइ।।४०।।

यो जीवः हेतुं लब्ध्वा विधिं जगत् बहुविधं जनयति।
लिङ्गत्रयपरिमण्डितः स परमात्मा भवति।।४०।।

यो जीवः कर्ता हेतुं लब्ध्वा। किम्। विधिसंज्ञं ज्ञानावरणादिकर्म। पश्चाज्जङ्गमस्थावररूपं जगज्जनयति स एव लिङ्गत्रयमण्डितः सन् परमात्मा भण्यते न चान्यः कोऽपि जगत्कर्ता हरिहरादिरिति। तद्यथा। योऽसौ पूर्वं बहुधा शुद्धात्मा भणितः स एव शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धोऽपि सन् अनादिसंतानागतज्ञानावरणादिकर्मबन्धप्रच्छादितत्वाद्वीतरागनिर्विकल्प-सहजानन्दैकसुखास्वादमलभमानो व्यवहारनयेन त्रसो भवति, स्थावरो भवति, स्त्रीपुंनपुंसकलिङ्गो भवति, तेन कारणेन जगत्कर्ता भण्यते, नान्यः कोऽपि परकल्पितपरमात्मेति। अत्रायमेव शुद्धात्मा परमात्मोपलब्धिप्रतिपक्षभूतवेदत्रयोदयजनितं रागादिविकल्पजालं निर्विकल्पसमाधिना यदा विनाशयति तदोपादेयभूतमोक्षसुखसाधकत्वादुपादेय इतिभावार्थः।।४०।।

आगे जो शुद्ध ज्ञानस्वभाव जीव ज्ञानावरणादि कर्मों के कारण से त्रस, स्थावर जन्मरूप जगत् को उत्पन्न करता है, वही परमात्मा है, दूसरे कोई भी ब्रह्मादिक जगत्कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं –

जो कर्म कारण प्राप्त कर बहुविधि जगत पैदा करे।
त्रयलिंग मण्डित जीव वह परमातमा शाश्वत अरे।।४०।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो [जीवः] आत्मा [विधिं हेतुं] ज्ञानावरणादि कर्मरूप कारणों को [लब्ध्वा] पाकर [बहुविधं जगत्] अनेक प्रकार के जगत को [जनयति] पैदा करता है, अर्थात् कर्म के निमित्त से त्रसस्थावररूप अनेक जन्म धरता है [लिङ्गत्रय-परिमण्डितः] स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुसकलिंग – इन तीन चिन्होंकर सहित हुआ [सः] वही [परमात्मा] शुद्धनिश्चयकर परमात्मा [भवति] है।

भावार्थ :– अर्थात् अशुद्धपने को परिणत हुआ जगत में भटकता है, इसलिये जगत का कर्ता कहा है, और शुद्धपनेरूप परिणत हुआ विभाव (विकार) परिणामों को हरता है, इसलिये हर्ता है। यह जीव ही ज्ञान–अज्ञान दशाकर कर्ता–हर्ता है और दूसरे कोई भी हरिहरादिक कर्ता–हर्ता नहीं है। पूर्व जो शुद्धात्मा कहा था, वह यद्यपि शुद्धनयकर शुद्ध है, तो भी अनादि से संसार में ज्ञानावरणादि कर्म बंधकर ढका हुआ वीतराग निर्विकल्पसहजानन्द अद्वितीय सुख के स्वाद को न पाने से व्यवहारनयकर त्रस और स्थावररूप स्त्री, पुरुष, नपुंसकलिंगादि सहित होता है, इसलिये जगत्कर्ता कहा जाता है; अन्य कोई भी दूसरोंकर कल्पित परमात्मा नहीं है। यह आत्मा ही परमात्मा की प्राप्ति के शत्रु तीन वेदों (स्त्रीलिंगादि) कर उत्पन्न हुए रागादि विकल्पजालों को निर्विकल्पसमाधि से जिस समय नाश करता है, उसी समय उपादेयरूप मोक्ष–सुख का कारण होने से उपादेय हो जाता है।।४०।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल ५, शुक्रवार
दिनांक-०२-०७-१९७६, गाथा-४०, प्रवचन-२४

परमात्मप्रकाश, ४०वीं गाथा है। **आगे जो शुद्ध ज्ञान (एक) स्वभाव जीव...** 'एक' शब्द अन्दर रह गया है। यह जीव जो आत्मा है, उसे भगवान केवली परमात्मा ने पवित्र और ज्ञान एक स्वभावरूप उसे देखा है। यह जीव जो है, वह शुद्ध है, पवित्र है और ज्ञान एक स्वभावी है। ज्ञान का पिण्ड एक स्वभाव वस्तु है। उसके भान बिना अज्ञानभाव से विकारभाव करके कर्म उपार्जित किये। है न? शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव भगवान आत्मा का भान अनादि काल से नहीं। इसलिए इसने पुण्य और पाप के भाव किये, उससे कर्मबन्धन हुआ।

यह **ज्ञानावरणादिकर्मों के कारण से...** और यह कर्म जो हुए, उसके कारण से **त्रस स्थावर जन्मरूप जगत को उत्पन्न करता है,...** आहाहा! यह त्रस के शरीर और स्थावर एकेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, यह स्थावर के शरीर और यह त्रस के शरीर, वह अपना निज स्वभाव—एकरूप स्वभाव की पवित्रता के भान बिना अज्ञान से विकार भाव को करके, जड़कर्म हुए, उसका निमित्त पाकर, उस कर्म के

कारण से यह शरीर मिले। है? **जन्मरूप जगत्...** इस शरीररूप जगत का कर्ता हुआ जीव। कोई दूसरा ईश्वर-विश्वर कर्ता है, यह नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा जगत का कर्ता?

पूज्य गुरुदेवश्री : जगतकर्ता यह आत्मा।

अज्ञानभाव से उत्पन्न करके जो कर्म हुए, उसके कारण से शरीर की उत्पत्ति हुई। तो वह कर्म का कर्ता, शरीर का कर्ता आत्मा हुआ। उस शरीर का करनेवाला आत्मा है। अशुद्धभाव को किया, उससे हुए कर्म, उससे यह त्रस और स्थावर यह शरीर (प्राप्त हुए)। आहाहा! तो उसका कर्ता आत्मा, यह जगत का कर्ता आत्मा हुआ। जगत अर्थात् यह शरीर। कोई जगत का कर्ता आत्मा दूसरा कोई ईश्वर है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अन्यमत में कहते हैं न, भगवान ने यह जगत रचा है। यह बात एकदम मिथ्या है। स्वयं अपने स्वभाव के भान बिना जो कर्म किये और कर्म के कारण शरीरादि प्राप्त हुए, शरीरादि का जन्म हुआ तो उसका कर्ता तो आत्मा हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा अपना काम छोड़कर जड़ का काम करने लगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ का काम नहीं करता। करता है तो विकार। परन्तु विकार से कर्म हुआ और कर्म के कारण शरीर हुआ, तो उसका कर्ता परम्परा से कहलाया। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा का स्वभाव तो पवित्र पिण्ड वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा तो है। आहाहा! उसकी इसे खबर नहीं। यह चैतन्यस्वभाव, वीतरागस्वभाव, ज्ञानस्वभाव, जिसका पवित्र एकरूप स्वभाव है। उसे भान में न लेकर ज्ञानावरणादि आदि कर्म के कारणों को सेवन करके जड़कर्म हुए। उनसे यह शरीर मिले। यह शरीर, वह जगत—संसार है, इसका कर्ता आत्मा हुआ। समझ में आया? यह कहते हैं।

ज्ञानावरणादिकर्मों के कारण से त्रस-स्थावर जन्मरूप... यह त्रस-स्थावर का जन्म हुआ। यह शरीर, वाणी मिले। यह सब जड़ का जन्म हुआ। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ, प्रभु! उसकी इसे श्रद्धा-ज्ञान की खबर नहीं। अज्ञानभाव से उपार्जित विकार, उससे किये कर्म, उससे हुआ शरीर का जन्म। आहाहा! शरीर की उत्पत्ति।

अर्थात् वास्तव में तो शरीरादि संसार का... आहाहा! कर्ता जीव है, इस प्रकार परम्परा से। इस जगत का कर्ता कोई ईश्वर है, ईश्वर ने यह जगत बनाया है, ऐसा कुछ हे नहीं। आहाहा! यह सिद्ध करते हैं।

जगत को उत्पन्न करता है,... आहाहा! यह त्रस और स्थावर के शरीर। अनन्त... अनन्त भव में निगोद में भी काई में अनन्त बार शरीर को धारण किया। मनुष्य का देह, देव का देह, तिर्यंच का देह, नरक का देह, यह सब स्वयं अपनी भूल से, बँधे हुए कर्म से उत्पन्न हुए हैं। आहाहा! इसका कोई दूसरा कर्ता नहीं है। तू स्वयं अज्ञानभाव से कर्ता है। आहाहा! समझ में आया?

वही परमात्मा है,... देखा! आहाहा! स्वयं है तो शुद्ध परमात्मस्वरूप। परन्तु भूल से कर्म हुए और यह परमात्मा है यह... यह अशुद्ध परमात्मा है। आहाहा! समझ में आया? जो आत्मा तो भगवान पवित्र और आनन्द का नाथ प्रभु है। जो वीतराग हुए, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त पवित्रता को परमात्मा अरिहन्त प्राप्त हुए, वे कहाँ से प्राप्त हुए? वह अन्तर में स्वरूप पवित्र है, उसमें से प्राप्त हुए हैं। समझ में आया? वह पवित्र स्वरूप ही भगवान आत्मा का है। परन्तु उसने कभी सुना नहीं। आहाहा! यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह राग करूँ, पुण्य करूँ, दया पालूँ और व्रत करूँ। ऐसी कर्ताबुद्धि में आत्मा के अज्ञान के कारण नये कर्म बाँधे और भटकता है। समझ में आया? आहाहा!

यह चैतन्य पवित्र ज्ञान एकरूप स्वभाव, उसके अनुभव बिना, उसका सम्यग्दर्शन अर्थात् कि शुद्ध पवित्र एक स्वभावी भगवान, उसका अनुभव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र अर्थात् शान्ति के परिणाम, उसके अभाव में उन शान्ति के परिणाम से जीव को सेवन नहीं किया। आहाहा! परन्तु उससे विरुद्ध पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह पुण्यभाव है। हिंसा, झूठ, चोरी के भाव ये पाप हैं। दोनों अशुद्ध और अपवित्र हैं। इस अपवित्र भाव को शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी आत्मा, इस अपवित्रभाव को करके इस शरीर का जन्म हुआ। इससे आत्मा स्वयं शरीरादि जगत का कर्ता है। वही परमात्मा है। दूसरा कोई परमात्मा—ईश्वर शरीर को उपजावे और शरीर

को करे, ऐसा कोई दूसरा आत्मा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

दूसरे कोई भी ब्रह्मादिक जगत्कर्ता नहीं है,... ब्रह्मा, विष्णु और महेश। कहते हैं न वे लोग? ईश कर्ता है, यह बात मिथ्या है। आहाहा! तू ही स्वयं तेरे संसार का उत्पन्न करनेवाला कर्ता तू है। यह बताते हैं। ४० (गाथा)।

४०) जो जिउ हेउ लहेवि विहि जगु बहु-विहउ जणेइ।
लिंगत्तय-परिमंडियउ सो परमप्पु हवेइ।।४०।।

'जो जीवः आत्मा विधिं हेतुं' विधि अर्थात् कर्म के कारण को पाकर... आहाहा! **कर्मरूप कारणों को पाकर... 'बहुविधं जगत्' अनेक प्रकार के जगत को पैदा करता है,...** आहाहा! शरीर को वाणी को... आहाहा! जगत की चीजें, उनकी उत्पत्ति करे परन्तु अपने स्वभाव की उत्पत्ति नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? **अनेक प्रकार के जगत...** अर्थात् शरीर उसे पैदा करता है। **कर्म के निमित्त से त्रस स्थावररूप अनेक जन्म धरता है...** आहाहा! शरीर के जन्म धारण करना... भगवान तो शरीररहित और रागरहित है। उसका स्वरूप तो राग और कर्म, शरीर रहित है। आहाहा! अभी, हों! उसके भान बिना, सम्यग्दर्शन बिना।

सम्यग्दर्शन अर्थात् त्रिकाली ज्ञायक एक स्वभाव, उसका अनुभव होना और उस अनुभव में एक स्वभावी आत्मा, उसका विषय होना (वह सम्यग्दर्शन है)। समझ में आया? सम्यग्दर्शनरूपी अनुभव। धर्म की पहली दशा। वीतरागमार्ग में पहली धर्म की दशा, वह सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन, वह शान्त निर्मल निर्विकारीदशा है। वह निर्विकारीदशा आनन्द के अनुभवरूप है। और उस आनन्द के अनुभव का विषय शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है। लोगों ने तो बाहर से यह करो... यह करो... यह करो... (ऐसा मान लिया)।

ज्ञानस्वभावी, शुद्ध एक स्वभावी, वह किसे करे? आहाहा! यह दया-दान के भाव को करे, वह भी अज्ञानभाव है। ऐसी सूक्ष्म बात, बापू! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! इससे यह शब्द पहला प्रयोग किया है। वह प्रभु तो शुद्ध ज्ञान, पवित्र ज्ञान

एक स्वरूपी प्रभु है। वह क्या करे? वह तो ज्ञान करे, श्रद्धा करे, अतीन्द्रिय आनन्द करे। आहाहा! वह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव भी विकारी, उन्हें करे, यह उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें, भाई! जैसे पाप के भाव हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना; ऐसा ही पुण्य का भाव दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, अपवास। वह सब पुण्य का भाव है। दोनों भाव विकार है। भगवान आत्मा पवित्र एक ज्ञानस्वभावी, वह इन्हें कैसे करे? यह अज्ञानभाव में कर्ता होकर नये ज्ञानावरणी (आदि) बाँधता है, उससे इस शरीर की उत्पत्ति होती है। आहाहा! समझ में आया?

अनेक प्रकार के जगत को पैदा करता है अर्थात् कर्म के निमित्त से त्रस स्थावररूप अनेक जन्म धरता है स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग इन तीन चिह्नोंकर सहित हुआ,... आहाहा! इस शरीर में पुरुषलिंग जड़ का। स्त्री का शरीर स्त्रीलिंग जड़ का, पावैया, हिंजड़ों का शरीर नपुंसकलिंग, यह सब जड़ शरीर के हैं। **इन तीन चिह्नोंकर सहित हुआ,...** आहाहा! जिसे शरीर का जन्म हुआ, उत्पत्ति की और यह स्त्री-पुरुष और नपुंसक ऐसे जो यह शरीर **चिह्नोंकर सहित हुआ,...** आहाहा! उसमें वेदना, भावनासहित चिह्नसहित हुआ। प्रभु तो अवेदी है। आहाहा! शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव लिया न पहला? शुद्ध पवित्र एक स्वभावी ज्ञान, उसके भान बिना उसे यह शरीर की उत्पत्ति हुई और वेद के चिह्नवाला हुआ। आहाहा! यह स्त्री है, पुरुष है, नपुंसक है। यह तो सब जड़ है। यह तो मिट्टी है। पुरुष का देह है, वह मिट्टी है।

मुमुक्षु : चेतन मिट्टी?

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतन कब था? वह तो जड़ है अकेला। चेतन तो भिन्न है अन्दर। आहाहा! ऐसी मिलावट कर डाली है न! चेतन और जड़ मानों दोनों एक हों। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने अपने स्वभाव की जाति को जाना नहीं और जाने बिना उसने कर्म के कारणों को उत्पन्न करके और कर्म हुए तथा कर्म के कारण शरीर की उत्पत्ति हुई, ऐसा कहते हैं। पाठ तो ऐसा है न? '**जिउ हेउ लहेवि विहि**' कर्म के कारण को पाकर। ऐसा। कर्मरूपी कारण, हों! जड़। उसके कारण भाव, वह अभी

नहीं। समझ में आया? जड़कर्म के कारण को पाकर चैतन्यस्वभाव भगवान चैतन्य पवित्र के स्वभाव के भान बिना कर्म के कारण को पाकर इस शरीर की उत्पत्ति हुई। और यह तीन चिह्नोंसहित हुआ। स्त्री–पुरुष वेद यह तो जड़ मिट्टी के हैं। चिह्न पुद्गल के हैं। वह यह कर्म के कारण तीन चिह्नसहित हुआ। आहाहा! समझ में आया? जिसे वास्तव में तो अशरीरी होना चाहिए और अविकारी, अवेदी होना चाहिए। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर का पंथ बहुत सूक्ष्म है, भाई! लोगों ने तो बाहर से मानकर बैठे हैं। आहाहा! यह जैनमार्ग ही नहीं। आहाहा! जैनमार्ग तो प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर ने जीव को पवित्र और ज्ञान एक स्वभावी देखा, उसका आश्रय करके अथवा उसकी दृष्टि सम्यग्दर्शन आदि करके, उसे अनुभव करे, वह वीतराग का धर्म है। आहाहा! समझ में आया? बहुत फेरफार। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा स्वरूप बहुत सूक्ष्म! दुनिया क्या मानती है, करती है, खबर है या नहीं? अरे! कहाँ बैठे? क्या करते हैं? और क्या मानते हैं, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

भाषा देखो न! 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन' ऐसा कहा। यहाँ शुद्ध बुद्ध एक स्वभावी लिया। रागवाला तू नहीं, शरीरवाला तू नहीं, भेद नहीं। ऐसा जो भगवान जीव आत्मा पवित्र और ज्ञान एक स्वरूपी प्रभु की दृष्टि करना चाहिए, उसके सन्मुख होकर समता के भाव से उसका वेदन करना चाहिए। उसे छोड़कर अज्ञानी पुण्य और पाप के भाव करके नये कर्म बाँधता है और शरीर तथा वेद के चिह्नवाला होता है। आहाहा! यह भगवान अविकारी प्रभु, वह इन हड्डियों के वेद के चिह्नवाला (होता है)। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अनादि से भान ही नहीं। इसने व्रत भी अनन्त बार किये। तप किये, भक्ति की, पूजायें अनन्त बार कीं। क्योंकि वह सब शुभराग और पुण्य है। राग है। उसे करके इसने माना कि यह धर्म हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरु नहीं मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा गुरु नहीं मिले। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है, बापू! भाई!

कहते हैं कि शुद्ध पवित्र पिण्ड प्रभु, वह पवित्रता परमात्मा को प्रगट होती है, यह कहाँ से आयी? कहीं बाहर से आती है? अन्तर में पूर्ण पवित्र प्रभु आत्मा है।

आहाहा! और एक स्वभावी वस्तु, ज्ञान एक स्वभावी पदार्थ प्रभु है। आहाहा! उसे रागरहित निर्विकल्प शान्ति द्वारा जो जानना चाहिए, उसे न जानकर राग के भाव को सेवन कर, चाहे तो पुण्य का हो या पाप का हो, राग को सेवन कर कर्म बाँधे। कर्म के फलरूप से शरीर का जन्म और इस वेद का संग हुआ। आहाहा! वेद के चिह्न से इसे कहना कि स्त्री है, पुरुष है। अरे रे! समझ में आया? शर्म की बात है, प्रभु! स्त्री और पुरुष के लिंगवाला भगवान को कहना। आहाहा! उसे शरीरवाला कहना, यह भी कलंक है। समझ में आया? आहाहा!

वही शुद्धनिश्चयकर परमात्मा है। है? आहाहा! यह शुद्धनिश्चय से देखो तो जिसने कर्म उपार्जित किये, ऐसे विकारभाव से रहित शुद्धनिश्चयकर वह परमात्मा स्वयं है। आहाहा! कैसे जँचे? आहाहा! यह कहीं पाँच-पचास लाख पैसे मिले, स्त्री ठीक और पुत्र ठीक, शरीर ठीक (हो) वहाँ अर्पित हो जाता है। आहाहा! अरे! धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा! जड़ की चीज़ को अपनी मानी और हर्षित हुआ, वह आनन्द के स्वभाव को तूने दु:खी किया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! पुण्य-पाप के भाव करके और उसे पुण्य-पाप के फल मिले। यह पुण्य के कारण पैसा मिले और स्त्री-पुत्र और स्वर्ग मिले, मनुष्य का देह मिला।

मुमुक्षु : पुण्य से मिले सही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले अर्थात् क्या? वह तो संयोग परवस्तु है, जड़ है और उसमें हर्षित हुआ कि मुझे ठीक मिला है, बड़ा मूर्ख है—मिथ्यादृष्टि है। उसे जैन की श्रद्धा नहीं, ऐसा कहते हैं। जैन परमेश्वर (ऐसा कहते हैं)... आहाहा! पुण्य और पाप तथा पुण्य-पाप के फल, उसमें जो मूर्च्छित हुआ-हर्षित हुआ, वह मिथ्यादृष्टि (है), जैन नहीं है। उसे जैन की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! लाखों रुपये पैदा होते हैं, लो! और पाँच-दस लाख, बीस लाख की पूँजी हो, स्त्री-पुत्र कुछ ठीक हो, कमाऊ लड़के जगे हों। हर्षित हो गया मूर्ख।

मुमुक्षु : तो किससे हर्षित हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के आनन्द से हर्षित हो, वह यह वस्तु है। आहाहा!

भगवान आनन्द का नाथ प्रभु है, उसके सन्मुख होकर आनन्द का वेदन होना और उस आनन्द के वेदन में आत्मा ज्ञात हो, वह आत्मा कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! जैसी चीज़ है—शुद्ध और एक स्वभावी आत्मा, उसकी ही उसकी प्रतीति स्वसन्मुख में शान्ति के वेदन सहित होना, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। अभी तो उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। श्रावक और मुनिपना तो कहीं रह गया, बापू! वह तो क्या चीज़ है! आहाहा! समझ में आया? लड़के कुछ ठीक हो, स्त्री ठीक हो, अच्छे घर की आयी हो, पाँच-पच्चीस लाख लेकर आयी हो, उसके बापू को... तो मानो कि ओहोहो! बहुत रास आया, हों!

मुमुक्षु : बाप-दादा को नहीं था और मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं नहीं था न? धूल भी नहीं, भाई! यह तुझे क्या हुआ? आहाहा! तेरा नाथ अन्दर आनन्द और लक्ष्मी से भरा है न! आहाहा! शान्ति के स्वभाव से तो भरपूर प्रभु आत है। उसके सामने देखना नहीं, उसे स्वीकार किया नहीं और उसके विरुद्ध के भाव के फल को स्वीकार किया, यह तो पागलपन है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : रुपये हों उसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ थे इसके, यह करे। रहने हों तो रहे और जाने हों तो जाये। यह कहीं इसके देने से जाते हैं, ऐसा भी नहीं है। ऐई!

इसने लाख रुपये लिखाये हैं न अभी। नहीं? वह किसमें? उसमें न? साहित्य में न? सत्साहित्य। पैसा घटाने के लिये। पुस्तक हो, उसके पैसे घटाने के लिये। लाख दिये हैं। उससे क्या? वह लाख किसके? वह तो जड़ के हैं।

मुमुक्षु : रखे नहीं और दिये हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु रखे कौन और दे कौन? वह तो जड़ की चीज़ जड़ के कारण से रहे और जड़ के कारण से जाये। यह आत्मा रख सके और दे सके, यह आत्मा में नहीं है, भाई! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : जड़ को कहाँ खबर है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जड़ को खबर न हो, वह चीज़ आत्मा कहलाये ? तब तो पाँच द्रव्य जड़ हैं। वे जड़ ही सिद्ध नहीं होंगे। भगवान ने तो छह द्रव्य देखे हैं।

मुमुक्षु : उसे खबर है....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। खबर का क्या काम है उसे? परिणमन है न, वह क्रियावतीशक्ति है। देखो! यह लकड़ी चलती है। इसके कारण से है। आत्मा से नहीं, अँगुली से नहीं। बापू! सूक्ष्म बातें, भाई! वे परमाणु हैं। जगत की चीज़ है और उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीन है। द्रव्य-गुण कायम रहकर उसे पर्याय पलटती क्रिया होती है। वह उससे होती है, आत्मा से नहीं। आहाहा! ऐसा माने कि यह पैसे मैंने दिये। मूर्ख है।

मुमुक्षु : व्यवहार से तो ऐसा कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा जाता है, वह तो बोलने की पद्धति है। यह गाँव मेरा है, ऐसा बोले तो गाँव इसका हो गया? कहाँ गाँव तुम्हारा? कि राजकोट हमारा। वहाँ झोपड़ा भी न हो इसे। धन्नालालजी! कौन सा गाँव? आगरा। और तुम्हारा यह आगरा और लश्कर ग्वालियर। गाँव ग्वालियर आत्मा का है ? आहाहा!

बापू! वीतरागमार्ग नौ तत्त्व ऐसी चीज़ है। भिन्न-भिन्न चीज़ है। नौ तत्त्व (में) अजीव भिन्न, जीव भिन्न। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव, वे विकारी भाव। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! कठिन बातें। व्रत का, तप का, अपवास का भाव, वह सब विकल्प है, राग है, भाई! आहाहा! इसे खबर कहाँ है ? यह तो मानो धर्म है। आहाहा!

धर्म की दशा तो प्रभु उसे (कहते हैं कि जिसमें) आत्मा का आनन्द, सुख का सागर भगवान अन्दर में, उसे दृष्टि के दबाव से पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! उसमें अतीन्द्रिय शान्ति और आनन्द आवे, उसे वीतराग धर्म कहते हैं। जिनेश्वरदेव तो उसे वीतराग धर्म कहते हैं। बाकी यह पुण्य-पाप की क्रिया उसे तो कर्म बँधा। कहा। उससे कर्म हुआ और कर्म से यह शरीर मिला और वेद के चिह्न मिले। आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर मिला तो रुपये कमाये, रुपये कमाये तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं कमाये। कौन कमावे? जगत की जाति अलग है, बापू! यह पुण्य-पाप को उपार्जित करे तो नुकसान का धन्धा है। आहाहा! इसलिए पहले उपोद्घात ही बाँधा है न? आहाहा!

भगवान पवित्र का पिण्ड ज्ञान एक स्वभावी वस्तु। आहाहा! उसे अनुभव किये बिना, उसकी प्रतीति किये बिना, उसकी सन्मुख के स्वभाव के सत्कार बिना धर्म तीन काल में कहीं होता नहीं। वह चाहे जैसी भक्ति करे, लाख-करोड़ भगवान की या करोड़ अरब यात्रायें करे, सब भाव राग है।

मुमुक्षु : सम्मेदशिखर की यात्रा का भाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्मेदशिखर की यात्रा तो राग है, परद्रव्य है। आहाहा! चैतन्य के नाथ की यात्रा अन्दर आनन्द का नाथ, उसके ऊपर जाये। शुद्ध परिणति द्वारा वहाँ जाये, उसे यहाँ यात्रा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अशुद्धपने को परिणत हुआ... देखा! है तो यह शुद्ध परमात्मा। शुद्धनिश्चय दृष्टि से देखें तो यह भगवान परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। परन्तु **अशुद्धपने को परिणत हुआ...** अब स्पष्टीकरण किया। यह अशुद्धपना पुण्य और पाप के भावरूप हुआ... आहाहा! यह अशुद्ध है। **अशुद्धपने को परिणत हुआ जगत में भटकता है...** आहाहा! है तो भगवान शुद्ध निश्चय से शुद्ध-बुद्ध ज्ञानघन, परन्तु अशुद्ध परिणति—पुण्य और पाप के शुभ और अशुभभाव, उसकी परिणति खड़ी करके चार गति में भटकता है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए जगत का कर्ता कहा है,...** इसलिए जगत का कर्ता अज्ञानभाव से आत्मा को कहा है। आहाहा!

और शुद्धपनेरूप परिणत हुआ... भगवान अब सुल्टा पड़ता है। भगवान शुद्ध चैतन्यघन प्रभु, पवित्ररूप से परिणमता हुआ अन्दर के स्वभाव के सन्मुख, **शुद्धपनेरूप परिणत हुआ...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो वीतरागी पर्याय, उसरूप अवस्था में **परिणत हुआ विभाव (विकार) परिणामों को हरता है...** उस विकारी परिणाम का नाश करता है; इसलिए आत्मा को कर्ता-हर्ता कहा जाता है। विकार को करे और भटके, इसलिए कर्ता, विकारी को टाले इसलिए हर्ता। जगत का दूसरा कोई कर्ता-हर्ता है, ऐसा नहीं है।

सर्वज्ञ परमेश्वर भी कहीं आत्मा के धर्म के कर्ता नहीं। आहाहा! वे तो सर्वज्ञ भिन्न हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु शुद्ध चैतन्यघन है, वह वस्तु तो इस प्रकार से है, परन्तु उसे भूलकर अशुद्धता के परिणमन से, यह शुभ और अशुभभाव दोनों अशुद्ध हैं, वह अशुद्धपने की परिणति से जगत का कर्ता कहा जाता है। आहाहा! शरीर और वाणी का कर्ता। और वह शुद्ध परिणति से शुद्ध चैतन्य महाप्रभु की सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान की शुद्ध परिणति निर्विकारी दशा (हो), इस द्वारा विकार का हर्ता है, इसलिए विकार का हर्ता—नाश करनेवाला, यह स्वयं आत्मा है। कर्ता-हर्ता दूसरा कोई है नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें बैठना कठिन। ऐसी दूसरी विपरीतता घुस गयी है न! आहाहा! शरीर का हम करते हैं, देश का करते हैं, कुटुम्ब का करते हैं, स्त्री-पुत्र का रक्षण करते हैं। मूढ़ है। परद्रव्य है, उसे रखे कौन? रक्षण करे कौन? आहाहा! ऐसी बात है, बापू! अरेरे! जगत चलता जाता है।

यह जीव ही ज्ञान-अज्ञान दशाकर... देखा! **कर्ता-हर्ता है...** आहाहा! स्वरूप के भान बिना अज्ञान से कर्म बाँधे, उसे शरीर उत्पन्न हो और ज्ञानदशा से विकार टाले और हर्ता हो। दूसरा कोई कर्ता-हर्ता नहीं, भाई! भगवान भी तुझे वीतरागता दे देवे, ऐसा है नहीं। आहाहा! वीतराग तो सर्वज्ञ परमेश्वर हैं। वे तो तीन काल, तीन लोक के जाननेवाले साक्षी हैं। वह क्या तुझे दे? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तो उनके पास जाये या न जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपनी शुद्धता प्रगट है, प्रगट करे, तब उन्हें निमित्त कहा जाता है इसलिए। ऐसी बात है। भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया है। अनन्त भव किये हैं, बापू! तुझे कहाँ खबर है? अनन्त अवतार महाविदेह में किये। तो महाविदेह में तो भगवान सदा विराजते हैं। सीमन्धर भगवान अभी विराजते हैं। ऐसे अनादि तीर्थंकर वहाँ सदा होते हैं। वहाँ अनन्त बार जन्मा है।

मुमुक्षु : महाविदेह में जन्म हुआ!

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार हुआ और अनन्त बार समवसरण में जा चुका।

भगवान की वाणी सुनने। उसमें भला क्या हुआ? आहाहा! वह तो संयोगी चीज़ है।

मुमुक्षु : कौन सी बात बाकी रह गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग से भिन्न पड़ने की (बात) बाकी रह गयी। स्वयं राग से भिन्न स्वभाव, ऐसी दृष्टि की नहीं। ऐसा सब अनन्त बार किया। 'भवे भवे जिन पूजियो।' अनन्त बार महाविदेह में जन्मा। भगवान तो वहाँ सदा ही विराजते हैं। समवसरण में अनन्त बार गया, भगवान की वाणी सुनी, परन्तु 'केवळी आगळ रह गयो कोरो।' वहाँ ऐसा का ऐसा रहा।

उसे यह सब समझने जैसी बातें हैं। भक्ति शुभभाव है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति भी शुभभाव पुण्य है, धर्म नहीं। सूक्ष्म बात, बापू! इसे कुछ खबर नहीं। ऐसी बात है।

भगवान स्वद्रव्य है, उसके आश्रय बिना तीन काल में कहीं धर्म नहीं होता। यह सम्मेदशिखर हो या भगवान का समवसरण हो। साक्षात् भगवान की वाणी अनन्त बार सुनी है न। उस वाणी से कुछ ज्ञान नहीं होता। आहाहा! यह तो पहले आ गया है। वेद, वेद अर्थात् वीतराग की वाणी, हों! वह वेद नहीं। वीतराग की दिव्यध्वनि भी अनन्त बार सुनी। परन्तु वह तो परवस्तु है। सुनने के समय लक्ष्य था, वह शुभराग है। आहाहा! परन्तु आत्मा के स्वभाव सन्मुख रह गया नहीं तो धर्म हुआ नहीं। ऐसी बातें हैं, बापू! वस्तु तो यह है। दुनिया माने, न माने। लो! वाद-विवाद, झगड़ा करे। करो, बापू! भाई! आहाहा! वीतराग का मार्ग तो है, वह है। आहाहा!

यह जीव ही ज्ञान-अज्ञान दशाकर कर्ता-हर्ता है और दूसरे कोई भी हरिहरादि कर्ता नहीं है। आहाहा!

भावार्थ :- पूर्व जो शुद्धात्मा कहा था,... शुद्ध आत्मा स्वयं। **यद्यपि शुद्धनयकर शुद्ध है,...** शुद्ध दृष्टि से देखें तो वह शुद्ध ही है, पवित्र है, पूर्ण है। **तो भी अनादि से संसार में...** अनादि निगोद एकेन्द्रिय जीव में रहकर निगोद के भव भी अनन्त किये। आलू, लहसुन, शकरकन्द के एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव। आहाहा! वहाँ अनन्त बार गया। जिसे जगत जीव मान सके नहीं, ऐसे स्थान में गया। उसे जीव माने नहीं। शकरकन्द, लहसुन, प्याज के एक राई जितने टुकड़े में असंख्य तो

शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव। कौन माने? उसमें भी अनन्त बार जन्मा, अज्ञान भाव से ऐसे शरीर धारण किये, उसका कर्ता तू है। आहाहा! राग-द्वेष का कर्ता हुआ, उससे कर्म हुआ और उससे शरीर मिले, इसलिए परम्परा कर्ता तुझे कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

कर्म बँधकर ढका हुआ वीतराग, निर्विकल्प सहजानन्द, अद्वितीय सुख के स्वाद को न पाने से... आहाहा! आत्मा का आनन्द जो है, वीतराग निर्विकल्प सहजानन्द, राग बिना का सहज आनन्द प्रभु, आत्मा का स्वभाव, अद्वितीय सुख, अजोड़ सुख कहीं अन्यत्र सुख है नहीं। आहाहा! पैसे में, स्त्री में, परिवार में माना है, वह तो कल्पना का जहर है। वह तो दुःख है। आहाहा! पैसा और स्त्री का शरीर अनुकूल और... आहाहा! अरे! प्रभु! वह तो सब दुःख है। उसमें कल्पना से तुझे ठीक लगता हो तो वह तो जहर है, दुःख है। अद्वितीय सुख तो यहाँ है। आहाहा! अन्तर सन्मुख होने पर अद्वितीय सुख का स्वाद चाहिए। अन्तर अजोड़ आनन्द का स्वाद न पाकर यह भटक रहा है। आहाहा!

भगवान में अतीन्द्रिय आनन्द है। त्रिकाली आनन्द की मूर्ति प्रभु है। अरे! उसके स्वाद को नहीं पाकर भटक रहा है। आहाहा! दुनिया के स्वाद की मिठास में रुककर, चैतन्य के आनन्द के स्वाद को नहीं पाकर... आहाहा! चौरासी के अवतार में भटक रहा है। साधु भी अनन्त बार हुआ। हजारों रानियाँ छोड़ीं, मुनि हुआ, नग्न हुआ, जंगल में रहा, परन्तु सब क्रियायें जो हैं, उन्हें अपनी मानी, धर्म (माना)। वह रागरहित मेरा स्वभाव आनन्द का नाथ, उसके स्वाद को न पाकर भटक रहा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा किस प्रकार का धर्म! यह कहीं नया धर्म होगा? अनादि की बात यह है, भाई! जगत को मिली नहीं। आहाहा! वह दया करो, दया पालो, दया पालो, ऐसा करके धर्म माने। यह कहे कि यात्रा करो, भक्ति करो, ऐसा माने। दूसरा कहे दान और पूजा और व्रत, तप, अपवास करो। उसमें धर्म माने। सब अज्ञानदशा है। आहाहा! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म, भाई!

मुमुक्षु : सब धर्म में समन्वय कब करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : समन्वय किसके साथ हो ? जहर का और अमृत का समन्वय हो कहीं ? आहाहा ! बेंत की छाल निकाले और सूत की डोरी, दोनों को बुने। यह बेंत, बेंत है न ? बेंत नहीं ? क्या कहते हैं ? एक सोटी की छाल निकाले और सूत की डोरी, दोनों को बुने। बुनी जायेगी ? इसी प्रकार अज्ञानी और ज्ञानी की बात दोनों का समन्वय तीन काल में नहीं होता। परमात्मा ने बात कैसी ली ! यह परमात्मप्रकाश है। पुस्तक का नाम। आहाहा !

ओहोहो ! कहते हैं, **संसार में ज्ञानावरणादि कर्म बँधकर ढका हुआ वीतराग, निर्विकल्पसहजानन्द...** आहाहा ! आत्मा का आनन्द है, वह वीतरागी आनन्द है। और वह अभेद सहज आनन्द है। अद्वितीय सुख है। ऐसा सुख कहीं जगत में अन्यत्र नहीं है। आहाहा ! ऐसे सुख के स्वाद को न पाकर... आहाहा ! **व्यवहारनयकर त्रस और स्थावररूप स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिंगादि सहित होता है,...** लो ! त्रस और स्थावर और तीन चिह्न, ऐसा लेना है न मूल तो पाठ में। आहाहा ! अर्थात् कि सम्यग्दर्शन पाये बिना। सम्यग्दर्शन अर्थात् यह। समकित अर्थात् कि आत्मा के आनन्द के स्वाद को अनुभव करना। आहाहा ! अब यहाँ तो कहे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, समकित है। नौ तत्त्व की श्रद्धा (करो, वह समकित)। अरे ! प्रभु कहाँ... ? भाई ! आहाहा !

देखो न ! भाषा कैसी की है ! सम्यग्दर्शन पाया नहीं, ऐसा न कहकर **निर्विकल्पवीतरागसहजानन्द, अद्वितीय सुख के स्वाद को न पाने से...** ऐसा। ऐसी भाषा ली है। आहाहा ! सम्यग्दर्शन का स्वरूप ही यह है कि जो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का उसे स्वाद आवे। आहाहा ! लड्डू का स्वाद आता है, ऐसा कहते हैं न ? धूल भी नहीं। लड्डू तो जड़ है। स्त्री का शरीर मिट्टी जड़, माँस, हड्डियाँ हैं। उसका स्वाद आता है इसे ? उसके ऊपर लक्ष्य करके, यह ठीक है, ऐसा राग करता है। उस राग का इसे स्वाद है। आहाहा ! राग का इसे अनुभव है। समझ में आया ? और यह व्रत, तप करने में विकल्प उठे, उसमें राग का स्वाद है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! भारी कठिन काम।

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहाहा ! वह तो वीतराग निर्विकल्प

सहजानन्द का पिण्ड है। उसकी परिणति की यह बात की है। आहाहा! भगवान आत्मा तो वीतरागी, वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। वह तो राग बिना की चीज़ है। आहाहा! वह तो निर्विकल्प है। सहजानन्द की मूर्ति प्रभु है। अजोड़ सुख है। उसके स्वाद को अर्थात् वर्तमान दशा को न पाकर। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! बाहर में लोग बहुत बेचारे। बेचारे मांडकर बैठे हों और अपवास करते हों और तपस्यायें करते हों। वह मानो तपस्या है। अपवास करे वह तपस्या। तपस्या है वह निर्जरा। निर्जरा वह धर्म। भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! ऐसे लंघन तो अनन्त बार किये, भाई! उसमें वह तो राग है। राग है, उसका स्वाद तो कलुषित दुःख है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु वीतरागमूर्ति आत्मा, उसमें से वीतरागी सुख की स्वाद की दशा प्रगट होना, उसके बिना यह चार गति में भटक रहा है। यह स्वाद आया, इसलिए दुनिया के स्वाद जिसे उठ गये हैं। चक्रवर्ती के राज्य में भी सुखबुद्धि उसे—समकिती को उड़ गयी है। आहाहा! छियानवें हजार स्त्रियाँ जिन्हें एक स्त्री रत्न की हजार देव सेवा करे। उसमें वह सुखबुद्धि समकिती की उड़ गयी है। अस्थिरता के कारण राग होता है, परन्तु सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि सुखबुद्धि का स्वादिया आत्मा सुख में आ गया। आहाहा! सुख का स्वादिया भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया ऐसा जो सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! उसे कहीं अन्यत्र सुख भासित नहीं होता। इन्द्र के इन्द्रासन में भी कहीं सुख भासित नहीं होता। और अज्ञानी को तो एक छोटी-मोटी साधारण बात हो तो आहाहा! बहुत ठीक, बहुत मजा... बहुत मजा... आहाहा! शान्तिभाई! यह ऐसी बातें हैं। यह तो शीतल पहर है न यहाँ, इसलिए सब विस्तार होता है। मुम्बई में इतना अधिक विस्तार नहीं होता।

मुमुक्षु : इसलिए यहाँ आना या वहाँ रहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ मुम्बई व्याख्यान में दस-दस हजार, पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग आवे। अभी ५१ व्याख्यान हुए न! २६ दिन रहे। बहुत लोग... रविवार के दिन बारह-तेरह हजार। दूज (जन्मदिन) का दिन था, उस दिन पन्द्रह हजार। दादर, घाटकोपर, मलाड, तीनों जगह व्याख्यान हुए। घाटकोपर में सात व्याख्यान हुए, मालड में आठ

हुए, दादर में छत्तीस हुए। वह तो भी इतना बहुत सूक्ष्म निकालकर नहीं होता। बात आवे यह की यह, परन्तु बहुत लम्बाकर स्पष्टीकरण सूक्ष्म कठिन पड़े। आहाहा!

देखो न! कैसी बात ली है! **इसलिए...** आत्मा को **जगत्कर्ता कहा जाता है, अन्य कोई-कोई भी दूसरोंकर कल्पित...** दूसरे को कल्पित किया कि परमात्मा है, यह ब्रह्मा है और कोई विष्णु है और यह नहीं। **यह आत्मा ही परमात्मा की प्राप्ति के शत्रु...** आहाहा! अपना आत्मा परमात्मा की प्राप्ति का शत्रु **तीन वेदों (स्त्रीलिंगादि) कर उत्पन्न हुए रागादि विकल्पजालों को...** आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प के जाल उत्पन्न करके निर्विकल्प समाधि से जिस समय नाश करता है। आहाहा! ऐसा जाल और विकल्प के जाल पुण्य-पाप की (जाल, उसे) निर्विकल्प समाधि—राग बिना की अकषाय शान्ति द्वारा... आहाहा! **जिस समय नाश करता है, उसी समय उपादेयरूप मोक्ष-सुख का कारण होने से...** कौन? वह दशा। निर्विकल्प शान्ति, आनन्द, वह मोक्षसुख का कारण है। मोक्षसुख का कारण है। आहाहा! अर्थात् कि मोक्ष का कारण वह है। समझ में आया?

निर्विकल्पसमाधि से जिस समय नाश करता है,... आहाहा! वीतराग परिणति द्वारा राग का जिस समय नाश हो, वह वीतराग परिणति जो है, वह मोक्ष का कारण है। अर्थात् मोक्षसुख का कारण है, इसलिए वह उपादेय है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग भी इकट्ठा बुन डाला। मोक्षमार्ग, वह पुण्य-पाप के भाव बिना की चीज़, अन्दर में निर्विकल्प आनन्द की दशा, वह सुख का कारण है और पूर्ण सुख का वह कारण है। आहाहा! मोक्ष का कारण वह है। निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति का वेदन। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग वीतराग ने कहा है। समझ में आया?

जिनेश्वरदेव भगवान विराजते हैं। सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। उसमें से बहुत बात आयी है न! कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ से लाये, उसमें से बहुत बात इसमें आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य का आधार बहुतों ने लिया है। आहाहा! आत्मा अपने आनन्द के वेदन द्वारा राग का नाश करता है। वह आनन्द का वेदन मोक्ष का कारण है। वह धर्मदशा, मोक्ष का कारण है। रागादि परिणाम, वह मोक्ष का कारण नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४१

अथ यस्य परमात्मनः केवलज्ञानप्रकाशमध्ये जगद्वसति जगन्मध्ये सोऽपि वसति तथापि तद्रूपो न भवतीति [1]कथयति –

४१) जसु अब्भंतरि जगु वसइ जग-अब्भंतरि जो जि।
जगि जि वसंतु वि जगु जि ण वि मुणि परमप्पउ सो जि।।४१।।

यस्य अभ्यन्तरे जगत् वसति जगदभ्यन्तरे य एव।
जगति एव वसन्नपि जगत् एव नापि मन्यस्व परमात्मानं तमेव।।४१।।

यस्य केवलज्ञानस्याभ्यन्तरे जगत् त्रिभुवनं ज्ञेयभूतं वसति जगतोऽभ्यन्तरे योऽसौ ज्ञायको भगवानपि वसति, जगति वसन्नेव रूपविषये चक्षुरिव निश्चयनयेन तन्मयो न भवति मन्यस्व जानीहि। हे प्रभाकरभट्ट, तमित्थंभूतं परमात्मानं वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावयेत्यर्थः। अत्र योऽसौ केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्य वीतरागस्वसंवेदनकाले मुक्तिकारणं भवति स एवोपादेय इति भावार्थः।।४१।।

आगे जिस परमात्मा के केवलज्ञानस्वरूप प्रकाश में जगत् बस रहा है और जगत् के मध्य में वह ठहर रहा है, तो भी वह जगत्रूप नहीं है, ऐसा कहते हैं –

नित जगत जिसमें रहे वह भी जगत में व्यापक रहे।
पर जो कभी भी ना जगतमय मान परमातम उसे।।४१।।

अन्वयार्थ :- [यस्य] जिस आत्माराम के [अभ्यन्तरे] केवलज्ञान में [जगत्] संसार [वसति] बस रहा है, अर्थात् प्रतिबिम्बित हो रहा है, प्रत्यक्ष भास रहा है, [जगदभ्यन्तरे] और जगत् में वह बस रहा है, अर्थात् सबमें व्याप रहा है। वह ज्ञाता है और जगत् ज्ञेय है, [जगति एव वसन्नपि] संसार में निवास करता हुआ भी [जगदेव नापि] निश्चयनयकर किसी जगत् की वस्तु से तन्मय (उस स्वरूप) नहीं होता, अर्थात् जैसे रूपी पदार्थको नेत्र देखते हैं, तो भी उनसे जुदे ही रहते हैं, इस तरह वह भी सबसे जुदा रहता है, [तमेव] उसी को [परमात्मानं] परमात्मा [मन्यस्व] हे प्रभाकरभट्ट, तू जान।

---

* पाठान्तर :- कथयति - कथयन्ति

भावार्थ :- जो शुद्ध, बुद्ध सर्वव्यापक सबसे अलिप्त, शुद्धात्मा है, उसे वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थिर होकर ध्यान कर। जो केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार है, उसका कारण वीतराग स्वसंवेदनज्ञानरूप निजभाव ही उपादेय हैं।।४१।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल ६, शनिवार
दिनांक-०३-०७-१९७६, गाथा-४१-४२, प्रवचन-२५

परमात्मप्रकाश ४१ (गाथा)। **आगे जिस परमात्मा के केवलज्ञानस्वरूप प्रकाश में जगत बस रहा है, और जगत के मध्यम में वह ठहर रहा है, तो भी वह जगतरूप नहीं है,...** यह बात करते हैं।

४१) जसु अब्भंतरि जगु वसइ जग-अब्भंतरि जो जि।
जगि जि वसंतु वि जगु जि ण वि मुणि परमप्पउ सो जि।।४१।।

अन्वयार्थ :- जिस आत्माराम के... आहाहा! भगवान आत्मराम में ज्ञानस्वभाव के कारण **केवलज्ञान में संसार बस रहा है,...** केवलज्ञान में पूरा जगत ज्ञात होता है। केवलज्ञान में पूरा जगत बस रहा है, ऐसा कहते हैं। अर्थात् कि उसका ज्ञान है। आहाहा! **प्रतिबिम्बित हो रहा है, प्रत्यक्ष भास रहा है,...** ज्ञान में लोकालोक प्रत्यक्ष भासित हो, ऐसा उसका स्वभाव है। **और जगत में वह बस रहा है,...** जगत ज्ञान में बसा है, ज्ञान जगत में बसा है, ऐसा। अर्थात् कि जगत के ज्ञान में आत्मा है न? वह जगत में बसा है, ऐसा कहा। जगत केवलज्ञान में बसा है और केवलाान जगत में बसा है अर्थात् कि ज्ञान में सर्वव्यापक शक्ति है, इसलिए जगत में मानो आत्मा बसा है, ऐसा कहने में आता है।

सबमें व्याप रहा है। है न, देखो न! **वह ज्ञाता है और जगत ज्ञेय है,...** आहाहा! भगवान तो ज्ञानस्वरूप ज्ञाता है। पूरा जगत वह परज्ञेयरूप से है। **'जगति एव वसतपि' संसार में निवास करता हुआ भी...** अर्थात् कि ज्ञान में लोकालोक ज्ञात होता है, तथापि **निश्चयकर किसी जगत की वस्तु से तन्मय (उस स्वरूप) नहीं होता,...** जगत की वस्तु में एकमेक नहीं। जगत की वस्तु का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान में बसता है, परन्तु जगत की चीज़ों के साथ उसका एकपना नहीं है। आहाहा!

जैसे रूपी पदार्थ को नेत्र देखते हैं,... रूपी पदार्थ को नेत्र देखते हैं न? अग्नि को, बर्फ को। परन्तु कहीं अग्नि और बर्फ के ऊपर आँख होती (जाती) है? इसी प्रकार ज्ञानस्वभाव में लोकालोक ज्ञात होता है, तथापि लोकालोक की वस्तु में आत्मा—ज्ञान तन्मय नहीं है। अपने ज्ञान में तन्मय है। आहाहा! **इस तरह वह भी सबसे जुदा रहता है,...** भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा, लोकालोक से अत्यन्त भिन्न, चैतन्यसूर्य भिन्न रहता है। आहाहा! **उसी को परमात्मा, हे प्रभाकर भट्ट! तू जान।** आहाहा! आनन्द की समाधि द्वारा उसे तू जान। वह भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी ज्ञाता होने से पूरा जगत उसमें झलक रहा है, ज्ञान आया है और ज्ञान मानो जगत में बसता हो—उसके ज्ञानभाव में, ऐसा है, परन्तु जगत के पदार्थों को वह स्पर्श नहीं करता। ऐसा जो परमात्मस्वभाव आत्मा, उसे अन्तर्मुख समाधि वीतरागी परिणति द्वारा जान।

मुमुक्षु : वहाँ अनुभव कर, ऐसा कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव, वह तो एक की एक वस्तु है। अनुभव कहो या आनन्द की दशा कहो या वीतरागी परिणति कहो, वह सब एक ही अवस्था है। आयेगा इसमें—४२ में। आहाहा! उसे जानना अर्थात् कि उसकी ओर का आश्रय लेकर अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति में उसे जानना, अनुभव करना, उसे यहाँ जानना कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

जो ज्ञानस्वभाव, उस लोकालोक का ज्ञान करता है, तथापि वह लोकालोक को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसा जो परमात्मस्वभाव, उसे उसके सन्मुख की अरागी समाधि (द्वारा जान)। सम्यग्दर्शन, वह भी एक समाधि है... समझ में आया? आनन्द की दशा है। समाधि का अर्थ शान्ति और आनन्द है। उस भगवान आत्मा को... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से जान। आहाहा! उससे वह ज्ञात हो, ऐसा है। समझ में आया?

जो शुद्ध, बुद्ध सर्वव्यापक सबसे अलिप्त,... जगत्—लोकालोक को जानने पर भी लोकालोक से अलिप्त है। भगवान ज्ञानस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, ज्ञातास्वभाव लोकालोक को स्पर्श किये बिना जानता है, तथापि पर से वह अलिप्त है। आहाहा! **उसे...** देखो!

आया। **वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थिर होकर ध्यान कर।** देखा! जानने की व्याख्या इतनी है। आहाहा! उसे राग बिना की निर्विकल्प शान्ति, अरागी आनन्द, निराकुलदशा में **स्थिर होकर ध्यान कर।** आहाहा! ऐसा जो ध्रुव धीर स्वभाव, नित्य स्वभाव, उसमें लोकालोक को जानने की ताकत है, तथापि लोकालोक को वह ज्ञान स्पर्श नहीं करता।

वास्तव में तो लोकालोक है, इसलिए लोकालोक का ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। उसका स्वभाव ही इतना है कि स्व-पर को पूर्ण रीति से जाने, ऐसी ही उसकी दशा और स्वरूप है। वह पर को जानता है, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। आहाहा! और पर है, इसलिए जानता है, यह भी व्यवहार है। आहाहा! यह ज्ञायकस्वभाव चैतन्यबिम्ब प्रभु है। पूर्ण जानने का जिसका स्वतः स्व से स्वभाव है। ऐसा जो यह परमात्मा, उसे उसकी जाति की शान्ति, समाधि, आनन्द, वीतरागीदशा द्वारा उसे जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसी बात है।

इसलिए देखा! जान की व्याख्या की है कि **वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थिर होकर ध्यान कर।** उसे जान। आहाहा! कितना इसे समेटना पड़े। आहाहा! अन्तर में आनन्द का नाथ प्रभु, अकेला ज्ञान का सागर, जिसमें लोकालोक है, इससे भी जाने, ऐसा उसका जानने का स्वभाव है, इसलिए ऐसा कहा कि लोकालोक को जानता है। आहाहा! ऐसा जो जानने के स्वभावस्वरूप प्रभु, वह परमात्मा है। आहाहा! वह परमात्मा लोकालोक को जानने पर भी लोकालोक को स्पर्श नहीं करता और लोकालोक उसमें नहीं आता। उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान है। ऐसा मार्ग है, बापू! यह तो धीर का काम है। आहाहा!

जो केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार है,... देखा! जो परमात्मदशा केवलज्ञानरूपी कार्यसमयसार है, **उसका कारण वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानरूप निजभाव ही उपादेय हैं।** आहाहा! इस कार्यसमयसार का कारण वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानरूप निजभाव ही है। आहाहा! वर्तमान वीतरागी समाधि शान्ति आनन्द की धारा, वही केवलज्ञानरूपी कार्यसमयसार का कारण है। इसलिए वह उपादेय है। है? आहाहा! कार्यसमयसार। क्या परमात्मप्रकाश का वर्णन किया है! आहा!

कार्यसमयसार अर्थात् केवलज्ञानदशा। उसका कारण वीतराग स्वसंवेदनज्ञान का

निजभाव। आहाहा! अरागी वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति, वह कार्यसमयसार का कारण, वह अपना निजभाव ही उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली भगवान कारणसमयसार और केवलज्ञान की प्राप्ति कार्यसमयसार, परन्तु उसका उपाय **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानरूप निजभाव...** है। आहाहा!

मुमुक्षु : निज भाव त्रिकाली लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय।

उसका कारण वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानरूप निजभाव... वीतराग स्वसंवेदन वर्तमान। आहाहा! यहाँ पर्याय की बात है।

तीन बातें कीं न? एक तो त्रिकाली भगवान कारणसमयसार आनन्द का कन्द प्रभु नित्यानन्द सामान्य एकरूप स्वभाव, जिसे कारणजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो, उसका कार्य केवलज्ञान जो परमात्मदशा, वह उसका कार्य। उस कार्य का कारण कौन? उस कारण का कारण आत्मा, परन्तु उस कार्य का कारण कौन? समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसके सन्मुख वीतरागी परमानन्द की समाधिरूप ध्यान... आहाहा! वह निजभाव, वह उपादेय और उससे कार्यसमयसार होता है। अब इसमें व्यवहार के तो झगड़े, निश्चय और व्यवहार के झगड़े। नहीं आया कल? परन्तु बहुत अर्थ समझ में नहीं आये। लेख बहुत लम्बा-लम्बा था। आहाहा! धन्नालालजी थोड़ा-थोड़ा कहते थे। ठीक। भक्ति के बाद। ठीक। हिन्दी भाषा है न... आहाहा! उसमें क्या समझ में आये न अपने को। आहाहा!

एक तो त्रिकाली परमात्मस्वरूप सिद्ध किया और उसके कारणसमयसाररूप से कहकर उसका कार्य जो सिद्ध परमात्मदशा, वह उसका कार्य। आहाहा! और उस कार्य के कारणरूप से वर्तमान त्रिकाली चीज़ की सन्मुख की वीतरागी आनन्द की दशा का वेदन... आहाहा! स्वसंवेदन है न? वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वसंवेदन, वेदन, उस कार्यसमयसार का वह कारण—वह निजभाव कारण है। ऐसा कहा न? देखो न! रागादि, विकल्पादि कारण नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... इसमें कहीं आया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया न, क्या आया यह ? आहाहा ! वह रागादि निजभाव नहीं। वह तो परभाव है। आहाहा ! मार्ग, बापू ! बहुत अन्तर में समेटना... आहाहा !

ध्रुव की ओर का ध्यान, वह परम आनन्द की दशारूपी ध्यान होता है। ध्रुव स्वभाव ऐसा जो भगवान आत्मस्वभाव, उसकी ओर का ध्यान—निर्विकल्प आनन्द और निर्विकल्प वीतरागी परिणति... आहाहा ! वह कार्यसमयसार का कारण है। कहो, भाषा तो भाई ! सादी है। अब भाव तो है, वह है। जिसमें रागादि वृत्ति का उत्थान हो, वह तो परभाव है। आहाहा !

मुमुक्षु : हो अपने में और भाव पर ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ परद्रव्य की ओर का झुकाव है न ! दिशा फेर है न ? उसकी दशा में दिशा फेर है। रागादि दशा में दिशा पर है। नवरंगभाई ! आहाहा ! और परमानन्द की, वीतराग की दशा, उसकी दिशा स्व के ऊपर है। समझ में आया ? आहाहा ! भाई ! यह तो अन्तर का मार्ग है और वीतरागमार्ग है। यह वस्तु के स्वरूप में ही है। आहाहा ! कहो, राजेन्द्रभाई ! समझ में आया न ? गृहस्थ सुनने आये हैं। डॉक्टर है। आहाहा ! अरे ! बापू ! यह कहाँ है ?

अभी सत्य क्या है ? कैसे प्राप्त होता है ? यह सुनने को मिलता नहीं। वह कब करे ? क्या करे ? भाई ! आहाहा ! जिन्दगी चली जाती है, बापू ! ओहोहो ! एक-एक श्लोक में तो गजब काम किया है न ! भगवान ! तू कारणसमयसार है। उसकी पर्याय में लोकालोक ज्ञात हो, ऐसा नहीं, तेरा स्वरूप ही उस त्रिकाल को जाने, ऐसा है। आहाहा ! ऐसे कारणसमयसार का ध्यान, वह उसकी जाति का ध्यान होता है। क्योंकि प्रभु तो वीतराग आनन्दमय है। उसे वीतरागी आनन्द की परिणति द्वारा उस स्वसंवेदन ध्यान द्वारा निजभाव से उस निजभाव का कार्य होता है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई ! क्या हो ? लोगों को ऐसा लगता है कि एकान्त है... एकान्त है... व्यवहार का कुछ कहते नहीं। व्यवहार कहो या अन्तर निमित्त कहो। बाहर की चीज़ बाह्य निमित्त है, यह अन्तर निमित्त है। आहाहा !

मुमुक्षु : शुद्ध पर्याय स्वयं व्यवहार नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। उसे यह तो देखती है। यह स्वयं व्यवहार है। निश्चय त्रिकाली भगवान, वह तो निश्चय है। उसके परमानन्द की वीतरागी परिणति प्रगट हो, वह तो व्यवहार है। पर्याय, वह व्यवहार है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... यह व्यवहार की बात तो ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार ... नहीं तो एकान्त होगा। अरे! प्रभु! कहाँ विवाद में पड़े? भाई! मुश्किल से अवसर आया उसमें यहाँ कहाँ रुक गया? अरे!

यह वस्तु है, वह परमात्मस्वरूप ही आनन्दस्वरूप है। वस्तु तत्त्व है, वह कहीं दुःखरूप होगा? वह तो आनन्दरूप वस्तुरूप से जो है, वह तो आनन्दरूप है और वह पूर्ण ज्ञानरूप, पूर्ण आनन्द (रूप है)। उसे परमात्मा पूर्णमिदं कहते हैं। आहाहा! उसमें से कार्यसमयसार, परमात्मदशा, शक्ति में है, वह परमात्मदशा व्यक्त में जो हो... आहाहा! उसका कारण निजभाव है। निजभाव अर्थात् वीतरागी आनन्द की वेदनदशा, वह निजभाव है। वह कार्यसमयसार का कारण होने से, वह निजभाव ही आदरणीय है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो पर्याय आदरणीय हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रगट करने की अपेक्षा से आदरणीय है न! आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग लगे न बोझावाला। वह कुछ करो और यह करो और व्रत पालन करो, अपवास करो, यात्रा करो, पैसे खर्च करो, उसमें समझ में भी आये। भटकने का। आहाहा!

मुमुक्षु : .... वह तो राग हुआ, उसमें क्या समझने का?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है, भटकने का है वहाँ। आहाहा!

यहाँ तो भगवान निर्विकल्प आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर है, उसे निर्विकल्प वीतराग परिणति द्वारा ही उसका ध्यान हो सकता है। उसके द्वारा ही उसे जाना जा सकता है, दूसरे प्रकार से नहीं जाना जा सकता। आहाहा! और वह निजभाव ही कार्य का कारण होने से उपादेय है। आहाहा! यह ४१ (गाथा) हुई।

गाथा - ४२

अथ देहे वसन्तमपि हरिहरादयः परमसमाधेरभावादेव यं न जानन्ति स परमात्मा भवतीति कथयन्ति -

४२) देहि वसंत वि हरि-हर वि जं अज्ज वि ण मुणंति।
परम-समाहि-तवेण विणु सो परमप्पु भणंति।।४२।।

देहे वसन्तमपि हरिहरा अपि यं अद्यापि न जानन्ति।
परमसमाधितपसा विना तं परमात्मानं भणन्ति।।४२।।

परमात्मस्वभावविलक्षणे देहे अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन वसन्तमपि हरिहरा अपि यमद्यापि न जानन्ति। केन विना। वीतरागनिर्विकल्पनित्यानन्दैकसुखामृतरसास्वादरूप-परमसमाधितपसा। तं परमात्मानं भणन्ति वीतरागसर्वज्ञा इति। किं च। पूर्वभवे कोऽपि जीवो भेदाभेदरत्नत्रयाराधनां कृत्वा विशिष्टपुण्यबन्धं च कृत्वा पश्चादज्ञानभावेन निदानबन्धं च करोति तदनन्तरं स्वर्गं गत्वा पुनर्मनुष्यो भूत्वा त्रिखण्डाधिपतिर्वासुदेवो भवति। अन्यः कोऽपि जिनदीक्षां गृहीत्वाप्यत्रैव भवे विशिष्टसमाधिबलेन पुण्यबन्धं कृत्वा पश्चात्पूर्वकृतचारित्रमोहोदयेन विषयासक्तो भूत्वा रुद्रो भवति। कथं ते परमात्मस्वरूपं न जानन्ति इति पूर्वपक्षः। तत्र परिहारं ददाति। युक्तमुक्तं भवता, यद्यपि रत्नत्रयाराधनां कृतवन्तस्तथापि यादृशेन वीतरागनिर्विकल्प-रत्नत्रयस्वरूपेण तद्भवे मोक्षो भवति तादृशं न जानन्तीति। अत्र यमेव शुद्धात्मानं साक्षादुपादेयभूतं तद्भवमोक्षसाधकाराधनासमर्थं च ते हरिहरादयो न जानन्तीति य एवोपादेयो भवतीति भावार्थः।।४२।।

आगे वह शुद्धात्मा यद्यपि देह में रहता है, तो भी परमसमाधि के अभाव से हरिहरादिक सरीखे भी जिसे प्रत्यक्ष नहीं जान सकते, वह परमात्मा है, ऐसा कहते हैं -

देहस्थ है पर आज भी उत्कट समाधि तप बिना।
ना जान सकते हरी हर कहते उसे परमात्मा।।४२।।

अन्वयार्थ :- [देहे] परमात्मस्वभाव से भिन्न शरीर में [वसन्तमपि] अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनयकर बसता है, तो भी [यं] जिसको [हरिहरा अपि] हरिहर सरीखे चतुर पुरुष [अद्य अपि] अबतक भी [न जानन्ति] नहीं जानते हैं। किसके बिना

[परमसमाधितपसा विना] वीतरागनिर्विकल्प नित्यानंद अद्वितीय सुखरूप अमृत के रस के आस्वादरूप परमसमाधिभूत महातप के बिना नहीं जानते, [तं] उसको [परमात्मानं] परमात्मा [भणन्ति] कहते हैं।

भावार्थ :- यहाँ किसी का प्रश्न है, कि पूर्वभव में कोई जीव जिनदीक्षा धारणकर व्यवहार निश्चयरूप रत्नत्रय की आराधनाकर महान पुण्य को उपार्जन करके अज्ञानभाव से निदानबंध करने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न होता है, पीछे आकर मनुष्य होता है, वही तीन खंड का स्वामी वासुदेव (हरि) कहलाता है, और कोई जीव इसी भव में जिनदीक्षा लेकर समाधि के बल से पुण्यबंध करता है, उसके बाद पूर्वकृत चारित्रमोह के उदय से विषयों में लीन हुआ रुद्र (हर) कहलाता है। इसलिये वे हरिहरादिक परमात्मा का स्वरूप कैसे नहीं जानते ? इसका समाधान यह है, कि तुम्हारा कहना ठीक है। यद्यपि इन हरिहरादिक महान पुरुषों ने रत्नत्रय की आराधना की, तो भी जिस तरह के वीतराग-निर्विकल्प-रत्नत्रयस्वरूप से तद्भव मोक्ष होता है, वैसा रत्नत्रय इनके नहीं प्रगट हुआ, सरागरत्नत्रय हुआ है, इसी का नाम व्यवहाररत्नत्रय है। सो यह तो हुआ, लेकिन शुद्धोपयोगरूप वीतरागरत्नत्रय नहीं हुआ, इसलिये वीतरागरत्नत्रय के धारक उसी भव से मोक्ष जानेवाले योगी जैसा जानते हैं, वैसा ये हरिहरादिक नहीं जानते। इसीलिये परमशुद्धोपयोगियों की अपेक्षा इनको नहीं जाननेवाले कहा गया है, क्योंकि जैसे स्वरूप के जानने से साक्षात मोक्ष होता है, वैसा स्वरूप ये नहीं जानते। यहाँ पर सारांश यह है, कि जिस साक्षात् उपादेय शुद्धात्मा को तद्भव मोक्ष के साधक महामुनि ही आराध सकते हैं, और हरिहरादिक नहीं जान सकते, वही चिंतवन करने योग्य है।।४२।।

गाथा - ४२ पर प्रवचन

आगे वह शुद्धात्मा यद्यपि देह में रहता है,... देह से भिन्न भगवान अन्दर रहता है। **रहता है,...** यह कहेंगे। यह असद्भूतनय से कहेंगे। **तो भी परमसमाधि के अभाव से...** जिससे मोक्ष हो, ऐसी परमसमाधि के अभाव से **हरिहरादिक...** हरि। वासुदेव, हर, शंकर आदि। **सरीखे भी जिसे प्रत्यक्ष नहीं जान सकते,...** जिससे केवलज्ञान हो, परमात्मदशा प्रगट हो, ऐसी परम समाधि के अभाव में उसे बराबर नहीं जान सकते।

आहाहा! समझ में आया? **वह परमात्मा है, ऐसा कहते हैं —**

४२) देहि वसंत वि हरि-हर वि जं अज्ज वि ण मुणंति।
परम-समाहि-तवेण विणु सो परमप्पु भणंति।।४२।।

देखो, भाषा! परम समाधिरूपी तपस्या। आहाहा! अपवास करना और यह करना, वह सब तो बाह्य की बातें हैं।

अन्वयार्थ - परमात्मस्वभाव से भिन्न शरीर में... यह परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा का उससे भिन्न पृथक् शरीर है। यह जड़ है, भगवान चैतन्य है। यह अचेतन है, वह चैतन्य है। यह अजीव है, वह जीव है। आहाहा! ऐसे शरीर में **अनुपचरितअसद्भूत-व्यवहारनयकर बसता है,...** अनुपचरित अर्थात् नजदीक में है न? परन्तु है असद्भूतव्यवहार, झूठा व्यवहार। आहाहा! शरीर में रहता है, ऐसा कहना वह अनुपचरित—झूठा व्यवहार है।

मुमुक्षु : झूठा व्यवहार कहा तो सच्चा व्यवहार भी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा व्यवहार दूसरा। निर्मल आनन्द की दशा प्रगट करे वह। आहाहा! यह प्रवचनसार में आत्मव्यवहार कहा है न? आहाहा!

वीतरागकन्द प्रभु अनाकुल आनन्द का नाथ आत्मा है, भाई! इसे खबर नहीं। एक समय की प्रगट अवस्था के अतिरिक्त उसके पीछे तत्त्व क्या है, उसे देखने के लिये कभी प्रयत्न किया ही नहीं। वर्तमान जो प्रगट अवस्था, जिसे पर्याय कहते हैं, उसके लक्ष्य में गया अर्थात् लम्बित हुआ तो राग में गया। परन्तु यहाँ पर्याय जो सन्मुख झुकाना चाहिए, उसे वह देखने को भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्दस्वरूप है, पूर्णमिदं है... आहाहा! उसे देखने को कभी नजर नहीं की। और वे नजरें अरागी निर्विकल्प शान्ति की नजरों से दिखाई दे ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जो शरीर में रहा होने पर भी अनुपचरित असद्भूत। अनुपचरित अर्थात् ऐसे नजदीक में है न? स्त्री, कुटुम्ब है, वह उपचरित बाहर—दूर है और यह शरीर नजदीक है। इसलिए बाहर की चीज़ इसकी है, यह कहना उपचरित असद्भूतव्यवहारनय है। इसमें—देह में रहा तो वह अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय है। नजदीक है सही न?

आहाहा! ऐसा **जिसको हरिहर सरीखे चतुर पुरुष...** वे हरिहर भी रत्नत्रय को प्राप्त हुए थे परन्तु फिर उसमें से च्युत हो गये। पूर्ण नहीं प्राप्त कर सके, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कठिन बातें, भाई! आहाहा!

हरिहरादि सरीखे चतुर पुरुष अद्य अपि अब तक भी नहीं जानते हैं। किस अपेक्षा से नहीं जानते? प्रत्यक्ष पूर्ण परम समाधि से प्राप्त होना चाहिए, इस प्रकार से नहीं जानते। ऐसे तो अनुभवी थे। प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त हुए थे, वे हरिहर भी। परन्तु पूर्ण स्वरूप को जो प्राप्त करना चाहिए, उस समाधि को प्राप्त नहीं हुए। वहाँ से फिसल गये। आहाहा! **किसके बिना नहीं जानते?** परम समाधि तपस्या बिना। आहाहा! उत्कृष्ट जो वीतरागी आनन्द की दशा कि जिससे केवलज्ञान हो, ऐसी परम समाधि तपस्या। भाषा देखो! यह तपस्या। आहाहा!

आत्मा पूर्णानन्द की ओर परम समाधिरूपी तपस्या। अर्थात् परम वीतरागी आनन्द की दशारूपी समाधि। उसे यहाँ तप कहते हैं। अपवास करना और यह करना, वह तो सब बाहर का लंघन है। समझ में आया? इसके स्वभाव की सन्मुख की इच्छा निरोधरूपी आनन्द की दशा परम शान्तदशारूपी तपस्या। आहाहा! परम आनन्द की दशारूपी तपस्या। भाषा देखो! इसे तप कहते हैं। बाकी सब लंघन। और उसे माने कि तप करते हैं तो निर्जरा होगी। भाई! यह तेरा काल जायेगा। अरे! ऐसा समय है।

परम समाधि तपस्या बिना अर्थात् जो आनन्द की दशा उग्र होनी चाहिए कि जिससे प्रत्यक्ष आत्मा प्राप्त हो, केवलज्ञान प्राप्त हो, ऐसी परमानन्द की तपस्या बिना... है? **वीतरागनिर्विकल्प नित्यानन्द अद्वितीय सुखरूप अमृत के रस के आस्वादरूप परमसमाधिरूप महातप के बिना...** आहाहा! व्याख्या तो देखो! वीतराग निर्विकल्प वर्तमान दशा की बात है, हों! राग बिना की शान्ति, अभेद नित्यानन्द अद्वितीय सुख। आहाहा! अजोड़ सुखरूप अमृत, उसके रस के स्वाद—आस्वादरूप। आहाहा! चौथे गुणस्थान में भी वीतरागी परम आनन्द के स्वाद से वह प्राप्त होता है। वह परम उग्र आनन्द की दशा, जिससे केवलज्ञान प्राप्त होता है। समझ में आया? आहाहा!

स्व के आश्रय से उत्पन्न हुई वीतरागी—राग बिना की शान्ति और आनन्द,

उसरूपी समाधि से आत्मा प्राप्त होता है। परन्तु उग्र महा समाधि आनन्द की दशा से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। ऐसी निर्विकल्प वीतरागी परम आनन्द की तपस्या बिना हरिहर भी केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सके, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी सन्मुख की नजदीक समाधि, जघन्य समाधि अरागी शान्ति और वीतरागी परिणति द्वारा आत्मा ज्ञात होता है। पहले भी इस प्रकार से ज्ञात होता है। समझ में आया? देव-गुरु से ज्ञात नहीं होता। देव-गुरु के लक्ष्य से राग उत्पन्न हो, उससे भी ज्ञात नहीं होता। क्योंकि पर के आश्रय से तो राग होता है। स्व के आश्रय से निर्विकल्प वीतरागदशा होती है। आहाहा! सूक्ष्म बहुत, बापू!

प्रभु आत्मा तो वीतरागी पिण्ड है। वह आत्मा अर्थात् जिनस्वरूप, अकषायस्वरूप, वीतरागस्वरूप है। चारित्रस्वरूप कहो या वीतरागस्वरूप कहो। त्रिकाल, हों! वर्तमान प्रगट हो, वह अलग। यह तो चारित्र त्रिकाल है, वीतरागस्वरूप है यह। ज्ञान से कहो तो ज्ञान पूर्ण स्वरूप, चारित्रस्वरूप। आनन्द से कहो तो आनन्द से पूर्ण स्वरूप, स्वच्छता से कहो तो स्वच्छता से पूर्ण स्वरूप, प्रभुता से कहो या ईश्वरता से पूर्ण स्वरूप। आहाहा! उसे प्राप्त करने की जघन्यदशा वीतरागी आनन्द की शान्ति, उससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसा है। वह शास्त्र से (ज्ञात) नहीं, शास्त्र के ज्ञान से नहीं (होता)। आहाहा! समझ में आया? यह परमात्मप्रकाश है।

मुमुक्षु : परमात्मप्रकाश अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। उसे परमात्मदशा अभी प्राप्त हो, वह उसमें है, उसमें से आती है। आहाहा! और उस परमात्मस्वरूप प्रभु है, अनादि प्रभु उसका स्वभाव है। उसकी सन्मुख की जो परमात्मस्वरूप है वीतरागी, ऐसी जिसकी वीतरागी आनन्द की दशा, वह सम्यग्दर्शन, उस वीतरागी आनन्ददशा द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! और स्व के आश्रय से आनन्द ही आवे। पर के आश्रय से राग आवे। चाहे तो तीन लोक के नाथ हों, उनके सन्मुख देखो तो राग होता है। प्रभु का पुकार है कि हमारे सन्मुख देखना छोड़ दे, तेरे सन्मुख देख। आहाहा! समझ में आया?

जहाँ तू पूर्ण है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! जिसका ज्ञान अनन्त-अनन्तरूप

से विराजता है, जिसकी श्रद्धा त्रिकाली अनन्त-अनन्तरूप से विराजती है, जिसका चारित्र अनन्त-अनन्तरूप से चारित्र वीतरागतारूप विराजता है, जो अनन्त अनाकुल आनन्दरूप विराजता है। आहाहा! जो अनन्त-अनन्त कर्ता के गुण से भी विराजता है। कार्य के गुण से भी अनन्त-अनन्त गुण से कार्य के गुण से विराजता है। आहाहा! उस कार्य में से जो कार्य आवे, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप कहते हो परन्तु मुझे तो दिखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखता नहीं। परन्तु पुरुषार्थ करता नहीं न! जितने प्रमाण में उसे देखने को पुरुषार्थ चाहिए, वह करता नहीं। आहाहा! यह कहीं बाहर की बातें नहीं है। देश को सुधारो, देश का ऐसा करो, ढींकना का ऐसा करो, परिवार को सुधारो, गाँव को सुधारो, वासींदा (कचरा) साफ करो, गन्दगी नहीं रहनी चाहिए। परन्तु यह धूल भी नहीं बाहर का। बाहर का आत्मा कर नहीं सकता न! बाहर के जड़ के कार्य, वह जड़ उसकी पर्याय बिना का—कार्य बिना का जड़ नहीं होता। तो उसका कार्य तू करे, यह कहाँ से बने? शान्तिभाई!

मुमुक्षु : अभिमान करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान करे। यह जवाहरात में ऐसे बैठे और पैसे पैदा हों। आहाहा! दीवाली का दिन हो, नूतन वर्ष का, उसमें अच्छी आमदनी हो गयी, फिर ऐसे देखो। कपड़े-बपड़े व्यवस्थित (पहने), इत्र-बित्र लगावे और आज लापसी बनाना। मैसूर बनाना आज। मैसूर और अरबी के (भजिया)। आहाहा! कहाँ गया? नाथ! क्या हुआ? यह पागलपन तेरा। आहाहा! और वस्त्र-बस्त्र अच्छे पहने हों पिता ने। लड़के की बहू ने। पाँच सौ-पाँच सौ, हजार- दो-दो हजार की साड़ियाँ (पहनी हों)। अब वह बाहर निकले और दूसरे उसके ऊपर नजर रखे। यह प्रसन्न होता है कि हमारी साड़ियाँ प्रसिद्ध होती हैं। वह दूसरी नजर करता हो। आहाहा! इसकी ऊंधाई तो देखो! इसकी देखने की वृत्ति तो देखो! पाँच-पाँच हजार की साड़ियाँ। जरी का छोर (पल्लू)। जरी का छोर होता है न? यह लड़कों की बहुएँ पांच-छह हों इकट्ठी और ऐसे निकलें और साड़ियाँ पाँच-पाँच हजार की पहनी हो, दूसरे जवान नजर डाले तो यह मानो कि मेरी साड़ियाँ बाहर प्रसिद्ध होती है न!

मुमुक्षु : इसकी साड़ियाँ हो गयी या स्त्रियों की साड़ियाँ होती हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्त्री का साड़ियाँ (होती है परन्तु) इसके पुत्र की बहू है न, वह ऐसे निकले। सोने के गहने, कड़े हों। क्या कहलाते हैं पैर के ? पैर के गहने क्या कहलाते हैं ?

मुमुक्षु : झांझरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : झांझरी नहीं परन्तु वह जाडा...

मुमुक्षु : तोड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : तोड़ा-तोड़ा और वह कड़ा। कड़ा-कड़ा होता है न ? आहाहा !

मुमुक्षु : वह जमाना चला गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जमाना गया। कड़ा था। सोने का कड़ा पहने। वहाँ गये थे न हम आहार लेने। वडिया, वडिया, भाई ! वहाँ तुम थे न ? गाँव में उनके घर में आहार लेने गये थे न ! तो उनकी माँ ने सोने के पहने हुए। वडिया, दरबार। उन्होंने विनती की, महाराज ! हमारे यहाँ (पधारो)। साधारण घर। क्योंकि लोग जमींदार, इसलिए माँस खाता हो। एक जगह... कि हमारी ब्राह्मण की... अलग है। ऐसा। ब्राह्मण वडिया है। हुकमचन्दभाई थे न !.... अन्दर गये थे। तो उनकी माँ ने सोने के पहने हुए।.... महिलायें माने बलवान। तुमने कुछ व्याख्यान में कहा था न। ... दृष्टान्त दिया था। अरेरे ! हाँ, यह दृष्टान्त दिया था।

अरे रे ! बाहर के राज-पाट और सब श्मशान की राख है। उससे ... है माने। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से भी प्रभु को कलंक है। ... नहीं। आहाहा ! वह पुण्य है। वह संसार में प्रवेश करनेवाला है। भव दे, वह भला कैसे कहलाये ? नहीं आता पुण्य-पाप (अधिकार में) ? जो पुण्य है, वह संसार में प्रवेश करावे। आहाहा ! आनन्द के नाथ में न जाये और ... (संसार में) प्रवेश करे, उस चीज़ को भली कैसे कहा जाये ? दुनिया तो पुण्य और पाप के फल में उलझ गयी है। पावर चढ़ गया है पावर।

मुमुक्षु : आप उलझ गयी कहते हो, परन्तु बहुत मजा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मजा नहीं। ऐई! शान्तिभाई! लड़के सब इकट्ठे होकर बैठे। बीच में बातें करे और यह करे, उसमें इसे मजा लगता है। इनका लड़का पंकज है, वह जरा ऐसा हुआ है। आहाहा! तत्त्व की रुचि है। बहुत अच्छी भावना, लक्ष्य बहुत करता है। है जवान।... है न इनका। भाई! उसके साथ क्या सम्बन्ध? बापू! यह अरबों और करोड़ों रुपये, वह श्मशान की राख है।

मुमुक्षु : वह तो आप भविष्य की बात करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। भविष्य की हो? अभी जो शुभभाव होता है, भगवान उसे जहर कहते हैं। अमृत के नाथ को छोड़कर प्रगट हुआ, भाई! भगवान तो वीतरागी अमृतसागर का पिण्ड है। उसमें से शुद्धता, वीतरागता, अमृतसागर की पर्याय प्रगट होनी चाहिए। उसमें शुभभाव (प्रगट हो), उसे परमात्मा जहर कहते हैं। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, अपवास, यात्रा का जो भाव (होता है), परमात्मा कहते हैं, प्रभु! वह जहर है। तेरे अमृतसागर को उल्टा कर दिया है। आहाहा!

भगवान भव और भव के भावरहित, उसे भव के भाववाला करके भव में डालना, (वह कलंक है)। आहाहा! आज तो यह शब्द आया है न! तपस्या की व्याख्या। परम समाधि तपस्या। गजब बात की है न! आहाहा! सन्त, दिगम्बर मुनि! दिगम्बर सन्तों ने दुनिया की दरकार नहीं की। नागा बादशाह से आघा। दरकार नहीं। सत्य यह है। बैठे तो बैठाओ, न बैठे तो... दुनिया प्रसन्न हो और... ऐसा कुछ नहीं है। मार्ग यह है। नागा दिगम्बर बादशाह से आघा। जिन्हें किसी की पड़ी नहीं है। आहाहा! उन्होंने यह पुकार की है। भाई! तेरी दुःख की वेदना से मर गया है, बापू! भाई! इस दुःख को, वेदना को टालने का उपाय... आहाहा! यह क्रियाकाण्ड नहीं। आहाहा! क्रिया सही, परन्तु यह आनन्द के सागर की सन्मुख की वीतरागी परिणतिरूपी क्रिया। आहाहा! उस क्रिया से आत्मा प्राप्त होता है। यहाँ तो हरिहर का लेना है न? उत्कृष्ट जो परम समाधिरूपी तपस्या चाहिए, उसका अभाव था, तो परमात्मपद पा नहीं सके, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : परम समाधि नहीं हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम जो समाधि से, जो वीतरागी आनन्द से केवलज्ञान प्राप्त हो, ऐसी दशा उसकी नहीं थी। आहाहा! यह तो पहले रत्नत्रय को प्राप्त हुए थे। पश्चात् पुण्यबन्धन हुआ और गिर गये। चारित्रमोह। यह तो कुछ पाये ही नहीं थे अभी, उसका तो क्या कहना? आहाहा! समझ में आया? दुनिया के साथ मिलान खाना बहुत कठिन है, बापू! इसलिए लोग ऐसा ही कहे। यह सोनगढ़ अर्थात् निश्चय....

व्यवहार के शास्त्र में क्या होता है? पुण्य की बातें होती हैं। वह तो पुण्य होता है, बतलाते हैं। है जहर। आता है, है वह जहर। भव का कारण है।

मुमुक्षु : नीचे की भूमिका में उसे अमृत कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृत तो इसके कारण कहा जाता है। इसे तो अमृत कहाँ था? वह तो अमृत के स्वाद के अमृतिया आया। अमृत स्वाद आया, उसके साथ राग को अमृत का आरोप दिया है। है तो जहर। आहाहा! आरोप दिया वहाँ अमृत हो गया?

मुमुक्षु : व्यवहार से तो हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से हुआ है, वह व्यवहार से अर्थात् खोटे से हुआ। वह तो निमित्त है साथ में। आरोप से ज्ञान कराया। मार्ग ऐसा है, बापू! मार्ग तो उसके आनन्द को प्राप्त करावे, ऐसा होता है न!

जहाँ बाह्य में... काम करे नहीं। बाह्य के पुण्य काम करे नहीं। आहाहा! ऐसा जो अन्तर भगवान, उसे परम समाधिरूपी तपस्या द्वारा। है? कैसी तपस्या की व्याख्या? कि **वीतरागनिर्विकल्प नित्यानन्द अद्वितीय सुखरूप अमृत के रस के...** ....वह परमसमाधि मोक्ष महातप। ...वीतरागी परिणति निर्विकल्पसहित प्रगट हुई और नित्यानन्द अजोड़ सुख की अमृतरस की ... हो ... है? उसे तप कहते हैं। आहाहा! यह अनादि के नहीं जानते। हरिहरादि भी उत्कृष्ट वीतरागी समाधि बिना आत्मा को पा नहीं सके।

बड़े झगड़े खड़े करे। आहाहा! उसमें से आत्मा के आश्रय से ही कल्याण होगा, दूसरी रीति से नहीं। वह सम्यक् एकान्त ही यह है। अनेकान्त में का एक नय का सम्यक् प्रकार, वह सम्यक् एकान्त है। समझ में आया? आहाहा! लोगों को अभ्यास नहीं और बाहर की बातें सम्प्रदाय में इतनी कि बेचारे फँसकर मर गये उसी और उसी

में। यह रथ निकालना, यह निकालना और वह निकालना। यह धर्मचक्र का निकाला नहीं था? कितने धर्मचक्र घुमावे, उसमें क्या है? धर्म कहाँ है?

मुमुक्षु : धर्मचक्र तो था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम था धर्मचक्र। उसमें क्या है? हम ... हों और पाँच-पच्चीस लाख, दस लाख, बीस लाख उत्पन्न हुए, परन्तु उसमें क्या हुआ? उसमें धर्म कहाँ आया? वह तो शुभराग हो जरा। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो सोनगढ़ का धर्मचक्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ का हो तो भी राग है। बाबूभाई को कहा था। शुभराग है न वह। और उसमें भी धर्मचक्र को रात्रि में चलाना। यात्रा करना दिन में और रात्रि में यह चलाना। व्यवहारमार्ग नहीं है प्रभु का, कहा। यह तो .... इसलिए पूरी रात्रि से सवेरे तक। बीच में जंगल में चूहे मरे, सर्प मरे। बापू! यह वह कहीं मार्ग है? रात्रि में आठ बजे के बाद या रात्रि के चार बजे तक तो बेचारे खाने के लिये निकले। यह तुम चलाओ और यात्रा दिन में, शुभभाव... शुभभाव, और ऐसी हिंसा, यह मार्ग नहीं है, कहा। यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! इसमें पर की हिंसा भी जिसमें आनी नहीं चाहिए। आहाहा! भगवान की पूजा आदि में भी पानी आदि निरूपाय है, दूसरा उपाय नहीं। परन्तु दूसरी यह हिंसा हो, त्रस मरे और यात्रा हो, वह मार्ग नहीं है। यहाँ के पक्षकार हों, इसलिए उनकी महिमा करना, ऐसा होगा? आहाहा!

यहाँ तो (कहते हैं), रत्नत्रय की आराधना ... हरिहर ने, विष्णु ने और शंकर ने भी पहले दीक्षा ली थी। अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र था। है न?

महान पुण्य को उपार्जन करके... पुण्योपार्जन किया। अभी केवलज्ञान प्राप्त दशा नहीं हुई थी। पुण्य उपार्जन। आहाहा! **अज्ञानभाव से निदानबन्ध करने के...** वह दीक्षा सच्ची हो, उसे निदान होता है। आहाहा! **बाद स्वर्ग में उत्पन्न होता है,...** स्वर्ग में गये। **पीछे आकर मनुष्य होता है, वही तीन खण्ड का स्वामी वासुदेव (हरि) कहलाता है,...** ऐसे जीव वासुदेव हों। परन्तु पूर्ण को प्राप्त हुए नहीं, ऐसा कहना है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल ७, रविवार
दिनांक-०४-०७-१९७६, गाथा-४२-४३, प्रवचन-२६

यहाँ तक आया है। रुद्र... रुद्र। रुद्र तक आया है। **इसलिए वे हरिहरादिक परमात्मा का स्वरूप कैसे नहीं जानते ?** शिष्य का प्रश्न है। हरिहर महापुरुष थे, जिन्होंने आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधन किया था। परन्तु फिर निदान हुआ वासुदेव को, उसके कारण उस निदान से हरि वासुदेव हुए। और हर शंकरादि तो पूर्व में आराधन किया हुआ, परन्तु चारित्रमोह के उदय के वश विषय में लीन हो गये। तो यहाँ शिष्य का प्रश्न है कि **हरिहरादिक परमात्मा का स्वरूप कैसे नहीं जानते ?**

तुम्हारा कहना ठीक है। यह इन हरिहरादिक महान पुरुषों ने रत्नत्रय की आराधना की,... आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान आराधना तो की थी। **तो भी जिस तरह के वीतराग-निर्विकल्प-रत्नत्रयस्वरूप से तद्भव मोक्ष होता है,...** ऐसी आराधना नहीं थी। उस भव में स्वरूप की आराधना करके उस भव में देह छूटकर मोक्ष जाये, ऐसी आराधना नहीं थी। है ? **वैसा रत्नत्रय इनके नहीं प्रगट हुआ,...** बाद में तो अर्थकार ने लिखा है, टीका में नहीं। **लेकिन शुद्धोपयोगरूप वीतरागरत्नत्रय नहीं हुआ,...** जो अन्दर आत्मा में अत्यन्त वीतरागभाव से शुद्ध उपयोग होकर अन्दर स्थिर हो जाना, परिपूर्ण की प्राप्ति होना, वह नहीं की थी। आहाहा! शुद्धोपयोग। पुण्य-पाप के भाव से रहित अकेला चैतन्य ज्ञायक आनन्दस्वभाव, केवलज्ञान, केवल आनन्द, ऐसा उसका स्वरूप, उसने शुद्धोपयोग की आराधना नहीं की। **शुद्धोपयोगरूप वीतरागरत्नत्रय नहीं हुआ, इसलिए वीतरागरत्नत्रय के धारक उसी भव से मोक्ष जानेवाले योगी जैसा जानते हैं, वैसा ये हरिहरादि नहीं जानते।** समझ में आया ? आहाहा! उस भव में वीतराग शुद्धोपयोग से मुनि आराधना करके मोक्ष जाये, ऐसा आराधन उनका—हरिहर का नहीं था। समझ में आया ?

इसलिए परमशुद्धोपयोगियों की अपेक्षा इनको नहीं जाननेवाले कहा गया है,... इस अपेक्षा से कहा। परम शुद्धोपयोग अन्तर... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान में शुद्धोपयोग से लीन होना, ऐसी वीतरागदशा उनको नहीं थी। इसलिए इस

प्रकार से जाना नहीं, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! **जैसे स्वरूप के जानने से साक्षात् मोक्ष होता है, वैसा स्वरूप ये नहीं जानते।** आहाहा! बाद में सर्वज्ञ का लेंगे।

यहाँ पर सारांश यह है कि जिस साक्षात् उपादेय शुद्धात्मा को... वस्तुस्वभाव त्रिकाल द्रव्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु की जो आराधना तद्भव मोक्ष साधक है, उसे उसका आराधन करनेयोग्य है। है? **साक्षात् उपादेय शुद्धात्मा को तद्भव मोक्ष के साधक महामुनि ही आराध सकते हैं,...** महामुनि जिस भव में पूर्णानन्द के स्वभाव को पूर्ण रीति से आराधकर मोक्ष को साध सकते हैं। **और हरिहरादिक नहीं जान सकते,...** तत्प्रमाण पूर्ण स्वरूप को वीतराग शुद्धोपयोग से साधना चाहिए, उसे साधा नहीं। **वही चिन्तवन करनेयोग्य है।** धर्मात्मा को वस्तुस्वभाव, एक समय की पर्याय के पीछे वस्तु पूरा आत्मा पूर्ण स्वरूप केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलवीर्य, केवल आनन्द, ऐसा जो पूर्ण स्वरूप है, वह आराधनेयोग्य है। धर्मी को वह सेवनयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? ४२ (गाथा) हुई। अब ४३ में....

गाथा - ४३

अथोत्पादव्ययपर्यायार्थिकनयेन संयुक्तोऽपि यः द्रव्यार्थिकनयेन उत्पादव्ययरहितः स एव परमात्मा निर्विकल्पसमाधिबलेन जिनवरैर्देहेऽपि दृष्ट इति निरूपयति –

४३) भावाभावहिँ संजुवउ भावाभावहिँ जो जि।
देहि जि दिट्ठउ जिणवरहिँ मुणि परमप्पउ सो जि।।४३।।

भावाभावाभ्यां संयुक्तः भावाभावाभ्यां य एव।
देहे एव दृष्टः जिनवरैः मन्यस्व परमात्मानं तमेव।।४३।।

भावाभावाभ्यां संयुक्तः पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययाभ्यां परिणतः, द्रव्यार्थिकनयेन भावाभावयोः रहितः य एव वीतरागनिर्विकल्पसदानन्दैकसमाधिना तद्भवमोक्षसाधकाराधाना–समर्थेन जिनवरैर्देहेऽपि दृष्टः तमेव परमात्मानं मन्यस्व जानीहि वीतरागपरमसमाधि–बलेनानुभवेत्यर्थः। अत्र य एव परमात्मा कृष्णनीलकापोतलेश्यास्वरूपादिसमस्तविभावरहितेन शुद्धात्मोपलब्धिध्यानेन जिनवरैर्देहेऽपि दृष्टः स एव साक्षादुपादेय इति तात्पर्यार्थः।।४३।।

आगे यद्यपि पर्यायार्थिकनयकर उत्पादव्ययकर सहित है, तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पाद–व्ययरहित है, सदा ध्रुव (अविनाशी) ही है, वही परमात्मा निर्विकल्प समाधि के बल से तीर्थंकरदेवों ने देह में भी देख लिया है, ऐसा कहते हैं :–

उत्पाद व्यय से सहित जो उत्पाद व्यय से रहित भी।
है देह में देखा जिनों ने मान परमातम वही।।४३।।

अन्वयार्थ :– [य एव] जो [भावाभावाभ्यां] व्यवहारनयकर यद्यपि उत्पाद और व्ययकर [संयुक्तः] सहित है तो भी द्रव्यार्थिकनय से [भावाभावाभ्यां] उत्पाद और विनाश से (‘रहितः’) रहित है, तथा [जिनवरैः] वीतरागनिर्विकल्प आनंदरूप से समाधिकर तद्भव मोक्ष के साधक जिनवरदेव ने [देहे अपि] देह में भी [दृष्टः] देख लिया है, [तमेव] उसी को तूँ [परमात्मानं] परमात्मा [मन्यस्व] जान, अर्थात वीतराग परमसमाधि के बल से अनुभव कर।

भावार्थ :– जो परमात्मा कृष्ण, नील, कापोत लेश्यारूप विभाव परिणामों से रहित शुद्धात्म की प्राप्तिरूप ध्यानकर जिनवरदेव ने देह में देखा है, वही साक्षात् उपादेय है।।४३।।

गाथा - ४३ पर प्रवचन

आगे यद्यपि पर्यायार्थिकनयकर उत्पादव्ययकर सहित है,... भगवान आत्मा पर्याय की दृष्टि से अवस्था के लक्ष्य से देखें तो उसमें उत्पाद-व्ययसहित है। इस आत्मा को वर्तमान पर्याय की अवस्था से देखे तो वर्तमान उसमें उत्पाद-व्ययसहित जीव है। समझ में आया? **तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पादव्ययरहित है,...** आहाहा! वहाँ संस्कृत में तो रहित किया है। उस संस्कृत में रहित किया है। पाठ है न? '**भावाभावहिँ संजुवउ भावाभावहिँ जो**' अर्थात् भावाभावरहित शब्द चाहिए। इसलिए संस्कृत में डाला है। परन्तु वापस अर्थ में कोष्ठक में डालकर डाला है। वह भावाभावरहित शब्द मूल में नहीं न। आहाहा!

क्या कहते हैं? कि इस आत्मा को पर्यायनय से अवस्थादृष्टि से देखें तो इसमें उत्पाद-व्यय की पर्यायसहित है। परन्तु द्रव्यार्थिकनय से देखें... आहाहा! त्रिकाली ज्ञायक ध्रुव चैतन्यस्वभाव, इस दृष्टि से देखें तो उत्पाद-व्यय पर्यायरहित है। लो! समझ में आया? **तो भी द्रव्यार्थिकनयकर...** द्रव्य वस्तु जो त्रिकाल, पूरी चीज़ जो है एक समय के उत्पाद-व्यय की पर्याय बिना की, उस दृष्टि से देखें तो उसमें उत्पाद-व्यय है ही नहीं। आहाहा! तो द्रव्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, ध्रुव, ध्रुव का प्रवाह ऐसा का ऐसा अनादि बहता है। उसमें उत्पाद-व्यय की पर्याय द्रव्य की दृष्टि से देखने पर, द्रव्य को द्रव्यार्थिकनय से देखने पर उसमें उत्पाद-व्यय नहीं है। आहाहा! है?

सदा ध्रुव (अविनाशी) ही है,... आहाहा! भगवान नित्यानन्द प्रभु, मूल चीज़ त्रिकाली अविनाशी है। वह वर्तमान पुण्य-पाप की पर्याय है, उससे रहित है। आहाहा! अरे! मोक्षमार्ग की पर्याय है, उससे रहित है। निश्चयमोक्षमार्ग की जो पर्याय है उत्पाद-व्यय, वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, वह उत्पाद है और पूर्व की अवस्था का उसमें व्यय है। वह निश्चयमोक्षमार्ग का उत्पाद-व्यय भी द्रव्य अर्थात् ध्रुव की दृष्टि से देखने पर वह उत्पाद-व्यय उसमें नहीं है। आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय भी ध्रुव में-द्रव्य में नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

दोनों हैं। व्यवहार और निश्चय। पर्याय है। वह पर्यायदृष्टि से, पर्यायनय से

भगवान की लीला वह है। उत्पाद-व्ययरूप है। आहाहा! परन्तु द्रव्यार्थिकनय से देखें, देखनेवाली तो वापस पर्याय है परन्तु वह पर्याय द्रव्य को देखे तो द्रव्य में वह पर्याय नहीं। समझ में आया? जिनेश्वर का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, कर्म, वह तो उसमें—त्रिकाल में नहीं। विकारभाव भी त्रिकाल में नहीं। परन्तु निर्विकारी पर्याय मोक्षमार्ग की पर्याय भी त्रिकाल को देखने पर उसमें वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तो फिर कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में ध्रुव है।

मुमुक्षु : पर्याय कहाँ गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय पर्याय में है। कहाँ गयी कहाँ? आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहना है, हरिहरादि ने पूरा नहीं किया न! परन्तु भगवान जिनवरदेव ने देह में ही पूरा आत्मा देख लिया और प्रगट कर लिया, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, प्रभु! अरे! वह क्या चीज़ है? भाई! उत्पाद-व्यय की पर्याय बिना की चीज़, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। वह ध्रुव है, सामान्य है, एकरूप प्रवाह ध्रुव का अनादि-अनन्त है। उसे जाननेवाली पर्याय भी उसमें नहीं। शक्ति नहीं।

मुमुक्षु : शक्तिरूप से तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति नहीं। यहाँ अभी शक्ति की बात... शक्ति तो गुण ध्रुव है। इससे पर्याय है उसमें, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जो अनन्त पर्यायें हो गयीं, वे गयी। परन्तु वहाँ कहीं उस पर्याय के उदयभाव या क्षयोपशम या वे भाव वहाँ नहीं। वहाँ तो पारिणामिक ध्रुवभाव से है अब। आहाहा! भगवान वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह कहाँ है? आहाहा!

कहते हैं कि, एक समय की वर्तमान अवस्था से उसे—पर्याय को देख तो वह उत्पाद-व्यय पर्याय है। परन्तु उसे त्रिकाली ज्ञायकभाव का ध्रुवस्वरूप जिसमें परिणमन नहीं... आहाहा! परिणमन से ज्ञात होता है, परन्तु उसमें परिणमन नहीं। आहाहा!

उत्पाद-व्यय की पर्याय से त्रिकाली ज्ञात होता है। आहाहा! परन्तु वह जाननेवाली पर्याय त्रिकाल में नहीं। समझ में आया? आहाहा! **'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्'** यह तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र है। तो कहते हैं कि उत्पाद-व्यय है सही। परन्तु वे पर्यायदृष्टि से और वर्तमान की अवस्था को देखनेवाली दृष्टि से है। परन्तु त्रिकाली वस्तु... पाठ में तो ऐसा है न भाव-अभावसहित। तो भावाभाव रहित, ऐसा ले लेना। पाठ में भावभाव है। संस्कृत में फिर रहित किया।

क्या कहा यह? गाथा में तो इतना ही है कि भाव अर्थात् उत्पाद और अभाव अर्थात् व्यय। वर्तमान पर्यायदृष्टि से उनसे सहित है। फिर दूसरे पद में **'भावाभावहिँ'** वहाँ पद में रहित शब्द रह गया। तो कहते हैं कि भाव जो उत्पाद और अभाव जो व्यय, उससे वस्तुरहित है। समझ में आया? अरे! ऐसी बात। **सदा ध्रुव (अविनाशी) ही है,...** देखा! वह तो त्रिकाली ध्रुव, वज्र के बिम्ब की भाँति। वज्र के उसमें अभी अवकाश होता है। आकाश पोला। यह तो वस्तु ध्रुव। केवलज्ञान—अकेला ज्ञान, केवल आनन्द—अकेला आनन्द, केवलवीर्य—अकेला पुरुषार्थ, केवल स्वच्छता, पूर्ण स्वच्छता, अकेली ईश्वरता, केवल ईश्वर, प्रभु, केवल प्रभु यह ध्रुव शक्तियाँ जो हैं, उनमें उत्पाद-व्यय की यह पर्याय जो जाननेवाली, उसे जाननेवाली, वह उसमें नहीं। आहाहा! उसे जाननेवाली पर्याय में ध्रुव ज्ञात अवश्य हो, परन्तु ध्रुव में पर्याय नहीं, पर्याय में ध्रुव आया नहीं। पर्याय में ध्रुव का ज्ञान आया। आहाहा! पर्याय में ध्रुव का ज्ञान आया, परन्तु ध्रुव वस्तु नहीं आती। तथा पर्याय, पर्याय को जानती है और पर्याय, पर्याय में आवे। ऐसे पर्याय ध्रुव को जाने और ध्रुव पर्याय में आवे, ऐसा नहीं होता। अरे! ऐसी बातें! भाई! मार्ग यह है, उसे जानना चाहिए। यह तो चैतन्यबिम्ब है। यह यहाँ कहेंगे।

वही परमात्मा निर्विकल्प समाधि के बल से तीर्थंकरदेवों ने देह में भी देख लिया है,... आहाहा! देह में रहा होने पर भी भगवान केवली ने, जिनवर ने देह में रहे हुए उस भगवान पूर्णानन्द को देख लिया। आहाहा! पूर्ण स्वरूप जो त्रिकाली आनन्द का नाथ, जो पर्याय बिना का, उसे देह में रहे जिनवर ने देख लिया। पूरा देख लिया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वे हरिहरादि पूरा देख नहीं सके थे न? इससे यहाँ पूरा देखने

की गाथा रखी है। आहाहा! पूर्ण ध्रुव जो चीज़, उसे शुद्ध उपयोग वीतरागी, उत्कृष्ट शुद्धोपयोग वीतरागभाव से उसे देख लिया। उसे केवलज्ञान हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अन्वयार्थ :- जो व्यवहारनयकर यद्यपि उत्पाद और व्ययकर सहित... यहाँ व्यवहार डाला, देखा! पहला समझाया था पर्याय। पर्यायनय से कहो या व्यवहारनय से (कहो), सब एक ही है। आहाहा! पर्याय जो उत्पाद-व्यय की है, वही व्यवहार है। त्रिकाली द्रव्य है, वह निश्चय है। समझ में आया? **व्यवहारनयकर यद्यपि उत्पाद और व्ययकर सहित है...** आहाहा! **तो भी द्रव्यार्थिकनय से उत्पाद और विनाश से...** कोष्ठक में डालना पड़ा। वह मूल पाठ में नहीं न? '**भावाभावहिँ**' इतना है न? परन्तु कहने का आशय '**भावाभावहिँ संजुवउ भावाभावहिँरहिओ**'। आहाहा! अब ऐसा जानना और... आहाहा! उसमें कितनी धीरज चाहिए है।

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण आनन्द का नाथ प्रभु परमात्मस्वरूप ही विराजता है वह। ध्रुव स्वरूप, वह परमात्मस्वरूप है। परम-आत्म अर्थात् वह परमस्वरूप है। बाकी सब भाव वे अपरम-स्वरूप हैं। आहाहा! क्षायिकभाव की पर्याय भी पर्यायनय है। अपरमभाव है। समझ में आया? वह अपरमभाव में स्थित, वह नहीं, हों! १२वीं गाथा में अपरमभाव में स्थित (आया) वह अपरमभाव में स्थित का अर्थ अपूर्ण दशा में—राग में है, उसे अपरमभाव कहते हैं। उसे इसको जाननेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। और यह है, वह वस्तु त्रिकाल, जिसमें क्षायिकभाव, उपशमभाव का भी जिसमें अभाव है, ऐसा जो त्रिकाली भाव, उसे परमभाव कहते हैं। और क्षायिकभावादि की पर्याय उत्पाद-व्ययवाली है, आहाहा! इससे व्यवहारनयवाली है, पर्यायनयवाली है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए उसे अपरमभाव कहते हैं। समझ में आया?

(समयसार) १२वीं गाथा में कहा कि '**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो**' वह पूर्ण निर्विकल्प में स्थिर हो गया, उसे शुद्ध जाननेयोग्य हो गया। परन्तु '**ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे**' वह अपरम अर्थात् क्षायिकभाव में स्थिर, ऐसा नहीं वहाँ। समझ में आया? यहाँ अपरम अर्थात् कि पूर्णदशा में नहीं, अपूर्णदशा में और राग में है,

उस अपरमदशा में है, ऐसा कहा जाता है। उसे जाननेयोग्य है। वह व्यवहार जाननेयोग्य है। यह व्यवहार जो क्षायिक पर्याय आदि है... आहाहा! वह आदरनेयोग्य है। प्रगट करनेयोग्य के लिये आदरनेयोग्य है। परन्तु है वह पर्यायनय का विषय। आहाहा! केवलज्ञान भी पर्यायनय का विषय, सिद्धपद भी पर्यायनय का विषय। समझ में आया? वह पर्यायनय की अपेक्षा से उसके निश्चय मोक्षमार्ग की पर्याय है और पूर्व की पर्याय का व्यय होता है, नयी पर्याय होती है, ऐसा उत्पाद-व्यय भाव-अभाव। भाषा ऐसी ली है न? उत्पाद, वह भाव; व्यय, वह अभाव। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म आता है तुम्हारे भावनगरवाले आवें तब। आहाहा!

चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो, वह भाव और पूर्व पर्याय का व्यय हो, वह अभाव। परन्तु वह पर्यायनय का, व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! केवलज्ञान, वह सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। वह तो व्यवहारनय का कहो। आहाहा! समझ में आया? परन्तु त्रिकाल मूल चीज़ जो है, ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ऐसा अनादि-अनन्त ध्रुवरूप से है, उसमें वह उत्पाद-व्यय नहीं। उसमें वह केवलज्ञान की पर्याय भी उसमें नहीं। आहाहा! ...भाई! यह (बात) तो बहुत सूक्ष्म है। मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा!

यहाँ तो उत्पाद-व्यय को व्यवहारनय कहा। व्यवहारनय आश्रय करनेयोग्य है? निश्चयनय एक ही आश्रय करनेयोग्य (हो) तो एकान्त हो जायेगा। अनेकान्त होना चाहिए। निश्चय, वह आदरणीय है और व्यवहारनय भी आदरणीय है। तो दो नय विरुद्ध कहाँ रहे? दोनों आदरणीय है, ऐसा यदि कहो तो विरोध कहाँ रहा? आहाहा! दो नय तो विरोध है। विरोधध्वंसिनी नहीं आया? एक त्रिकाल को जाने, एक वर्तमान को जाने। दोनों विरोध है। दोनों नय आदरणीय है, ऐसा नहीं हो सकता। एकान्त सम्यक् त्रिकाली वही आदरणीय है। आहाहा! व्यवहारनय आश्रय करनेयोग्य नहीं। प्रगट करने की अपेक्षा से उसे उपादेय कहा जाता है। समझ में आया? परन्तु आश्रय करने के लिये क्षायिक केवलज्ञान भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। उसे तो होता नहीं। परन्तु क्षायिक समकित होता है न, लो न! परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य (नहीं)। आहाहा!

अरे! उसकी महिमा, एक समय का भगवान पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... एक-एक गुण से पूर्ण, ऐसे अनन्त गुण से एकरूप पूर्ण। वह **द्रव्यार्थिकनयकर उत्पादव्ययरहित है,...** आहाहा! कोष्ठक में डाला न, रहित है? कारण कि '**भावाभावाभ्यां**' है न? '**भावाभावाभ्यां**' में तो उत्पाद-व्यय विनाश इतना हो। फिर उससे रहित कोष्ठक में डालना पड़ा। फिर संस्कृत में स्पष्टीकरण है। '**भावाभावयोः रहितः**' आहाहा! **तथा वीतरागनिर्विकल्प आनन्दरूप से समाधिकर...** आहाहा! जिनवरदेव ने वीतराग निर्विकल्प भेदरहित आनन्दरूप समाधि से **तद्भव मोक्ष के साधक जिनवरदेव ने...** उसी भव में जिसे मोक्ष होना है। आहाहा! ऐसे जिनवरदेव ने **देह में भी देख लिया है,...** देह में केवलज्ञान प्रगट कर लिया। पूरा देखा उस केवलज्ञान में। वीतराग शुद्ध उपयोग की भावना से भगवान ने ऐसा पूरा देख लिया। आहाहा! है? **देह में भी देख लिया है,...** आहाहा! **वीतराग निर्विकल्परूप से (आनन्दरूप) समाधिकर...** शान्ति... शान्ति... शान्ति... वीतराग अकषायस्वभाव की शान्ति द्वारा भगवान ने आत्मा पूर्ण है, वह देख लिया। आहाहा! समझ में आया? यह इसमें पुनरुक्ति नहीं है। यह तो भावना का ग्रन्थ है न? समझ में आया? अधिक-अधिक वस्तु स्पष्ट करके विविधता से द्रव्य का आश्रय कैसे करना और उसका आश्रय जिसने उग्ररूप से किया, उसे ही मोक्ष होता है। आहाहा! जिसने जघन्यरूप से आश्रय किया, उसे समकितदर्शन आदि होते हैं। विशेष आश्रय किया, उसे चारित्र आदि होते हैं। विशेष आश्रय पूर्ण किया, उसे केवलज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! इसमें करना क्या? यह भक्ति करे वे लोग। यह व्यवहार-निश्चय के झगड़े कहते हैं। अरे! प्रभु!

यहाँ तो पर्याय है, वही व्यवहार है। उत्पाद-व्यय को विरोध कहा है। उत्पाद-व्यय है न? (उसे) विरोध है। धवल में कहा। उत्पाद—भाव, व्यय—अभाव। दोनों विरुद्ध है। वस्तु अविरोध है। समझ में आया? त्रिकाली भगवान पूर्ण आनन्द का कन्द नाथ, वह अविरोधस्वरूप है। अर्थात् कि अकेला भावस्वरूप है। समझ में आया? और उत्पाद-व्यय भाव-अभावस्वरूप अर्थात् विरोधभाव है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ने देह में देखा, ऐसा कहा। देखा! आहाहा! '**देहि जि दिट्ठउ जिणवरहिँ**'

आहाहा! यह तीसरा पद है। देह में देखा भगवान ने, जिनवर ने देह में पूर्ण देखा। पूर्ण शुद्ध वीतराग निर्विकल्प उपयोग द्वारा उसे पूर्ण देखा। आहाहा! जिनवर ने देखा। आहाहा! प्रभाकर को कहते हैं, **उसी को तू परमात्मा जान,...** आहाहा! उसे तू परमात्मा जान। त्रिकाली ज्ञायकभाव... आहाहा! जो उत्पाद-व्यय की पर्याय बिना का, उसे तू परमात्मा जान। आहाहा! अर्थात् ? **वीतराग परमसमाधि के बल से अनुभव कर।** ऐसा। उसे—त्रिकाल परमात्मा को तू जान, अर्थात् ? आहाहा! वीतराग परमसमाधि, परमशान्ति... परमशान्ति... आहाहा! अकषायभाव, वीतराग अकषायभाव वह उसकी शान्ति अकषाय भाव की। उस शान्ति के बल से अनुभव कर। आहाहा!

कषायभाव है, वह अशान्ति है और वीतराग निर्विकल्प समाधि, समाधि का अर्थ शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायधारा की शान्ति द्वारा उस भगवान का तू अनुभव कर, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। वह अकषाय निर्विकारी वीतरागी शान्ति में ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! शास्त्र से जान ले, वह जाना नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इन्द्रियज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाना कहाँ है ? वहाँ कहाँ गया है ? वह तो इसके उघाड़ के भाव में रहा, आया। आहाहा! शास्त्र से जाना कि यह ध्रुव है और यह है। वह तो पर्याय के उघाड़ में है। परन्तु वहाँ कहाँ गया है यह ? आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र से जानकर बाद में तो जाया जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र से जानकर जाया जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह लीला ही कोई अलग ही प्रकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग ही है, भाई! आहाहा! जिसे अन्तर जानने के लिये शास्त्र के ज्ञान की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! तब जगत को कठिन पड़ता है न! यह सब व्यवहार चला जाता है, बापू! व्यवहार के आश्रय से निश्चय ज्ञात ही नहीं होता। वह इसका आश्रय छोड़े, शास्त्र का ज्ञान—लक्ष्य छोड़े। पहले तो आ गया था, नहीं ? कि दिव्यध्वनि द्वारा भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। अब क्या लेना है इसे ? भगवान की साक्षात् दिव्यध्वनि ॐकार ध्वनि उठे। 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे'

आहाहा! 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' कहते हैं कि उस ॐकार ध्वनि से भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। गजब बातें हैं न, बापू! आहाहा!

यह तो बलवान के काम हैं। यह कायर के काम नहीं। वह बलवान देव नहीं करते? लड़के को करते कुछ। पनिहारा ऊपर मिट्टी का कुछ करते, नहीं? बलवान देव कुछ करते। वहाँ हमारे पनिहारा—ऊपर था। बलवान देव लड़के को माने और ऐसा होगा कुछ। वह बलवान देव नहीं, यह बलवान देव है। आहाहा! केवलवीर्य अर्थात् अकेला पुरुषार्थ का पिण्ड प्रभु, जिसे प्रगट हुआ केवलपुरुषार्थ। आहाहा! उससे अनन्तगुणा पुरुषार्थ अन्दर भरा है। आहाहा! ऐसा केवलपुरुषार्थ, केवल बलवान प्रभु... आहाहा! उसका तू अनुभव कर, कहते हैं। समझ में आया? अर्थात्?

वीतराग परमसमाधि के बल से अनुभव कर। अर्थात्? व्यवहार के बल से यह ज्ञात होगा, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? राग की, कषाय की मन्दता और व्यवहाररत्नत्रय और उस द्वारा आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। वह तो रागवाली दशा है। भगवान तो वीतरागी शुद्धोपयोग द्वारा अनुभव कर। आहाहा! यह गुरु पंचम काल के शिष्य को कहते हैं। पंचम काल के हैं या नहीं? आहाहा! गाथा-४२ और वह ६८ है। **'बंधु ण मोक्खु करेइ'** यह ६८ है। यह उत्पाद-व्ययरहित द्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....परन्तु मोक्ष ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है। ६८ में कहते हैं। **'ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ'** आहाहा! उसे हम जीव कहते हैं। देखो तो सही! **'जिणवरु एउँ भणेइ'** है? ६८ है, ६८। यह उसमें आ गया है न? ३२० (गाथा समयसार जयसेनाचार्य कृत टीका) में आ गया है। ६८ गाथा। **'ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ'** वह जीव। जिनवर ऐसा कहते हैं, वे जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि जीव उत्पाद करता नहीं, व्यय करता नहीं, बन्ध को करता नहीं, बन्ध के कारण को करता नहीं। मोक्ष को करता नहीं, मोक्ष के कारण को करता नहीं। आहाहा!

'जिउ परमत्थें जोइया' हे योगी! जीव परमार्थ से बन्ध के मार्ग को, मोक्ष के मार्ग को, मोक्ष को करता नहीं। आहाहा! उसे तू जीव जान। उस ध्रुव को जीव कहा।

आहाहा! कहा न? **'ण वि उप्पज्जइ'** मोक्षमार्ग की पर्यायरूप से ध्रुव उपजता नहीं। **'ण वि मरइ'** ध्रुव व्यय होता नहीं। बन्ध और बन्ध के मार्ग को जीव करता नहीं। इसी प्रकार मोक्ष और मोक्ष के मार्ग को जीव करता नहीं। वह जीव परमार्थ से **'जोइया जिणवरु एउँ भणेइ'** हे योगी! वीतराग ऐसा कहते हैं। उसे जीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो जीव मोक्ष को और मोक्ष के मार्ग को न करे, उसे जिनवर जीव कहते हैं। आहाहा! ऐसी वाणी कहाँ है? भाई! आहाहा!

योगपरमार्थ है न! **यह जीव न तो उत्पन्न होता है, न मरता है और न बन्ध मोक्ष को करता है,...** आहाहा! **ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।** आहाहा! एक ओर कहे, संसार की—विकार की उत्पत्ति जीव पर्याय में करता है, यह करे। वह तो पर्याय में राग होता है और पर्याय में मोक्षमार्ग होता है। जीवो-जीव उसे कहते हैं, जिनवर उसे जीव कहते हैं, आहाहा! त्रिकाली आनन्द के नाथ को—ध्रुव को जीव कहते हैं। आहाहा! उस जीव का तू ध्यान कर। त्रिकाली जीव का ध्यान कर। यह पर्याय ध्यान की ध्यान से होती है। जीव से नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? यह मोक्षमार्ग की पर्याय जीव से नहीं होती। तथा राग की मन्दता से नहीं होती। तथा पूर्व पर्याय के कारण से वर्तमान पर्याय नहीं होती। आहाहा! उस वर्तमान पर्याय के कारण से वर्तमान पर्याय का कार्य होता है। आहाहा! ऐसी बात!

इसके बल और इसके सामर्थ्य की क्या बात! ईश्वर स्वयं परमात्मा साक्षात् अनन्त शक्ति का धनी ईश्वरस्वरूप प्रभु है। वह ईश्वर नहीं बन्ध के मार्ग में आता। आहाहा! उसे हम परमात्मा अथवा जीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसे **परमसमाधि के बल से अनुभव कर।** समझ में आया? ऐसा है न? **'वीतरागपरमसमाधि-बलेनानुभवेत्यर्थः'** इस वीतरागी बल के बल से उसे अनुभव कर। आहाहा!

राग को साधन कहा है न? टीका में है कि इस व्यवहारमोक्षमार्ग का साध्य जो निश्चय, उसे ऐसा कहा। पंचास्तिकाय। निश्चयमोक्षमार्ग का साधन ऐसा जो व्यवहारमोक्षमार्ग कहा। व्यवहारमोक्षमार्ग का साध्य वह निश्चय। पंचास्तिकाय में ऐसे शब्द हैं। वह तो ज्ञान कराया है। ऐसी बात ... आहाहा! यहाँ कहते हैं कि वीतरागी

समाधि से ही प्राप्त होता है, वहाँ कहते हैं कि राग से प्राप्त होता है। यह तो विरोध वाक्य हुए। विरोध वाक्य वीतराग के नहीं हो सकते। आहाहा! वहाँ तो व्यवहार साधक का आरोप दिया है। निश्चय साधक जो वीतराग शुद्धोपयोग, वह साधकदशा है। उसके साथ राग की मन्दता के भाव को निमित्तरूप से सहचर देखकर आरोपित व्यवहारनय से उसे साधक कहा है। साधक है नहीं, उसे साधक कहा है। आहाहा! भारी कठिन काम, भाई!

मुमुक्षु : .... न हो और वाणिया कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। व्यापारी हो वह बनिया। खोजो हो, वह बनिया—व्यापारी कहलाये। खोजो भी व्यापारी कहलाये। नहीं कहलाये? व्यापार करे वह बनिया। मुसलमान व्यापार करे। वह और अलग बात। व्यापार करे वह बनिया। बस, इतना। वणिक-वणिक व्यापार। वह कोई भी करे, उसमें क्या? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा को यह कहना है कि तू परम वीतरागस्वरूप विराजमान है, जिसमें हलचल नहीं। आहाहा! जो वस्तु है त्रिकाली, उसमें हलचल नहीं, जिसमें परिणमना नहीं, जिसमें कम और अधिकपना कुछ है नहीं। वह तो है वह है पूर्ण स्वरूप है। आहाहा! उसे तू वीतरागी शुद्धोपयोग द्वारा अनुभव कर। आहाहा! समझ में आया? ऐई! प्रवीणभाई! यह ऐसी बातें हैं। अब लोगों को ऐसा लगे, यह तो अकेला निश्चय... निश्चय... निश्चय...

मुमुक्षु : पर्याय की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय व्यवहार है। आहाहा! यह तो परमार्थवचनिका में नहीं कहा? द्रव्य, वह निश्चय है और मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है। निश्चयमोक्षमार्ग साधना, हों! व्यवहार तो मार्ग है ही कहाँ? आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग साधना अन्दर शुद्धोपयोग, वह व्यवहार है। परमार्थवचनिका में है। समझ में आया? आहाहा! यह बात यहाँ की है। पर्याय है, उसे जान पर्यायरूप से इतना। परन्तु आश्रय करनेयोग्य तो त्रिकाली चीज़ है। पर्याय को भी आश्रय करनेयोग्य तो त्रिकाली चीज़ है। भले पर्याय है, वह क्षणिक दशा है। क्षणिक दशा का आश्रय है, वह त्रिकाली है। आहाहा! समझ में आया? उस ध्रुव का निर्णय करती है, वह पर्याय है। नित्य का निर्णय करता है, वह

अनित्य है। आहाहा! निश्चय का निर्णय करता है, वह व्यवहार—पर्याय है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, जयन्तीभाई! वह तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय में विचार नहीं होता था कि यह क्या करते हैं। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव, देह में रहे होने पर भी पूर्ण देख लिया। असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड पूर्ण देखा। उनकी वाणी में आया कि उस पूर्ण के नाथ को तू देख, भाई! आहाहा! समझ में आया? बाकी सब बातें हैं। आहाहा!

भावार्थ :- जो परमात्मा कृष्ण, नील, कापोत, लेश्यास्वरूप... आदि। ऐसा चाहिए। अन्दर आदि शब्द है न? **कृष्ण, नील, कापोत, लेश्यास्वरूप आदि...** आदि शब्द है। अर्थ में आदि पड़ा रहा है। **कृष्ण, नील, कापोत, लेश्यास्वरूप आदि... 'समस्तविभावरहितेन'** आहाहा! वह तो **'कृष्णनीलकापोतलेश्यास्वरूपादिसमस्त-विभावरहितेन'** उस लेश्या से भी रहित आत्मा है। आहाहा! **विभाव परिणामों से रहित शुद्धात्म की प्राप्तिरूप ध्यानकर...** शुद्धात्मा की प्राप्ति जिसमें पूर्ण स्वरूप पर्याय में प्राप्त हो, उसका ध्यान कर।

जिनवरदेव ने देह में देखा है,... जिनवरदेव ने। देव ने, हिन्दी भाषा है न? जिनवरदेव ने देह में देखा है। आहाहा! वह कहीं बाहर आगे (दूर) नहीं। आहाहा! अनन्त गुण का दरबार विराजता है। बादशाह विराजता है। आहाहा! वहाँ देह में भगवान ने उसे देख लिया। आहाहा! **वही साक्षात् उपादेय है।** लो! है न? साक्षात् उपादेय। **'इति तात्पर्यार्थः'** संस्कृत में है। **'जिनवरैर्देहेऽपि दृष्टः स एव साक्षादुपादेय'** आहाहा! यहाँ तो यह वस्तु त्रिकाली, वही आदरणीय है। आहाहा! आदर करनेवाली पर्याय है। परन्तु आदर करनेयोग्य त्रिकाली चीज़ है। लोगों को सूक्ष्म, रूखा लगे।

श्रीमद् में एक पत्र है न? भाई! यह वीतरागमार्ग तो बहुत वैसा है। अर्थात् कितने ही विचारकों ने भक्ति को कहा है, ऐसा कहकर व्यवहार बतलाया है। वे भी कहते थे। गुजर गये। बाद में बदल गये थे। ब्रह्मचारी नहीं? अपने यहाँ आये थे, नहीं? छोटालाल, छोटेलाल ब्रह्मचारी। बाद में बदल गये थे। पहले अनुकूल थे, फिर बदल गये थे। और बदल गये। ऐसा कि व्यवहार में आवे तब अन्दर जाने का बल उसे प्राप्त होता है।

छोटेलाल थे। थोड़ी कषाय की मन्दता में आवे—विश्राम... तो उसे अन्दर जाने का बल हो, ऐसा कहते थे। पहले उन्हें ठीक था। फिर वापस बदल गया। वापस आये थे। मेरा सब खोटा है। छोटेलाल, वहाँ इन्दौर रहते थे न? ब्रह्मचर्य आश्रम में (रहते थे)।

यह भगवान साक्षात् उपादेय यह आत्मा। ऐसा ध्रुव है, वह बस आदरने (योग्य है)। आहाहा! वहाँ लक्ष्य करनेयोग्य है, वह दृष्टि करनेयोग्य है, वहाँ श्रद्धा करनेयोग्य है, वहाँ स्थिर होनेयोग्य है। आहाहा! केवलज्ञान को प्राप्त करने के लिये द्रव्य में स्थिर हो जाने की बात है यहाँ तो। आहाहा! कोई शास्त्र का बहुत पढ़ें तो फिर ज्ञान हो, इससे इनकार करते हैं। यह तो है वह है। एक ओर कहे, कुन्दकुन्दाचार्य कहे, सुन! कहता हूँ। दूसरे प्रकार से कहे कि मैं कह सकता नहीं और मुझसे तुझे ज्ञान नहीं होता। ऐसी बात है। यहाँ तो कहना है कि तुझे केवलज्ञान प्रगट करना हो तो वह शास्त्र के पठन से नहीं होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : पठन की पुस्तकें तो ढ़ेरों प्रकाशित करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बेचारा यही कहता है न? निमित्त से होता नहीं और निमित्त द्वारा क्या कहा उपादान का... ? जोड़ देते हैं। निमित्त को उपादान के साथ जोड़ देते हैं। और होता है मिथ्यात्व और माने समकित। अरे! प्रभु! भाई! ऐसा नहीं होता। निमित्त भी निमित्त के कारण से आता है। आहाहा! ऐसा कहे, फिर तुम बोलते किसलिए हो? तुम्हारे से समझ में नहीं आता और उससे समझ में आता है, तो भी तुम बोलते हो। भाई! ऐसा नहीं बोला जाता। आहाहा!

यहाँ तो त्रिकाली भगवान आनन्द का नाथ, वह चारों ओर से एक ही उपादेय है, ऐसा कहते हैं और उसे आदरने से उसे मोक्ष का मार्ग प्रगट हो और उसे मोक्ष हो। दूसरे को मोक्ष का मार्ग प्रगट नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४४

अथ येन देहे वसता पञ्चेन्द्रियग्रामो वसति गतेनोद्वसो भवति स एव परमात्मा भवतीति कथयति -

४४) देहि वसंतें जेण पर इंदिय-गामु वसेइ।
उव्वसु होइ गएण फुडु सो परमप्पु हवेइ।।४४।।

देहे वसता येन परं इन्द्रियग्रामः वसति।
उद्वसो भवति गतेन स्फुटं स परमात्मा भवति।।४४।।

देहे वसता येन परं नियमेनेन्द्रियग्रामो वसति येनात्मना निश्चयेनातीन्द्रियस्वरूपेणापिव्यवहारनयेन शुद्धात्मविपरीते देहे वसता स्पर्शनादीन्द्रियग्रामो वसति, स्वसंवित्यभावे स्वकीयविषये प्रवर्तत इत्यर्थः। उद्वसो भवति गतेन स एवेन्द्रियग्रामो यस्मिन् भवान्तरगते सत्युद्वसो भवति स्वकीयविषयव्यापाररहितो भवति स्फुटं निश्चितं स एवंलक्षणश्चिदानन्दैकस्वभावः परमात्मा भवतीति। अत्र य एवातीन्द्रियसुखास्वादसमाधिरतानां मुक्तिकारणं भवति स एव सर्वप्रकारोपादेयातीन्द्रियसुखसाधकत्वादुपादेय इति भावार्थः।।४४।।

आगे देह में जिसके रहने से पाँच इन्द्रियरूप गाँव बसता है और जिसके निकलने से पंचेन्द्रियरूप गाँव उजड़ हो जाता है, वह परमात्मा है, ऐसा कहते हैं -

देहस्थ जिससे इन्द्रियों का विषयवर्तन हो सदा।
गतदेह जिसके नष्ट हो वर्तन वही परमातमा।।४४।।

अन्वयार्थ :- [येन परं देहे वसता] जिसके केवल देह में रहने से [इन्द्रियग्रामः] इन्द्रिय गाँव [वसति] रहता है, [गतेन] और जिसके परभव में चले जाने पर [उद्धसः स्फुटं भवति] उजड़ निश्चय से हो जाता है [स परमात्मा] वह परमात्मा भवति है।

भावार्थ :- शुद्धात्मा से जुदी ऐसी देह में बसते आत्मज्ञान के अभाव से ये इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों में (रूपादि में) प्रवर्तती हैं और जिसके चले जाने पर अपने अपने विषय-व्यापार से रुक जाती हैं, ऐसा चिदानन्द निज आत्मा वही परमात्मा है। अतीन्द्रियसुख के आस्वादी परमसमाधि में लीन हुए मुनियों को ऐसे परमात्मा का ध्यान ही मुक्ति का कारण है, वही अतीन्द्रियसुख का साधक होने से सब तरह उपादेय है।।४४।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल १०, मंगलवार
दिनांक-०६-०७-१९७६, गाथा-४४-४५, प्रवचन-२७

परमात्मप्रकाश, ४४ गाथा। ४३ हो गयी है। **आगे देह में जिसके रहने से...** देह में जिसके रहने से **पाँच इन्द्रियरूप गाँव बसता है, और जिसके निकलने से पंचेन्द्रियरूप गाँव उजड़ हो जाता है, वह परमात्मा है,...** यह कहते हैं।

४४) देहि वसंतें जेण पर इंदिय-गामु वसेइ।
उव्वसु होइ गएण फुडु सो परमप्पु हवेइ।।४४।।

अन्वयार्थ :- जिसके केवल देह में रहने से... आहाहा! **'येन परं देहे' इन्द्रिय गाँव रहता है,...** इन्द्रिय गाँव काम करता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा है तो अन्दर इन्द्रिय गाँव काम करता है। भावेन्द्रिय। **और जिसके परभव में चले जाने पर... 'गतेन'** यहाँ से—देह से निकले (तो) **उजड़ निश्चय से हो जाता है...** पाँच इन्द्रिय के विषय उज्जड हो जाते हैं। **यह परमात्मा है...** आहाहा! उसे तू परमात्मा चैतन्यस्वरूप जान। जो अतीन्द्रिय ज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा है। इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं।

शुद्धात्मा से जुदी ऐसी देह में... भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, उससे भिन्न यह देह, उसमें **बसते आत्मज्ञान के अभाव से...** आहाहा! इन्द्रियों में आत्मा अन्दर इन्द्रियों से काम करता है। वह आत्मज्ञान के अभाव में। आहाहा! आत्मा अणीन्द्रिय आनन्दकन्द है। जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं, वह पाँच इन्द्रिय के विषयों में दौड़ता है और उसे जानता है। आहाहा! है? **आत्मज्ञान के अभाव से...** आत्मा ज्ञायकस्वभाव, वह अणीन्द्रिय आत्मा है। अणीन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा है। रागरहित वीतराग परिणति द्वारा ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा है। उसमें कथंचित् इन्द्रिय से ज्ञात हो और कथंचित् अणीन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है।

आत्मज्ञान के अभाव से ये इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में (रूपादि में) प्रवर्तती हैं, और जिसके चले जाने पर अपने-अपने विषय-व्यापार से रुक जाती हैं,... इन्द्रिय। भावइन्द्रिय काम न करे। इन्द्रिय यह जड़ है वह तो। जाननेवाला तो चला गया। आहाहा! **जिसके चले जाने पर अपने-अपने विषय-व्यापार से रुक जाती हैं, ऐसा**

चिदानन्द... ऐसा चिदानन्द—ज्ञान-आनन्द **निज आत्मा...** आहाहा! ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा है। वह आत्मा को उपादेय है। **वही परमात्मा है।** लो! त्रिकाली ज्ञानानन्दस्वरूप, वह परमात्मस्वरूप है। वही उपादेय है।

अतीन्द्रिय सुख के आस्वादी... उस परमात्मा को कौन ध्यान में लेता है? कहते हैं। आहाहा! इन्द्रिय सुख की जिसने रुचि छोड़ी है और अतीन्द्रिय सुख के स्वादिया—आस्वादी है। आहाहा! **परमसमाधि में लीन हुए...** अन्तर में शान्ति में लीन है। अविकारी स्वभाव शान्ति में अविकारी परिणाम से लीन है। आहाहा! ऐसी बात है। उन **मुनियों को ऐसे परमात्मा का ध्यान ही मुक्ति का कारण है,...** लो! अतीन्द्रिय सुख के वेदक—रसिया, परम समाधि में लीन। आहाहा! ज्ञायकस्वभाव-सन्मुख शान्ति और अविकारी परिणाम में जो लीन है, ऐसे मुनियों को उस परमात्मा का ध्यान ही... लो! यहाँ तो एक ही बात की। उसका साधन दूसरा कुछ है या नहीं? यह बात करते हैं। वहाँ अगास में भी ऐसा पूछते थे, कि निश्चय (की) तुमने बात की, परन्तु उसमें साधन? यह भक्ति करना, वांचन... ऐसा पूछते थे। यही साधन है। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लीन होकर उसका ध्यान करना, वही साधन है। आहाहा! और वही मुक्ति का कारण है। है न? **ध्यान ही...** ऐसा शब्द है। एकान्त हो गया। '**मुक्तिकारणं भवति स एव**' संस्कृत है। '**स एव**' आहाहा!

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञानस्वरूपी वस्तु, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लीन होना। आहाहा! वर्तमान अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होना, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! मुक्ति का मार्ग तो यह एक ही हुआ। मोक्ष के मार्ग दो कहे हैं न? मार्ग दो नहीं हैं। यह तो कथन दो है। मार्ग तो यह एक ही है। आत्मा के आनन्द का ध्यान, उसे लक्ष्य में लेकर निर्मल परिणति खड़ी हो, वह एक ही मोक्ष का कारण है। यह लोगों को एकान्त लगता है। कुछ उसका साधन चाहिए व्यवहार।

श्रीमद् में भी कहा है न? 'निश्चय रखकर लक्ष में साधन करना सोई' यह सब व्यवहार की बातें हैं। साधन, यही साधन है। परन्तु इसे लोग ऐसा कहे कि देखो! उसमें साधन कहा है न? यह दूसरे। वह मारवाड़ी पूछते थे रात्रि में। निश्चय की बात तो बराबर है, परन्तु उसका साधन? आहाहा! स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन, उसकी ओर का

झुकाव, वही साधन है। व्यवहार-ब्यवहार साधन है नहीं। वस्तु ऐसी है। आहाहा! ऐसा कि कुछ यह पंच महाव्रत पालना आदि साधन है या नहीं? श्रीमद् में भी आता है न? '... क्षमा सत्य त्याग वैराग्य होय मुमुक्षु घट' वह तो राग की मन्दता हो, इतनी बात है। उससे होता है, यह है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह शब्द ऐसा हो तो वह पूछे कि यह सब साधन कहे हैं न? वह तो ऐसी राग की मन्दता मुमुक्षु को होती है। इतना। परन्तु उससे प्राप्त होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : सजीवनमूर्ति चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें। सजीवनमूर्ति स्वयं है। आहाहा!

आनन्द और अनन्त ज्ञान से जीवित-टिकता तत्त्व तो आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप से, मूर्तस्वरूप तो यह आत्मा है। आहाहा! उसका ध्यान करना, वही उपाय है। आहाहा! यह एक ही कहा, देखो! परमात्मा का ध्यान ही मुक्ति का कारण है। व्यवहार भी मुक्ति का कारण है, ऐसा नहीं लिया। यह लोगों को कठोर पड़ता है। इसे सत्य की महिमा ज्ञात नहीं होती। अलिंगग्रहण में यही कहा है, छठवें बोल में। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। उसे कोई राग और निमित्त की अपेक्षा हो तो ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! यह लोगों को सबको कठोर लगता है।

मुमुक्षु : न समझ में आये, तब तक कठोर लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो?

अतीन्द्रियसुख के आस्वादी... मुख्य मुनिपना लेना है न? परमसमाधि—निर्विकल्प शान्ति में लीन है। आहाहा! ऐसे मुनियों को **ऐसे परमात्मा का ध्यान ही मुक्ति का कारण है,...** आहाहा! नियमसार में आया है न? एक ध्यान ही मुक्ति का कारण है। व्रत, तप, और बहुत सब नाम दिये हैं न? वे यह। आहाहा! ध्यान जो पर्याय है, उसका ध्येय पूरी चीज़ है। आहाहा! ध्यान, वह पर्याय है, परन्तु वह ध्यान निर्विकल्प वीतरागी पर्याय है, समभावी पर्याय है। उसका विषय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव है। वही साधन और वह एक ही मुक्ति का उपाय है। बाकी सब बातें चाहे जितनी करे। छहढाला में भी नहीं आया? 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निश्चय आतम उर ध्याओ।' छहढाला।

मुमुक्षु : इसका अर्थ क्या—हम तो कुछ समझे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझे? आहाहा! 'लाख बात की बात' करोड़ बात की बात 'निश्चय उर लाओ' तो फिर करोड़ की... आनन्द का नाथ, उसे दृष्टि में लो, एक ही बात है।

मुमुक्षु : ऐसा तो नहीं लिखा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें नहीं लिखा? 'निश्चय उर लाओ'। बस, 'निश्चय' अर्थात् यह। 'छोड़ी जगत द्वंद्व फंद' द्वैतपना भी छोड़ दे। पर्याय का लक्ष्य और द्रव्य का लक्ष्य, दो नहीं। 'निज आतम ध्याओ।' यह वस्तु ऐसी है न! उसकी शुरुआत ही इस प्रकार से है। फिर लोगों को कठिन लगे, इसलिए कहे, ऐ... निश्चय... निश्चय... निश्चय... आहाहा! क्या हो?

वही अतीन्द्रियसुख का साधक होने से... देखा! अतीन्द्रिय सुख जो मोक्ष, उसका साधक होने से **सब तरह उपादेय है।** आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, उसके ऊपर ध्यान करना, उसे ध्येय बनाकर ध्यान करना। ध्यान का विषय ध्रुव... ध्रुव। आहाहा! अनुभव का विषय वह ध्रुव। ऐसी बात पकड़ना कठिन पड़े, इसलिए लोग यह बाहर की प्रवृत्ति कुछ करे। व्रत पाले और कोई अपवास करे। बाहर के आचरण करे, वह साधन है, ऐसा (वे) कहते हैं।

मुमुक्षु : पुरानी पद्धति तो यही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरानी? उल्टी मान्यता यह है।

मुमुक्षु : उल्टी भी अनादि की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आहाहा!

यहाँ तो एक ही अतीन्द्रिय सुख का साधन, परमात्मा का ध्यान ही मुक्ति का एक कारण है, बस। आहाहा! वस्तु तो यह है, भाई!

मुमुक्षु : ध्यान का विषय....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान का विषय द्रव्य। पर्याय का विषय द्रव्य। ध्यान है, वह पर्याय है। नित्य का निर्णय करे अनित्य। अनित्य का विषय नित्य है। आहाहा! उसमें

आया नहीं था? कि इस काल में ध्यान नहीं हो सकता। वे लोग... स्वाध्याय में आया था। आहाहा! धर्मध्यान। धर्मध्यान अर्थात्? वस्तु के स्वभाव का ध्यान, वह धर्मध्यान। वह न हो तो धर्म ही नहीं होता। कितने ही कहते हैं न अभी शुद्धोपयोग नहीं है, इसलिए व्यवहार धर्म और यह राग, वह धर्म है। ऐसा कितने ही कहते हैं। आहाहा! ऐसा कि आत्मा की ओर का ध्यान, वह तो अभी नहीं है। अभी नहीं तो फिर क्या रहा? आहाहा!

यहाँ तो यह **अतीन्द्रियसुख का साधक होने से सब तरह उपादेय है।** आहाहा! अन्तर में गुम हो जाना। भगवान आनन्द के नाथ को पकड़कर गुम हो जाना। आहाहा! यह एक ही बात। आत्मध्यान ही उपाय है, भाई! दूसरा नहीं। उसका अभ्यास नहीं, इसलिए उसे लगता है। परन्तु वस्तुस्थिति तो यह है। अब उसे वह कहे कि नहीं। मोक्षमार्ग दो न माने, वह भ्रम में है। कहो। यह तो सब कहनेवाले ऐसे के ऐसे सब होते हैं। उसमें क्या? निगोद में से निकला हुआ, कुछ संस्कार न हो, वह नौ पूर्व पढ़ता है। उसमें क्या है? निगोद में से निकले। अक्षर के अनन्तवें भाग में वहाँ था, लो! यहाँ नौ पूर्व पढ़े। राग की मन्दता हो, उससे क्या? अभव्य को भी ऐसा होता है। यह वस्तु क्या? आहाहा! ग्यारह अंग और नौ पूर्व वह भी होता है। आहाहा! यह पूर्व का था; इसलिए आया, यह तो कुछ है नहीं। पूर्व में निगोद में से निकला है। आहाहा! राग की मन्दता और अभ्यास हो तो होता है। आहाहा! विभंग हो जाता है। सात द्वीप और सात समुद्र देखे। उससे क्या?

स्वज्ञेय को पकड़ा नहीं, तब तक परज्ञेय जाने, वह सब मिथ्या है, भ्रम है। आहाहा! वह तो अकेला परप्रकाशक ज्ञान हुआ। सात द्वीप, समुद्र भले देखे। उससे क्या हुआ? परन्तु जो स्वप्रकाशक जो ज्ञान है, उसे तो जाना नहीं। आहाहा! स्व को जानते हुए फिर परप्रकाशपना होता है। परन्तु अकेला परप्रकाशकपना आत्मज्ञान बिना मिथ्याज्ञान है। आहाहा! ऐसी बात है बहुत, भाई!

मुमुक्षु : इन्द्रियज्ञान तो परप्रकाशक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए कहते हैं न! इसीलिए यह कहेंगे अभी। परप्रकाशक है, इसलिए साधन नहीं। यहाँ तो अभी कहेंगे ४५ (गाथा) में। पाँच इन्द्रिय के विषय भी साधन नहीं। आहाहा! उससे जाना जाये नहीं। इन्द्रिय का विषय वाणी आदि भगवान की, उससे जाना जाये नहीं, ऐसा है। यह ४४ (गाथा) हुई।

गाथा - ४५

अथ यः पञ्चेन्द्रियैः पञ्चविषयान् जानाति स च तैर्न ज्ञायते स परमात्मा भवतीति निरूपयति -

४५) जो णिय-करणहिं पंचहिं वि पंच वि विसय मुणेइ।
मुणिउ ण पंचहिं पंचहिं वि सो परमप्पु हवेइ।।४५।।

यः निजकरणैः पञ्चभिरपि पञ्चापि विषयान् जानाति।
ज्ञातः न पञ्चभिः पञ्चभिरपि स परमात्मा भवति।।४५।।

यो निजकरणैः पञ्चभिरपि पञ्चापि विषयान् मनुते जानाति। तद्यथा। यः कर्ता शुद्धनिश्चयनयेनातीन्द्रियज्ञानमयोऽपि अनादिबन्धवशात् असद्भूतव्यवहारेणेन्द्रियमयशरीरं गृहीत्वा स्वयमर्थान् ग्रहीतुमसमर्थत्वात्पञ्चेन्द्रियैः कृत्वा पञ्चविषयान् जानाति, इन्द्रियज्ञानेन परिणमतीत्यर्थः। पुनश्च कथंभूतः। मुणिउ ण पंचहिं पंचहिं वि सो परमप्पु हवेइ मतो न ज्ञातो न पञ्चभिरिन्द्रियैः पञ्चभिरपि स्पर्शादिविषयैः। तथाहि वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान-विषयोऽपि पञ्चेन्द्रियैश्च न ज्ञात इत्यर्थः। स एवंलक्षणः परमात्मा भवतीति। अत्र य एव पञ्चेन्द्रियविषय-सुखास्वादविपरीतेन वीतरागनिर्विकल्पपरमानन्दसमरसीभावसुखरसा-स्वादपरिणतेन समाधिना ज्ञायते स एवात्मोपादानसिद्धमित्यादिविशेषणविशिष्टस्योपादेय-भूतस्यातीन्द्रियसुखस्य साधकत्वादुपादेय इति भावार्थः।।४५।।

आगे जो पाँच इन्द्रियों से पाँच विषयों को जानता है और आप इन्द्रियों के गोचर नहीं होता है, वही परमात्मा है, यह कहते हैं -

पंचेन्द्रियों से पाँच इन्द्रिय-विषय को जो जानता।
पर ज्ञात ना पंचेन्द्रियों से विषय से परमातमा।।४५।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो आत्माराम शुद्धनिश्चयनयकर अतीन्द्रिय ज्ञानमय है तो भी अनादि बंध के कारण व्यवहारनय से इन्द्रियमय शरीर को ग्रहणकर [निजकरणैः पञ्चभिरपि] अपनी पाँचों इन्द्रियो द्वारा [पञ्चापि विषयान्] रूपादि पाँचों ही विषयों को जानता है अर्थात् इन्द्रियज्ञानरूप परिणमन करके इन्द्रियों से रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श को जानता है और आप [पञ्चभिः] पाँच इन्द्रियोंकर तथा [पञ्चभिरपि] पाँचों विषयों से

सो [मतो न] नहीं जाना जाता, अगोचर है, [स परमात्मा] ऐसे लक्षण जिसके हैं, वही परमात्मा [भवति] है।

भावार्थ :- पाँच इन्द्रियों के विषय-सुख के आस्वाद से विपरीत, वीतराग-निर्विकल्प परमानन्द समरसीभावरूप, सुख के रस का आस्वादरूप, परमसमाधि करके जो जाना जाता है, वही परमात्मा है, वह ज्ञानगम्य है, इन्द्रियों से अगम्य है और उपादेयरूप अतीन्द्रिय सुख का साधन अपना स्वभावरूप वही परमात्मा आराधने योग्य है।।४५।।

गाथा - ४५ पर प्रवचन

आगे जो पाँच इन्द्रियों से पाँच विषयों को जानता है, और आप इन्द्रियों के गोचर नहीं होता है,... आहाहा! इन्द्रियों से जानता है वह, परन्तु वह स्वयं इन्द्रियगम्य नहीं। आहाहा! **वही परमात्मा है,...** आहाहा! आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन पाने पर अतीन्द्रिय ज्ञान के अनुभव में वह पाती है। बात ऐसी है। द्रव्यसंग्रह में नहीं आया? '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' निश्चय और व्यवहार एक समय में साथ में होते हैं। ध्यान में। उसे द्रव्य का ध्यान लगा, उसमें जो निश्चय निर्विकल्पदशा प्रगट हुई, वह तो निश्चय (मोक्ष)मार्ग है। उसे राग बाकी रहा है, है वह ध्यान में, तो भी राग बाकी रहा, उसे व्यवहार कहने में आया है। व्यवहारमोक्षमार्ग है नहीं। आहाहा! क्या हो? वस्तु की स्थिति ही ऐसी है वहाँ।

लोगों को ठीक पड़े, रंजन हो, इस प्रकार से बात करे तो वह सत्य कहलाये, ऐसा कुछ है? देखो! भाई! साधन ऐसा चाहिए। यह व्यवहार साधन है। साधन से साध्य प्राप्त होता है। पंचास्तिकाय में ऐसा है। वह तो साधन का आरोपित ज्ञान कराया है। आरोपित साधन। ऐसी बात है परन्तु क्या हो? शास्त्र के अर्थ करने में उसमें बड़ा अन्तर पड़ गया। जो इसकी महत्ता है, उस महत्ता की स्वभावदशा से ही प्राप्त किया जा सकता है। वह इसकी महत्ता है। राग और व्यवहार से प्राप्त हो, वह कलंक है, कहते हैं। आहाहा! व्यवहार तो संसार है, राग है। बात तो ऐसी है, भाई! यह तो पूरा जन्म-मरण

का अन्त लाने की बातें हैं। आहाहा! चैतन्यसिन्धु, जिसमें प्रवेश करने से भव का अन्त आवे, वह बात है।

कल तो उसमें आया था शीलपाहुड़ में। विषय में मोहित मति है तथापि... आया था? सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! यह प्ररूपणा और श्रद्धा में यह कहते हैं। विषय की वासना, वह दुःखरूप है। उसे छोड़ नहीं सकता और उसे आसक्ति भी होती है, तथापि सम्यग्दृष्टि है, वह मोक्ष के मार्ग में है। आहाहा! कल सज्झाय में आया था। और वह शील तो नरक में भी है, ऐसा कहा। शील और ज्ञान का विरोध नहीं है। साथ में होते ही हैं। सम्यग्ज्ञान हो, वहाँ अनन्तानुबन्धी का अभाव (होता है), इतना शीलपना तो होता ही है। नरक में भी होता है, ऐसा कहा। शील नरक में होता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन और उसके साथ आंशिक स्वरूप चारित्र की स्थिरता का अंश है, वह शील है। और नरक में भी वह शील है, इससे वहाँ से निकले हुए तीर्थंकर होते हैं। ऐसा है न? ऐसा आया है न? अरिहन्तपद को प्राप्त करते हैं, ऐसा लिखा है। आहाहा! और वह सम्यग्दर्शन और शील-शान्ति के भाव से कर्म को खिपाते जाये, वहाँ नरक में भी। कल सज्झाय में आया था। आहाहा! अब वहाँ तो अभी तीन कषाय का तो भाव है। तो भी शुद्धस्वरूप के प्रति एकाग्रता, उतनी शान्ति और श्रद्धा वर्तती है अन्दर, वह शील में है और उसमें से बाहर निकलकर तीर्थंकर होगा। आहाहा! समझ में आया? 'मोहित मति' शब्द प्रयोग किया है। आसक्ति। आसक्ति है अन्दर, रुचि नहीं। धर्मी को विषय की आसक्ति होती है, रुचि नहीं। रुचि आत्मा की आनन्द की है। आहाहा!

मुमुक्षु : आसक्ति तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : आसक्ति अस्थिरता है। अस्थिरता है, चारित्रदोष है। समझ में आया? परन्तु उसे आनन्द की रुचि है। अतीन्द्रिय आनन्द में सुखबुद्धि है। अन्यत्र सबसे सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! इन्द्र के इन्द्रासन में भी उसकी—समकिती की सुखबुद्धि उड़ गयी होती है। आहाहा! अतीन्द्रिय सुख का नाथ अनुभव में आया, उसकी रुचि तो अतीन्द्रिय आनन्द की है। आहाहा! समझ में आया?

पाँच इन्द्रियों से पाँच विषयों को जानता है, और आप इन्द्रियों के गोचर नहीं

होता है, वही परमात्मा है,... आहाहा! इन्द्रियगम्य नहीं और इन्द्रिय के विषयों से भी वह गम्य नहीं। आहाहा! यह तो जितेन्द्रिय में आ गया है। नहीं? जितेन्द्रिय। ३१ गाथा। इन्द्रिय जड़, भाव और उसके विषय, उन सबको इन्द्रिय कहा। उन्हें जीते अर्थात् उनका लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! और आत्मा स्वयं इन्द्रिय के भाव से, खण्ड-खण्ड ज्ञान से भी अधिक-भिन्न है, पृथक् है, ऐसी अनुभव दृष्टि करे, उसने इन्द्रियों को जीता कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अभी इन्द्रियों की आसक्ति का राग होता है, परन्तु रुचि नहीं होती। आहाहा! उस राग में पोषाण न हो उसे कि यह ठीक होता है। उसे दुःख लगता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! यहाँ कहेंगे। ४५।

४५) जो णिय-करणहिं पंचहिं वि पंच वि विसय मुणेइ।
मुणिउ ण पंचहिं पंचहिं वि सो परमप्पु हवेइ।।४५।।

अन्वयार्थ :- जो आत्माराम शुद्धनिश्चयनयकर अतीन्द्रिय ज्ञानमय है... लो! आहाहा! यह तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय शुद्ध निश्चय से प्रभु है। अभी, हों! आत्माराम। **'यः'** अर्थात् **आत्माराम शुद्धनिश्चयनयकर...** पवित्र सत्य दृष्टि से देखें तो वह **अतीन्द्रिय ज्ञानमय है...** प्रभु तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा है। आहाहा! **तो भी अनादि बन्ध के कारण व्यवहारनय से इन्द्रियमय शरीर को ग्रहण कर...** अर्थात् उसमें रहता है। व्यवहार से इन्द्रियमय शरीर को... आहाहा! **'निजकरणैः पञ्चभिरपि' अपनी पाँचों इन्द्रियों द्वारा... 'करणैः'** अर्थात् इन्द्रिय। **'पञ्चापि विषयान्' रूपादि पाँचों ही विषयों को जानता है,...** आहाहा!

इन्द्रियज्ञानरूप परिणमन करके इन्द्रियों से रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श को जानता है,... आहाहा! इन पाँच इन्द्रियों द्वारा और पाँच विषयों से भी नहीं ज्ञात होता। दो बातें हैं। इन्द्रिया से नहीं ज्ञात होता और इन्द्रियों का विषय है, (उससे भी नहीं ज्ञात होता है)। आहाहा! कठिन बात लगे। भगवान और भगवान की वाणी को इन्द्रिय कहा। गजब किया है न! अब यह उसको सुनते हैं कि यह लो। इन्द्रिय का विषय है वह। भगवान आत्मा वह अणीन्द्रिय का विषय; पर है, वह इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! उस इन्द्रिय के विषय से भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। इन्द्रियों से

ज्ञात हो, ऐसा नहीं और इन्द्रियों के विषय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! गजब यह। भगवान की वाणी भी इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! भगवान भी इन्द्रिय का विषय है। उससे भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान को अनन्त शक्ति प्रगट....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी शक्ति उनके पास रही। शक्ति यहाँ है। यहाँ से निकालनी है या वहाँ से निकालनी है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ हो, वह पर से आती है? आहाहा! परद्रव्य रक्त— परद्रव्य में रक्त आया था। नहीं? मोक्ष अधिकार में। १३वीं गाथा शुरु की है। परद्रव्य में रक्त, वह संसार है। स्वद्रव्य में रक्त, वह मोक्ष का मार्ग है। बहुत संक्षिप्त। परद्रव्य की ओर के झुकाव का राग, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ**' आहाहा! यह तो आचार्य कहते हैं दिगम्बर आचार्य। एक ओर स्वयं कहे कि मैं तुझे सुनाता हूँ। सुन! कहकर यह कहा कि परद्रव्य से तुझे राग होगा, दुर्गति होगी। तेरी चैतन्यगति नहीं होगी। आहाहा! तब तुम और सुनाओ और फिर कहो कि परद्रव्य से दुर्गति होगी। यह तो सब उल्टा कहलाये। यह तो निमित्तमात्र यह अर्थ ही नहीं। तुझे सुनाता हूँ, यह भी विकल्प आया, वाणी वाणी के कारण हुई है, ऐसा कहते हैं। उस वाणी के भी कर्ता नहीं और विकल्प का कर्ता भी आत्मा नहीं। अब कैसे बैठे? आहाहा! और सिद्ध को स्थापित करता हूँ। नहीं आाय? तेरे ज्ञान में सिद्ध को स्थापित करता हूँ। मेरे ज्ञान में तो मैंने सिद्ध को स्थापित किया है। तेरे ज्ञान में स्थापित करता हूँ। परन्तु तुम सुनाते हो, तब स्थापित करता हूँ? तुमने सुनाया, तब उसके कारण स्थापित हुआ न यहाँ? ऐसा कहा कि तुम्हारे ज्ञान में सिद्ध को स्थापित करता हूँ, मेरे ज्ञान में स्थापित करता हूँ। तब वह तो वाणी से...

मुमुक्षु : जड़ का किया जा सकता है, तब उसमें स्थापित करते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसी शैली व्यवहार की है। उसका अर्थ समझे नहीं तो बड़ी गड़बड़ करे। क्या हो? तुम स्वयं परद्रव्य, तुम्हारी वाणी परद्रव्य और तुम मुझे

सुनाते हो और तुम ऐसा कहते हो कि तुम सिद्धपद को स्थापित करो। मैं स्थापित करता हूँ। यह कहते हैं। भाई! यह व्यवहार की शैली ऐसी होती है। तथापि वह व्यवहार अनुसरण करनेयोग्य नहीं। आहाहा! क्या हो? मार्ग बहुत बदल गया।

मुमुक्षु : कहे व्यवहार से फिर कहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो व्यवहार से, और आदरना नहीं वापस उसे। भाई! वस्तुस्थिति दूसरी क्या होगी? आहाहा!

(समयसार) आठवीं गाथा में भी ऐसा कहा कि आत्मा को, चाहे जैसा बुद्धिवाला हो या उत्कृष्ट शक्तिवाला हो, तो भी इतना तो उसे कहना पड़े। वहाँ तीन बोल लिये हैं। वरना ज्ञान, वह आत्मा इतना। बाद में आया है न (समयसार) दसवीं या ग्यारहवीं में। ऐसा कहा। दसवीं में नव का अर्थ स्व लिया है। परन्तु दसवीं में ज्ञान वह आत्मा। सर्व श्रुतज्ञान वह आत्मा। नौवीं में तो सीधा आत्मा लिया है। उसमें ज्ञान वह आत्मा भेद से दसवीं में (कहा)। आहाहा! इतना संक्षिप्त में संक्षिप्त तो कहना ही पड़े। आठवीं में ऐसा लिया है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। तीन बोल लिये। तो भी हम कहते हैं और तू यह तीन व्यवहार को आदर, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पद्मनन्दी में तो व्यवहार को पूज्य कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहार की बात है, शुभभाव। व्यवहार से व्यवहार पूज्य है। ऐसा तो न हो, तब तो भगवान भी पूज्य न रहे। व्यवहार से व्यवहार पूज्य है। निश्चय से तो इन्द्रिय के विषय, वे सब हेय हैं। आहाहा! कठिन बातें!

मुमुक्षु : अलग-अलग अपेक्षा है....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपेक्षा है। आहाहा!

एक ओर भगवान की वाणी और भगवान को इन्द्रिय कहकर हेय कहे। तथा आत्मा अतीन्द्रिय है, उसे उपादेय कहे। और एक ओर ऐसा कहे कि भगवान पूज्य है, भगवान की मूर्ति पूज्य है। व्यवहार है। शुभराग हो तब वह होती है, इतना बतलाने के लिये यह बात है। शुभराग आता है या नहीं? होता है। तब इस प्रकार की पूजादि का भाव होता है। आहाहा!

'निजकरणैः पञ्चभिरपि पञ्चापि विषयान' आहाहा! **पाँचों विषयों से भी नहीं जाना जाता,...** कहो। यह शब्द, रूप, गन्ध से ज्ञात नहीं होता। इन्द्रियों से तो ज्ञात नहीं, परन्तु इन्द्रियों के विषय जो शब्द, रूप, रस, गन्ध, उनसे भी ज्ञात नहीं। आहाहा! भगवान की वाणी भी कान का विषय है। इन्द्रिय का। आहाहा! लोगों को कठोर लगे। जहाँ हो वहाँ रख दे न। जैसे स्त्री विषय है, वैसे वाणी भी विषय है। ऐसा वहाँ रखते हैं। सब रखते हैं। आहाहा! अरे! भगवान! विषय है तू? ३१वीं गाथा में स्पष्ट कहा। परन्तु यहाँ यह कहते हैं। पाँच इन्द्रिय के विषयों द्वारा ज्ञात हो, ऐसा नहीं। और यह सुनने का आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? तथापि उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

पाँचों विषयों से भी... ऐसा वापस। पाँच इन्द्रियों से तो ज्ञात नहीं होता। इन्द्रियों से तो रूप, रस, गन्ध, शब्द ज्ञात होते हैं। परन्तु इन्द्रियों के विषयों से ज्ञात नहीं होता। आहाहा! और यह तो पहले कह गये न? दिव्यध्वनि से भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। महामुनियों के शास्त्र से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या हो अब इस बात को... लोगों को बाहर में व्यवहारवालों को रस पड़े। जो मार्ग ही नहीं। और जो मार्ग है, वह उसे गम्य नहीं होता कि नहीं... नहीं... नहीं... यह नहीं। यह कुछ करते... करते... करते... साधन करने से होगा या नहीं? ऐसी बात है।

पाँचों विषयों से सो... पाँच इन्द्रिय के विषय अर्थात् शब्द से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। रूप से ज्ञात हो—भगवान को ऐसे आँख से देखे, इसलिए आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! **'स परमात्मा' ऐसे लक्षण जिसके हैं,...** इन्द्रियों से ज्ञात नहीं होता और इन्द्रिय के विषय से ज्ञात नहीं होता, ऐसा जिसका लक्षण, वह परमात्मा है। वह आत्मा है, ऐसा। आहाहा! परमात्मप्रकाश है सही न? वहाँ **'परदव्वादो दुग्गइ'** कहा। उसका ऐसा अर्थ रखा है। **'सदव्वादो सुग्गइ'** वहाँ दो अर्थ रखे हैं। स्वद्रव्य के आश्रय से धर्म भी होता है और स्वद्रव्य के आश्रय से ... होता है। जैसे इसमें आया न? ॐकार में। **'ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः। कामदं मोक्षदं चैव'** बीच में शुभभाव आता है न? उसका फल बताया वहाँ। ॐकार **'कामदं'** काम के देनेवाले और मोक्ष के देनेवाले, ऐसे दो कहा है। निश्चय के साथ में थोड़ा शुभराग होता ही है न! उसे

'**कामदं**' कहकर बतलाया है। आहाहा! समझ में आया? कितनी अपेक्षायें और कितने पड़े?

उसमें ऐसा आया। '**तद्गुण लब्धये।**' प्रभु! आपको नमस्कार करता हूँ, वह आपके गुण की प्राप्ति के लिये। लो! नमस्कार तो शुभराग है। यह व्यवहार के कथन हैं। '**तद्गुण लब्धये।**' यह आत्मा के जो गुण हैं, उन पर मेरा जोर है। उनकी प्राप्ति के लिये विकल्प उठा है, इसलिए ऐसा बोला गया परन्तु वस्तु ऐसी है। समझ में आया? नहीं तो पूर्वापर विरोध हो जाये। जैनशासन (परस्पर) विरोधी होगा? वीतराग के वचन पूर्वापर विरोध हो? पूर्वापर विरोध रहित होते हैं। यह किस नय का वाक्य है, ऐसा न जाने तो विरोध हो जाये। आहाहा! यह बात ऐसी थी, वहाँ से उस ओर से। देखो! '**ज्ञातारं**' आवे न, क्या कहा यह?

मोक्षमार्गस्य नेतार भेतारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

प्रभु! तुम्हारे गुण के लिये मैं तुमको वन्दन करता हूँ, तुम्हारे गुण की मुझे प्राप्ति होओ। सीधा अर्थ तो ऐसा है।

मुमुक्षु : सीधा ही करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ३१ में नहीं कहा? शिष्य ने पूछा तब, प्रभु! केवली की स्तुति निश्चय से किसे कहते हैं? तीर्थंकर की स्तुति निश्चय से किसे कहते हैं? इसका जवाब ऐसा दिया कि तेरा आत्मा जो है, वह खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से भिन्न है, उसकी दृष्टि कर, यह केवली की स्तुति है। आहाहा! पूछा ऐसा कि, तीर्थंकर और केवली की सत्य स्तुति किसे कहते हैं? कि सत्य स्तुति उसे कहते हैं कि तू स्वयं केवली परमात्मा है। आहाहा! अल्पज्ञ खण्ड-खण्ड इन्द्रियों से और जड़ इन्द्रियों से और उनके विषयों से लक्ष्य छोड़ अर्थात् जीत, ऐसा। आहाहा! और यहाँ दृष्टि लगा। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं।**' ज्ञानस्वभाव से अल्पज्ञ और राग से भिन्न भगवान है, ऐसा जो निश्चय और निर्णय और ज्ञान हुआ, उसे केवली की स्तुति कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। कल रात्रि में पत्र आया ... क्या करते हैं? आहाहा! यह ललितपुर में कल आया है।

पण्डित ऐसा बोले कहते हैं कि इन लोगों के टुकड़े करो, खण्ड करके मार डालो। पाप नहीं, जाओ। ऐसा लिखा है। अरे! भगवान! प्रभु! यह नहीं होता, भाई! इतना अधिक... कहो, ऐसा आया है कल। बहुत पण्डितों ने...

मुमुक्षु : आप तो भगवान कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं। मूल सत्य बात थी नहीं न, इसलिए जरा लोगों को फेरफार लगता है।

यहाँ तो पाँच इन्द्रियों के विषयों से भी भगवान ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! **ऐसे लक्षण जिसके हैं, वही परमात्मा है।** जो शब्द और रूप से भी आत्मा पर का, हों! आत्मा ज्ञात नहीं होता। उसे यहाँ परमात्मा को आत्मा कहते हैं। वह तो अपने अतीन्द्रिय ज्ञान से, निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान से, निर्विकल्प शान्ति से, वीतराग परिणति से, अकषाय शान्ति से ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा है। आहाहा! उसका साधन? वही साधन है। आहाहा! कहा न? **अतीन्द्रिय सुख का साधन होने से...** वह साधन। ४४ में आ गया है। आहाहा! वह यहाँ कहेंगे।

पाँच इन्द्रियों के विषय-सुख के आस्वाद से विपरीत,... अर्थ किया। ४५ का भावार्थ। पाँचों ही इन्द्रियों के विषय-सुख। आहाहा! धूल में भी सुख नहीं वहाँ। पाँचों इन्द्रिय के झुकाव में दुःख है। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय सुख है। **पाँच इन्द्रियों के विषय-सुख के आस्वाद से विपरीत,...** आहाहा! **वीतराग-निर्विकल्प परमानन्द समरसीभावरूप, सुख के रस का आस्वादरूप...** आहाहा! लम्बी बात है। पाँचों इन्द्रिय के विषय के सुख के स्वादरहित और वीतरागी निर्विकल्प परमानन्द समरसीभावरूप। आहाहा! चौथे गुणस्थान में भी रागरहित निर्विकल्प परमानन्द समरसीभावरूप **सुख के रस का आस्वादरूप...** अतीन्द्रिय आनन्द के रस के आस्वादरूप **परमसमाधि करके जो जाना जाता है,...** आहाहा! ऐसी बात है।

पाँच इन्द्रिय के विषय के आस्वाद से विपरीत। पाँच इन्द्रिय के विषय का स्वाद तो दुःखरूप, जहर है। आहाहा! उससे उल्टा वीतराग निर्विकल्प परमानन्द समरसी भाव, समता... समता... समता... पुण्य-पाप के भाव से भिन्न ऐसे समतारसी भावरूप

सुख के रस का आस्वादरूप... आनन्द के रस का स्वाद। आहाहा! उसरूपी **परमसमाधि करके जो जाना जाता है,...** उसमें से कोई ऐसा निकाले कि वीतरागी परिणाम निर्विकल्प आठवें में होते हैं, सातवें में हो, वहाँ ज्ञात हो। यह तो उत्कृष्ट की बात है यहाँ। परन्तु चौथे में भी इतना वीतरागी निर्विकल्प सुख का स्वाद है। समझ में आया? आहाहा!

परमसमाधि करके जो जाना जाता है,... आहाहा! यह भगवान आत्मा... वहाँ तो शास्त्रज्ञान से ज्ञात नहीं होता, देव-गुरु से ज्ञात नहीं होता, इन्द्रिय के विषयों से ज्ञात नहीं होता, इन्द्रियों से ज्ञात नहीं होता। आहाहा! परन्तु अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादरूपी समाधि से ज्ञात होता है। आहाहा! फिर कितने ही यह लगाते हैं कि यह तो सातवें गुणस्थान में, आठवें में वीतरागभाव (प्रगट हो), उसमें वह ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। यह तो उत्कृष्ट की बात की है। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी निर्विकल्प सुखरूप, आनन्द के स्वादरूप वीतराग परिणति है वह। आहाहा!

वह ज्ञानगम्य है। **वही परमात्मा है, वह ज्ञानगम्य है,...** अन्तर के ज्ञानगम्य है। आहाहा! जब तुम ऐसा कहते हो तो वाणी हमको किसलिए सुनाते हो? (ऐसा वे) कहते हैं। आहाहा! ऐसा लेकर बैठे हैं। अब सर्वत्र उफान आया है। आहाहा! कहते हैं, मुनि को कि तुम किसलिए हमको सुनाते हो? तुम कहते हो कि तुम्हारा सुनने से भी ज्ञान नहीं होता। इन्द्रिय के विषय हैं, उनसे ज्ञान नहीं होता। वह ज्ञानगम्य वह शास्त्र का ज्ञान, उससे गम्य नहीं होता। आहाहा! वह अतीन्द्रिय ज्ञान की परिणति से गम्य है। बात करो शास्त्र से और इनकार करो कि उससे नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

होता है वह तो बतलाया। कथन में भी यही आता है। आहाहा! इसलिए तू ऐसा पकड़े कि तुम कथन करके हमको समझाना चाहते हो और फिर कहे, कथन से समझ में नहीं आता। ऐई! भाई! ऐसा नहीं लिया जाता। कथन से वस्तु को सिद्ध करते हैं। वह वस्तु सिद्ध है, वह किस प्रकार होती है। भले वाणी से कहा जाये और वाणी से इसे समझ में न आये, यह तो ऐसा है, वह ऐसा ही है। समझ में आया? इसलिए तुम बोलते हो, वह व्यवहार है और व्यवहार से हमको समझाते हो तो व्यवहार से समझ सकेगा सामनेवाला, ऐसा जानकर तुम समझाते हो। ऐसा नहीं लिया जाता। ऐसा है।

वही ज्ञानगम्य है, इन्द्रियों से अगम्य है,... लो! यह अनेकान्त किया। ज्ञानगम्य है और इन्द्रियों से अगम्य है। लो! इस प्रकार अनेकान्त किया। कथंचित् इन्द्रिय से गम्य और कथंचित् ज्ञानगम्य। यह तो एकान्त हो गया। सम्यक् एकान्त हुआ यह। **और उपादेयरूप अतीन्द्रिय सुख का साधन...** आहाहा! आदरनेयोग्य, प्रगट करनेयोग्य **अतीन्द्रिय सुख का साधन अपना स्वभावरूप...** है? इस आनन्द के साधनरूप **अपना स्वभावरूप वही परमात्मा...** स्वभावरूप **वही परमात्मा आराधनेयोग्य है।** अतीन्द्रिय आनन्द के साधनरूप भगवान आत्मा आराधनेयोग्य है। आहाहा! हुआ न? **उपादेयरूप अतीन्द्रिय सुख का साधन अपना स्वभावरूप वही परमात्मा...** स्वयं आत्मा **आराधनेयोग्य है।** आहाहा! जो परमात्मा तुम कहते हो, वह वाणी से ज्ञात हो, ऐसा नहीं और तुम बतलाते हो कि आत्मा को जानो। समझ में आया? वह आत्मा आराधनेयोग्य है। भले बीच में वाणी आदि सुनने का आवे परन्तु आराधनेयोग्य तो यह त्रिकाली आत्मा ही है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४६

अथ यस्य परमार्थेन बन्धसंसारौ न भवतस्तमात्मानं व्यवहारं मुक्त्वा जानीहि इति कथयति –

४६) जसु परमत्थे बंधु णवि जोइय ण वि संसारु।
सो परमप्पउ जाणि तुहुँ मणि मिल्लिवि ववहारु।।४६।।

यस्य परमार्थेन बन्धो नैव योगिन् नापि संसारः।
तं परमात्मानं जानीहि त्वं मनसि मुक्त्वा व्यवहारम्।।४६।।

जसु परमत्थें बंधु णवि जोइय ण वि संसारु यस्य परमार्थेन बन्धो नैव हे योगिन् नापि संसारः। तद्यथा–यस्य चिदानन्दैकस्वभावशुद्धात्मनस्तद्विलक्षणो द्रव्यक्षेत्रकालभवभावरूपः परमागमप्रसिद्धः पञ्चप्रकारः संसारो नास्ति, इत्थंभूतसंसारस्य कारणभूतप्रकृतिस्थित्यनु–भागप्रदेशभेदभिन्नकेवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपमोक्षपदार्थाद्विलक्षणो बन्धोऽपि नास्ति, सो परमप्पउ जाणि तुहुं मणि मिल्लिवि ववहारु तमेवेत्थंभूतलक्षणं परमात्मानं मनसि व्यवहारं मुक्त्वा जानीहि, वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावयेत्यर्थः। अत्र य एव शुद्धात्मानुभूति–विलक्षणेन संसारेण बन्धनेन च रहितः स एवानाकुलत्वलक्षणसर्वप्रकारोपादेयभूतमोक्ष–सुखसाधकत्वादुपादेय इति तात्पर्यार्थः।।४६।।

आगे जिसके निश्चयकर बंध नहीं हैं और संसार भी नहीं है, उस आत्मा को सब लौकिकव्यवहार छोड़कर अच्छी तरह पहचानो, ऐसा कहते हैं –

जिसके नहीं है बन्ध ना संसार है परमार्थ से।
तू जान वह परमातमा मन मुक्त कर व्यवहार से।।४६।।

अन्वयार्थ :– [हे योगिन्] हे योगी, [यस्य] जिस चिदानन्द शुद्धात्मा के [परमार्थेन] निश्चय करके [संसारः] निज स्वभाव से भिन्न द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पाँच प्रकार परिवर्तन (भ्रमण) स्वरूप संसार [नैव] नहीं है, [बन्धोनापि] और संसार के कारण जो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप चार प्रकार का बंध भी नहीं है। जो बंध केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टय को प्रगटतारूप मोक्ष–पदार्थ से जुदा है, [तं परमात्मनं] उस परमात्मा को [त्वं] तू [मनसि व्यवहारम् मुक्त्वा] मन में से सब लौकिक–व्यवहार को छोड़कर तथा वीतरागसमाधि में ठहरकर [जानीहि] जान, अर्थात् चिन्तवन कर।

भावार्थ :– शुद्धात्मा की अनुभूति से भिन्न जो संसार और संसार का कारण बंध इन दोनों से रहित और आकुलता से रहित ऐसे लक्षणवाला मोक्ष का मूलकारण जो शुद्धात्मा है, वही सर्वथा आराधने योग्य है।।४६।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल ११, बुधवार
दिनांक-०७-०७-१९७६, गाथा-४६, प्रवचन-२८

यह परमात्मप्रकाश, ४६ गाथा है न। आत्मा, उसका जो स्वभाव त्रिकाल है, उसमें बन्ध नहीं। निज स्वभाव चैतन्य का आनन्द और ज्ञान, ऐसा जो उसका परम स्वभावभाव, उसमें बन्ध नहीं। **संसार भी नहीं है,...** आहाहा! संसार—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव, यह पाँच; निज स्वभाव चैतन्यद्रव्य स्वभाव जो सम्यग्दर्शन का विषय / ध्येय जो त्रिकाली वस्तु, उसमें संसार नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें तो मोक्ष भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मोक्षस्वभाव ही है। पर्याय में मोक्ष नहीं, वह अलग बात है। वह मोक्षस्वरूप ही है। आहाहा! आत्मा शक्ति से, स्वभाव से मोक्षस्वरूप ही है। पर्याय का मोक्ष, वह दूसरी बात है। यह जो द्रव्यस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, जिसे परमपारिणामिकस्वभाव कहते हैं, वह तो शक्तिरूप मोक्ष है ही। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई!

उस आत्मा को सब लौकिकव्यवहार छोड़कर... आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव भी वह लौकिक व्यवहार है। वह आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म का व्यवहार कौन सा?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म का व्यवहार निर्मल परिणति होना, वह (है)। त्रिकाल ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्य की दृष्टि करके, उसका आश्रय लेकर निर्विकारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी परिणति (प्रगट हो), वह उसका व्यवहार है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? प्रवचनसार में जिसे आत्मव्यवहार कहा है। उसे परमार्थवचनिका में अध्यात्म का व्यवहार कहा है। आहाहा! चिद्घन आनन्दकन्द प्रभु की दृष्टि करके,

उसका आश्रय लेकर जो वीतरागी परिणति—पर्याय उत्पन्न हो, वह धर्म और वह मोक्ष का मार्ग। ऐसी बात है, भाई! सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, अपूर्व है।

कहते हैं कि **सब लौकिकव्यवहार छोड़कर अच्छी तरह पहचानो,...** यह पाठ में कहेंगे अब। ४६।

४६) जसु परमत्थे बंधु णवि जोइय ण वि संसारु।
सो परमप्पउ जाणि तुहुँ मणि मिल्लिवि ववहारु।।४६।।

अन्वयार्थ :- हे योगी,... अर्थात् धर्मी। योगी अर्थात् वे जो अन्यमति के बाबा, उनकी बात नहीं है। आत्मा निज स्वभाव से परिपूर्ण है, उसमें जिसका जुड़ान है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान द्वारा जुड़ान है, उसे यहाँ योगी कहते हैं। समझ में आया? **हे योगी,...** योगीन्द्रदेव भावलिंगी सन्त-मुनि हैं। वे शिष्य को कहते हैं। हे शिष्य! **जिस चिदानन्द शुद्धात्मा के निश्चय करके...** चिदानन्द प्रभु ज्ञानानन्दस्वभाव शुद्धात्मा, पवित्र आत्मा, अनादि-अनन्त वह तो चिदानन्द शुद्ध आत्मा पवित्र है। आहाहा! उसे **निश्चय करके निज स्वभाव से भिन्न...** अन्तर ज्ञान और आनन्द जिसका नित्य—शाश्वत् स्वभाव, ऐसे स्वभाव से पृथक् **द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पाँच प्रकार परिवर्तनस्वरूप संसार...** उसके—परमाणुओं के द्रव्य रजकणों का संसार भटकने का, वह नहीं है। क्षेत्र में भिन्न-भिन्न क्षेत्र में अवतरित होना, वह नहीं है। काल के प्रत्येक समय में परिभ्रमण करना, वह नहीं है। भव है, वह उसमें नहीं है और उसका भाव—उदयभाव है, वह भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

पाँच प्रकार परिवर्तनस्वरूप संसार नहीं है,... आहाहा! उसके स्वरूप में संसार हो तो संसार से तो कभी छूटे नहीं। अर्थात् संसार वास्तव में तो उदयभाव, वह संसार है। चाहे तो राग का, गति का उदय, वह संसार—भावसंसार है। वह भावसंसार स्वभाव में नहीं है। आहाहा! चिद्घन, आनन्दकन्द प्रभु, सम्यग्दर्शन का विषय जो आत्मा, उसमें संसार का अभाव है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! वर्तमान में तो ऐसी गड़बड़ खड़ी हुई है। उसमें यह बात समझना बहुत कठिन जगत को। आहाहा! यह तो अभी सम्यग्दर्शन की बात चलती है। सम्यग्दर्शन में ऐसा आत्मा उसे ध्येय में और आश्रय में हो कि जिसमें संसार और बन्धन नहीं। आहाहा! समझ में आया? है?

संसार के कारण... संसार तो नहीं, द्रव्य अर्थात् परमाणु, क्षेत्र में, काल में और भव में, भव ही जिसे नहीं। आहाहा! और भव का भाव उदय, राग-द्वेष आदि। वह चिद्घन प्रभु, शुद्धात्मा पवित्र आत्मा में वह (पंच परिवर्तन / परावर्तनरूप संसार नहीं)। समझ में आया? **और संसार के कारण जो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप...** चार प्रकार का बन्ध जड़ का लिया है। क्योंकि संसार में वह भावबन्ध तो आ गया। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव। भाव उदयभाव, वह भावबन्ध है। वह उसमें नहीं और यह जड़बन्ध उसमें नहीं। क्या कहा?

अरे! प्रभु! यह चीज़ जो तू है चिदानन्द प्रभु, सहजात्मस्वरूप ज्ञानानन्दस्वभाव, ऐसी जो चीज़, उसमें उदयभाव के गति, रागादि जो बोल है—उदयभाव के २१ बोल है न? उसमें नहीं—वस्तु में नहीं। आहाहा! जब उसे उसमें उदयभाव नहीं, ऐसा कहा। तो अब यहाँ द्रव्यबन्ध लिया। वह भावबन्ध उसमें नहीं। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! ज्ञानानन्द नित्यानन्द प्रभु, ज्ञान के रसस्वरूप प्रभु आत्मा, ध्रुव नित्यानन्द सहजात्मस्वरूप शुद्धात्मा में यह पाँच प्रकार का संसार नहीं है।

मुमुक्षु : जीव तो अनादि काल से कर्म से बँधा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त से बात है। यह तो द्रव्य से बात चलती है। पर्याय में राग से बन्धन है, भावबन्धन है और प्रकृति का बन्धन निमित्त से है। वह पर्याय में अवस्था के साथ। वस्तु के स्वभाव के साथ भावबन्ध और द्रव्यबन्ध नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! लोगों को धर्म करना, परन्तु धर्म कैसे होता है, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

जो अपना आनन्द और ज्ञानस्वभाव से, सत्त्व से भरपूर पदार्थ है, सहजात्मस्वरूप, उसमें संसार के पाँच प्रकार—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव तो ठीक। परन्तु जो भाव है, वह भी उसमें नहीं। उदयभाव आत्मा में नहीं। अरे.. अरे...! ऐसी बातें!

मुमुक्षु : हो गये मुक्तस्वरूप?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुक्तस्वरूप है अन्दर। पर्याय से नहीं। द्रव्यस्वभाव मुक्त है तो

पर्याय में मुक्त होता है। यदि द्रव्यस्वभाव मुक्त न हो तो पर्याय में मुक्त कहाँ से होगा? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से? वस्तु में नहीं। वस्तु जो चिदानन्द प्रभु, नित्यानन्द ध्रुव प्रभु, उसमें संसार के भाव का अभाव है। परमपारिणामिकस्वभाव में वह भाव कैसा? आहाहा! परमभाव में अपरमभाव, क्षायिकभाव आदि नहीं तो फिर उदयभाव कहाँ से आवे उसमें? सूक्ष्म बातें, भाई! यह दिगम्बर योगीन्द्रदेव मुनि का बनाया हुआ यह परमात्मप्रकाश है। इसमें है न इसमें देखो न! आहाहा!

संसार के कारण जो प्रकृति, स्थिति,... प्रकृति की अवधि, प्रकृति का रस **अनुभाग, प्रदेश...** संख्या। यह **चार प्रकार का बन्ध भी नहीं है।** आहाहा! ऐसी चीज़ को तू ध्यान में ले, ऐसा कहते हैं। धर्म करना हो और सम्यग्दर्शन-ज्ञान करना हो... आहाहा! तो ऐसी चीज़ को तू ध्यान में ध्येय में ले। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का है। आहाहा! संसार नहीं और संसार का कारण बन्ध प्रकृति आदि उसमें नहीं। आहाहा! **जो बन्ध केवलज्ञानादि अनन्तचतुष्टय को प्रगटतारूप मोक्ष-पदार्थ से जुदा है,...** वह बन्ध कैसा है? कि केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय की प्रगट दशा—मोक्ष की पर्याय, उससे वह बन्ध पृथक् है बन्ध। मोक्ष की पर्याय से पृथक् है और मोक्षस्वभाव से पृथक् है। क्या कहा? मोक्षस्वभाव जो त्रिकाल है, उससे पृथक् है। और मोक्षपर्याय है, उससे बन्धभाव पृथक् है। आहाहा! नवरंगभाई! ऐसा सूक्ष्म है यह।

बन्ध केवलज्ञानादि अनन्तचतुष्टय को प्रगटतारूप मोक्ष-पदार्थ से जुदा-बन्धभाव है,... आहाहा! मूल तो आत्मा का स्वभाव ही द्रव्यस्वभाव—पदार्थस्वभाव मोक्षस्वभाव है। मोक्षरूप ही उसका स्वभाव है। उसकी शक्ति ही मोक्षरूप है। उसमें संसार के पाँच भाव नहीं और उसका कारण जो प्रकृति का बन्ध, वह भी नहीं। कि जो बन्ध, मोक्षपदार्थ से भिन्न चीज़ है। आहाहा! क्या कहा यह? कि त्रिकाली आनन्दकन्द में बन्ध नहीं और वह बन्ध, मोक्ष की पर्याय जो प्रगट है, उससे पृथक् बन्ध, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें! वे तो कहें कि भाई! यह दया पालन करो, व्रत पालन करो और

अपवास करो, लो! भक्ति करो, यात्रा करो, धर्म हो जाये। इतना सरल था। कहते हैं कि यह सब बातें धर्म नहीं है। यह तो सब पुण्य की क्रियायें हैं। आहाहा! जो पुण्यभाव आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश। आहाहा! परमात्मस्वरूप ही आत्मा का है। शक्तिरूप, स्वभावरूप परमात्मा ही है। जो परमात्मा है, वह पर्याय में परमात्मा होता है। यदि परमात्मस्वरूप ही न हो तो पर्याय में परमात्मस्वरूप आयेगा कहाँ से? कहीं बाहर से आवे ऐसा है? आहाहा!

'तं परमात्मानं' ऐसे परमात्मा को। परमात्मा अर्थात् तू स्वयं, हों! आहाहा! परमात्मा परमस्वरूप ध्रुव नित्यानन्द, जिसमें संसार और संसार के कारण बन्ध नहीं, ऐसे परमात्मा को तू **'मनसि व्यवहारम् मुक्त्वा' मन में से सब लौकिक-व्यवहार को छोड़कर...** आहाहा! विकल्प की क्रिया सब विकल्प को छोड़कर। आहाहा! **मन में से सब लौकिक-व्यवहार को छोड़कर तथा वीतरागसमाधि में ठहरकर...** आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह वीतराग समाधि है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग, यह तीन समाधि-शान्ति है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा कि जो संसार से रहित है, संसार के कारण बन्ध से रहित है, जो बन्ध-मोक्ष की पर्याय से भी भिन्न है, स्वभाव से भिन्न है, ऐसे परमात्मा को तू लौकिक विकल्प के व्यवहार को छोड़कर, व्यवहार का—राग का जो विकल्पजाल है, वह आकुलतावाला है, उसे छोड़कर **वीतरागसमाधि में ठहरकर...** आहाहा! इतना रागरहित शान्ति में स्थिर होकर। आहाहा! त्रिकाली भगवान के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति प्रगट हुई है, उसमें **ठहरकर उसे जान,...** आहाहा!

देखो! यह दिगम्बर मुनियों का कथन! आहाहा! समझ में आया? उन्हें दुनिया की पड़ी नहीं कि दुनिया कैसे मानेगी या नहीं? मार्ग यह है। आहाहा! नागा बादशाह से आघा हैं वे। दुनिया की कुछ पड़ी नहीं, सभा की, समाज की। कि समाज को ठीक पड़ेगा या नहीं? समाज स्वीकार करेगा या नहीं? दुनिया दुनिया की जाने। मार्ग यह है। समझ में आया? आहाहा! योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त, जंगल में रहनेवाले थे। मुनि तो जंगल में रहते थे। वे यहाँ कहते हैं कि हे शिष्य! तुझे यदि आत्मा को जानना हो तो परमात्मस्वरूपी भगवान है, उसमें संसार और संसार के कारण का अभाव है। उसे तू

विकल्प के जाल को, व्यवहार के जाल को छोड़कर... आहाहा! व्यवहार में जागता है, वह निश्चय में सोता है। आहाहा! क्या कहा? यह आता है न श्लोक? सोता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प है, उसमें जो जागता है, वह निश्चय में सोता है। निश्चय का उसे भान नहीं। और निश्चय में जो जागता है, वह व्यवहार में सोता है। उसने व्यवहार छोड़ दिया है। आहाहा! गजब मार्ग, भाई! ऐसा है।

मुमुक्षु : .... झगड़े क्यों होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जिसे न जँचे, वह क्या करे बेचारे? ऐसा मार्ग एकदम न बैठे, इसलिए उसे लगता है। आहाहा! वीतरागमार्ग ऐसा है। वह भी दिगम्बर धर्म एक ही। आहाहा! इसके अतिरिक्त कहीं यह बात है ही नहीं। आहाहा! जगत को इस मार्ग को झेलना कठिन है।

मुमुक्षु : दूसरा रास्ता निकालो कि जो जगत झेल सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही रास्ता है। दूसरा कहाँ से निकालें? बनियापना है यहाँ? वे कहते थे, हिम्मतभाई न! मुम्बई में है न? कैसे कहलायें वे?

मुमुक्षु : पूनमचन्द घांसीलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूनमचन्द घांसीलाल। पूनमचन्द घांसीलाल है न? प्रतापगढ़ के हैं न? मन्दिर है न, मन्दिर? कालबादेवी। देखा है न, वहाँ गये थे। वह कुछ एक बार कहते थे हिम्मतभाई को कि कानजीस्वामी थोड़ा ढीला रखे, हम थोड़ा ढीला रखें और इकट्ठे हो जायें। यह कहाँ हमारा मार्ग है? यह तो आत्मा का मार्ग है। यह तो त्रिकाली अनादि सनातन सत्य मार्ग है। उसमें ढीला क्या रखना? कि व्यवहार से होता है, लाभ होता है—ऐसा कहना? आहाहा!

यह तो यहाँ कहते हैं, देखो न! '**मनसि व्यवहारम् मुक्त्वा**' आहाहा! मन का जो विकल्प है दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि वह विकल्प है, उसे छोड़कर... आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। एक गाथा में तो कितना कहा है, देखो न! ओहोहो! **मन में से सब लौकिकव्यवहार को छोड़कर...** आहाहा! **वीतरागसमाधि में ठहरकर...** जब विकल्प छूटा, तब स्वरूप में निर्विकल्प स्थिरता हुई, वह समाधि। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-

शान्ति हुई, वह समाधि। वे बाबा लगावें वह यह समाधि नहीं। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित वीतरागी परिणति, वह समाधि। आहाहा! अरे! अनन्त काल हुआ... अनन्त काल हुआ... चौरासी के अवतार कर-करके मर गया है। हैरान... हैरान है।

मुमुक्षु : यह एक भव याद करे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! एक भव में भी दु:खी कितना है! राग और द्वेष, संकल्प-विकल्प, वे सब दु:खदायक हैं। अशुभभाव तो दु:खदायक है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध, मान, माया आदि भाव, वे तो दु:खरूप हैं। परन्तु शुभभाव दु:खरूप है। आहाहा! दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा का विकल्प उठता है, वह शुभ है, वह दु:खरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय से दु:ख है परन्तु व्यवहार से तो सुख है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से क्या था? धूल है? लकड़ी को घोड़ा कहना, वह व्यवहार से कहलाता है, वह घोड़ा है?

मुमुक्षु : आपने क्या कहा, कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लड़का लकड़ी लेकर खड़ा हो न? उसका पिता आवे। (उसे कहे), तेरा घोड़ा दूर रख। तो वह घोड़ा है? लकड़ी लेकर ऐसे खड़ा हो। घर में जाना हो तो कहे, छोड़ दे। ऐसे उस लकड़ी के घोड़े को घोड़ा कहना, उसी प्रकार व्यवहार को धर्म कहना, ऐसा है वह। आहाहा!

मुमुक्षु : इतना फर्क है!

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना फर्क है। क्या हो?

प्रभु! अनन्त काल से भटकता है। 'अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान, सेये नहीं गुरु सन्त को, छोड़ा नहीं अभिमान।' आहाहा! यह व्यवहार से होगा, व्यवहार करते-करते होगा। उसे यहाँ भगवान इनकार करते हैं। उसे छोड़ने से होगा। आहाहा!

है? '**मनसि व्यवहारम् मुक्त्वा**' यह सब लौकिक व्यवहार कहलाता है। आहा!

धन्धा की तो बात यहाँ कहाँ थी ? **चिन्तवन कर।** परमात्मा को जान। आहाहा! ऐसा जो भगवान अन्दर (है), निर्विकल्प शान्ति से उसे जान। आहाहा! निर्विकल्प शान्ति से वह ज्ञात हो ऐसा है। विकल्प से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। क्योंकि विकल्प उसमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? क्या हो ? मार्ग तो है वह रहेगा। कोई तोड़-मरोड़कर दूसरा करे तो नहीं होगा। अनादि का यह एक मार्ग है। 'एक होय तीन काल में, परमारथ का पंथ।'

वीतरागसमाधि में ठहरकर... सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ये तीनों पर्याय वीतरागी पर्याय है। इस वीतरागी पर्याय द्वारा आत्मा को जान। आहाहा! समझ में आया ? देखो न! यह तो कथन कब के हैं ? यह तो योगीन्द्रदेव कितने वर्ष पहले हो गये, उनका है। टीका तो भाई ने—दौलतराम ने की है न ? आहाहा! पहले के तो पण्डित भी—बनारसीदास, टोडरमल, दौलतराम, भागचन्दजी बहुत हो गये हैं। धर्म के स्तम्भ। आहाहा! लोगों को बाह्य से देखते हैं तो यह वस्तु बाह्य से नहीं है। आहाहा! अन्तर में आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का अनाकुल शान्तरस पड़ा हुआ प्रभु, उसे अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति द्वारा ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! दूसरा कोई उसका उपाय है नहीं।

भावार्थ :- शुद्धात्मा की अनुभूति से भिन्न... यहाँ से लिया, देखा! आत्मा जो शुद्ध चैतन्य है, उसकी अनुभूति से यह वस्तु भिन्न है। उसमें आया था न, अनुभूति से भिन्न ? ५१। आहाहा! समयसार में २९ बोल आये थे। आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान का अनुभव, आनन्द की अनुभव की दशा, उससे यह व्यवहार आदि भाव सब भिन्न-पृथक् हैं। आहाहा! शुद्धात्मा से भिन्न नहीं कहा। देखा! आहाहा! है न ? '**तमेवेत्थंभूतलक्षणं परमात्मानं मनसि व्यवहारं मुक्त्वा जानीहि, वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावयेत्यर्थः**' बाद में देखो। '**शुद्धात्मानुभूति-विलक्षणेन संसारेण बन्धनेन च रहितः**' आहाहा! क्या कहा यह ? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप का अनुभव, उसके सन्मुख होकर रागरहित वीतरागी पर्याय से उसका अनुभव करना, उस अनुभूति से यह संसार और बन्धन भिन्न है। आहाहा! उसमें व्यवहार के विकल्प भी नहीं और इनका कारण बन्धन, वह भी उसमें नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

शुद्धात्मा की अनुभूति... शुद्ध पवित्र आनन्द का नाथ, पूर्ण स्वरूप के सन्मुख में शान्ति और वीतरागी दशा द्वारा अनुभव में आया, उस अनुभूति से संसार के पाँच बोल और चार बन्धन, वे अनुभूति से भिन्न हैं। आहाहा! वस्तु में नहीं, ऐसा पहले कहा। वह संसार और बन्धन शुद्धात्मा में नहीं, ऐसा पहले कहा। पहले तो ऐसा कहा। फिर गुलाँट खाता है। आहाहा! क्या कहा यह? पहला तो नित्यानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यघन जो ध्रुव, परमपारिणामिकस्वभावभाव में, संसार और बन्धन का अभाव है। बाद में कहा कि जो वस्तु त्रिकाली है, उसकी अनुभूति से वे भिन्न हैं। स्वभाव से भिन्न हैं परन्तु उसकी अनुभूति से (भी भिन्न है)। आहाहा! अरे.. अरे! ऐसा कठिन काम। व्यापारी को निवृत्ति नहीं मिलती। पूरे दिन पाप के धन्धे। यह कमाना, खाना और पीना और उसमें पाँच-पचास लाख पैसे (रुपये) हो जायें, लड़के अच्छे (पके हों तो) मानो हम बढ़ गये। धूल में भी नहीं बढ़े, सुन न! बढ़े पाप में। आहाहा!

मुमुक्षु : .... स्वभाव से तो भिन्न ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले स्वभाव से भिन्न कहा, परन्तु वह भिन्न किसने अनुभव किया? अनुभूति से उसे भिन्न जाना। यह भिन्न है, वह जाना किसने? वस्तु जो है चिदानन्द भगवान आत्मा, उसमें संसार और बन्धन का अभाव है। परन्तु उस बन्धन का और संसार का अभाव जाना किसने? वह अन्तर्मुख होकर अनुभूति की, उसने जाना (कि) वह अनुभूति से भिन्न है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी तो देखो! रामबाण है। जगत को पचना कठिन पड़े। क्या हो? मार्ग तो यह है। तुझे जँचे, न जँचे, तू जान। आहाहा!

न्याय निकाला इन्होंने, कि वस्तु है उसमें संसार और बन्धन नहीं। परन्तु नहीं, ऐसा किसने जाना? कि जिसने आत्मा की अनुभूति की, उसने जाना कि इस अनुभूति से भिन्न है तो अन्दर में भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें, शुद्धात्मा में संसार और संसार का कारण बन्ध नहीं है। यह तो धारणा हुई मस्तिष्क में। समझ में आया? यह तो एक ज्ञान में धारणा आयी। परन्तु वस्तु नहीं आयी। समझ में आया? इसलिए यह कहा। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और शान्ति

द्वारा जो आत्मा की अनुभूति की, उसे ज्ञात हुआ कि उसमें नहीं, अनुभूति से भिन्न नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत सरस गाथा! आहाहा! यह शैली तो देखो! एक-एक गाथा में! श्वेताम्बर के ३२ (अथवा) ४५ (सूत्र) पढ़ जाये तो कहीं हाथ न आवे, यह तत्त्व क्या है। यह तो ऐसी बात है, बापू! आहाहा! सब व्यवहार की बातें सब बाहर की बातें। आहाहा! यह तो एक गाथा (बस है)।

राग का सम्बन्ध हो तो पर्याय के साथ सम्बन्ध है और उस राग के साथ प्रकृति-जड़ का निमित्त-निमित्तपना है। यह राग का सम्बन्ध और यह, वह सब द्रव्यस्वभाव में नहीं। आहाहा! वे संसार के पाँच प्रकार, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव, इस भव का जिसमें अभाव है। आहाहा! संसार का अभाव कहना है न? भगवान आत्मा चिदानन्द नित्यानन्द प्रभु में भव का अभाव है और भव के कारणरूप प्रकृति का अभाव है। आहाहा! परन्तु किसे? रतिभाई! आहाहा! जिसने उसे अनुभव किया उसको।

मुमुक्षु : यह .... कठिन पड़े। कठिन लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु तो ऐसी है। मार्ग तो यह है। जिसने यह मार्ग लिया, उसे भिन्न है। आहाहा! अरे! इस बात को सुनना कठिन पड़े। ऐसा मार्ग वीतराग का है। 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री जिनराज।' धर्मसभा में त्रिलोकनाथ ने, तीर्थंकरदेव ने ऐसा कहा। उसे सन्त आढतिया होकर जगत के समस्त प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! न जँचे तो क्या हो?

मुमुक्षु : न जँचनेवाले जीव....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए, यह कहा न अनुभव से प्रमाण करना। समयसार पाँचवीं गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि '**एयत्तविहत्तं**' स्वभाव की एकता और राग से विभक्त, उसे मैं तुझे कहूँगा। अनुभव से प्रमाण करना। सुनकर धारणा से रहना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**त्तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**' मेरे वैभव से मैं यह बात कहूँगा। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त, संवत् ४९ (में) भगवान के पास गये थे। सीमन्धर प्रभु (विराजते हैं)। आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र (बनाये)। आहाहा! मैंने तो भगवान के निकट सुना हुआ और अनुभव किया हुआ, ऐसे

स्वभाव से एकत्व और विभाव से पृथक्त्व, ऐसे मेरे निज वैभव से बात करूँगा। आहाहा!

'दाएहं' मैं दिखाऊँगा, ऐसा कहा, लो! महाराज! तुम दिखाओगे यह तो वाणी से दिखाओगे। वाणी तो तुम्हारी नहीं। अरे! ऐसे तर्क नहीं होते, भगवान! मैं दिखाऊँगा, ऐसा कहा है न? मेरे वैभव से दिखाऊँगा। दिखाऊँगा अर्थात्? वाणी द्वारा स्थिति द्वारा। बापू! यह तो कथन की शैली ऐसी आवे। उसे तू यदि तर्क करे कि ऐसा कैसे? (तू) सुनने के योग्य नहीं है। आहाहा! **'दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज पमाणं...'** यदि यह दिखाऊँ। आहाहा! तू प्रमाण करना। सुनकर रखना नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! गिरधरभाई! ऐसी बातें हैं, भगवान! क्या हो? अरे! वीतराग का विरह पड़ा, केवलियों का केवलज्ञान (यहाँ) रहा नहीं, अवधि-मनःपर्यय (ज्ञानी) कोई रहे नहीं। आहाहा! मूल मार्ग में विरोध हुआ। ओहोहो!

'जदि दाएज्ज' दो बार लिया। मैं दिखाता हूँ और दिखाऊँ तो दिखाऊँगा। तू प्रमाण करना। **'एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो'** दिखाऊँगा। परन्तु यदि दिखाऊँ। आ गया यदि दिखाने का... आहाहा! प्रमाण करना। यह प्रमाण अर्थात्? अनुभव से प्रमाण करना? सुनकर धार रखना नहीं। आहाहा! देखो तो वाणी कहीं है? आहाहा! सोते हुए को जगा देना है। अरे! भगवान! अब राग में सोना नहीं पोसायेगा, भाई! आहाहा! कैसी भाषा की!

पहले कहा, शुद्धात्मा में संसार और बन्धन नहीं है। फिर कहे, शुद्धात्मा की अनुभूतिवाले को नहीं है। समझ में आया? गजब बात है! शास्त्र तो यह कहलाते हैं। आहाहा! जिसमें सत्य खड़ा हो। आहाहा! जगत का जँचे, न जँचे परन्तु सत्य तो यह है। समझ में आया? आहाहा! और इसलिए तो इन्होंने कहा कि मन के विकल्प को छोड़कर। उसमें से ही आया। अनुभूति से भिन्न। आहाहा! पर की ओर के विकल्पों की जाल को छोड़कर, तब उस समय वीतरागी समाधि से, ऐसा कहा था न? उसे जान। उसे अनुभूति से जाना कि यह नहीं। आहाहा!

शुद्धात्मा की अनुभूति से भिन्न जो संसार और संसार का कारण बन्ध इन दोनों

से रहित और आकुलता से रहित... आहाहा! व्यवहार के विकल्प तो सब आकुलता है, ऐसा कहते हैं। यह व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान और दया का भाव, वह सब राग है। राग है, वह आकुलता है। आहाहा! भारी कठिन पड़े। वे कहे कि व्यवहार करते-करते होता है। अरे! भगवान! व्यवहार तो आकुलता है, (ऐसा) यहाँ कहते हैं। आहाहा! भगवान! तू इतना और ऐसा नहीं। तू ऐसा नहीं कि आकुलता द्वारा ज्ञात हो। ऐसा तू नहीं। आहाहा! समझ में आया? तू तो निराकुल तत्त्व आनन्दस्वरूप, उस निराकुलता की परिणति द्वारा ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! कितना भरा है! एक श्लोक और एक गाथा... आहाहा! जगत को कान में पड़ना मुश्किल पड़े। और अन्दर में हाँ करना कि... मैं ऐसा!

दोनों से रहित और आकुलता से रहित ऐसे लक्षणवाला मोक्ष का मूल कारण जो शुद्धात्मा है,... देखो! शुद्ध मूल आत्मा लिया। **वही सर्वथा आराधनेयोग्य है।** वह निर्मल वीतराग परिणति द्वारा आराधनेयोग्य है। आहाहा! यह हाँ तो कर, प्रभु! हाँ करेगा तो हालत होगी। ना करेगा तो नरक में जायेगा। आहाहा! निगोद में जायेगा। निगोद... मिथ्यात्व का फल संसार—निगोद ही कहते हैं। आहाहा! दूसरी बीच की गति तो साधारण है। मिथ्यात्व की वास्तविक गति निगोद है और समकित की वास्तविक गति मोक्ष है। आहाहा! बीच में तो यह शुभाशुभभाव का फल (भोगता है)। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया। यह मिथ्यात्व का फल क्या कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : निगोद।

मुमुक्षु : सम्यक्त्व का फल?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यक्त्व का फल मुक्ति-मोक्ष। आहाहा!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा नहीं? एक वस्त्र का धागा रखकर मुनि हूँ, ऐसा मानेगा, मनायेगा तो निगोद में जायेगा। याद रखना। आहाहा! यह अतिश्योक्ति से कहा है? वस्तु का स्वरूप है। वस्त्र रखकर मुनिपना मानना, मनवाना और मानते हुए को भला जानना, यह तीनों निगोद के पंथ में पड़े हैं। यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। सूत्रपाहुड़ (में है)। आहाहा! इसमें नौ तत्त्व की भूल है। ऐसी बात है, भाई!

तू निर्विकल्प आनन्द का नाथ है न, प्रभु! आहाहा! वह तेरी जाति की परिणति

हो, उससे तू ज्ञात हो, ऐसा है। तुझसे कुजाति जो रागादि, उनसे तू ज्ञात हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! अरे! दुनिया, दुनिया की जाने। मार्ग तो मार्ग है, वह है। पूरी दुनिया इनकार करे तो भी यह हाँ है, वह बदले ऐसी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब काम किया है न! ४६ (गाथा)। चेतनजी! ऐसी बात है। आत्मा भगवान है, भाई! यह भगवान को देखने के लिये निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति चाहिए। आहाहा! उसके सन्मुख होना है, वहाँ तो उसकी जाति की दशा चाहिए। आहाहा! आठ वर्ष की बालिका सम्यक्त्व प्राप्त करे—सम्यग्दर्शन। आठ वर्ष की कन्या अन्दर आत्मा है न! उसे निर्विकल्प दृष्टि से प्राप्त करती है। आहाहा!

मुमुक्षु : आठ वर्ष की कन्या पहली कक्षा की पुस्तक भी पढ़ नहीं सकती।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तक-बुस्तक का यहाँ क्या काम है? आत्मा पढ़ा, वह सब पढ़ गया। 'एगं जाणई सव्व जाणंई।' जिसने आत्मा को जाना, उसने सब जाना। भले कहना न आवे, समझाना न आवे, सभा भराना न आवे। उसके साथ कुछ काम नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पण्डित तो सबको कहता फिरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो पण्डिता... पण्डिता उसे कहा है स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा में कि, निर्विकल्प परिणति से आत्मा को अनुभव करे, वह पण्डित है। 'विरला जाने तत्त्व को' शब्द आता है न? आहाहा! ऐसा स्वरूप है, भाई! गजब बात है, भाई! आहाहा!

प्रभु! तू मोक्षस्वरूप है न! ऐसा कहते हैं। शक्ति तो मोक्षस्वरूप अनादि से है। उसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, ज्ञान, राग बिना की श्रद्धा द्वारा जानना। आहाहा! तब तुझे सुख मिलेगा। वह निर्विकल्प समकित से पड़ना, वह निर्विकल्प समकित, वही सुख है। आहाहा! तुझे सुख का स्वाद आयेगा। भगवान सुख से भरपूर है। आनन्द का नाथ प्रभु है। उसके सन्मुख निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान से देख। तुझे आनन्द का स्वाद आयेगा। अब मैं सुख के पंथ में पड़ा, ऐसा तुझे विश्वास होगा। आहाहा! कहो, रतिभाई! ऐसा है यह।

मुमुक्षु : तो हमारे धन्धा करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन धन्धा करता था? राग करे। धन्धा के एक रजकण को कोई बदल सकता है?

कल तो आया था उसमें। परद्रव्य का कर्ता न माने, वह श्वेताम्बर है ऐसा कहे। अर..र..! यहाँ कहते हैं राग का कर्ता होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। यह दोपहर में चलता है। आहाहा! भगवान आनन्द और निर्विकल्प शान्तस्वरूप, ऐसा जो आत्मा, वह राग के विकल्प को करे, यह कैसे बने? आहाहा! यह तो दोपहर में आया। विकार का कर्ता तो अज्ञानी मानता है। आहाहा! क्योंकि अविकारी चैतन्यस्वभाव की उसे खबर नहीं। चैतन्यस्वभाव राग को करे, यह कैसे बने? चैतन्यस्वभाव के अनजान जैसा यह अज्ञानी राग को करे। आहाहा! समझ में आया? रिकॉर्ड होता है? ठीक! यह सब रखते हैं अभी। लोगों को ताजा-ताजा मिले न! आहाहा!

आत्मधर्म में लोग बहुत प्रसन्न होते हैं। अच्छा लिखते हैं न भाई। .... लिखा हुआ सब व्याख्यान आता है न। बहुत गाँव-गाँव में कहते थे कितने ही। ओहोहो! अब व्याख्यान आता है, अब आत्मधर्म आता है। आहाहा! इस कार्तिक महीने से। बहुत लोग बाहर में चाहते हैं। यह जो कहने की बात हो, वह यदि जाये तो लोगों को ख्याल आवे। आहाहा! अभी वहाँ फिरोजाबाद में कहा न कुछ? आत्मधर्म के पाँच सौ नये ग्राहक बनाये। फिरोजाबाद में सात दिन शिक्षण शिविर चला था न। चले, चले। संसार ऐसा है, भाई!

मुमुक्षु : संसार हो वहाँ मोक्ष चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : चले-चले। आहाहा!

संसार और संसार का कारण बन्ध इन दोनों से रहित और आकुलता से रहित ऐसे लक्षणवाला मोक्ष का मूलकारण जो शुद्धात्मा है,... देखो! वापस। अनुभूति से भिन्न परन्तु इस अनुभूति का मूल कारण शुद्धात्मा। **मोक्ष का मूलकारण जो शुद्धात्मा है, वही सर्वथा आराधनेयोग्य है।** आहाहा! सर्वथा आराधनेयोग्य है। ऐसा है देखा! साधक... उपादेय लिखा है। परन्तु इसमें आ गया। सर्व प्रकार से उपादेय है न? है। '**एवानाकुलत्वलक्षणसर्वप्रकारोपादेयभूत**' है अन्तिम लाईन। '**मोक्षसुखसाधकत्वादु-**

पादेय' अन्तिम लाईन है। आहाहा! सर्व प्रकार। कथंचित् कोई लो न! कथंचित् राग से और कथंचित् इससे। वीतराग का मार्ग अनेकान्त है न? आहाहा! यह अनेकान्त नहीं। आहाहा!

अकेला शुद्धात्मा, वह सर्वथा उपादेय है और राग, वह सर्वथा हेय है। आहाहा! और यह तो आ गया है अपने। राग के रुचिकर जीव को आत्मा हेय है। आहाहा! आत्मा के रुचिकर को राग हेय है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। समझ में आया? यह परमात्मप्रकाश में आ गया है कि जिसे राग की रुचि है, उसे आत्मा हेय है। उसे आत्मा उपादेय नहीं है। आहाहा! यह वाणी कैसी और? ऐसा कहे कि आत्मा उपादेय है और राग हेय है। यह तो राग को उपादेयरूप से माने, उसे आत्मा हेय है। आहाहा!

शुद्धात्मा है, वही सर्वथा... देखो! सर्वथा है। भाई! जैनमार्ग में सर्वथा नहीं होता न! ऐसा कहते हैं न? कथंचित् होता है, कथंचित्। अरे! सुन न! आहाहा! मिथ्यात्व सर्वथा नुकसानकारक है। कथंचित् नुकसानकारक और कथंचित् लाभदायी, ऐसा है? यहाँ तो भगवान आत्मा... आहाहा! सर्वथा आराधनेयोग्य है। लो! ४६ गाथा हुई। ४७ कहेंगे लो....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४७

अथ यस्य परमात्मनो ज्ञानं वल्लीवत् ज्ञेयास्तित्वाभावेन निवर्तते न च शक्त्यभावेनेति कथयति -

४७) णेयाभावे विल्लि जिम थक्कइ णाणु वलेवि।
मुक्कहँ जसु पय बिंबियउ परम-सहाउ भणेवि।।४७।।

ज्ञेयाभावे वल्ली यथा तिष्ठति ज्ञानं वलित्वा।
मुक्तानां यस्य पदे बिम्बितं परमस्वभावं भणित्वा।।४७।।

णेयाभावे विल्लि जिम थक्कइ णाणु वलेवि ज्ञेयाभावे वल्लि यथा तथा ज्ञानं तिष्ठति व्यावृत्येति। यथा मण्डपाद्यभावे वल्ली व्यावृत्य तिष्ठति तथा ज्ञेयावलम्बनाभावे ज्ञानं व्यावृत्य तिष्ठति न च ज्ञातृत्वशक्त्यभावेनेत्यर्थः। कस्य संबन्धि ज्ञानम्। मुक्कहं मुक्तात्मनां ज्ञानम्। कथंभूतम्। जसु पय बिंबियउ यस्य भगवतः पदे परमात्मस्वरूपे बिम्बितं प्रतिफलितं तदाकारेण परिणतम्। कस्मात्। परमसहाउ भणेवि परमस्वभाव इति भणित्वा मत्वा ज्ञात्वैवेत्यर्थः। अत्र यस्येत्थंभूतं ज्ञानं सिद्धसुखस्योपादेयस्याविनाभूतं स एव शुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः।।४७।।

आगे जिस परमात्माका ज्ञान सर्वव्यापक है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो ज्ञानसे न जाना जावे, सब ही पदार्थ ज्ञानमें भासते हैं, ऐसा कहते हैं -

है बेलवत ही केवली का ज्ञान ज्ञेयों के बिना।
बढ़ता नहीं पर सभी प्रतिबिम्बित स्वभाव कहा गया।।४७।।

अन्वयार्थ :- [यथा] जैसे मंडप के अभाव से [वल्लि] बेल (लता) [तिष्ठति] ठहरती है, अर्थात् जहाँ तक मंडप है, वहाँ तक तो चढ़ती है और आगे मंडप का सहारा न मिलने से चढ़ने से ठहर जाती है, उसी तरह [मुक्तानां] मुक्त-जीवों का [ज्ञानं] ज्ञान भी जहाँतक ज्ञेय (पदार्थ) हैं, वहाँतक फैल जाता है, [ज्ञेयाभावे] और ज्ञेय का अवलम्बन न मिलने से [बलेपि?] जानने की शक्ति होने पर भी [तिष्ठति] ठहर जाता है, अर्थात् कोई पदार्थ जानने से बाकी नहीं रहता, सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और सब भावों को ज्ञान जानता है, ऐसे तीन लोक सरीखे अनंते लोकालोक होवें, तो भी एकसमय में ही जान लेवे, [यस्य] जिस भगवान् परमात्मा के [पदे] केवलज्ञान में

[परमस्वभावं] अपना उत्कृष्ट स्वभाव सबके जाननेरूप [बिम्बितं] प्रतिभासित हो रहा है, अर्थात् ज्ञान सबका अंतर्यामि है, सर्वाकार ज्ञान की परिणति है, ऐसा [भणित्वा] जानकर ज्ञान का आराधन करो।

भावार्थ :– जहाँ तक मंडप वहाँ तक ही बेल (लता) की बढ़वारी है, और जब मंडप का अभाव हो, तब बेल स्थिर होके आगे नहीं फैलती, लेकिन बेल में विस्तार-शक्ति का अभाव नहीं कह सकते, इसी तरह सर्वव्यापक ज्ञान केवली का है, जिसके ज्ञान में सर्व पदार्थ झलकते हैं, वही ज्ञान आत्मा का परमस्वभाव है, ऐसा जिसका ज्ञान है, वही शुद्धात्मा उपादेय है। यह ज्ञानानंदरूप आत्माराम है, वही महामुनियों के चित्त का विश्राम (ठहरने की जगह) है।।४७।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल १२, गुरुवार
दिनांक-०८-०७-१९७६, गाथा-४७-४८, प्रवचन-२९

परमात्मप्रकाश, ४७ गाथा। **आगे जिस परमात्मा का ज्ञान सर्व व्यापक है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो ज्ञान से न जाना जावे, सब ही पदार्थ ज्ञान में भासते हैं,...** केवलज्ञान की पर्याय की बात करते हैं पहले। केवलज्ञान की पर्याय।

णेयाभावे विल्लि जिम थक्कइ णाणु वलेवि।
मुक्कहँ जसु पय बिंबियउ परम-सहाउ भणेवि।।४७।।

अन्वयार्थ :- जैसे मण्डप के... मण्डप का दृष्टान्त दिया। मण्डप। **मण्डप के अभाव से बेल (लता) ठहरती है,...** मण्डप होता है न, मण्डप? उसमें लता—बेल-बेल (वह) जहाँ तक मण्डप होता है, वहाँ तक चलती है। **जहाँ तक मण्डप है, वहाँ तक तो चढ़ती है और आगे मण्डप का सहारा न मिलने से चढ़ने से ठहर जाती है,...** मण्डप का सहारा नहीं फिर, इसलिए वहाँ की वहाँ वह लता वहाँ उतने में रुक जाती है। **उसी तरह मुक्त-जीवों का ज्ञान भी...** आहाहा! सिद्ध भगवान और केवलज्ञानी का ज्ञान **जहाँ तक ज्ञेय (पदार्थ) है, वहाँ तक फैल जाता है,...** जितना ज्ञेय है द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, तीन काल, तीन लोक वहाँ तक तो वह ज्ञान जानता है। आहाहा! यह प्रगट पर्याय की बात है पहले।

जहाँ तक ज्ञेय (पदार्थ) है, वहाँ तक फैल जाता है, और ज्ञेय का अवलम्बन न मिलने से... फिर तो ज्ञेय नहीं। **जानने की शक्ति होने पर भी...** आहाहा! जैसे मण्डप में बेल की—लता की शक्ति आगे जाने की होने पर भी मण्डप आगे नहीं है, इसलिए वह लता वहाँ की वहाँ ठहरती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा का ज्ञान लोकालोक को जानता है। परन्तु लोकालोक से कोई ज्ञेय दूसरे विशेष नहीं, इसलिए वह जानने की शक्ति उसे नहीं है, ऐसा नहीं है। परन्तु लोकालोक है, वहाँ तक जाने और वहाँ तक ज्ञान ठहरता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मण्डप तक बेल पसरती है परन्तु उसमें आगे पसरने की शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं है। मण्डप नहीं है; इसलिए आगे लता जाती नहीं है। इसी प्रकार लोकालोक मण्डप है। आहाहा! ज्ञान की एक समय की दशा में लोकालोक जानने में आता है। ज्ञान वहाँ तक उसे देखता है। विशेष ज्ञेय नहीं, इसलिए ज्ञान वहाँ ठहरा है। परन्तु ज्ञान में उससे अनन्त गुणा लोकालोक होता तो भी जानने की शक्ति फैलने की थी। आहाहा!

यहाँ तो एक समय में केवलज्ञान तीन काल, तीन लोक को जाने, इसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। क्योंकि केवलज्ञानी तो एक समय में तीन काल, तीन लोक जानते हैं। जो अवस्था जिस काल में जहाँ हुई, वह सब जानते हैं। इससे भी अनन्तगुणा यदि होता तो जानने की शक्ति थी। परन्तु ज्ञेय नहीं, इसलिए वहाँ स्थिर हुआ। इसका एक अर्थ और ऐसा करते हैं कि ज्ञेय नहीं है, इसलिए जानता नहीं। देखो! निमित्त नहीं है, इसलिए (जानता नहीं)। ऐसा यहाँ नहीं, भाई! यहाँ तो इसकी जानने की शक्ति, जाने ऐसी जो ज्ञान की दशा वह है, उतने को तो जानती है परन्तु उससे अनन्त गुणा हो तो जाने, इसकी ताकत इतनी है, ऐसा कहना है। आहाहा! अग्नि किसे न जलाये? इसी प्रकार ज्ञान की प्रगट दशा किसे न जाने? आहाहा! यह कहकर वापस दूसरा कहना है मूल तो। कहते हैं, देखो!

जहाँ तक मण्डप है, वहाँ तक तो चढ़ती है, आगे मण्डप का सहारा न मिलने से चढ़ने से ठहर जाती है, उसी तरह मुक्त-जीवों का ज्ञान भी जहाँ तक ज्ञेय (पदार्थ) हैं, वहाँ तक फैल जाता है,... 'ज्ञेयाभावे' यहाँ **ज्ञेय का अवलम्बन न मिलने से जानने की शक्ति होने पर भी...** जानने की शक्ति तो है। भाई! आहाहा! **ठहर जाता है,...** ज्ञान

वहाँ। इतना है, इतना लोकालोक तीन काल, तीन लोक द्रव्य-गुण और पर्याय। आदि नहीं, अन्त नहीं। ऐसी द्रव्य की पर्यायों को भी एक समय में जाने। और विशेष ज्ञेय नहीं, इसलिए जानने की शक्ति वहाँ रुक गयी। परन्तु जानने की शक्ति उससे अनन्तगुणी है। जिसका स्वभाव जानना, उसे हद क्या? आहाहा!

जानने की शक्ति होने पर भी ठहर जाता है, अर्थात् कोई पदार्थ जानने से बाकी नहीं रहता, सब द्रव्य, सब क्षेत्र, सब काल,... फिर ऐसा कहते हैं न? भविष्य अनन्त काल है... अनन्त काल है... अनन्त काल है... उसे जान लिया? जान लिया तो अन्त आ गया। अरे! ऐसा कहाँ (कहना है)? काल अन्त बिना का है, उसे अन्त बिना का ज्ञान कर लिया। ऐसा कहे, तीन काल जाने तो काल का अन्त आ गया। ज्ञान में ज्ञात हुआ है, परन्तु वह अन्त बिना का है, ऐसा ज्ञात हुआ है। बड़ी तकरार-विवाद। मूल में पूरा विवाद।

सब भावों का ज्ञान जानता है,... सर्व पदार्थ, सर्व क्षेत्र... आहाहा! **सब काल, सब भाव और सब भावों को ज्ञान जानता है, ऐसे तीन लोक सरीखे अनन्त लोकालोक होवें, तो भी एक समय में ही जान लेवे,...** आहाहा! श्वेताम्बर में केवलज्ञानी को भी एक समय में ज्ञान और दूसरे समय में दर्शन, ऐसा कहा है। एक समय का ज्ञान कायम रहता है, ऐसा नहीं। एक समय में केवलज्ञान से जाने तो उस समय देखे नहीं। जिस समय देखे, उस समय जाने नहीं। ऐसी बात है। एकदम खोटी बात है। तत्त्व का बहुत विरोध है। यह तत्त्व यह तो... आहाहा! यहाँ तो एक समय जाने, ऐसा तीन काल, तीन लोक, ऐसा ही दूसरे समय में, ऐसा ही तीसरे समय में (जाने)। ऐसे एक समय में जो तीन काल, तीन लोक देखे, ऐसा एक समय में, दूसरे समय में, ऐसा तीसरे समय में (देखे)। आहाहा!

तीन लोक सरीखे अनन्त लोकालोक होवें, तो भी एक समय में ही जान लेवे, जिस भगवान परमात्मा के केवलज्ञान में अपना उत्कृष्ट स्वभाव सबके जाननेरूप... सब द्रव्यों का ज्ञान (होता है)। अन्तर्यामी है भगवान। तीन काल, तीन लोक के पदार्थों को भगवान जानते हैं। आहाहा! समझ में आया? **सबके जाननेरूप प्रतिभासित हो रहा है,...** आहाहा! **अर्थात् ज्ञान सबका अन्तर्यामी है, सर्वाकार ज्ञान की परिणति है,...**

जैसा स्वरूप ज्ञेय का है, उसरूप आत्मा परिणम जाये, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! **ऐसा जानकर ज्ञान का आराधन करो।** आहाहा! यह विशेष कहेंगे।

जहाँ तक मण्डप, वहाँ तक ही बेल (लता) की बढवारी है, और जब मण्डप का अभाव हो, तब बेल स्थिर होके आगे नहीं फैलती, लेकिन बेल में विस्तार-शक्ति का अभाव नहीं कह सकते,... आहाहा! **इसी तरह सर्व व्यापक ज्ञान केवली का है,...** आहाहा! **जिसके ज्ञान में सर्व पदार्थ झलकते हैं,...** सब पदार्थ का ज्ञान हो जाये। भगवान! आहाहा! **वही ज्ञान आत्मा का परमस्वभाव है,...** लो! यहाँ लिया अब। एक समय में जाने, ऐसा यह तो ज्ञान का स्वरूप भगवान का—आत्मा का त्रिकाल है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञानस्वभाव जो शक्तिरूप है, उसकी रुचि कर, ऐसा कहते हैं।

एक समय की पर्याय में तीन काल, तीन लोक को जाने, तथापि ज्ञेय विशेष नहीं, (इसलिए) वह ज्ञान वहाँ अटक गया। परन्तु ज्ञान में शक्ति तो अनन्तगुणी है। ऐसी एक समय की पर्याय में इतनी शक्ति, ऐसा जिसका भगवान ज्ञानस्वभाव... आहाहा! उसका आराधन कर। त्रिकाल ज्ञानस्वभाव जो शक्ति है, उसका आश्रय ले, उसे उपादेय जान। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो तीन बोल हुए। आराधन, उपादेय....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह का वह है। त्रिकाली ज्ञानशक्ति स्वभाव है, उसकी दृष्टि करना, इसका नाम उसका आराधन है, इसका नाम उसकी पूर्ण शक्ति का उपाय उपादेय माना, यह तीनों एक ही है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो ज्ञान की एक समय की पर्याय में तीन काल, तीन लोक को जानने की शक्ति हो परन्तु उससे अनन्तगुणी शक्ति (रही हुई है)। ओहोहो! पर्याय में, हों! ऐसा ही उसका त्रिकाली ज्ञानस्वभाव। आहाहा! वह निमित्त, राग और पर्याय के ऊपर बुद्धि है, उसे छोड़ दे। जहाँ भगवान आत्मा पूर्ण शक्ति से भरपूर तत्त्व है, वहाँ दृष्टि कर। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! आहाहा! वस्तु का स्वभाव जो ज्ञान-ज्ञानस्वभाव त्रिकाल, यह ज्ञानस्वभाव वह त्रिकाल उसकी शक्ति है। उस शक्ति पर दृष्टि कर, कहते हैं। पर्यायबुद्धि छोड़कर द्रव्यबुद्धि कर, ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा! ऐसी बात है।

जिसके ज्ञान में सर्व पदार्थ झलकते हैं, वही ज्ञान आत्मा का परमस्वभाव है,... देखो! आहाहा! जिसकी एक समय की पर्याय में लोकालोक का, मण्डप का ज्ञान है, इससे मण्डप इतना रहा, इसलिए ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य उससे अनन्तगुणा है। आहाहा! तब इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि ज्ञेय नहीं है, इसलिए वहाँ ज्ञान अटका, देखो! निमित्त नहीं है इसलिए।

मुमुक्षु : यह अर्थ खोटा है या सही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गड़बड़ है।

यहाँ तो उसका सामर्थ्य इतना है कि ज्ञेय अनन्तगुणा होता तो जानता, यह सिद्ध करना है। ज्ञेय नहीं है, इसलिए वहाँ ज्ञान अटका है—निमित्त नहीं है, इसलिए अटका है (ऐसा नहीं है)। अरे रे! क्या हो? इसका स्वभाव अपरिमित। भगवान आत्मा का स्वभाव, शक्ति, गुण अमाप अपरिमित बेहद स्वभाव जिसका है, वहाँ दृष्टि दे। उस पूर्ण ज्ञानस्वभाव की प्रतीति कर। पूर्ण ज्ञानस्वभाव को स्वसंवेदन में ले। आहाहा! पूर्ण ज्ञानस्वभाव में स्थिर हो। दर्शन-ज्ञान-चारित्र। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह सब तो आपने बताया, विधि तो बतायी नहीं। कैसे करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुख करे ऐसा करे। जो चीज़ अन्तर में पूर्ण है, वहाँ अन्तर्मुख दृष्टि करे। आहाहा! बहिर्मुख की दृष्टि छोड़कर (अन्तर्मुख दृष्टि करे)। एक समय की पर्याय या राग या निमित्त के ऊपर की दृष्टि बहिर्मुख है। आहाहा! वह बहिरात्मा है। आहाहा! है वर्तमान ज्ञान की पर्याय अल्पज्ञ, परन्तु उसे त्रिकाली शक्ति के ऊपर झुका। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है जैनदर्शन, बापू! सूक्ष्म बहुत। अल्पज्ञ पर्याय, मति और श्रुत की अल्पज्ञ पर्याय और यहाँ तो अनन्त-अनन्त ज्ञान की शक्ति का पार नहीं जिसका स्वभाव... आहाहा! वह अल्प पर्याय में अल्पज्ञान में उस त्रिकाल का आदर कर, कहते हैं। अल्पज्ञान में अल्पज्ञान का आदर नहीं, अल्पज्ञान में राग और निमित्त का आदर नहीं। आहाहा! उस अल्पज्ञान में सर्वज्ञशक्ति जो है सर्वज्ञशक्ति... आहाहा! उसका आदर कर। वहाँ जाकर स्थिर हो। वह विश्रामधाम—स्थान है। ज्ञानघन शक्ति से वह विश्रामधाम है। वहाँ स्थिर होने का स्थान है। आहाहा! अब ऐसी बात!

यह बाद में कहेंगे। ऐसा कि यह करते-करते होगा और व्यवहार करते (होगा), इसकी उसे अपेक्षा है ही नहीं। यह तीन लोक का नाथ शक्ति से भरपूर स्वभाव, ज्ञान के स्वभाव के सागर से छलाछल... आहाहा! जिसकी शक्ति ही ज्ञान है, उसके स्वभाव का माप क्या कहना? आहाहा! ऐसी ज्ञानशक्ति ध्रुव जो स्वभाव, उसकी रुचि कर और उस ओर दृष्टि कर और उस ओर झुक—ऐसी बात है, भाई! आहाहा! यह वे कहें, व्रत करना और अपवास करना और अमुक करना। वह तो सब राग है। राग की रुचि करनी है तुझे? समझ में आया? आहाहा!

वही ज्ञान आत्मा का परमस्वभाव है,... आत्मा का ज्ञान परमस्वभाव, **ऐसा जिसका ज्ञान है,...** परमस्वभाव ज्ञान जिसका स्वभाव है, **वही शुद्धात्मा उपादेय है।** देखा! वह शुद्धात्मा उपादेय है। आहाहा! अर्थात् कि शुद्धात्मा की ओर दृष्टि करनी है। आहाहा! **वही शुद्धात्मा उपादेय है।** आहाहा! अर्थात्? जिसका परम ज्ञानस्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... भाव... '**चित्स्वभावाय भावाय**' नहीं? '**भावाय**' यह तो पदार्थ है। पहले बोल में आता है न? '**नमः समयसाराय।**' '**भावाय**' यह पदार्थ है। '**चित्स्वभावाय**' उसकी शक्ति है। '**चित्स्वभाव**' ज्ञानस्वभाव शक्ति जिसका सामर्थ्य, जिसका सत्त्व, जिसका अपरिमित स्वभाव, ऐसा जो शुद्धात्मा, उसे उपादेय कर। आहाहा! वहाँ दृष्टि दे तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! और तो वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा। आहाहा! समझ में आया? कठिन काम, इसलिए लोग यहाँ से हटकर बाहर में यह करो और यह करो और यह करो। व्यवहार करते-करते होगा। यहाँ तो यह इनकार करते हैं। व्यवहार तो राग है। उसकी तो रुचि छोड़, परन्तु वर्तमान अल्पज्ञपने की रुचि है, उसे छोड़। राग को जानने की जो पर्याय तो व्यक्त है, उसे छोड़। आहाहा! और उसे दूसरे समय में जो ज्ञान की पर्याय (उत्पन्न होती है)... आहाहा! उसे द्रव्य का आश्रय दे। उसे द्रव्य का आश्रय ले। आहाहा! ऐसी बात है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जैनधर्म कोई पक्ष नहीं। वाड़ा नहीं। वस्तु का स्वरूप यह है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

श्रेणिक राजा हजारों रानियाँ, राज्य विशाल, हजारों राजा (थे), परन्तु वह आत्मा आनन्द का नाथ पूर्ण है, ऐसी अन्दर में अनुभव करके प्रतीति की, जन्म-मरण का अन्त

लाये और भगवान के पास गये। वहाँ एक विकल्प ऐसा उठा, पूर्ण होऊँ और इत्यादि। उसमें तीर्थंकरगोत्र बाँध दिया। सम्यग्दृष्टि पूर्ण स्वभाव के आदर करने के भाववाला। पूर्ण स्वभाव को आदर करने के भाववाला, अल्पज्ञान में पूर्ण का आदर। उस अल्पज्ञान की सामर्थ्य कितनी! वह अल्पज्ञान, त्रिकाली ज्ञान को स्पर्शे बिना, अल्पज्ञान त्रिकाली ज्ञान को स्पर्शे बिना उसकी प्रतीति करे। आहाहा! प्रगट ज्ञानशक्ति चिदानन्द प्रभु, उसे एक समय की पर्याय में प्रतीति करे, यह वह कितना पुरुषार्थ है! पूरी संसार की बेल तोड़ डाली। आहाहा! यह ज्ञानस्वभाव के माहात्म्य में जहाँ जाता है, वहाँ उसे आनन्द का अनुभव होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण –चारित्र कहा जाता है। आहाहा! यह चीज़ जहाँ नहीं, वहाँ सब थोथा है। समझ में आया? आहाहा! उसकी जितनी जैसी महिमा है, उतनी वैसी महिमा में प्रतीति में भासित न हो, तब तक सब थोथा है। आहाहा! समझ में आया?

देखो न! केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक को जाने, इसलिए इतनी ही शक्ति है, ऐसा नहीं। इससे अनन्तगुणी (शक्ति है)। आहाहा! क्या कहना चाहते हैं? ज्ञान की पर्याय का स्वभाव इतना है कि लोकालोक से अनन्तगुणा, जिसकी आदि नहीं, जिसका अन्त नहीं, उसका जिसे ज्ञान हो गया। आहाहा! यह बात अलौकिक है, भाई! ऐसे ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य तो अनन्तगुणी... अनन्तगुणी जानने की। आहाहा! ऐसा जिसका ज्ञानस्वभाव है। पर्याय नहीं पड़े अब। ऐसा जो शुद्धात्मा... है? आहाहा! वह आदरणीय है। निर्विकल्प समाधि शान्ति द्वारा वह आदरणीय होता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान निर्मल की परिणति द्वारा, वह उपादेय होता है।

यह ज्ञानानन्दरूप आत्माराम है,... आहाहा! आनन्द डाला। **यह ज्ञानानन्दरूप आत्माराम है,...** ज्ञान और आनन्दरूप की शक्तिवाला भगवान, वह आत्माराम है। आहाहा! स्वभाव-स्वभाव, हों! आहाहा! **ज्ञानानन्दरूप आत्माराम है, वही महामुनियों के चित्त का विश्राम (ठहरने की जगह) है।** आहाहा! चैतन्यधाम भगवान, ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान, वह मुनियों के चित्त को स्थिर होने का स्थान वह है। आहाहा! निमित्त में नहीं, दया, दान के विकल्प में नहीं, अल्पज्ञ में नहीं। आहाहा! सूक्ष्म मार्ग,

बापू! परन्तु इसका फल कितना? अनन्त आनन्द प्रगट हो। आहाहा! **यह ज्ञानानन्दरूप आत्माराम है,...** आहाहा! लो! विशेष डाला है। '**सुखस्योपादेयस्याविनाभूतं स एव शुद्धात्मोपादेय**' लो! आहाहा! धर्मी के ज्ञान की दशा को स्थिर होने का स्थान यह है। समझ में आया?

यह तो है न, '**यस्येत्थंभूतं ज्ञानं सिद्धसुखस्योपादेयस्याविनाभूत**' उसमें ज्ञान और आनन्द आया न? आहाहा! जिसका स्वभाव ज्ञान और आनन्द, ऐसा जो शुद्धात्मा, उसे उपादेय करनेयोग्य है। कैसी बुद्धि से? चित्त कहा न? चित्त का विश्रामस्थान। वह ज्ञान की परिणति निर्मल का वह विश्रामस्थान है। राग और विकल्प की वहाँ गन्ध भी नहीं। आहाहा! व्यवहार से होता है और व्यवहार से होता है, यह सब गप्प-गप्प है।

वह यह क्या कहा? **ज्ञानानन्दरूप आत्माराम है, वही महामुनियों के चित्त का विश्राम (ठहरने की जगह) है।** राग है, वह विश्रामस्थान है? निमित्त है, वह विश्रामस्थान है? आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभाव आत्माराम प्रभु, वह धर्मी के ज्ञान की परिणति को स्थिरता का स्थान वह है। आहाहा! निश्चय की बात, बापू! सूक्ष्म बहुत। थोड़े अन्तर से पूरा मार्ग बदल जाता है। आहाहा!

अल्पज्ञान आदरणीय नहीं, राग आदरणीय नहीं, निमित्त आदरणीय नहीं, ऐसा कहा। निमित्त अर्थात् तीन लोक के नाथ भी वहाँ आदरणीय नहीं। उनके प्रति भक्ति का राग हुआ, वह आदरणीय नहीं। उस राग के काल में राग को जानने की ज्ञान की पर्याय... आहाहा! तीनों से उठा तेरी ज्ञान की दशा को, कहते हैं। आहाहा! पूर्ण स्वभाव भगवान चैतन्य के धाम में जा।

वह **(ठहरने की जगह) है।** वह विश्रामस्थान है। थकान लगी हो और मनुष्य विश्राम लेता है न? आहाहा! तुझे भवभ्रमण की थकान लगी हो... आहाहा! तो आत्माराम आनन्द का नाथ, प्रभु, वह स्थिरता का स्थान है, बापू! आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि का बनाया हुआ है। इसमें व्यवहार का तो निषेध है। एक समय की पर्याय का आदर का निषेध हुआ। आहाहा! ज्ञानानन्दरूप आत्माराम। आहाहा! वस्तु त्रिकाल, हों! **वही महामुनियों के**

चित्त... अर्थात् ज्ञान की परिणति का विश्रामस्थान वह है। आहाहा!

अभी तो एक समय में तीन काल–तीन लोक जाने, यह कितनों को जँचता नहीं। वह महेन्द्र पण्डित थे न? ललितपुर में मिले थे तब। यह तीन काल, तीन लोक को जाने, ऐसा नहीं। वर्तमान में पूर्ण सब है, उसे जाने, वह सर्वज्ञ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे। अरे! भगवान! बापू! महेन्द्र थे न? महेन्द्रकुमार न? पण्डित।

मुमुक्षु : साहित्याचार्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : साहित्याचार्य। पूर्णविजय कैसे? पूर्णसागर के दामाद। पूर्णसागर थे न? क्षुल्लक क्षुल्लक। यहाँ रहे थे और महेन्द्रभाई यहाँ विद्वत् परिषद में आये थे। (संवत्) २००३ के वर्ष में विद्वत् परिषद भरी थी न? इसमें यहाँ आये थे। ललितपुर में मिले थे। रामजीभाई के साथ बहुत चर्चा हुई थी। जब ललितपुर दूसरी बात हम गये तब, हों! ललितपुर दो बार गये हैं। यह मार्ग ऐसा है कि लोगों को ऐसा लगे कि... आहाहा!

मुमुक्षु : नया है न, इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : नया नहीं। इसमें है। उसे नया लगता है। नया नहीं, अनादि का यही मार्ग है। वीतराग परमेश्वर जिनेन्द्रदेव में अनादि का यह मार्ग है।

ज्ञान और आनन्दादि स्वभाव से भरपूर प्रभु तत्त्व, इतने महा तत्त्व का आदर करना, वह कितनी पर्याय का सामर्थ्य है! आहाहा! एक समय में ज्ञान और आनन्दादि अनन्त स्वभाव का सागर भगवान, आहाहा! उसके ज्ञान की एक समय की पर्याय में आदर करना, उस पर्याय का सामर्थ्य कितना? और उस पर्याय की कीमत कितनी? क्या कहा, समझ में आया? आहाहा! राग आदि की कीमत यहाँ कुछ है ही नहीं। आहाहा! जिसने ज्ञान की एक समय की दशा में... आहाहा! एक तो द्रव्य का स्वभाव जो अमाप, अपरिमित जिसकी एक समय की पर्याय में लोकालोक को जानने की शक्ति से भी अनन्तगुणी जिसकी शक्ति, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड ज्ञान, ऐसे-ऐसे अनन्त गुणों का

सागर भगवान, भाई! इसे उसके सन्मुख देखकर उसका आदर करना, उसके सामने देखा, यही उसका आदर है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : किसकी शक्ति बताते हो आप?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की शक्ति।

मुमुक्षु : किसकी पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान की। आहाहा! ज्ञान की वर्तमान पर्याय। ऐसा त्रिकाली तत्त्व महासागर ज्ञान और आनन्द आदि स्वभाव का सागर, अनन्त शक्ति का संग्रहालय, संग्रह करके पड़ा है आत्मा। अनन्त गुण का गोदाम आत्मा... आहाहा! अनन्त स्वभाव का सागर, उसके सन्मुख देखना, यह कितनी सामर्थ्य है पर्याय में! यह कितना पुरुषार्थ है! समझ में आया? उसे इस पुरुषार्थ की कीमत नहीं। यह तो कुछ दया पाले, व्रत करे और भक्ति करे, (उसकी कीमत है)। उस शुभभाव के पुरुषार्थ को तो नपुंसक कहा है। समझ में आया? आहाहा!

कल कुन्दकुन्दाचार्य का भक्ति में नहीं आया था? आहाहा! कैसा सरस रखा! पण्डित वह। कौन पण्डित? भागचन्दजी। हे मुनिराज! धन्य धन्य कुन्दकुन्दाचार्य। अशुभभाव का तो आपको सर्वथा नाश हो गया है। शुभभाव में भी आप उदास हो। आहाहा! मुनि को अशुभभाव तो नाश हो गया है और जिसे शुभभाव की भी उदासता है। आहाहा! और त्रिकाली आनन्द के नाथ को आदर करके शुद्धभाव में मुनि स्थित हैं, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आता है न? थोड़ा-थोड़ा। यह तो दिगम्बर धर्म ऐसा है, बापू! यह कहीं वाडा नहीं। यह कोई पक्ष नहीं। वस्तु ऐसी है। आहाहा!

एक आत्मा जिसका अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि स्वभाव—ऐसा आत्मा, उसका आदर करना, उसके सन्मुख होना और पर्याय और निमित्त से विमुख होना। यह कितना पुरुषार्थ है! आहाहा! यह ४७ (गाथा) कही। लो! आहाहा! ४८ (गाथा)।

मुमुक्षु : आपको तो आनन्द आता है, हमें नमूना दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखनेवाले को देखना, उसकी आँख है न? या दूसरे की आँख

से दिखता है ? आहाहा ! दुनिया माने, न माने, उसकी संख्या हो, न हो, इसके साथ तत्त्व को सम्बन्ध नहीं है। आहाहा ! संख्यातीत जिसकी शक्तियाँ अनन्त, इतनी तो संख्या और एक-एक शक्ति की अनन्त शक्ति। आत्मा में ज्ञान, दर्शन आदि शक्तियाँ अनन्त हैं। संख्यातीत जिसकी संख्या से अतीत। आहाहा ! ऐसी एक-एक शक्ति की वापस अनन्त शक्ति। आहाहा ! ऐसा जो आत्मतत्त्व, ऐसा जो शुद्धात्मा। आहाहा ! उसे सम्यग्दर्शन के रत्न द्वारा उसे आदर करनेयोग्य है। उसे इतनी कीमत भरनी पड़ेगी। आहाहा ! नवरंगभाई ! ऐसा है यह सब।

यह अष्टाह्निका पूजा करे। वह सब भाव है। शुभभाव होता है, अशुभ से बचने के लिये (होता है) परन्तु वह कोई धर्म नहीं। आहाहा ! धर्म की पर्याय ने तो जिसने पूर्णानन्द के अनन्त धर्मों को स्वीकार किया है। आहाहा ! धर्म की पर्याय ने जिसने अनन्त धर्म को, स्वभाव को स्वीकार किया है, ऐसा पर्याय का धर्म कहा जाता है। आहाहा ! आज बहिन क्यों नहीं आये ?

मुमुक्षु : बुखार आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुखार आया है, ठीक ! यह ४७ हुई, अब ४८।

गाथा - ४८

अथ यस्य कर्माणि यद्यपि सुखदुःखादिकं जनयन्ति तथापि स न जनितो न हृत इत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रं कथयति –

४८) कम्महिं जासु जणंतहिँ वि णिउ णिउ कज्जु सया वि।
किं पि ण जणियउ हरिउ णवि सो परमप्पउ भावि।।४८।।

कर्मभिः यस्य जनयद्भिरपि निजनिजकार्यं सदापि।
किमपि न जनितो हृतः नैव तं परमात्मानं भावय।।४८।।

कर्मभिर्यस्य जनयद्भिरपि। किम्। निजनिजकार्यं सदापि तथापि किमपि न जनितो हृतश्च नैव तं परमात्मानं भावयत। यद्यपि व्यवहारनयेन शुद्धात्मस्वरूपप्रतिबन्धकानि कर्माणि सुखदुःखादिकं निजनिजकार्यं जनयन्ति तथापि शुद्धनिश्चयनयेन अनन्तज्ञानादिस्वरूपं न हृतं न विनाशितं न चाभिनवं जनितमुत्पादितं किमपि यस्यात्मनस्तं परमात्मानं वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावयेत्यर्थः। अत्र यदेव कर्मभिर्न हृतं न चोत्पादितं चिदानन्दैकस्वरूपं तदेवोपादेयमिति तात्पर्यार्थः ।।४८।।

आगे जो शुभ–अशुभ कर्म हैं, वे यद्यपि सुख–दुःखादि को उपजाते हैं, तो भी वह आत्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ, किसी ने बनाया नहीं, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर गाथा–सूत्र कहते हैं –

निज–निज करम करते हुये भी न करें जिसमें कहीं।
कुछ नष्ट वा उत्पन्न भा परमातमा नित है वही।।४८।।

अन्वयार्थ :– [कर्मभिः] ज्ञानावरणादि कर्म [सदापि] हमेशा [निजनिजकार्यं] अपने–अपने सुख–दुःखादि कार्य को [जनयद्भिरपि] प्रगट करते हैं, तो भी शुद्ध निश्चयनयकर [यस्य] जिस आत्मा का [किमपि] कुछ भी अर्थात् अनंतज्ञानादिस्वरूप [न जनितः] न तो नया पैदा किया और [नैव हृतः] न विनाश किया और न दूसरी तरह का किया, [तं] उस [परमात्मानं] परमात्मा को [भावय] तू चिंतवन कर।

भावार्थ :– यद्यपि व्यवहारनय से शुद्धात्मस्वरूप के रोकनेवाले ज्ञानावरणादिकर्म अपने अपने कार्य को करते हैं अर्थात् ज्ञानावरण तो ज्ञान को ढँकता है, दर्शनावरणकर्म दर्शन को आच्छादन करता है, वेदनीय साता–असाता उत्पन्न करके अतीन्द्रियसुख को घातता है, मोहनीय सम्यक्त्व तथा चारित्र को रोकता है, आयुकर्म स्थिति के प्रमाण

शरीर में राखता है, अविनाशी भाव को प्रगट नहीं होने देता, नामकर्म नाना प्रकार गति–जाति–शरीरादिक को उपजाता है, गोत्रकर्म ऊँच–नीच गोत्र में डाल देता है और अन्तरायकर्म अनंत (बल) को प्रगट नहीं होने देता। इस प्रकार ये कार्य को करते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर आत्मा का अनंतज्ञानादिस्वरूप का इन कर्मों ने न तो नाश किया और न नया उत्पन्न किया, आत्मा तो जैसा है वैसा ही है। ऐसे अखंड परमात्मा को तू वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर ध्यान कर। यहाँ पर यह तात्पर्य है कि जो जीवपदार्थ कर्मों से न हरा गया, न उपजा, किसी दूसरी तरह नहीं किया गया, वही चिदानन्दस्वरूप उपादेय है।।४८।।

गाथा - ४८ पर प्रवचन

आगे जो शुभ–अशुभकर्म है, वे यद्यपि सुख–दुःखादि को उपजाते हैं, तो भी वह आत्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ, किसी ने बनाया नहीं,... बहुत सरस बात है। ध्यान रखो, इसमें कर्म की बात आने पर भावकर्म और द्रव्यकर्म दोनों (लेना)। **ऐसा अभिप्राय मन में रखकर गाथा–सूत्र कहते हैं।** आहाहा! बराबर है?

४८) कम्महिं जासु जणंतहिँ वि णिउ णिउ कज्जु सया वि।
किं पि ण जणियउ हरिउ णवि सो परमप्पउ भावि।।४८।।

अन्वयार्थ :- आहाहा! **ज्ञानावरणादि कर्म हमेशा अपने–अपने सुख–दुःखादि कार्य को प्रगट करते हैं,...** यह निमित्त से कथन है। कर्म से आत्मा में सुख–दुःख का भाव होता है, यह सब निमित्त के कथन हैं। जड़कर्म है, वह द्रव्यघातिकर्म है और भाव जो जीव का है, वह भावघातिकर्म है। ज्ञान में हीनदशा का परिणमन, वह भावघाति भाव है। वह कर्म के कारण नहीं। कर्म को तो निमित्त करके भाव की बात की है। आहाहा! समझ में आया? 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' आता है? भजन में–भक्ति में आता है। पूजा में। 'कर्म बिचारे कौन...' वह तो जड़ चीज़ है। आहाहा! 'भूल मेरी अधिकाई; अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई' अग्नि लोह का संग करती है (तो) घन पड़ते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा कर्म का संग स्वयं करे और विकार करता है, इससे उसे दुःख के घन भोगने पड़ते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अपने-अपने सुख-दुःखादि कार्य को प्रगट करते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर जिस आत्मा का कुछ भी अर्थात् अनन्त ज्ञानादिस्वरूप... आहाहा! भले कहते हैं कि पर्याय में भावघाति से द्रव्यघाति का निमित्त, उस-उस पर्याय में उसके कार्य होते हैं, विकारी आदि अल्पज्ञ आदि... आहाहा! ज्ञानावरणीकर्म ज्ञान को रोके। अब वह तो व्यवहार की बात हुई। ज्ञानावरणी तो जड़ है। आत्मा की ज्ञान की अवस्था रोके वह? ज्ञान की हीन अवस्था स्वयं करता है, तब वह ज्ञान रुका है वहाँ, वह भावघाति है। उसको द्रव्यघाति निमित्त है। बस इतना। यहाँ तो बहुत संक्षिप्त कहा है। कर्म के कारण कार्य होता है। तथापि भगवान आत्मा आनन्द का नाथ तो ऐसा का ऐसा है, ऐसा कहते हैं।

पर्याय में ज्ञान की हीनदशा, पर्याय में दर्शन की हीनदशा, पर्याय में वीर्य की हीनदशा, पर्याय में राग और द्वेष की उत्पत्तिरूप दशा... आहाहा! ऐसा होने पर भी **शुद्धनिश्चयनयकर जिस आत्मा का कुछ भी अर्थात् अनन्त ज्ञानादिस्वरूप न तो नया पैदा किया...** वस्तु तो वस्तु है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **न विनाश किया,...** वस्तु का जो स्वभाव है, वह पर्याय में भले हीनदशा (हुई) और घातिकर्म का निमित्त (होवे), तथापि वस्तु तो है, वह है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञानानन्द सत्त्व जो वस्तु, उसे उसने कर्म का अभाव होकर उत्पन्न किया, ऐसा भी नहीं और कर्म के अभाव से उसका नाश हुआ, ऐसा भी नहीं। वह तो नया उत्पन्न होता नहीं, विनाश होता नहीं, ऐसा आत्मा अन्दर है। आहाहा! समझ में आया?

और न दूसरी तरह का किया,... जो चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप भगवान, वह कर्म के अभाव में उत्पन्न हो, ऐसा भी नहीं है कि उसने उत्पन्न किया। शक्ति है, वह क्या उत्पन्न करे? नहीं उसे नाश किया? नहीं, उस शक्ति के भाव को विपरीत दूसरे प्रकार से किया। आहाहा! **उस परमात्मा को तू चिन्तवन कर।** आहाहा! ऐसा जो परमात्मा, परमात्मस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, सामान्यस्वरूप, अभेदस्वरूप ऐसा का ऐसा अनादि से एकेन्द्रिय से लेकर, सिद्ध की पर्याय प्रगट और इसे एकेन्द्रिय की पर्याय (हो), परन्तु वस्तु तो वहाँ आगे उसमें द्रव्यस्वभाव तो ऐसा का ऐसा है सर्वत्र। आहाहा!

तत्त्व है न? चैतन्यशक्तिवाला, आनन्दशक्तिवाला तत्त्व है। शक्ति अर्थात् स्वभाव; स्वभाव अर्थात् गुण। वह उत्पन्न नहीं होता, वह नाश नहीं होता। उसमें उत्पाद-व्यय

नहीं, यह कहते हैं। तथा वह दूसरे प्रकार से नहीं होता। वह तो जो है, वैसा रहता है। आहाहा! उसे तू परमात्मा चिन्तवन (कर)। आहाहा! ऐसा जो परमात्मस्वभाव, उसकी दृष्टि कर। आहाहा! उसे तू जान, उसमें तू स्थिर हो। यह वस्तु है। आहाहा! यह निश्चय की बात लोगों को ऐसी लगती है कि यह मानो... परन्तु यह वस्तु सत्य ही ऐसी है। आहाहा!

भावार्थ :- अब कहते हैं, देखो! **यद्यपि व्यवहारनय से शुद्धात्मस्वरूप के रोकनेवाले...** पर्याय में, हों! **ज्ञानावरणादिकर्म अपने-अपने कार्य को करते हैं,...** ज्ञान की हीनदशा स्वयं से हो, तब कर्म का निमित्त है, उसने हीन की, ऐसा कहने में आता है। ऐसा है। आहाहा! कर्म का उदय है, वह तो जड़ है। जड़ को पर्याय स्पर्श भी नहीं करती। आहाहा! अपनी पर्याय में हीनपने, आत्मा के ज्ञान की पर्याय को हीनपने जीव स्वयं करता है, तब कर्म के निमित्त से हीन हुई, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

ज्ञानावरणी के उदय से ज्ञान रुका, यह तो व्यवहार की बात हुई। यहाँ तो व्यवहार उसका रुकना जो है, वह भी व्यवहार है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? क्योंकि त्रिकाल में रुकना, अटकना या अल्पज्ञ है नहीं। परन्तु यह रुकना, यह हुआ है स्वयं के कारण से। अशुद्धनय के कारण से स्वयं ज्ञान की हीनदशारूप परिणमता है, तब ज्ञानावरणीकर्म को निमित्त कहा जाता है और जब स्वयं पुरुषार्थ से ज्ञान में क्षयोपशम प्रगट करता है, तब ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से यह हुआ, ऐसा कहा जाता है। ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम ज्ञानावरणीय में हुआ है। और यहाँ क्षयोपशम अपने पुरुषार्थ से हुआ है। आहाहा! समझ में आया? यह उपादान और निमित्त के विवाद, निश्चय-व्यवहार के विवाद और क्रमबद्ध के विवाद—यह पाँच विवाद। सोनगढ़ के सामने ये पाँच हैं। निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त, क्रमबद्ध। क्रमबद्ध नहीं होता। आगे-पीछे चाहे जैसे होता है, ऐसा (वे) कहते हैं। भाई! ऐसा नहीं होता, भाई!

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय धारावाही, धारावाही पर्याय चलती है। उसमें कहीं रुकावट है, ऐसा है नहीं। धारावाही एक के बाद एक, एक के बाद एक हो रही है और भगवान ने भी ऐसा देखा है। यह क्रमबद्ध का निर्णय करे तो उसकी द्रव्य पर दृष्टि जाती है। इसलिए द्रव्य पूर्णानन्द का नाथ है, उसका उसे आश्रय आता है। इसलिए उसे राग का आश्रय आकर पूर्णानन्द की श्रद्धा हो, ऐसा नहीं है। इसलिए व्यवहार छूट गया, तब निश्चय का भान होता है।

मुमुक्षु : भगवान ने जो-जो पर्याय देखी, वह क्रमबद्ध, परन्तु हमने देखी, वह अक्रम।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखता है कब? और खबर कहाँ है? यह प्रश्न हुआ था। तुलसी है न तेरापंथी? उसने प्रश्न किया है। एक अपने हैं न वे सतीश न? सतीश? मुम्बई (में) सतीश है, उसने प्रश्न किया था। तुलसी-तुलसी तेरापंथी को। यह क्रमबद्ध है या नहीं? क्या कहा उसने?

मुमुक्षु : अनेकान्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त, परन्तु किस प्रकार अनेकान्त?

मुमुक्षु : निश्चय से है और व्यवहार से नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कुछ कहा था। बस, यह। निश्चय से क्रमबद्ध और व्यवहार से नहीं। अर्थात् क्या? अनेकान्त तो कहा परन्तु अनेकान्त किस प्रकार? निश्चय से क्रमबद्ध और व्यवहार से नहीं, इसका अर्थ क्या? आहाहा! कुछ खबर नहीं होती। तेरापंथी के आचार्य हैं। आहाहा! धारावाही, प्रत्येक द्रव्य की परिणति—पर्याय, वह धारावाही ऐसे चलती है। दौड़ती पर्याय। उसमें आगे-पीछे हो नहीं सकती, आगे-पीछे करने की जीव में सामर्थ्य नहीं। अरे! क्या हो परन्तु?

यहाँ कहते हैं, **व्यवहारनयकर ज्ञानावरणादिकर्म हमेशा अपने-अपने सुख-दुःखादि कार्य को प्रगट करते हैं,...** ज्ञानावरणीय तो ज्ञान को ढँकता है, लो! यह प्रश्न चला था न वहाँ? ज्ञानावरणीय तो निमित्तमात्र है। अपने क्षयोपशम से ज्ञान का विकास होता है। और ज्ञान हीन करता है, वह भी स्वयं से होता है। यह प्रश्न वर्णीजी के साथ हुआ था। कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की योग्यता से वह न्यून हुआ है और योग्यता से उसका विकार होता है, ज्ञानावरणीय कुछ करता नहीं, ऐसा कहते हैं। बात सच्ची। बात तो ऐसी ही कही थी। क्या करे? 'कर्म बिचारे कौन' उसकी जड़ को खबर भी नहीं। स्वयं अपने भाव को वहाँ रोकता है, वह घातिकर्म स्वयं भाव खड़ा किया है। आहाहा! उसे यहाँ व्यवहार से कहने में आता है। ज्ञानावरणीय से (ज्ञान हीन हुआ)। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ शुक्ल १३, शुक्रवार
दिनांक-०९-०७-१९७६, गाथा-४८, प्रवचन-३०

परमात्मप्रकाश ४८ गाथा है। भावार्थ फिर से। **यद्यपि व्यवहारनय से शुद्धात्मस्वरूप के रोकनेवाले ज्ञानावरणादिकर्म अपने-अपने कार्य को करते हैं,...** वस्तु है, वह तो शक्तिरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, वह शक्तिरूप तो त्रिकाल है। उसे कोई घातता नहीं, उसे कोई उपजाता नहीं, उसे कोई अन्यरूप से कर नहीं सकता। पर्याय में स्वयं ज्ञान की हीनदशारूप परिणमता है। वह कार्य तो स्वयं का है। उसमें कर्म निमित्त है, इसलिए उसकी बात, उसका कार्य है, ऐसा उपचार से कहा जाता है। समझ में आया?

निमित्त साथ में है न! बहुत लम्बा-लम्बा करने जाये कि ज्ञान की हीनदशा स्वयं परिणमती है, तब कर्म को निमित्त कहा जाता है, तब निमित्त से आया, ऐसा कहने में, ऐसी लम्बी बात करने के बदले संक्षिप्त की है। आहाहा!

व्यवहारनय से शुद्धात्मस्वरूप के रोकनेवाले... पर्याय में घातिकर्म तो अपना दशा ही है। द्रव्य घातिकर्म तो पर है, जड़, वह तो निमित्त है। निमित्त को तो यह स्पर्शता भी नहीं।

मुमुक्षु : यह तो अपना-अपना कार्य करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस अपने-अपने कार्य का अर्थ यह। निमित्त के वश जो ज्ञानादि की हीनदशा हुई, इसलिए उससे हुई, ऐसा कहा गया है। किसी परद्रव्य के कारण परद्रव्य में कुछ हो, ऐसा कुछ है नहीं। यह बड़ा विवाद होता है अभी तो।

मुमुक्षु : पर के कारण से पर में हो, ऐसा न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो? वह तो स्वतन्त्र है न!

पर का कर्ता आत्मा नहीं, तथा कर्म आत्मा की निर्मल पर्याय को हीन करनेवाला नहीं। जैसे आत्मा परद्रव्य का कुछ करता नहीं, वैसे परद्रव्य आत्मा को कुछ करता नहीं। सिद्धान्त तो यह है। यह सिद्धान्त रखकर, संक्षिप्त कथन करना हो तो ज्ञान का

भावघातिरूप परिणमन उस समय में अपनी योग्यता है, तब उसे ज्ञानावरणीय का निमित्त कहा जाता है। और ज्ञान का स्वयं ही क्षयोपशम विशेष पुरुषार्थ से करे, तब ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से यह क्षयोपशम हुआ, ऐसा कहने में आता है। यह बड़ी चर्चा चली थी न तब? (संवत्) २०१३ के वर्ष में। ज्ञान की हीनदशा या अधिकदशा स्वयं के कारण से होती है। तब सामने से कहे, नहीं। कर्म से होती है। यह प्रश्न था तब। यह तो कहा 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' कर्म तो जड़ है, अजीव हैं, और वे तो निमित्तमात्र हैं। वे अपनी हीन या विपरीत दशा को कर्म स्पर्श भी नहीं करते। आहाहा! हीनदशा ज्ञान की और राग की विपरीत हो, उसे द्रव्य स्पर्श नहीं करता।

वस्तु जो अनन्त ज्ञान-दर्शन से भरपूर चीज़ है। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, वीर्य—ऐसी जो शक्ति का स्वरूप है, वह तो त्रिकाल एकरूप ही है। उसे कोई घात नहीं करता, उसे कोई घटाता नहीं, उसे कोई बढ़ाता नहीं, उसे कोई अन्यरूप करता नहीं। आहाहा! उसकी पर्याय में जो स्वयं हीनदशा और विपरीत (दशा) करता है, वह स्वयं के उल्टे पुरुषार्थ से करता है, तब कर्म का निमित्त है; इसलिए उल्टे पुरुषार्थ से करे निमित्त, ऐसा लम्बा न कहकर, कर्म का कार्य है, ऐसा कहने में आया है। कहो, ऐसा कथन है न! ज्ञानावरणीय कर्म रोकता है। केवली को चार अघातिकर्म रोकते हैं। केवलज्ञान हुआ तो अनन्त आनन्द आया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे रोकता है। उसके प्रतिजीवीगुण हैं, यह उन्हें प्रगट नहीं होने देता। वह तो स्वयं के कारण से नहीं होता, उसमें निमित्त कहने में आता है। उदयभाव, वह अपना अपने से हुआ है। केवली को भी। आहाहा! समझ में आया? यह प्रश्न लोग करते हैं। केवली तो चार अघातिकर्म के कारण रुके हुए हैं न? भाई! ऐसा नहीं है, बापू! यह तो उनकी परिणति में अपनी प्रतिजीवीगुण की विपरीत परिणति है, उसमें उस कर्म का निमित्त है। परद्रव्य के कारण स्वद्रव्य में कुछ हो, यह बात सत्य नहीं है। स्वद्रव्य के कारण परद्रव्य में कुछ हो, यह भी सत्य नहीं है।

यहाँ यह कहा। **व्यवहारनयकर...** इतना यहाँ लेना, ऐसा नहीं। यहाँ तो समुच्चय

उसकी हीनदशा और कर्म वह व्यवहारनयकर यह हीनदशा होती है, ऐसा। कर्म से व्यवहार और वह हुआ, ऐसा नहीं। यहाँ साथ में लिया इकट्ठा। वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय में हीनता होना और पर्याय में विकार का होना, वही व्यवहार है। निश्चय तो त्रिकाल वस्तु है, उसमें कुछ (हीनाधिक) नहीं है, ऐसी बात है। समझ में आया?

यह प्रश्न (संवत्) १९८४ में हुआ था। वीरजीभाई थे। राणपुर (में)। ऐसा कि यह निगोद के जीव को कर्म है सब। इतनी उसकी योग्यता पर्याय में स्वयं से है या पर के कारण है? जैसी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश जितने प्रमाण में जड़ में हैं, उतने ही प्रमाण में वे अपनी अपने से योग्यता है या नहीं? उसके कारण नहीं। समझ में आया? १९८४ में राणपुर में चर्चा चली थी। वह तो एक समय की पर्याय की जैसी स्थिति जितने परमाणु वहाँ जितना अनुभाग और जो प्रकृति, उसकी योग्यता स्वयं में उपादान के कारण से वहाँ पर्याय हुई है। कर्म तो निमित्तमात्र है। समझ में आया?

इसलिए **व्यवहारनयकर शुद्धात्मस्वरूप के रोकनेवाले...** पर्याय **ज्ञानावरणादिकर्म अपने-अपने कार्य को करते हैं, अर्थात् ज्ञानावरण तो ज्ञान को ढँकता है,...** अब ऐसा वाँचन करे, इसलिए निमित्त से हुआ। देखो! तुम कहते हो निमित्त से कुछ नहीं होता। यह वापस व्यवहारनय अर्थात् अकेला कर्म व्यवहारनय नहीं, विकार है वह भी व्यवहारनय है। आहाहा! उस-उस द्रव्य की उस-उस समय की पर्याय, उसके क्रम में आने की योग्यता से वह हुई है। कर्म के कारण नहीं। आहाहा! यह बड़ा उपादान-निमित्त का झगड़ा है न?

ज्ञान को ढँकता है,... ज्ञान की पर्याय घाति, भावघात स्वयं ही करती है, तब ज्ञानावरणीय कर्म को निमित्त और उससे घात हुआ, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! वे अन्य को ईश्वर करे, इसे कर्म करे। जड़ इसका स्वामी, उसका ईश्वर स्वामी। वास्तव में खोटा है। अपनी धारावाही पर्याय का क्रम जो है, वह स्वयं से होता है, पर से है नहीं। आहाहा! परन्तु यह लिखा न, जरा भी नहीं तो। संक्षिप्त शब्द लिखा है। आहाहा!

दर्शनावरणीयकर्म दर्शन को आच्छादन करता है,... यह भी दर्शन की पर्याय

स्वयं हीनरूप होती है, तब दर्शनावरणीय का निमित्त है। वह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से व्यवहार से रोकता है, ऐसा कहने में आया है। इसकी हीनपर्याय जो हुई, वह भी व्यवहार हुआ। पर्याय स्वयं हीन हुई, वह इसका व्यवहार है। वस्तु जो त्रिकाल, उस समय भले हीन हुई। निगोद में नहीं आया? गोम्मटसार में? कर्मकलंक पहुरा आया है न? भावकलंक पहुरा जड़कर्म... इसलिए वह ऐसा नहीं। वह भावकलंक प्रचुर अपनी पर्याय का इसका कार्य है। आहाहा! इससे निगोद में रुके हुए हैं। आहाहा! और वे अक्षर में अनन्तवें भाग की उघाड़ दशा रही, वह स्वयं के ही कारण से रही है। ज्ञानावरणीय का जोर है, इसलिए रही है, ऐसा नहीं है। ऐसा होने पर भी शक्तिरूप जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, वह तो ऐसी की ऐसी चीज़ पड़ी है। समझ में आया?

निगोद के जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग जितना विकास रहा है, तथापि वह कर्म से नहीं हुआ, तथा ऐसी अपनी दशा अपने से हुई, तो भी वस्तु के स्वरूप में कुछ हीन या अधिक कुछ हुआ नहीं। समझ में आया? आहाहा! वस्तु तो उस समय भी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य शक्तिरूप, सामर्थ्यरूप, स्वभावरूप, ऐसी की ऐसी है। उसमें कुछ फेरफार—हीनता हुई है या विपरीत हुई है या अधिक हुई है या दूसरे प्रकार से हुई है, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं अपनी पर्याय से... यह तो कल कहा था। यह तो कल का। वह दोषावरण का है न? ऐसा कि आचार्य ने जब ऐसा कहा कि दोष और आवरण है तो किसी को थोड़ा दोष और थोड़ा आवरण है तथा किसी को बहुत दोष और बहुत आवरण है और किसी को दोष और आवरण बिल्कुल नहीं। जब थोड़ा दोष और थोड़ा आवरण है तो किसी को सम्पूर्ण दोष और आवरणरहित (दशा) भी हो सकती है। न्याय दिया। तब सामने प्रश्न किया कि जब बड़ा दोष और आवरण किसी को है, इसका जब सर्वथा दोष और आवरण टल जाता है, तो हम ऐसा कहते हैं कि बुद्धि की ज्ञानदशा थोड़ी है। किसी को बढ़ती है, किसी को अभाव हो जायेगी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ प्रश्न किया है। ऐसा नहीं है। यह तो सत् है। सत् है, वह तो कायम रहनेवाला है। वह तो पर्याय असत् है। ऐसा सामने प्रश्न किया कि तुम जब ऐसा कहोगे कि थोड़ा दोष और आवरण हमारे घटे हैं तो हम उसके अनुमान से हेतु लगाते हैं कि किसी प्राणी को दोष और आवरण सर्वथा गये हैं; इसलिए सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है। तब सामने प्रश्न किया। जब बुद्धि की पर्याय में हीनता है, किसी को अधिक है तो किसी को हीन होते-होते अभाव भी हो जायेगा। ज्ञान की पर्यायरहित हो जायेगा। तब आचार्य ने (कहा), भाई! यह तो सत् की व्याख्या है। सत् है, उसका कभी अभाव नहीं होता। यह तो उसकी पर्याय का अभाव हुआ है और थोड़ी का हुआ है, वह अधिक अभाव होगा। परन्तु वह तो पर्याय की व्याख्या है। पर्याय में थोड़ा आवरण रहा है और किसी को सर्वथा गया है, वह तो पर्याय की अपेक्षा से बात है। परन्तु सत् है, उसका अभाव कभी नहीं होता। आहाहा! न्याय के ग्रन्थ में ऐसी बात है। अष्टसहस्त्री में यह बात ली है। साधारण लोगों को तो कठिन पड़े। आहाहा!

यहाँ तो अपने कर्म की अपेक्षा लेनी है। जितने प्रमाण में वहाँ ज्ञानावरणीय प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग है उसमें, उतने प्रमाण में ही यहाँ इसकी पर्याय के योग्यता हीनदशा की है स्वयं के कारण से, उसके (कर्म के) कारण से नहीं और उसमें भी जितनी यहाँ हीनदशारूप परिणमा, इतना यहाँ ज्ञानावरणीय विशेष परिणमा, वह भी इसके कारण से नहीं। वह भी इसकी ज्ञानावरणीय की पर्याय का योग्यता का उतना ही काल है, उस प्रकार से हुआ है। अरे! ऐसी बात! जैन में कर्म का बड़ा विवाद। ...

दर्शनावरणीयकर्म दर्शन को आच्छादन करता है,... अर्थात् दर्शन की पर्याय हीनरूप परिणमने का स्वयं का ही उपादान है, तब दर्शनावरणीय निमित्त है। उससे कार्य हुआ, ऐसा उपचार करके कहा है। समझ में आया? अरे! बहुत लम्बी बातें इसमें। बनियों को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। धन्धे में से निवृत्त हो और एक घण्टा मिले, उसमें मुश्किल से बेचारा, यह निर्णय कब करना? आहाहा!

वेदनीय साता-असाता उत्पन्न करके... लो! **अतीन्द्रियसुख को घातता है,...** ठीक!

मुमुक्षु : .... चार घातिकर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो चारों ही हैं। यहाँ तो उसे वह वेदनीय कहना है न इतना। बाकी साता-असाता तो संयोग देता है। संयोग में लक्ष्य जाता है, उसे इसलिए अतीन्द्रिय सुख घातता है। अतीन्द्रिय सुख अपना। इतनी बात अपेक्षा से ली है। आहाहा!

मोहनीय सम्यक्त्व तथा चारित्र को रोकता है,... लो! यह सब निमित्त के कथन हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न यहाँ पाठ तो यह है न? मोहनीयकर्म सम्यक्त्व को घातता है। अर्थात्? जीव मिथ्यात्व उत्पन्न करता है, तब समकित का घात हुआ, उसमें कर्म का निमित्त है, इसलिए उसे समकित का घात करता है, ऐसा कहने में आता है। ऐसा है। समझ में आया?

इसी प्रकार चारित्र को। चारित्र में अचारित्ररूप से परिणमने की अपनी योग्यता से परिणमा है, इसलिए उस चारित्र को अपनी हीनदशा ही चारित्र को घातती है। उसे कर्म का निमित्त है, इसलिए चारित्रमोह में चारित्र का घात किया, ऐसा निमित्त से कथन है भाई यह तो। आहाहा! समझ में आया? **आयुकर्म स्थिति के प्रमाण शरीर में रखता है,...** शरीर में रहने की योग्यता से जीव रहता है, परन्तु उसे आयुष्यकर्म निमित्त है, इसलिए आयुष्यकर्म से शरीर की स्थिति में रहा है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शरीर में रहने की योग्यता का ही अपना योग्यता काल है, इसलिए रहा है। आयुष्य से रहा है—ऐसा कहना, वह निमित्त का कथन है। आहाहा!

यह पैसा आता है, वह साता वेदनीय के कारण आता है, इसके पूर्व के पुण्य के कारण, ऐसा कहना वह निमित्त का कथन है। पैसा जो है, वह तो उसके कारण से आता है, उसके आने के काल में (आता है)। उसे पूर्व के पुण्य के रजकण निमित्त हैं, इसलिए उनसे आया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! पैसे आये, उसे तो खबर भी

नहीं, कि यहाँ साता का उदय है, इसलिए आऊँ। उसे पुण्य का उदय है, इसलिए पैसे आवे, ऐसी उदय को खबर है?

मुमुक्षु : .... तो खबर है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यही विवाद था न उसके साथ। आर्यसमाज का व्यक्ति था। यहाँ आया था न! क्या नाम? आर्यसमाज का, नहीं? मुनि-मुनि। एक मुनि नाम था। मुनि नहीं था, गृहस्थ था। परन्तु पढ़ा हुआ विद्वान व्यक्ति था, आर्यसमाज का। फिर साधु हुआ। इनके बहनोई, हों! साधु हुए तो जैन के स्थानकवासी। पाँच वर्ष रहे।

मुमुक्षु : स्थानकवासी में?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थानकवासी साधु। तिलोकचन्दजी, तिलोकचन्दजी। फिर उसे कर्म की शंका पड़ी कि यह क्या? कि एक मनुष्य निकला, उसे बैल ने सींग मारा तो उसे असाता का उदय है, इसलिए सींग मारा, वह क्या? बैल ने मनुष्य को सींग मारा। और उसको असाता का उदय। उसे—सींग को उदय की किस प्रकार खबर पड़ी कि अभी इसको मेरा उदय है? अर्थात् कि बीच में कोई ईश्वर चाहिए, ऐसी उसे शंका पड़ी। ऐसा नहीं, भाई! वह स्वतन्त्र है। ऐसा ही निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का मेल है। उसे वहाँ असाता का उदय हो और सींग यहाँ लगने का निमित्त हो, उसके कारण वह और उसके कारण वह। बहुत कठिन बातें, भाई!

सम्प्रदाय के साथ कर्म का झगड़ा तो हमारे (संवत्) १९७१ से चलता है। कर्म से होता है... कर्म से होता है। कहा, कर्म से नहीं। अपने से होता है, तब कर्म से होता है, ऐसा कहने में आता है। उल्टे पुरुषार्थ से ज्ञान को हीन करे, राग करे, सुल्टे पुरुषार्थ से ज्ञान को उग्र करे और राग टाले। आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य तो निमित्तमात्र है, एक निमित्तमात्र। आहाहा! वस्तु की स्थिति की मर्यादा ही यह है। इससे आगे जाये तो मर्यादा टूट जाती है। समझ में आया? आहाहा!

यह प्रश्न चला है न? कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की कमी-बेसी अपने कारण से होती है, कर्म के कारण से नहीं। आया है न? टेप रेकॉर्डिंग में। पढ़ा है? (तो कहे), नहीं। ऐसा नहीं है। ग्यारह अंग के धारक कहे तो भी यह बात ऐसी

नहीं है। ऐसा कहा। वह सुना परन्तु यह वस्तु चलती नहीं थी। समझ में आया? है न कहीं? कहीं है सही। यही है, देखो! प्रकाशित हुआ था तब। जब गये थे न? (संवत्) २०१३ के वर्ष। प्रश्न : श्री रतनचन्दजी मुख्त्यार सहारनपुर (ने) वर्णीजी से प्रश्न किया। 'कानजीस्वामी यह कहते हैं, महाराज! ज्ञानावरणादिकर्म कुछ नहीं करते, अपनी योग्यता से ज्ञान में कमी-बेसी (हीनाधिकता) होती है। महाराज! ज्ञान में कमी होती है, वह अपनी वजह से होती है, अपनी योग्यता से होती है। कानजीस्वामी यह कहते हैं। ज्ञानावरणादि कुछ नहीं करता। महाराज! क्या यह ठीक है?' २०१३ के वर्ष का प्रश्न। चर्चा हुई थी।

उत्तर : क्षुल्लक वर्णीजी—'यह ठीक है। आप ही समझो। कैसे ठीक है? यह ठीक नहीं है। कोई भी कहे चाहे, हम तो कहते हैं कि अंगधारी भी कहे तो भी ठीक नहीं है।'

यह चलता नहीं था न इसलिए। चेतनजी को तो यहाँ अधिक कहा था। केवलज्ञानी आवे तो (मानूँ नहीं)। यह चलता नहीं था, उसमें कुछ (नहीं)। वह यह प्रश्न है। अंगधारी कहे तो भी हम नहीं मानेंगे। ज्ञान में कमी-बेसी जो अधिक और विशेष स्पष्टीकरण—ज्ञान का विकास हो, वह स्वयं से है। उसके क्रमबद्ध में ज्ञान की हीन दशा होने का स्वयं के कारण से होता है। कर्म को तो निमित्त कहने में आता है। परन्तु इन सबका वाँचन ही, भाई ने कहा था न? हम सब पण्डितों का निमित्त प्रधान ही कथन—वाँचन, पठन है। यह पठन हम सीखे ही नहीं, ऐसा कहते थे। देवकीनन्दन (कहते थे)। अब ऐसे लेख आवे। स्पष्ट लिखे उसमें ज्ञानावरणी का कार्य यह है। ज्ञान की हीन (दशा होना), वह निमित्त का कार्य है। ऐई! नवरंगभाई! है या नहीं परन्तु? भाई! यह है तो किस नय का कथन है? किस नय का कथन है?

मुमुक्षु : जो आपको पसन्द आता है, वैसा निकालते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। जिस प्रकार से सत्य है, वैसा निकालते हैं। आहाहा! यह तो वहाँ (संवत्) १९७१ में प्रश्न उठे। भगवतीसूत्र का पहला शतक है। ... वह कहीं गुरु ने दिया नहीं था। मैं तो अपने आप पढ़ता था। चार महीने के अपवास

थे, एकान्तरा। एक बार खाना और दूसरे दिन अपवास, एक एक बार तीसरे खाना, ऐसा। तो एकान्त में शास्त्र पढ़ते थे। चारों महीने। उसमें यह बात आयी कि संशय मोहनीय भाव आत्मा आत्मा से करता है। मिथ्यात्वभाव आत्मा आत्मा से करता है, कर्म से नहीं, ऐसा उसमें लेख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसमें से निकाला था। परन्तु इसका अर्थ ऐसा था। संशय मोहनीय कौन करे? कि वह स्वयं करता है और स्वयं ही टालता है। इतना हाथ आया, लक्ष्य में। १९७१ के वर्ष में, बात बाहर रखी थी। कहा, बात ऐसी है। खलबलाहट... खलबलाहट हो गया। गुरु बेचारे भद्रिक थे। एक सेठ थे, दामोदरसेठ थे। उनकी दृष्टि बहुत विपरीत थी। यह कहाँ से निकाला ऐसा? हमारे गुरु ने कहा नहीं और बिना डोर की पतंग यह उड़ी। ऐसा कहा। मार्ग तो यह है, बापू! अपनी पर्याय हीन होना या अधिक होना, वह कर्म के आधीन नहीं है। आहाहा!

यह हंसराजभाई ने प्रश्न किया था। वहाँ वाँचन करते थे। हंसराजभाई थे न वे कामाणी। रामजी कामाणी बड़े गृहस्थ अभी हैं।

मुमुक्षु : काशी जाकर पढ़े हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : काशी में पढ़े हुए थे परन्तु उन्हें बुद्धि स्थूल। उन्होंने (संवत्) १९८१ में गढडा में प्रश्न किया था। यह ज्ञानावरणी के क्षयोपशम से यहाँ ज्ञान होता है। कहा, ऐसा नहीं। वे काशी के पढ़े हुए सब। अब काशी का पठन यहाँ क्या काम आवे? यहाँ तो वीतराग का पठन चाहिए। अपने से क्षयोपशम होता है, तब कर्म का क्षयोपशम अर्थात् उदय का थोड़ा अभाव उसके कारण से होता है। इसके कारण से नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! बड़ी गड़बड़ है यह। अब अभी तक इसकी बड़ी गड़बड़ है।

यह यहाँ कहते हैं, देखो! **आयुकर्म स्थिति के प्रमाण शरीर में रखता है,...** है तो अपनी योग्यता से रहा हुआ है। उपादान तो वहाँ अपना ही रहने का है। उसे आयुष्यकर्म का निमित्त है। कर्म को खबर है कि इसे इतने समय यहाँ रखूँ? आहाहा! कठिन काम, भाई! कर्म और आत्मा के बीच का बड़ा झगड़ा। **अविनाशी भाव को प्रगट नहीं होने**

देता,... लो! आयुष्यकर्म शरीर में रोक रखता है कि जिससे अविनाशी स्थिति प्रगट नहीं होने देता। परन्तु वह अपने कारण से रुका हुआ है। कर्म तो जड़ बेचारे निमित्त हैं। आहाहा!

नानाकर्म नाना प्रकार गति... गति उदयादि आते हैं न? उदयभाव नहीं? २१। **गति, जाति शरीरादिक को उपजता है,...** निमित्त है। आहाहा! गति को और जाति की उत्पत्ति अपनी योग्यता से हुई है। उसमें नामकर्म निमित्त है। **गोत्रकर्म ऊँच नीच गोत्र में डाल देता है,...** निमित्त से कथन है। जिसकी ऐसी योग्यता है, उसमें वह उपजता है। आहाहा! **अन्तरायकर्म अनन्त (बल) को प्रगट नहीं होने देता।** लो, ठीक! भाव-अन्तरायकर्म अपना है। द्रव्यअन्तरायकर्म निमित्त कहने में आता है। ऐसी बात है। उपादान-निमित्त के दोहे में बहुत आता है। नहीं वह भैया भगवतीदास? परसों उनकी सज्झाय है। चतुर्दशी है न। कल, कल नहीं? कल ही चतुर्दशी है। उपादान-निमित्त की सज्झाय। यह और झगड़ा थोड़ा चला था। पढ़े तो सही। आहाहा! **इस प्रकार ये कार्य को करते हैं,...** देखो! यह कर्म के कारण आत्मा में हीनदशा और विपरीत दशा का कार्य होता है।

लिखा है या नहीं? यह व्यवहारनय का कथन है। अशुद्धनिश्चय से तो अपनी पर्याय का स्वयं ही कर्ता-हर्ता है। कर्ता-हर्ता नहीं आ गया? ईश्वर कर्ता-हर्ता नहीं, यह आ गया है। पहले आ गया नहीं उसमें? यह जगत का कर्ता स्वयं है। जगत अर्थात्? नहीं आ गया? शुभाशुभभाव को करता है, उससे बँधा हुआ कर्म और उससे इस शरीर की उत्पत्ति आदि होती है। इसलिए स्वयं ही उसका कर्ता-हर्ता है, ऐसा। कोई ईश्वर कर्ता-हर्ता है, ऐसा नहीं। और विकार को हर्ता अर्थात् नाश करनेवाला यह स्वयं है। आहाहा! ऐसा पर्याय में अपनी योग्यता से ऐसे हीन और विपरीतरूपी कार्य होते हैं। उन्हें कर्म ने कराया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा!

इस प्रकार ये कार्य को करते हैं, तो भी... आहाहा! अब मुद्दे की रकम आयी। **शुद्धनिश्चयनयकर आत्मा का अनन्त ज्ञानादि स्वरूप का इन कर्मों ने न तो घात (नाश) किया,...** आहाहा! त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु अन्तर अनन्त ज्ञान, अनन्त

दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य के स्वरूप का पिण्ड प्रभु, उसका तो कभी घात किसी ने किया नहीं। आहाहा! वह तो पर्याय में और कर्म के निमित्त-निमित्त सम्बन्ध की बात की। परन्तु वस्तु जो है... आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य स्वरूप का, वह कर्मों का न तो घात किया। वह द्रव्यस्वरूप, शक्तिस्वरूप परमात्मा, उसे स्पर्शा भी नहीं। अरे! कर्म तो स्पर्शा नहीं परन्तु उसकी विपरीत दशा (हुई), वह द्रव्य को स्पर्शी नहीं। आहाहा! समझ में आया? चाहे जितनी मिथ्यात्व (दशा हुई) और अक्षर के अनन्तवें भाग का उघाड़ पर्याय में रह गया। द्रव्य तो उसे स्पर्शा ही नहीं। आहाहा! वस्तु तो भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त शान्ति, अनन्त दर्शन—ऐसी शक्तिवाला तत्त्व जो द्रव्य, उसे तो किसी ने घाता ही नहीं है। आहाहा! है?

न नया उत्पन्न किया,... उस द्रव्य को नया उत्पन्न नहीं किया। आहाहा! **आत्मा तो जैसा है वैसा ही है।** लो! आत्मा अर्थात् जो निश्चय वस्तु है, वह तो जैसी है वैसी अनादि से ऐसी की ऐसी है। आहाहा! **ऐसे अखण्ड परमात्मा का तू...** आचार्य महाराज कहते हैं, कौन? **ऐसे अखण्ड परमात्मा...** द्रव्यस्वरूप (उसका) **वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर ध्यान कर।** आहाहा! यह वस्तु अनन्त ज्ञान से ऐसी की ऐसी भरी है। उसे रागरहित सम्यग्दर्शन आदि की शान्ति द्वारा उसे अनुभव (कर)। आहाहा! उसका ध्यान कर। उस ध्रुव का ध्यान कर, ऐसा कहते हैं। पर्याय में भले हीन, अधिक, विपरीत, अपनी योग्यता से और निमित्त से हो, वह सम्बन्ध सब व्यवहार है। वस्तु के स्वरूप में हीनता नहीं, विपरीत नहीं, फेरफार नहीं, अन्यरूप द्रव्य हुआ ही नहीं। आहाहा! उसे तू ध्यान में ले। उसे तू सम्यग्दर्शन में ध्येय बनाकर उसका ध्यान कर। आहाहा! गजब बात, भाई!

स्थिर होकर ध्यान कर। आहाहा! विकल्प से उसका ध्यान नहीं हो सकता। पूर्ण द्रव्यस्वभाव अनन्त आनन्द, बेहद शान्ति, स्वच्छता, ऐसा जो स्वरूप तो ऐसा का ऐसा अनादि से है। उसे तू वर्तमान पर्याय के ध्यान में उसे ध्येय—विषय बना। वर्तमान ज्ञान की पर्याय में उसे विषय बना। आहाहा! उसका तू ध्यान कर। लो! यह करने का है।

पूर्ण स्वरूप, परन्तु जँचना चाहिए न इसे! वस्तु है न वस्तु? वस्तु है, उसमें अनन्त गुण पूर्ण बसे हुए हैं। क्षेत्र छोटा-बड़ा गणना की बात नहीं। उसका स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द से भरपूर। आहाहा! निगोद के जीव की पर्याय में उघाड़ अक्षर के अनन्तवें भाग में (रहा), तथापि उसकी वस्तु जो है, वह तो अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द से भरपूर चीज़ ही है। आहाहा!

पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग में है न। पर्याय में उघाड़ अक्षर के अनन्तवें भाग है।

मुमुक्षु : अक्षर अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अक्षर—केवल। नाश न पावे ऐसी। उसका अनन्तवाँ भाग। अक्षर अर्थात् यह अक्षर, वे नहीं। नाश न पावे ऐसी दशा का अनन्तवाँ भाग। तथापि वस्तु तो वस्तु परिपूर्ण है। आहाहा! शक्ति जिसका सामर्थ्य है, वह शक्ति अर्थात् सामर्थ्य, उसके पूर्ण आनन्द और ज्ञान का सामर्थ्य है, उसमें कुछ फेरफार हुआ नहीं। आहाहा! वह माल वहाँ पड़ा है, कहते हैं। वस्तु में—द्रव्य में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, एकरूप, ध्रुवरूप, अविनाशीरूप, सामान्यरूप, सदृश्यरूप त्रिकाल है, उसका ध्यान कर। आहाहा! लो, यह करने का। परन्तु यह कर्म हटे, तब हम कर सकते हैं। कर्म कुछ मार्ग दे तो करें, ऐसा है? यह सब झूठी बातें हैं। ऐसी स्थिति में, हीन दशा में, विपरीत पर्याय में, हों! तथापि वस्तु में दृष्टि करना, वह तेरा पुरुषार्थ स्वतन्त्र है। उसे कोई रोकता नहीं और उसे कोई कराता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : थोड़े समय कर्म बलवान और थोड़े समय जीव बलवान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें तो अपेक्षा से है। सदा ही जीव ही बलवान है। राग का जोर हुआ हो, तब कर्म बलवान, ऐसा कहा जाता है। वह स्वयं के कारण से है। जड़ के कारण से नहीं। भावकर्म की बहुत विपरीतता यदि हो, तब वह भावकर्म का बल कहलाता है और स्वभाव का पुरुषार्थ करे, तब जीव का कार्य कहलाता है। आहाहा! यह आता है।

हाँ, यह तो कुछ... 'पटणी' को उसे बेचारे को भान कब? मल्ल-मल्ल की

लड़ाई है, कहे। मल्ल की लड़ाई है। पट्टणी यह प्रभाशंकर पाटणी थे न? यहाँ भावनगर के दीवान। व्याख्यान में आये थे। (संवत्) १९९३ के वर्ष। उसे बेचारे को कुछ (खबर नहीं)। बाहर की पुण्य की प्रकृति के कारण बड़ा दीवान हो गया। एक घण्टे व्याख्यान सुना। फिर खड़े होकर (कहे), देखो! यह कर्म की मस्ती है परस्पर। किसी समय कर्म जीत जाता है और किसी समय आत्मा। अभी कर्म का जोर है।

मुमुक्षु : हमारे कर्म का जोर है और आपके आत्मा का जोर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। बेचारे को कुछ खबर नहीं होती। पुण्य के कारण बाहर में बड़ी पदवी मिल गयी, इसलिए हो गये बड़े। धूल के भी बड़े नहीं।

मुमुक्षु : थे बुद्धिवाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका बुद्धो? बुद्धो था। आहाहा! व्याख्यान में आये थे सब। वे आये थे, भाई आये थे। मोरबीवाले। अधिकारी आये थे। श्रावण कृष्ण अमावस्या, १९९३ के वर्ष। गुरुकुल में व्याख्यान चलता था। तब तो यह मकान (स्वाध्यायमन्दिर) नहीं था न! वह मकान (स्टार ऑफ इण्डिया) छोटा था। तब बहुत लोग आते थे। यह सुना, फिर लड़कों ने दण्डिया लिया। उसमें कुछ नहीं। आहाहा! पुण्य के मिलते प्रकार बाहर के आवें, उसके कारण ऐसा हो जाये कि मैं बड़ा हो गया और दुनिया ऐसा माने कि यह बड़ा हुआ। पाँच-पचास कुत्तों में बड़ा बाघ जैसा बड़ा कठोर कुत्ता हो, वह बड़ा कहलाता है। आहाहा! व्याख्यान वहाँ हुआ था। (संवत्) १९९३, श्रावण कृष्ण अमावस्या। तब हमारे खुशालभाई गुजर गये थे। वह आषाढ़ कृष्ण अमावस्या। तब आषाढ़ कृष्ण अमावस्या। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भाई! मल्ल से मल्ल की लड़ाई है। किसी समय कर्म जीत जाये और किसी समय आत्मा जीत जाये, ऐसा कहा था। सेठ! वे प्रभाशंकर पट्टणी थे, यहाँ भावनगर के दीवान थे। ढीचकू शरीर, ऐसे भटकने की बुद्धि में होशियार। दीवान थे, बड़े दीवान। प्रभाशंकर पट्टणी व्याख्यान में आये थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म जीते... किसी समय कर्म जीत जाये। मल्ल से मल्ल की

लड़ाई है। किसी समय कर्ममल जीत जाये और किसी समय आत्ममल (जीते)।

मुमुक्षु : शास्त्र में ऐसा आता है, तनबळियो औ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से? वह तो भावकर्म की अपेक्षा से बात है। भावकर्म की स्वयं ऊंधाई बहुत हो तो वह उसकी भावकर्म की जीत कहलाये और यहाँ पुरुषार्थ की जागृति हो तो उसका जोर कहलाये। ऐसी बात है। आता है न वह तो। आहाहा!

यहाँ तो 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पायी।' आता है न? चन्द्रनाथ भगवान की स्तुति में—पूजा में आता है। और उसमें यह बोल कहे थे तब वहाँ। (संवत्) २०१३ के वर्ष। वर्णीजी के पास। और यह एक बोल कहा था कि, अपराध स्वयं करे और कर्म करावे, (ऐसा कहना), ऐसी अनीति जैन में सम्भव नहीं है। सातवें (अधिकार, मोक्षमार्गप्रकाशक) में है। कर्म आत्मा को नुकसान करते हैं, ऐसी अनीति सम्भवे नहीं। यदि तू वीतराग का आज्ञा मानता हो तो। आहाहा! यहाँ तो सत्य को सिद्ध करना हो तो चाहे जहाँ से लेकर बात होती है। लो, कहाँ-कहाँ से खोजकर निकालकर रखा। परन्तु यह सब आठ कर्म के कारण यह होता है। यह गोम्मटसार में, यहाँ समयसार में कर्म के कारण यह सब विकार में भटके। आत्मा पंगु है। इसमें आयेगा। किस अपेक्षा से कथन? किस नय का कथन? वहाँ क्या कहना चाहते हैं? आहाहा!

देखो! **यहाँ पर यह तात्पर्य है कि जो जीवपदार्थ...** जीवपदार्थ—आत्मवस्तु **कर्मों से न हरा गया,...** उसे निमित्त से उसमें कुछ हुआ नहीं। **न उपजा,...** यह अनन्त ज्ञान, दर्शन स्वरूप वस्तु है, वह कहीं नयी उपजी नहीं। आहाहा! वह तो है, वह है। आहाहा! **जीवपदार्थ कर्मों से न हरा गया,...** आहाहा! स्पर्शता नहीं न! पर्याय को स्पर्शता नहीं, वह द्रव्य को क्या स्पर्शे? आहाहा! द्रव्य तो शक्तिवन्त, सामर्थ्यवन्त, स्वभाववन्त है। नहीं उसे कोई हर लेता, नहीं उसे कोई उपजाता और **किसी दूसरी तरह नहीं किया गया,...** चैतन्यसत्ता को कोई जड़रूप से किया (नहीं)। यह अब आयेगा इसमें। समझ में आया? चैतन्य सत्स्वरूप ध्रुव भगवान, उसे किसी ने हरा नहीं, उसे

किसी ने उपजाया नहीं, उसे कोई अन्य प्रकार से चैतन्य को जड़ नहीं कर सका। आहाहा! ऐसा चैतन्य सूर्य प्रभु, वह ज्ञान की शक्ति का सत्त्व यह है, वह है। उसे कोई हरता नहीं, उस शक्तिस्वभाव को कोई उपजाता नहीं, उसे अन्य प्रकार से कोई कर नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा का ध्यान कर, ऐसा कहते हैं। है?

वही चिदानन्दस्वरूप उपादेय है। आहाहा! द्रव्य उपादेय, ऐसा कहा यहाँ तो। आहाहा! शुद्ध चिदानन्द, ज्ञानानन्दस्वरूप, ज्ञानरूप, आनन्दरूप ऐसा स्वरूप त्रिकाल। जिसमें हीन नहीं, अधिक नहीं, विपरीत नहीं। है, वैसा है; है, वैसा अनादि का है। वह उपादेय है। अर्थात् कि सम्यग्दर्शन में वह आदरणीय है। सम्यग्दृष्टि को ऐसा आत्मा उपादेय है। निर्विकल्प समाधि कही है न? निर्विकल्प शान्ति ही है वह। आहाहा! अभी तो पहली सम्यग्दर्शन की बात चलती है। उसकी जिसे खबर नहीं, उसे व्रत और तप आ गये। कहाँ से आये?

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! कर्म के निमित्त से नैमित्तिक अवस्था अपनी अपने से हुई, उन दो का सम्बन्ध, वह व्यवहार है। इससे व्यवहारनय से कहा। समझ में आया? द्रव्य के साथ उसे निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है नहीं। हीन दशा को और कर्म को दो को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। वस्तु को हीन दशा के साथ, निमित्त के साथ कोई सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! अरेरे! कहते हैं, विश्वास तो ला। भाई! जो पर्याय में प्रगट नहीं, शक्तिरूप से प्रगट है, स्वभावरूप से ऐसा का ऐसा ताजा माल पड़ा है, कहते हैं। कहो, सुजानमलजी! आहाहा! ऐसे भगवान की दृष्टि कर वहाँ। तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। तब उसकी धर्म की शुरुआत होगी। आहाहा! अरे! लोगों को मिला नहीं न यह, इसलिए बेचारे कुछ का कुछ मान बैठते हैं। जिन्दगी चली जाती है। आयुष्य (पूरा होकर)... आहाहा! कहाँ जायेगा? यहाँ ही देह छूटने पर... बहिन आये नहीं। देह छूटने पर बहिन याद आये। वे तो देह छूटने पर आनन्द में रहेंगे।

जिसे अन्दर राग और आत्मा एक है, देह, राग और आत्मा एक है, उसे प्रभु मरण के समय क्या होगा? भाई! यह देह और राग में दब जायेगा। वह पृथक् नहीं रहेगा। आहाहा! यहाँ मरते समय अन्धेरा हो जायेगा। जड़ जैसा। आहाहा! यहाँ रहते हैं

न, देखो न आठ-आठ दिन, नहीं? पन्द्रह-पन्द्रह दिन असाध्य। मरते (समय)। वह बाई सवा वर्ष से पड़ी है। कहाँ गये पोपटभाई, है या नहीं? यह रहे। इनके साले की बहू है। इन पोपटभाई के। दो अरब चालीस करोड़।

मुमुक्षु : आपकी बही में सब विगत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इन्होंने कहा, इसलिए सुना है। पोपटभाई कहते थे। अपने को कोई कहे, वह सुना हो। हम कहाँ देखने गये थे? कोई बोले हो, वह याद रह जाये। सवा वर्ष से असाध्य है। भान नहीं होता।

मुमुक्षु : यह तो बहुत लोग पाँच-पाँच वर्ष तक...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो वह डॉक्टर था। ....का पिता। पाँच-छह वर्ष असाध्य... असाध्य। आहाहा! जीते जी जड़ जैसा, वह मरकर कहाँ जाये? बापू! आहाहा! वह एकेन्द्रिय आदि तिर्यंच में अवतरित हो, बापू! आहाहा!

यह चिदानन्दस्वरूप, ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु, ज्ञानानन्दस्वरूप तो ऐसा का ऐसा ताजा-ताजा अन्दर पड़ा है। आहाहा! नहीं मुरझाया, नहीं घटा, नहीं अन्य हुआ। आहाहा! अक्षर के अनन्तवें भाग तक हीनदशा चली गयी परन्तु वह वस्तु तो ऐसी की ऐसी रही है। वह तो उत्पाद-व्यय में हुआ। ध्रुव में कुछ हुआ नहीं। आहाहा! उस ध्रुव का ध्यान कर तो समकित होगा। आहाहा! यह व्यवहार करें, कुछ दया पालन करें, व्रत करें, तपस्या करें (तो) समकित होगा। तीन काल में नहीं होगा। वह तो राग की मन्दता की क्रिया है। आहाहा!

भगवान विराजता है पूर्ण प्रभु, अरे! उसमें दृष्टि देना, यह वह कुछ बात है! जो पर्याय पर के लक्ष्य में गयी है, वह तो भले गयी। उस पर्याय को अन्तरलक्ष्य में लेना, वही वस्तु है। अर्थात् उसका ध्यान कर तो तेरा कल्याण होगा। दूसरे प्रकार से कल्याण है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

...प्रकाशक...

श्री सीमंधर–कुन्दकुन्द–कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट

राजकोट